——:*:——

निवेदन ।

गृहस्थाश्रम अर्थात् नारायणी शिक्षा आदि के विषय में हमारे पास योग्य पुरुषों के बहुधा सार्टीफिकट उपस्थित हैं उन में से दो एक लिखते हैं फिर चन्द महाशय के नाम प्रकट करते हैं समाचार पत्रों की समालोचना भी दिखलाते हैं ।

श्रीमान् लाला मुन्शीराम जी सम्पादक सद्धर्म प्रचारक जालन्धर (पञ्जाब) की समालोचना का सङ्क्षेप ।

यह ४३६ पृष्ठ की पुस्तक हिन्दी भाषा में है इस में गृहस्थाश्रम को मर्यादा पूर्वक पालन करने की उत्तम शिक्षायें हैं मूल्य १।) जो बहुत ही सस्ती है यह पुस्तक बड़ी उत्तम लिखी गई है—हर एक गृहस्थ को पास रखना उचित है—कहीं २ फारसी शब्द आगये हैं ।

श्री स्वामी १०८ नित्यानन्द सरस्वती जी महाराज–मैंने आप की बनाई हुई पुस्तकों को अच्छे प्रकार से देखा यह सब किताबें पब्लिक को शारीरिक–सामाजिक और आत्मिक उन्नति करने वाली हैं विशेष सूची यह है कि प्रत्येक विषय के साबित करने के लिये वेद–स्मृति–उपनिषद्–पुराण आदि के प्रमाण अच्छे प्रकार से दिये हैं दौरे में मुझ से आप की पुस्तकों की प्रशंसा अनेकान पुरुषों ने की वास्तव में यह प्रशंसा ठीक हैं–गृहस्थाश्रम गृहस्थों के लिये डायवर है गर्भाधानविधि सन्तान उत्पत्ति की कुंजी है–वीर्य रक्षा का सन्तानों के दिखलाने की आवश्यकता है–पत्र प्रकाश और मित्रानन्द पुत्र–पुत्रियों के देखने योग्य है नीति से स्त्री धर्म–स्मृति से स्त्री धर्म–स्त्री विलाप स्त्रियों के दिखलाने योग्य है–आयुर्विचार को देख उमर के बढ़ाने में सहायता मिलती है–सत्यनारायण की प्राचीन कथा सब को सुनना उचित है–द्वैतप्रकाश उन लोगों को अवश्य ही देखना चाहिये जो जीव और ब्रह्म को एक मानते हैं–इस के उपरान्त मौतकाडर–शिष्टाचार–ऋषीप्रसाद–अनमोलरत्न–भरतोपदेश–रत्नजोड़ी–रत्नप्रकाश–संसारफल–सत्यविवेक–सध्यादर्पण आदि देखने योग्य हैं।

अन्य महाशयों ने जो प्रशंसापत्र दिये हैं उनकी नामावली पुस्तक के अन्त में छपी है।

पुस्तकों का सूची और पुस्तक मंगाने के नियम भी अन्त में देखिये।

आपका मित्र—

चिम्मनलाल-वैश्य

पोष्ट–तिलहर ज़ि० शाहजहांपुर



* ओ३म् *

मङ्गलाचरणम् ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष७ँशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व७ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

अर्थ–(द्यौशां०) हे सर्व शक्तिमन् आप की भक्ति और कृपा से [द्यौः] जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है वह सब दिन हम को सुखदायक हों, तथा जो आकाश में पृथ्वी जल औषधि वनस्पति बटादि वृक्ष, संसार के सब विद्वान् ब्रह्म जो वेद यह सब पदार्थ और इन से भिन्न भी जो जगत् में हैं वे सब हमको सब काल में सुख देनेवाले हों, कि सब पदार्थ सब काल में हमारे अनुकूल रहें, जिस से हम लोग सुख पूर्वक रहें, हे भगवन् सब भांति से हमको विद्या, बुद्धि विज्ञान आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिये, हम लोगों पर सब जगत् को उत्तम गुण व सुख के दान से बढ़ाइये ।

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

अर्थ–(यतोयतः) हे परमेश्वर आप जिस२ देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय रहित करिये अर्थात् किसी देश से हमको किञ्चित् भी भय न हो (शन्नः कुरु०) वैसे ही सब दिशाओं में आप की प्रजा और पशु आदि हैं उनसे भी हम को भय रहित करें, हमसे उनको सुख हो, और उन को भी हमसे भय न हो, आपकी प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं उन सब के लिये जो धर्म अर्थ काम मोक्ष पदार्थ हैं वे आप की अनुग्रह से हम को शीघ्र प्राप्त हों ।

पुस्तक बनाने का कारण।

ईश्वर के गुणानुवाद और धन्यवाद के पश्चात् निवेदन है कि सन् १८७१ ई० में श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भ्रमण करते हुये कासगञ्ज जिला एटा में विराजमान हुये और कई मास निवास कर समस्त नगर निवासियों को अपने सत्य उपदेश और व्याख्यानों से कृतार्थ किया, प्यारे सज्जन पुरुषो उक्त महात्मा के अमृतरूपी मनोहर कथन को श्रवण कर मैं भी सन्मार्ग पर जा लगा, और अपने गृह में सत्य उपदेश करने लगा, एक दिन गृहस्थाश्रम के विषय में समझा रहा था कि मेरी बहिन कि जिस का नाम नारायणीदेवी था ने कहा कि भाई कोई ऐसी पुस्तक देवनागरी में नहीं कि जिस में गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों की व्याख्या हो जिस को हम सब पढ़ तदनुकूल चलकर आनन्द भोगें, मैंने विचार किया तो कोई ऐसी पुस्तक न जान पड़ी, तब मैंने कहा कि यदि शरीर वर्त्तमान है तो शीघ्र समस्त गृहस्थियों के अर्थ ऐसी एक पुस्तक लिखूंगा।

मान्यवरो! मैंने परमेश्वर का नाम लेकर इसके लिखने का आरम्भ कर दिया परन्तु समय से किसी का चारा नहीं कि इसी बीच मेरी प्यारी बहिन का स्वर्गवास होगया, माता और चाची ने भी इस असार संसार को त्याग कर परलोक गमन किया, तदुपरान्त समय ने मुझ को और भी झोंके दिये जिसके कारण इस पुस्तक के मुद्रित होने में देर होगई, नाम इस पुस्तक का अपनी प्यारी बहिन के ही नाम पर "नारायणी शिक्षा" अर्थात् गृहस्थाश्रम रक्खा क्योंकि उसकी ही इच्छानुसार इस पुस्तक के रचने का आरम्भ किया था।

प्यारे मित्रवर्गो! यह वार्त्ता प्रत्यक्ष प्रकट है कि सब आश्रमों की जड़ गृहस्थाश्रम ही है, यही समस्त आश्रमों का आधार है, इसी से सब का निर्वाह होता है, इसी के सुधारने से सब का सुधार होजाता है, वर्त्तमान समय में इस आश्रम के बिगड़ने ही के कारण सम्पूर्ण भारत का भारत होगया, क्योंकि गृहस्थाश्रम का प्रबन्ध राज्यप्रबन्ध के सदृश है जो राजा और मन्त्री के सुज्ञान होने पर बड़ी सावधानी

और अग्रसोची से नियमानुकूल ठीक ठीक रह सकता है, यदि उसमें किञ्चित् असावधानी और चूक हो तो वह राज्य शीघ्र तितर बितर होजाता है, फिर उस का संभालना कठिन है, इसी भांति गृहरूपी राज्य का राजा पुरुष और मन्त्री स्त्री है जिनके सुज्ञान होने से नाना भांति के सुख मिल सकते हैं सो इस समय इन दोनों के अज्ञान होने के कारण देखिये क्या कुदशा होगई जो प्रत्यक्ष प्रकट है, कुछ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्य्य और वैभव इस लोक और परलोक के सुखों को तिलाञ्जलि दे रफूचक्कर होगये, शारीरिक सामाजिक आत्मिक उन्नतियों के दर्शन स्वप्न में भी नहीं रहे, सच तो यह है कि विना गृहस्थाश्रम के सुधरे कदापि देशोन्नति नहीं होसकती।

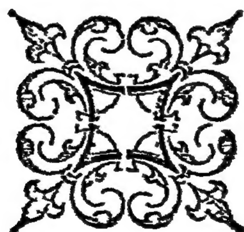
प्रियवरो यह वही आश्रम है कि जिसमें बड़े २ सत्यवेत्ता, कवि, गणितज्ञ, पराक्रमी, विचारशील, परोपकारादि गुणों में परिपूर्ण और शिरोमणि होगये हैं, जिनके वृत्तान्त महाभारत रामायणादि इतिहास से विदित हैं, प्यारे मित्रवर्गो इसी भूमि को पवित्रभूमि के नाम से पुकारते थे और समस्त पृथिवी के निवासी भारतवासियों के गुण गाते थे, और बड़े २ योग्य पुरुष इस देश के दर्शन कर अपना जन्म सुफल करते थे, इस लिये आओ प्यारे भाइयो सब मिलकर इस आश्रम के सुधार का उपाय करें, आओ प्रियवरो सब मिलकर यथाशक्ति मनसा वाचा कर्मणा अर्थात् तन मन धन से सब का सच्चा उपकार करें, जिससे यह आश्रम यथा नाम तथा गुण होजावे, और हमारे तुम्हारे मान्यवर पुरुषों के यश में धब्बा न लगे, सच्चे परोपकारियों का यही धर्म है कि इस समय कमर बांधकर खड़े होजावें और मैदान में कूद पड़ें, प्रिय भ्रातृगणों क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि पूर्वोक्त भारतवासियों ने इस भारत की उन्नति के अर्थ अपने प्राणों को समर्पण कर दिया पर आज उसकी कुदशा मेटने के विचार करने तक का हमको अवकाश नहीं मिलता, लाखों पर पानी डालते हैं परन्तु भारत अभागे के नाम कौड़ी देने में दम सूखता है, क्या हम और आप उन महर्षियों की सन्तान नहीं हैं कि जिन्होंने संसार के उपकारार्थ

अपने प्रिय प्राणों को भी न्योछावर कर दिया था ? क्या गुरू तेगसिंह का नाम स्मरण नहीं रहा ? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भी सुध नहीं रही ? यदि है तो आओ सब मिलकर इस भारत के रोगों की चिकित्सा करें ।

प्यारे भ्रातृगणों मेरी सामर्थ्य न थी जो इस कार्य को पूरा करसकता परन्तु परमेश्वर की कृपा और परोपकारी विद्वान् महात्माओं के सहाय से यह कार्य पूर्ण होगया, इसलिये मुझको इस समय अत्यन्त प्रसन्नता है, आओ प्यारे भाई बहिनों सब मिलकर उस पिता परमात्मा सर्व-व्यापक से प्रार्थना करें कि हे पिता जी अब हम पर ऐसी दया कीजिये कि हम आप की कृपा से सदा पुरुषार्थ को बढ़ाकर शुभ कर्मों के करने में उद्यत रहें और किसी प्रकार का भय चित्त में न लावें ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

———:※:———



* ओ३म् *

* गृहस्थाश्रम *

स्वास्थ्य ।

प्यारे मित्रो सम दोष, सम अग्नि, सम धातु मल क्रिया वाले पुरुष को स्वस्थ कहते हैं, आरोग्यता ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष का मूल कारण है जैसा कि—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ॥

और भी कहा है कि "काया राखे धर्म" अर्थात् धर्म तभी हो सकता है जब शरीर आरोग्य रहे क्योंकि विना आरोग्यता के सांसारिक सुखों के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते फिर पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त होसकता है, प्यारे सुजनों आरोग्यता ही से मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीव्र होती तथा मस्तक बलयुक्त बना रहता है, जिस से शारीरिक, सामाजिक वा आत्मिक कार्य्यों को अच्छे प्रकार कर सुखों को भोग मोक्षपद को प्राप्त करते हैं, इस लिये ऐसे उत्तम पदार्थ को खोदेना मानो मनुष्यजीवन के उद्देश्य का सत्यानाश मारना है, इस के उपरान्त जब आरोग्य में अन्तर पड़जाता है तो फिर उसका सुधार अत्यन्त कठिन होजाता है, इस लिये आरोग्यता रहने के अर्थ जो परिपाटी वेदादि सत् शास्त्रों और प्रामाणिक वैद्यक ग्रन्थों में लिखी है उसके अनुकूल चलना उचित है अर्थात् नीचे लिखी हुई बातों पर सदा ध्यान रख आरोग्यता प्राप्त करना परम आवश्यक है—

प्रातःकाल उठना, शौच, स्नान, कसरत करना, अञ्जन लगाना, वायु, पानी, और भोजन इन को रीत्यनुसार काम में लाना । मादक पदार्थों का सेवन करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, सोना, मकान रीत्यनुसार बनवाना, टीका लगवाना, वीर्य्यरक्षा इन सब का वर्णन संक्षेप से आगे करते हैं—

शरीर-रक्षा

प्रातःकाल उठना ।

यह बात तो स्पष्ट प्रकट है कि सोने को रात और कर्म करने के अर्थ दिन बनाया है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि प्रातःकाल चार बजे उठना अति ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उस समय का वायु बल बुद्धि का दाता होता है, इस बात को अंग्रेज़ लोग भी मानते, मुसलमान भी स्वीकार करते, और कहते हैं कि उस समय के जागने से शरीर सुडौल होजाता और दीर्घायु होती है, परन्तु जब चिल्ले के जाड़े हों तो पांच बजे के पीछे उठना उचित है, वेद में भी प्रातःकाल उठने की आज्ञा है जैसा कि—य० अ० १९ मं० ४ में कहा है—

पुनाति ते परिस्रुतꣳसोमꣳ सूर्यस्य दुहिता ।

वारेण शश्वता तना ॥ और ऋग्वेद मं०१। अ०२। सूक्त ६। मं०३ में आज्ञा है कि रात्रि के चौथे पहर में आलस्य त्यागकर प्राणीमात्र उठाकरें स्मृति व पुराणों में भी इसकी पुष्टता में अनेकान प्रमाण मिलते हैं और बड़े २ ज्ञानी और तत्ववेत्ताओं ने अपने २ ग्रन्थों में इस विषय के लाभों के वर्णन करने में लेखनी को दौड़ाया है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विना सबेरे सोये प्रातःकाल चार बजे उठ नहीं सकता, यदि कोई उठा भी तो नाना प्रकार की हानि होती है अर्थात् शरीर दुर्बल होजाता, आलस्य जान पड़ता वा आंखों में जलन पड़ती है, इस लिये ९, १० बजे रात जाने पर सोरहना उचित है, कि जिस से प्रातःकाल का उठना लाभदायक हो, क्योंकि प्राणीमात्र को ६ घण्टे से कम सोने में मस्तक के रोग उत्पन्न होजाते हैं, आठ घण्टे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा भारीपन जान पड़ता तथा कार्य्यों का भी नाश होता है ।

प्रातःकाल का वायु सेवन करने से मनुष्य हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं, दीर्घायु व चतुर होते हैं, उनकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण होजाती है कि कठिन से कठिन आशय को भी सहज में जान लेते हैं और सदा नीरोग

बने रहते हैं, इसी समय बाहर बस्ती के बागों की शोभा देखने में बड़ा आनन्द मिलता है क्योंकि पेड़ों से प्राणप्रदवायु नवीन स्वच्छ निकलता है जो बाहर जानेवालों की श्वास के साथ भीतर जाता है जिसके प्रभाव से मन कली की भांति खिलजाता और शरीर प्रफुल्लित होता है, इसलिये प्यारे भ्रातृगण वा सुजन स्त्रियो प्रातःकाल जागने का अभ्यास करो कि उपरोक्त क्लेश न सहने पड़ें इस समय को लौकिक वा पारलौकिक कार्यों में व्यय करो, देखो प्रातःकाल चिड़ियां कैसी चुहचुहातीं, कोयल कूंकूं करतीं, मैना तोता आदि सब उस सृजनहार परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते हैं, फिर कैसे शोक का स्थान है कि हम सब से उत्तम होकर पक्षी पखेरुओं से भी निषिद्ध कार्य करें और उनके जगाने पर भी चैतन्य न हों, इन उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त प्रातःकाल सूर्य उदय से प्रथम शौचादि से निवृत्त होकर किञ्चित् जल पीने से बवासीर ग्रहणी आदि रोग जाते रहते हैं और उसी समय नाक से पानी पीने से बुद्धि व दृष्टि की वृद्धि होती तथा पीनशादि रोग जाते रहते हैं, यही समय योगाभ्यास वा ईश्वराराधन वा कठिन से कठिन विषयों के विचारने के लिये नियत है, जितने सुजन और ज्ञाता आजतक हुए वह सब प्रातःकाल ही उठते थे, कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि इन अकथनीय लाभों पर भी भारतवासी जन करवटें लेते ही लेते नौ बजादेते हैं कि जिसके कारण नाना प्रकार के क्लेशों में सदा फंसे रहते हैं।

——o:※:o——

शौच।

प्रथम प्रातःकाल जग कर पाखाने जाना चाहिये, जो मनुष्य सूर्य्य उदय के पीछे दिन चढ़े पाखाने जाते हैं उनकी बुद्धि मलिन, मस्तक न्यूनबल, तथा शरीर में भी नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, बहुधा मनुष्य आलस्य आदि में फंस कर मलमूत्रादि के वेग को रोक लेते हैं, जिससे मूत्रकृच्छ्र शिररोग, पेंडू पीठ आदि में दर्द होने लगता है, मल के रोकने से ही रोगों की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार छींक डकार, हिचकी अपानवायु आदि को भी न रोकना चाहिये, पाखाने से आ-

कर मिट्टी से हाथ पांव को स्वच्छ जल से धोना चाहिये फिर मुख की शुद्धता के लिये नीम वा मौलसिरी खैर आदि दूधवाले पेड़ों की दातोन करे फिर सैंधानोन, सोंठ, भुना जीरा मिलाकर दांतों को मांजे क्योंकि जो मनुष्य दातोन नहीं करते उनके मुंह में दुर्गन्ध आने लगता है और जो प्रति दिन मञ्जन नहीं लगाते उनके दांतों में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, कहीं वादी के कारण मसूड़े सूज जाते, रुधिर निकलने लगता और कभी दांतों में दर्द होता है, दांत मलिन होने से मुख की छवि को विगाड़ सभ्य मण्डली में निन्दा कराते हैं, इस लिये दातोन तथा मञ्जन का कभी त्याग न करना चाहिये, तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे मुख को अच्छे प्रकार साफ करे, परन्तु नेत्रों को गर्म जल से कभी न धोवे ।



स्नान ।

मञ्जनादि के पीछे स्नान करना चाहिये कि जिससे गर्मी का रोग हृदय का ताप, रुधिर का कोप, शरीर का दुर्गन्ध दूर होकर कान्ति, तेज, बल, प्रकाश बढ़ता, क्षुधा अच्छे प्रकार से लगती और बुद्धि चैतन्य होजाती, और आयुवृद्धि होती है और सम्पूर्ण शरीर को आराम जान पड़ता, निर्बलता तथा मार्ग के खेद को दूर करता, आलस्य को भी पास नहीं आने देता है, देखो यह बात तो सर्व जन जानते हैं, कि शरीर के ऊपर सहस्त्रों छिद्र हैं जिनमें बाल हैं, परन्तु यह भी निष्प्रयोजन नहीं, क्योंकि परमेश्वर ने किसी वस्तु को व्यर्थ नहीं बनाया इन्हीं छिद्रों में से शरीर के भीतर का विकारी पानी तथा दुर्गन्धित वायु निकलता और बाहर से उत्तम वायु जाता है, जब यह छिद्र बन्द होजाते हैं, तब उपरोक्त क्रिया भी नहीं होती इस कारण खाज, दाद फोड़ा, फुंसी आदि रोग होकर बहुत प्रकार के क्लेश देते हैं, इस लिये शरीर के स्वच्छ रहने के अर्थ प्रतिदिन स्नान करना योग्य है, ।

यह भी स्मरण रहे कि तरुण वा आरोग्य पुरुषों को शीतल जल से, बूढ़े दुर्बल रोगी जनों को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये।

हे सुजनो! धर्मशास्त्र में इन्हीं कारणों से यह आज्ञा दी है कि स्नान के पश्चात् भोजन करना चाहिये, क्योंकि शरीर की वाह्यशुद्धि स्नान से होती है, शीतल जलके स्नान से रक्तपित्त नेत्र रोग जाते और गर्म पानी से वायु वा कफ के रोग होते हैं, परन्तु सन्धियों के बन्धन ढीले पड़जाते हैं, इस लिये गर्म पानी से खुले हुए मकान में कदापि स्नान न करना चाहिये, शिर पर गर्म पानी डालने से नेत्रों का प्रकाश मस्तक का बलन्यून होजाता है, हां कन्धों से गर्म जल से बन्द मकान में स्नान करना उत्तम है परन्तु इस बात का प्रबन्ध सामान्य जनोंसे होना असम्भव है इस लिये सदा शीतल जल से स्नान करने का अभ्यास करें परन्तु वह जल स्वच्छ हो।

स्नान करने के पश्चात् मोटे निर्मल कपड़े से शरीर को पोंछना चाहिये जिससे सम्पूर्ण शरीर के किसी अङ्ग में तरी न रहे इसी कारण ऐसे कपड़े को 'अङ्गोछा' कहते हैं, यह गज़ी का होता है, गर्भिणी स्त्री को तेल लगा स्नान करना चाहिये और नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग अतीसार-पीनस इन रोग वालों को स्नान न करना चाहिये—

——*:o:*——

पैर धोना।

पैर धोने से थकावट जाती रहती, मल निकल जाता तथा स्वच्छता आती, नेत्रों को तरावट वा मनको आनन्द होता है, इस कारण जब कहीं से आया हो या जब आवश्यकता जाने पावों को धोकर पोंछले, यदि सोते समय पांव धोकर शयन करे तो अच्छे प्रकार नींद आती है, पावों में तेल लगाने से बल आता है।

व्यायाम अर्थात् कसरत।

यह भी आरोग्यता का लक्षण है, परन्तु शोक वा पश्चात्ताप का स्थान है कि भारत से इसकी प्रथा बिलकुल जाती रही, भद्र पुरुष तो इसका नाम तक नहीं लेते किन्तु ऐसे जनों को असभ्य बतलाते और तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, इसी कारण दिन बदिन इसका प्रचार कम

होता जाता है, एक समय ऐसा था कि यह सर्व गुणों में शिरोमणि गिना जाता था (तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत)।

मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी या यन्त्रों के पुर्जे के समान है यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूंकें न उसके पुर्जों को साफ करावें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी होजायगी और उसके सब पुर्जे बिगड़ जायंगे, जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई वह कदापि सिद्ध न होगा, यही दशा मनुष्य के शरीर की भी जानो, यदि उसको स्वच्छ सुथरा बनाये रहें और उमङ्ग साहस में नियुक्त रक्खें, स्वास्थ्यरक्षा पर ध्यान देते रहें तो सम्पूर्ण शरीर का बल यथावत् बना रहेगा और प्रत्येक वस्तु जिस कार्य के अर्थ बनाई गई उस में यथावत् लगी रहेगी, नहीं तो सब निकम्मी हो जायंगी और ईश्वर की रचना के प्रतिकूल फल दृष्टि आवेगा अर्थात् जिस हेतु से मनुष्य का शरीर बनाया गया है वह कार्य्य उससे सिद्ध न होंगे।

इसीप्रकार मनुष्य का जीवनभी लोहू के चलने फिरने पर नियत है, कसरत ही ऐसी वस्तु है जो लोहू की चाल को तेज बना देती है, जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को जो शीघ्र सूखजाने वाला है फिर हरा भरा करदेता है, उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम भी शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता।

शारीरिक बल दृढ रहनेके अर्थ कसरत अर्थात् व्यायाम की आवश्यकता है, मनुष्य के शरीर में लोहू की चाल उस नहर के पानीके समान है जो किसी बाग़ में हरपटरीमें होकर निकलता हुआ सम्पूर्ण वृक्षोंकी जड़ों में पहुंच सारे बाग़ को सींचकर प्रफुल्लित करता है, प्यारे भाइयो उस वाटिका में जितने हरे भरे वृक्ष रङ्गविरङ्ग के पुष्प अपनी छबि दिखलाते, नाना भांति के फल अपनी २ सुन्दरता में मनको हरते हैं, यह सब उसी पानी की माया है, यदि उसकी नालियां न खोली जांय तो सम्पूर्ण वाटिका के पेड़, बेल बूटे मुरझा जाते और फूल फल कुम्हलाकर शुष्क होजाते हैं कि जिससे उस आनन्दबाग़ में उदासी बरसने लगती है और मनुष्यों के नेत्रों को जो उनके देखने तथा विलोकन क-

रने से तरावत व सुख मिलता है उनके स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, इसी के वल से प्राचीन भारतवासी पुरुष नैरोग्य, सुडौल, बलवान, योधा होगये कि जिनकी कीर्त्ति आजतक गाई जाती है, क्या किसी ने हनूमान्, भीमसेन, अर्जुन, बालि आदि योधाओं का नाम नहीं सुना कि जिनकी ललकार से ग़ैर कौमें भागते थे इसी कारण भारतवासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने आधीन करलिया था सो वर्त्तमान् समय में भारत में वीरशक्ति का नामही रहगया है, तदनन्तर इसके अभ्यास से अन्न शीघ्र पचजाता है भूख अच्छे प्रकार से लगती है, सर्दी गरमी का सहन करसक्ता है वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रमजाता है जिससे शरीर शोभायमान बलयुक्त होजाता है, इसके उपरान्त वादीपन से जो सुटाई होजाती है वह सब जाती रहती है, इसी भांति दुर्बल मनुष्य किसीक़दर मोटा होजाता है कसरती मनुष्य के शरीर में प्रति समय उत्साह बना रहता है वह निर्भय होजाता है कि जिससे उसको किसी स्थान में जाने में भय नहीं लगता, इसी कारण ऐसे मनुष्य पहाड़, खोह, दुर्ग, जङ्गल, सङ्ग्रामादि स्थानों में बेखटके चलेजाते हैं और अपने मनके मनोरथ सिद्ध करके दिखलाते और गृहकार्य्यों को सुगमता से करलेते हैं चोर आदि को घर नहीं आने देते, सच तो यह है कि चोर ऐसे मार्ग होकर नहीं निकलते, इसके उपरान्त शीघ्र बुढ़ापा व रोगादि नहीं होते, कुरूप मनुष्य भी अच्छे जान पड़ते हैं। परन्तु वात पित्त युक्त रोगी—बालक—वृद्ध और अजीर्णी मनुष्य कसरत न करें—और सदा शीतकाल और बसन्तऋतु में अच्छे प्रकार से करे और अन्य ऋतुओं में थोड़ा करना योग्य है—अति व्यायाम भी न करे क्योंकि अति के करने से तृषा, क्षय, तमक, श्वास, रक्तपित्त, श्रम, क्लामि, कास, ज्वर, छर्दि ये सब रोग होजाते हैं और जो मनुष्य दिन में सोते और व्यायाम नहीं करते आलस्य में दिन भर पड़े रहते हैं उनको अवश्यही प्रमेह होजाता है इसलिये इन सब बातों को विचार कर्णा स्वसन्तानों से प्रतिदिन कसरत का अभ्यास कराइये जिससे भारतमें वीर शक्ति फिर आजाये—व्यायाम करने में सदा देश काल और शरीर बल का देखना उचित है विपरीत दशा में रोग होजाते हैं कसरत करनेकी

पीछे तुरन्त पानी न पीना चाहिये हां एक घण्टे के पीछे कोई बल-दायक भोजन करना आवश्यक है जैसे गाय का दूध मिश्री संयुक्त वा कोई अन्य प्रकार के लड्डू जो देशकाल व प्रकृति के अनुकूल हों॥

—:*:—

बालों का स्वच्छ करना।

इसके पीछे कङ्घे आदि से बालों को साफ करना चाहिये कि जिस से बाल मैले न रहें क्योंकि मल के होने के कारण बाल बुरे जान पड़ते तथा जुयें होजाते हैं परन्तु यह भी प्रकट हो कि इस देशवालों को शिरपर अधिक बाल रखना लाभदायक नहीं क्योंकि इस देश में गर्मी अधिक होने से बहुत दोष होजाते हैं, इसलिये छोटे २ बाल रखना तथा उनको आठवें दिन मुलतानी मिट्टी या आमले को पीस तैल में पकाकर या सरसों को पीस मलकर धोना योग्य तथा लाभदायक है।

—:*:—

अञ्जन।

अञ्जन प्रति दिन नेत्रों में लगाना चाहिये क्योंकि इस से खुजली, पानी आना, दर्द, वायु तथा धूप के विकार नष्ट होकर नेत्रोंका प्रकाश सुन्दरता युक्त होजाता है। परन्तु दिन में कोई ऐसा तेज अञ्जन न लगावे जिस से पानी आंखों से निकल आवे ऐसा होने से नेत्र सूर्य के बलको सहन नहीं कर सकते वैद्यक में बहुत प्रकारके सुरमे लिखेहैं जिनमें से एक के बनाने की रीति हम यहां लिखते हैं—

सुरमे को आग में गरम कर त्रिफले के अर्क में सातबार बुझावे, फिर स्त्री के दूध में, तदनन्तर गोमूत्र में पांच २ वार पृथक् २ बुझा-कर महीन पीसकर रखलें।

सुरमा सामान्यता से प्रातःकाल स्नान के पश्चात् तथा सायङ्काल को लगाकर सोना चाहिये, परन्तु ध्यान रखना योग्य है कि शिर से स्नान करने के पीछे तुरन्त ही सुरमा लगाना योग्य नहीं, भोजन के पश्चात् व नवीन ज्वर में भी सुरमा नहीं लगाना चाहिये।

अब यहां पर दृष्टिरक्षा के हितार्थ कुछ नियम लिखते हैं जिनपर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

(१)–पांव को गर्म तथा शिरको ठंढा रक्खें (२) जहां यथेष्ट प्रकाश न हो वहां वारीक अक्षर न देखे (३) लेटे २ व चलते फिरते पुस्तकादि को न पढ़ना (४) मदिरा कदापि न पीये और तमाकू से भी घृणा करे (५) प्रातःकाल जागने के पश्चात् तथा ग्रीष्म ऋतु में शयन करने के प्रथम आंखों को शीतल जलसे धोवे (६) प्रातःकाल विना खाये आंखोंपर जोर न डाले (७) प्रतिदिन सन्ध्या समय भोजनों के पीछे गायके दूधमें मिश्री मिला कर पीना (८) पांचवें व सातवें दिन रातको रसोत लेप करना ।

वायु ।

पदार्थविद्या से यह सिद्ध है कि जिस प्रकार पानी के बड़े २ समुद्र पृथ्वी पर हैं उसी प्रकार हवा के भी हैं, जिस भांति मछलियां पानी में रहती और विना उसके चन्द मिनट में मरजाती हैं, इसी तरह हम भी हवा में रहते और विना इसके हमारा जीवन नहीं होसक्ता। क्योंकि विना इस के न आग जलती न आवाज़ सुनाई पड़ती है न वर्षा आदि होती है यह निम्नलिखित वस्तुओं से बनी है–

(१) एक प्राणप्रद वायु अर्थात् जिस पर जीवधारियों का जीवन निर्भर है, विना उसके वस्तुयें नहीं जलतीं, यदि हवा में केवल प्राणप्रदवायु ही होती तो भी हम नहीं जीसक्के, क्योंकि यह इतनी सख़्त होती कि हम न सहसक्के, यह दोष दूर करने के लिये उस परब्रह्म परमेश्वर ने अनेक वस्तुयें मिलाई हैं ।

(२) दूसरी नयटरोजन अर्थात् जीवाक वायु, इस का गुण प्राणप्रद वायु के बिलकुल विरुद्ध है न तो इस में वस्तुयें जलती हैं न जीवधारियों का जीवन इसके आश्रित है, इस में जलता हुआ दीपक बुझजाता है, यह प्राणप्रदवायु की मदद के लिये है, यह हवा में प्राणप्रदवायु से चतुर्गुण होती है ।

(३) तीसरी कारवोनिकएसिडगास, यह भारी होती और बहुधा गहरे कुओं में जमा रहती है इस में भी जलता दीपक बुझजाता तथा यही श्वासमें आवे तो मनुष्य मरजाता है, परन्तु वनस्पति

इसके बिना जिन्दा नहीं रहतीं, इसका हवा में २५०० वां भाग रहता कि जिससे किसी को हानि नहीं पहुंच सक्ती, वनस्पति इसे खींचती तथा इसके बदले में प्राणप्रद्वायु को निकालती हैं।

(४) चौथी वस्तु हवा में पानी की भाफ है, यह वर्षा करती है, यदि यह हवा में न होती तो सूर्य्य की गर्मी से सब हवा गर्म होजाती तब श्वास द्वारा मनुष्यों के शरीर झुलस जाते, खून में अधिक हरारत उत्पन्न होती, वृक्ष मुरझाजाते, इन बुराइयों को दूर करने के निमित्त उस परब्रह्म परमेश्वर ने इन सब को इस प्रकार से मिलाया कि जीवधारियों को हानि कारक न हों।

जैसे नहाने धोने से शरीर की बाहर शुद्धता होती है वैसेही श्वास द्वारा भीतर की शुद्धता होती, अर्थात् जब मनुष्य श्वास लेता है तो हवा अन्दर जाती है और उसमें का प्राणप्रद्वायु खून में मिलजाता है जो अशुद्ध खून को साफ करता तथा शेष भाग हवा की गन्दगी को लेकर बाहर निकल जाता है, जो वायु श्वास के साथ अन्दर जाता है उसमें बहुत कम और जो बाहर आता है उस में सौगुना कारबोनिकएसिडगास होता है।

अब देखिये कितनी गन्दगी श्वास द्वारा बाहर आती अर्थात् प्रति समय आभ्यन्तरिक स्नान होता रहता है।

मिलने, चलने और दरख़्तों से प्राणप्रद्वायु के निकलने से हवा शुद्ध होती रहती हैं।

परमेश्वर ने नाना प्रकार के पुष्प, सुगन्धित वस्तुयें पैदा की हैं जो हवा की गन्दगी को दूर करती हैं।

जितनी हवा परमेश्वरीय नियमों से बिगड़ती है उतनी ही शुद्ध भी होती रहती है।

मनुष्य को प्रति दिन के कार्य्यों से जितनी वायु बिगड़े उस का शुद्ध करना परमावश्यक है।

हमारे आपके नहाने धोने, आग जलाने, मल मूत्र के त्याग ने से वायु खराब होजाता है, इसीलिये इन खराबियों के दूर करने के लिये कोई उपाय अवश्य सोचना चाहिये।

विना खाये पिये चाहे मनुष्य जिन्दा भी रहसके परन्तु विना हवा के थोड़ी ही देर में मरजाता है, सब जानते हैं कि आरोग्यता के लिये शुद्ध वायु की आवश्यकता है, वायु सदा श्वास लेने से खराब होता रहता है इस के अतिरिक्त आग जलाने, मल मूत्र त्यागने, पसीना निकलने से वायु बिगड़ आरोग्यता को हानि पहुंचाता है।

यहां तक कि ऐसी हवा में रहने वाले पीले पड़जाते घबड़ाये हुए दिल रहते, तथा नाना प्रकार के रोगों में ग्रसित होजाते हैं। जब कि हवा सदा बिगड़ी ही रहती है, तो उसका शुद्ध रखना आवश्यकीय है. इस लिये परब्रह्म परमेश्वर ने हवा के शुद्ध होने के लिये नियम नियत किया है अर्थात् हवाओं का आपस में मिलना और इन के दूर करने के लिये जो प्रयत्न हमारे ऋषि मुनियों ने नियत किया है उससे अच्छा और कोई उपाय नहीं होसकता, अर्थात् हवन का नित्य प्रति करना कि जिस की शिक्षा वेद शास्त्रों में भी है।

जिसका अभिप्राय यही है कि जितनी हवा खराब हो वह शुद्ध होजावे इस लिये हे प्रियवरो यदि आरोग्यता की चाह है तो नित्य प्रति हवन किया करो–इसके लाभ आगे वर्णन करेंगे

——:※:——

पानी—

प्रत्येक मनुष्य को ज्ञात है कि हवा की तरह आरोग्यता के लिये पानी की भी आवश्यकता है विना इसके किसी जीवधारी का जीवन नहीं रहसकता, मनुष्य के शरीर में पानी का भाग दो तिहाई से भी अधिक अर्थात् जिसके शरीर का बोझ ७५ सेर हो उसमें ५६ सेर पानी है, यदि इतना पानी न होता तो लोहू स्वच्छ न रहता, तथा गाढ़ा पड़जाता, जब गाढ़ा पड़जाता तब उसका चलना बन्द होजाता।

जो पानी हम पीते हैं वह लोहू में मिलकर रगों में पहुंचता है, यदि आप खराब पानी पियेंगे तो प्रत्येक रग में हानि होती जायगी जिसका अन्तिम परिणाम स्वच्छता से हाथ धोना होगा, इसलिये मनुष्य मात्र को उत्तम जल पीना चाहिये।

खराब जल गाय भैंस आदि पशु पक्षियों को भी हानि कारक है अर्थात् उनके पेट में केंचुये आदि होजाते हैं, पशुओं को चैवच्चे, नालियों आदि का गन्दा पानी कभी न पिलाना चाहिये गन्दे पानी में वस्त्रादि भी न धुलाना चाहिये जो कि मनुष्य मात्र के पहरने ओढ़ने के काम में आते हैं इन में से दुर्गन्धित परमाणु निकलते हैं जो कि आरोग्यता को हानि कारक होते हैं, इस ओर भी ध्यान देना आवश्यकहै।

उत्तम पानी वह है जिस में गन्ध न आता हो मधुरतिक्तादि कोई रस जिस में प्रकट न हो तृषानाशक, स्वच्छ, शीतल, अच्छा, हलका, हृदय को हितकारी हो वरसाती पानी में कुआर के महीने का पानी अत्यन्त अच्छा और लाभदायक है और सुश्रुत मेंभी लिखा है कि ऐसा पानी पीने से थकावत प्यास, जम्हाई जलनादि दूर होती तथा लोहू को स्वच्छ करता व पाचन शक्ति को बढ़ाता है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य को ऐसा पानी मिल नहीं सकता, हां, धनाढ्यजन इस का प्रबन्ध कर सकते हैं कि कुआर के महीने में जब वर्षा हो तो ऊंचे पर कपड़ा तान नीचे से पानी लेकर सोने चांदी आदि के वर्त्तनों में रख छोड़े। सामान्यजन कुए, नदी, तालाव से पानी पीते हैं, परन्तु भारत देश में वर्त्तमान समय में ऐसी २ रीतें प्रचलित होगई हैं जिनसे उनके पानी में गन्दगी उत्पन्न हो जाती है जिसके पीने से अनेकान रोग होजाते हैं इस लिये उन के दूर करने के उपाय लिखते हैं॥

रोगकारक जलकी पहिचान।

जो जल छूने में चिकना और गाढ़ा हो किसी तरह का रङ्ग या ऊपर उसके कुछ तेल सा मालूम होता हो तथा जिसमें दुर्गन्धि आती हो या जो जल पीतल तांबा धातु डालने से काला पड़जाय वह खराव व हानिकारक है। पानी को रात में उठकर न पीना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से नजला होजाता है और फल खाकरके भी पानी न पिये वरन खांसी आदि रोग होजाते हैं।

कुआ वनवाना ।

कुये वनवाने के समय नीचे लिखी वातों पर अवश्य ध्यान रखना योग्य है (१) कुये उथले न हों अर्थात् गहरे हों क्योंकि गहरे कुओं का पानी मीठा होता है (२) कीचड़ या ढलाव के स्थानपर कुआ न वनाना चाहिये (३) निकास का पानी कुये में न जानेपावे (४) आस पास का पानी रिस २ कर न जाने पावे (५) कुओं के आसपास की मुंडेल कई फुट चौड़ी होनी चाहिये (६) कुओं पर लोहे वा लकड़ी की जाली होना आवश्यक है-कुओं के ऊपर कोई स्नान न करे कपड़े न धोये और न कुओं के आस पास पाखाने हों इन सबसे पानी खराव होजाता है (७) पत्ते वा कुरा करकट भी न गिरने पावे (८) स्वच्छ डोल व रस्सी से पानी भरना चाहिये ।

———:*:———

कुओं का पानी ।

कुओं का पानी दो प्रकार का होता है एक खारी दूसरा मीठा, खारी पानी पित्तकर्त्ता कफनाशक दीपन और हलका होता है मीठा पानी त्रिदोषनाशक हितकारी और हलका होता है ।

———:*:———

तालाव ।

(१) वहुधा जन तालावों में स्नान दातोन कुल्ला भी करते हैं (२) अशुद्ध कपड़े उसमें धोते तथा उनका खराव पानी उसमें निचोड़ देते हैं (३) तालावों के किनारे पर पाखाने जाते फिर उस में शौच करते हैं (४) गाय भैंसादि पशुओं को स्नान कराते तथा कभी २ सुअर तक घुस जाते हैं (५) सन आदि सड़ने को डालते हैं । (६) जब गर्मियों में तालाव सूख जाते हैं तब उस के भीतर पाखाने जाते हैं । (७) तालावों में वर्तन मांजते धोते हैं । इस के अतिरिक्त मनुष्यों और पशुओं के लिये पृथक् २ तालाव होने आवश्यक हैं उसके किनारे पर हरे पेड़ों का होना भी आवश्यक है परन्तु पत्ते भीतर न आने पावें--तालाव का पानी वादी करता है-कसीला और पाक में कडुवा होता है ॥

———:*:———

नदियों का पानी—

इनका जल बादी रूक्ष और अग्निदीपक है ॥

जिन बातों से तालाबों का पानी खराब होता है उन्हीं बातों से नदियों का भी पानी बिगड़ जाता है, अतः उन बातों से नदियों के पानी को बचावें, तथा हैजे से मरे हुए आदमी और बच्चों को नदी में न डाले न उस के किनारे गाड़े, मुर्दे जलाकर उनकी राख तथा हड्डियों को भी उसमें न डाले, इत्यादि बातों से नदियों के पानी को स्वच्छ रखना चाहिये ।

दल दल का पानी पीना योग्य नहीं क्योंकि उसके पीने से बुखार आदि रोग होजाते हैं, जिस स्थान पर ऐसा ही पानी पीने को मिले तो औट कर पीना चाहिये । और पानी को नीचे लिखी रीतों से स्वच्छ कर लेना चाहिये ॥

(१) फिटकरी व निर्मली को घिसकर डाले । (२) पानी को गर्म करने से भी खराब वस्तुओं का अवगुण जाता रहता है । (३) थोड़ी देर पानी को वर्तन में रखने से उसमें की तिलछट बैठ जातीहै। (४) बहुत प्रकार के छन्ने बनाये गये हैं । (५) बादाम की मिंगी को पीसकर डालने से भी पानी स्वच्छ होजाता है । (६) नदी के किनारे गड्ढा खोदने से पानी अच्छा मिल जाता है । (७) बहुधा कोयलों से भी पानी को स्वच्छ करते हैं, क्या स्टेशनों पर नहीं देखा कि एक तिपाई पर पानी के तीन घड़े रक्खे होते हैं और जिनमें ऊपर के दो घड़ों की पेंदी में छेद होता है जिस से पानी टपक २ दूसरे में होता हुआ तीसरे घड़े में जाता है, उस में सब से ऊपर वाले घड़े में पानी और बीच के घड़े में कोयला और बालू रहती है, इस प्रकार जल को स्वच्छ करना चाहिये ।

प्रियवरो ! कुछ ईश्वरीय नियम से भी पानी बिगड़ जाता है जैसा बहुधा जानवरों का जो उसने उत्पन्न किये हैं मर कर सड़ना और बहुधा घासें जो उस में पैदा होती हैं सड़कर मिलजाती हैं उनके दूर करने का उपाय भी ईश्वर ने करदिया है अर्थात् मछलियां उत्पन्न करदी हैं जो उसकी सम्पूर्ण गन्दगी को दूर कर देती हैं, उन को भी बहुधा

लोग मार कर खाजाते हैं शोक है उन मनुष्यों पर जो ईश्वरीय नियम को तोड़कर संसार के लाभ को मेटते हैं, मछलियों के भक्षण करने की हानि को आगे दिखलावेंगे ।

पानी ठंढा करने के उपाय पानी को ऐसे स्थान में रखना जहां वायु आती हो (२) पानी को उछालना (३) बालू में पानी के बर्तन को रखना (४) लाठी में पानी के लोटे को बांध के घुमाना (५) पंखा करना (६) छींके पर रखना ।

बासी जल न पीना चाहिये क्योंकि रात को जल रक्खे रहने के कारण खट्टा होजाता है जो कफ को उत्पन्न करता है और तृष्णा को भी शान्ति नहीं करता ।

भोजन—

प्यारे मित्रो ! अन्न के भोजनों से प्राणी बढ़ते हैं औरइन्ही से सब दशाओं सेभ्रमते हैं बिना इसके कुछ भी नहीं करसकते जैसा य० अ० १८ मं० ३४ में कहा है—

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

इस लिये सदा बुद्धि, बल, आरोग्यता और आयु बढ़ाने वाले ओषधियों के रसों का सेवन करना चाहिये और प्रमादकारी पदार्थों का कभी नहीं । जो ऐसा करते हैं वे इस जन्म और पर जन्म में धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं जैसा य० अ० १९ मं० ७ में कहा है ।

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

ऐसे ही पदार्थों को भक्ष्य कहते हैं और जिस भोजन से मन बुद्धि, शरीर, धातुओं में विषमता हो उस को अभक्ष्य कहते हैं इसी कारण अभक्ष्य भोजन करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने नहीं दी है ॥

देखो य० अ० २२ मं० २ में कहा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल औषधी पवन अन्न अर्थात् कसेरू, रतालू, अरबी आलू, और शकरकन्द आदि खाते पीते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि बल आरोग्यपन और आयु वाले होते हैं ॥

इसी हेतु गीता के ८ अध्याय में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जो जैसे भोजन करते हैं उनकी वैसी प्रकृति होती है जैसा कि—

आयुः सत्व बलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याःस्निग्धाः स्थिराः हृद्याश्चाहाराःसात्विकप्रियाः॥१॥
कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ २ ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ३ ॥

अर्थात् अवस्था, चित्त की स्थिरता, बीर्य उत्साह, बल, आरोग्यता उपसमात्मक सुख बढ़ाने वाला, रस वाला, कोमल तर, रस चिरकाल तक ठहरने वाला, जिसके देखने से मन प्रसन्न हो, इस प्रकार के भोजन करने से सात्विक भाव उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अति चर्परा, खट्टा, नोन, गरम, तीक्ष्ण, रूखे दाह करने वाले भोजन से राजसी भाव उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

जिसको बने हुए बहुत काल हुआ हो, अति ठण्ढा, सूखा, दुर्गन्धि आती हो बासी, जूठा, अभक्ष्य भोजन करने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

इस प्रकार के निषिद्ध अन्न से विशूचिकादिक रोग होजाते हैं, इस के अतिरिक्त भात के साथ सिरका, मूली के साथ दूध वा दही तथा दूध के साथ नीबू, न खाना चाहिये क्योंकि इससे कफ तथा वायु के विकार होजाते हैं, तथा दूध के साथ तेल के पदार्थ सेवन से कमल, खरबूजा के साथ दूध तथा आम के साथ शरबत पीना न चाहिये वरन खरबूजा के साथ शरबत और आम के साथ दूध पीना योग्य है

इस के उपरान्त भोजन करने के पश्चात् भारी भोजन जैसे कचौरी वड़े मगौड़ा चांवल चिरवा न खाने चाहिये और क्षुधा होने पर भी इनका मात्रावत् अर्थात् शरीर के वल के अनुसार भोजन करना चाहिये ॥

इसलिये मनुष्यों को विद्वानोंके संग वा उत्तम शिक्षा से विद्याको प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षा कर शुद्ध किये पदार्थों का भोजन करना चाहिये जो शरीर और आत्माके वलको वढ़ाने वाले और रोगोंके नाश करने वाले हों क्योंकि विना विद्या और आरोग्यता के कोईभी मनुष्य निरन्तर कर्म करनेको समर्थ नहीं होसकता इसलिये इसका सर्वदा ध्यान रखना अभीष्ट है जैसा य०अ० ४ मं० १२ में कहाहै–

श्वात्राः पीताभवतयूयमापो अस्माकमन्तरुदरें सुशेवाः । ताअस्मभ्यमयक्ष्माअनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवी-रमृता ऋतावृधः ॥

भोजन व्यवस्थाके वतलाने वाले वैद्यक शास्त्रहैं इसलिये उसके ही अनुसार अच्छे प्रकार पकेहुए अन्न और रसादि के भोजन करना चाहिये जैसा य० अ० ९ मं० १८ में कहाहै–भोजन वनाने का कार्य्य स्त्रियोंके आधीन है इसीलिये वेद में स्त्रियों के लिये वैद्यकशास्त्र पढ़ने की आज्ञा है–

भोजन सदा नियत समयपर करना उचित है क्योंकि ऐसा करने से ही भोजन ठीक समय पर पचकर भूकको लगाता है जैसा य०अ० २० मं० २९ में आज्ञाहै इसके अतिरिक्त उनको उत्तम प्रकार से छोंककर सदा प्रातःकाल तथा दिनके मध्यभाग में होम अर्थात् वलिवैश्वदेव करके जो नित्यप्रति भोजन करते हैं वे वड़े भाग्यशाली होकर वड़े सुख और निश्चय विजय को पाते हैं जैसा ऋग्वेद अ०३ । अ० १। व० ३१ । मं०३ । अ०२ । सू० २८ । मं०४ । में कहाहै–

माध्यंन्दिने सवने जातवेदः पुरोडाशमिह कवे जुषस्व । अग्नेयह्वस्य तव भागधेयं न प्रमिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

इसलिये प्रतिदिन प्रातः १० वजे और सायंकाल छवजेका समय वहुत श्रेष्ठहै परन्तु मानसिक परिश्रम करने वाले विद्यार्थियों को १०वजे

से प्रयत्न कसरत करने के पश्चात् और सायङ्काल को शौचादि से निश्चिन्त होकर बलदायक पदार्थों का स्वल्प भोजन करना चाहिये भोजन करने के समय एक चौकी एकगज लम्बी एक बालिश्त ऊंची चारों ओर से गोल हो उसको सम्मुख रखकर उसके ऊपर सम्पूर्ण पदार्थों को यथा योग्य रख परमेश्वर का धन्यवाद करके आनन्द पूर्वक भोजन करे।

परन्तु यहभी स्मरण रहे कि झुककर भोजन में पेट दब जाने से पक्वाशय की धमनी निर्बल होजाती है जिससे भोजन ठीक समय पर नहीं पचता इसलिये छाती उठाकर भोजन करे और भोजन करने के समय में न अति विलम्ब न अति शीघ्रता करनी चाहिये वरन यथावत् आनन्द से सदा भोजन करे क्योंकि शरीर की आरोग्यता के लिये विशेष फल देनेवाले भोजन ही हैं।

इसलिये युक्तके साथ जठराग्नि को वढ़ा समय से अहार विहार करके नित्यबल को वढ़ाते रहो जैसा य० अ० १९ मं० २७में कहाहै—

इसके अतिरिक्त भोजन नाना प्रकार के करने चाहिये कि जिससे एक प्रकार की टेव न पड़जावे जो फिर बहुत प्रकार के क्लेश देती है— भोजनों के साथ हरे शाक का भी खाना अति श्रेष्ठ है— अधिक पानी पीने से पेट बढ़जाता है तथा अग्निमन्द होजाती है हां भोजनों के मध्यमें एक दो घूट पानी पीना भला है क्योंकि इससे अग्नि तेज होता है और अन्त में पानी पीने से अङ्ग पुष्ट होता है भोजनों के उपरान्त थोड़ा २ पानी पीने से अन्न शीघ्र पच जाताहै जलको तांबे या मिट्टीके बर्त्तन में छानकर पीना चाहिये जैसा मनुजी ने अ०६श्लो०४६में कहाहै—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥

किसी मनुष्य को दूसरे का जूठा भोजन न खाना चाहिये और न कोई जूठे मुंह किसी स्थान को जावे, न प्रातःकाल और सायंकाल के मध्य में भोजन करना चाहिये, न बारम्बार तथा अति भोजन करना योग्य, बारम्बार तथा अति भोजन करना योग्य है, जैसा कि मनुजी महाराज ने मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक ५६ में कहा है:—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्यैव तथान्तरा ।
नचैवात्यशनं कुर्य्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥

अर्थात् एक थाली वा पत्तल में अधिक मनुष्यों को भोजन करना योग्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक् २ होताहै, कोई चाहता है कि दाल भात को मिलाकर खाउं, किसी की रुचि इसके विरुद्ध है, इसी प्रकार अन्य जनों का अन्य स्वभाव होता हैं; तो इस दशा में अरुचि से भोजन करना पड़ता है, अरुचि के कारण अन्न अच्छे प्रकार नहीं पचता, बहुधा मनुष्य इसी हेतु से भूखे उठ बैठते और बहुतों को नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, इसके उपरान्त प्रत्येक के हाथ बारम्बार मुंह में लगते हैं फिर भोजनों में, तो एक के रोग दूसरे में प्रवेश करजाते हैं, इसी हेतु कोढ़ी को कोई अपने साथ भोजन नहीं कराता, इसके अतिरिक्त यदि एक कुटुम्ब के बीच में अन्य कोई सम्बन्धी जो दूर देश में रहता है वह गुप्त रूप से शराब मांस भक्षण करता है वा व्यभिचार में लिप्त है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुष्यों की पवित्रता पर भी धब्बा लगजाता है, इन सब के उपरान्त जूठा भोजन करना महापाप है क्योंकि इससे केवल शारीरिक रोग ही उत्पन्न नहीं होते वरन बुद्धि को अशुद्ध कर उसके सम्पूर्ण बल का नाश मार देता है, प्रत्यक्ष में देखलीजिये कि जो मनुष्य जूठा भोजन खाते हैं उनके मस्तक गन्दे होते हैं कि जिससे उनको सोच विचार करने का स्वभाव बिलकुल नहीं रहता, इसका कारण यह है कि जूठा भोजन करने में स्वच्छता नहीं, बस जहां स्वच्छता व शुद्धता नहीं वहां शुद्ध बुद्धि का क्या कहना, सभ्यता शुद्ध बुद्धि का फल है फिर सभ्यता कहां, क्योंकि जूठा खानेवालों की बुद्धि मोटी होजाती है, इसी कारण मनुजी आदि ऋषियों ने जूठा खाने का निषेध किया है, अतः आर्य्य पुरुषों का यही धर्म है कि चाहे अपना लड़का ही हो उसको भी जूठा भोजन न दें, बचपन से ही झूंठ तथा जूठे भोजन से घृणा करना उचित है, हमारे बहुधा स्वदेशीय बन्धु जो धर्मशास्त्रों का अवलोकन नहीं करते न कभी उनको सुनते हैं, वह अपने छोटे २ बच्चों को अपने साथ भोजन कराने या उनका जूठा आप खाने तथा अपना पिया हुआ पानी

उन्हें पिलाने में बड़ा लाड़ समझते हैं, कैसे शोकका स्थानहै, कि महा निन्दित कर्मको लाड़ प्यार वा धर्म कार्य्य समझें तथा उनकी बुद्धिका नाश मारकर सर्वस्व का सत्यानाश करदें और उनके परमहितैषी कहलावें. हा शोक ! हा शोक ! ! हा शोक ! ! !

हाय भारत ! तेरे पवित्र यश में नाना प्रकार के धब्बे लगगये हैं क्योंकि इस देश में बहुधा मत ऐसे चलगये हैं कि जिनमें चेला चेलियों को गुरु का जूठा खाना धर्म का अंश मानाहै जिससे उनके जूठे टुकड़े बांटे जाते हैं वा गुरु का जूठा पानी अमृत के समान जान कर पान करते हैं प्यारे सुजनो परीक्षा से जाना गया है कि ऐसे गुरु आत्मा और परमात्मा का नाम तक भी नहीं जानते केवल धन इकट्ठा करना विषय भोगादि में लगे रहना आदि मलिन कर्म इन गुरुओं के परम धर्म हैं, फिर चेले महाराज का क्या कहना, इसलिये हे प्यारे सुजनो ऐसे पातकी गुरुओं से सदा बचना योग्य है ।

अति भोजन कभी न करना चाहिये कि उससे नाना प्रकार के रोग होजाते हैं आलस्य सदा बना रहता है जिसके कारण सांसारिक व पारमार्थिक कार्यों को अच्छे प्रकार नहीं करसक्ता, और संसार में ऐसे मनुष्यों की निन्दा होती है तथा सर्वजन पेटार्थी कहते हैं, जो मनुष्य सदा नियत समयपर पथ्याऽपथ्य अनुसार प्रमाण से भोजन करते हैं उनको ' मिताहारी ' और मात्राप्रमाणी कहते हैं उन्हीं का शरीर सदा आरोग्य रहता है।

भोजन करने का स्थान पाकस्थान से पृथक् होना चाहिये जो अच्छे प्रकार सफेदी से पुता हुआ हो, तथा वहां नाना प्रकार की सुगन्धित व मनोहर अनोखी वस्तु रक्खी हों, जिनसे नेत्रों को आनन्द तथा मनको हर्ष हो, वहां किसी प्रकारकी मलिनता न हो तथा वायु भी अच्छे प्रकार से आता जाता हो वहां सुन्दर आसन पर बैठ भोजन करना योग्य है, उस समय माता पिता स्त्री भाई मित्र पाककर्त्ता वैद्य के अतिरिक्त कोई न होना चाहिये क्योंकि भोजन भजन एकान्तही में अच्छा है, भोजन करने के समयमें वार्त्तालाप करना अनुचित है, क्यों कि एक इन्द्री से एक समय में दो कार्य्य उत्तम नहीं होसक्ते किन्तु

दोनों अधूरेही रहजाते हैं, अतः एक समय में एक इन्द्री से एक ही काम लेना योग्य है, हां मित्रादि उत्तम तथा प्रसन्न करनेवाली कहानियों वा प्रीतिकारक बातों को सुनाते जाये तो श्रेष्ठ बात है।

भोजन को अच्छे प्रकार पचाकर खावे, कच्चे फल और बहुत तरकारी से परहेज रक्खे, इसके अतिरिक्त हैजा के दिनों में खाने का खूब विचार रक्खे।

भोजन करने के पीछे सौ पग टहलने से अन्न पचता तथा आयु की वृद्धि होती है, इसके पीछे थोड़ी देर पलंग पर लेटने से अङ्ग पुष्ट होता तथा खुरांटे मारने से रोग होते हैं, इस स्थानपर यह भी स्मरण रहे कि दिन में भोजन करने के उपरान्त पलंग पर बायें दायें करवट लेटना तथा शाम को भोजन करने के पश्चात् टहलना परम लाभदायक है॥

खाने के पश्चात् बेंच, स्टूल, तिपाई, कुरसी आदि पर बैठने नींद से सोने, आग के सम्मुख बैठने, धूप में चलने दौड़ने या घोड़े की सवारीपर चढ़ने, तथा कसरत आदि से नाना दोष उत्पन्न होते हैं, अतः भोजनोंके पश्चात् एक घण्टे वा अधिक समय तक ऐसे कामनकरने चाहिये, इसके उपरान्त पाचन के अर्थ कोई चूर्ण वा शरबत न पीना चाहिये क्योंकि फिर टेव पड़जाने पर विना चूर्ण आदि के पाचन नहीं होता तथा आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है, इसके अतिरिक्त अत्यन्त पानी पीना, विना पचे भोजनों पर भोजन करना, विना क्षुधा के खाना, भूख का मारना, या आध सेर के स्थान पर एक सेर खाना अथवा अत्यन्त न्यून खाने इत्यादि कारणों से अजीर्ण वा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं।

इन्हीं कारणों से भूखा रहना अच्छा नहीं परन्तु अब वर्तमान समय में भूखे रहनेवालों कोही व्रतीकहते हैं तथा उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है और वह भी अपने मन में स्वर्ग जाने की आशा रखते हैं, परन्तु प्रिय भ्रातृगणों यह महामिथ्या है क्योंकि सत्य शास्त्रों में बिना अजीर्ण के किसी दिन निराहार रहने की आज्ञा नहीं है, कहा है—"भूखे भक्ति होय नहिं भाई" यह प्रत्यक्ष प्रकट है कि जब निर्बल

समय पर अन्न नहीं मिलता तो सम्पूर्ण इन्द्री मन सहित विकल हो-जाती हैं अर्थात् मारे क्षुधा के उदासीनता छाजाती, हाथ पांव में शिथिलता आजाती है आंख निकली पड़ती, प्यास के मारे कण्ठ सूखने लगता तथा एक २ पल वर्ष समान बीतता है, भजन में मनकी एकाग्रता की आवश्यकता है, क्या ऐसी दशा में मन आराम पासक्ता है ? फिर व्रत कैसा ?

इसके उपरान्त भूख के मारने वा कुपथ्य भोजन खाने वा विना समय भोजन करने अथवा बिलकुल निराहार रहने से अजीर्ण अरुचि होजाती है, अग्नि मन्द पड़जाती, शरीर तथा आंखों में दर्द होने लगता है, बल बुद्धि का नाश होजाता तथा नाना प्रकार के रोग हो-जाते हैं, तिसपर विशेषता यह है कि बालक, बूढ़े, दुर्बल, गर्भिणी आदि को भी यह व्रत कराये जाते हैं—हा शोक ! हा शोक ! ! हा शोक ! ! ! कि जिससे नाना प्रकार के क्लेश हों उसको धर्म का चिह्न माना जाय, सत्य शास्त्रों और परमेश्वर की आज्ञा का कुछ विचार न कियाजाय, तो क्या इसका नाम अन्धेर नहीं है तो क्या है ? ।

इसके उपरान्त व्रत ऐसे भी हैं कि जिनमें बासी भोजन खायेजाते हैं जिनको " देवी महारानी का बस्योरा कहते हैं " क्याही आश्चर्य्य का स्थान है कि यह श्रीकृष्णजी महाराज की आज्ञा पर तनिक ध्यान नहीं करते अर्थात् गीता के १२ अध्याय के १० श्लोकको नहीं विचारते जहां उन्होंने बासी भोजन करना मना कियाहै कि जिससे तामसीभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् बुद्धि मलिन होजाती है, आलस्य भरा रहता है, इसके अतिरिक्तबहुधा स्त्रियां अग्नि छोड़ देती हैं अर्थात् आग पर चढ़ा हुआ भोजन किसी प्रकार का नहीं खातीं और इसको परमतप समझतीहैं, ऐसी दशामें रोटी, दाल, तरकारी, गर्म दूध, गुड़ और मिश्री आदि कुछ नहीं खातीं केवल ऋतु के फलादि पर निर्वाह करती हैं, हे प्यारी बहनो ! इससे तुम्हारी बड़ी हानि हो जाती है, नाना रोग तुमको घेरे रहते जिनसे सन्तानों को बड़े २ दुःख उठाने पड़ते हैं, प्रत्यक्ष देखो कि उन दिनों में तुम्हारी क्या दशा होजाती है, बहुधा स्त्रियां नमक छोड़देती हैं यहभी उनकी बड़ी भूल है क्योंकि यह स्वाद

के कारण नहीं खाया जाता वरन मनुष्य के रक्त के साथ बहुतसा भाग ननक का है ननक के साथ भोजन पचता है विना इसके खाये बलका नाश होजाता है, अन्त में उनके शरीर में कीड़े पड़जाते हैं कि जिन से उनको नाना क्लेश भोगने पड़ते हैं, बहुधा व्रतों में अन्न का निषेध किया है यह भी अत्यन्त मिथ्या है क्योंकि इन व्रतों में सिङ्घाड़ा, पोस्ता, फाफड़ा, घुइयां, आलू आदि कुपथ्य भोजन करते हैं कि जिन से स्वास्थ्य रहना अति कठिन है, गेहूं आदि दाल, भात, तरकारी सदा पथ्य हैं उन में दोष बताना ही पाप की बात है, न इन व्रतों के करने की आज्ञा सत्य शास्त्रों में है, हां शुद्ध आचरण का नाम ही व्रत है। जिस का वर्णन हम आगे करेंगे—

इस कथन का तात्पर्य्य यह है कि जो अच्छे संस्कार किये रोग हरने और बुद्धि के देने वाले उत्तम अन्न का भोजन कर सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उनके सन्तान विद्वानों के प्रिय दीर्घायु वाले और सुशील होते हैं जैसा ऋग्वेद में कहा है—

इसके लिये सदा उपरोक्त बातों का ध्यान कर ऋतु अनुकूल भोजन करना अभीष्ट है क्योंकि य० अ० १० मं० १४ में कहा है कि जो मनुष्य सब ऋतुओं के अनुकूल अहार विहार कर विद्या योगाभ्यास और सत्सङ्ग का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और उनको घोरादि भी पीड़ा नहीं दे सकते।

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणम्प्रत्यस्तन्नमुचेः शिरः ॥ १३ ॥

चरकऋषि कहते हैं जो मनुष्य ऋतुओं के अनुकूल चेष्टा (दिनचर्य्या) व्यवहार और अहार के कर्त्तव्य में दक्ष हैं उसी परिमित भोजी मनुष्य के शारीरिक बल और कान्ति बढ़ती है और जो मितभोजी ऋतुविरुद्ध खान–पान करते हैं उनके स्वास्थ्य में अन्तर पड़जाता है। इसलिये अब हम ऋतु भोजन लिखते हैं—

———:०:———

शरद् ऋतुके भोजन–

मिश्री, गायका दूध, घी, शक्कर, चांवल, दाल मूंग, इसके उपरान्त और वस्तु जो ऋतु और स्वभाव के अनुसार हों और घी में काली मिर्च और शक्कर डालकर खाना चाहिये–नदी का पानी पीना उत्तम है तैल की चीज़ें–आम की खटाई लालमिर्च दिन में सोना रात में जागना यह सब बातें इस ऋतु में न करना चाहिये ॥

——:※:——

अधिक शरदी के भोजन–

दूध, घी उरद की दाल चांवल, मुश्क केशर, शरीर में तैल लगाना, ऋतु के फल स्वभाव के अनुसार खाना रुई वा ऊनी कपड़े पहरना योग्य है और कसरत करना भी भला है ॥

——:※:——

वसन्त ऋतुका पथ्य–

गेहूं, चांवल, मूंग, शक्कर, का भोग लगाना शरबत पीना उत्तम है प्रातःकाल सायङ्काल वायु सेवन कसरत करना कै करना जुलाब लेना इस मौसम में अच्छा है मीठा खट्टा दही और चिकनी कड़ी वस्तुओं का खाना अच्छा नहीं—

——

ग्रीष्म ऋतुका पथ्य–

गेहूं, चांवल, मिश्री, दूध, शक्कर, ठण्ढा पानी, गुलाब, केवड़ा, खसमोतिया का इतर सूंघना, प्रातःकाल सफेद हलका सूती वस्त्र धारण करना और दस से पांच बजे तक सूती जीन वा गजी वा कोई मोटा कपड़ा पहरना फिर पांच बजे के पश्चात् महीन वस्त्र धारण करना वर्फ का जल पीना दिन में तहखाने वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है, मुरब्बा आंवला सेव का खाना सुन्दर पुष्पों की माला धारण करना वा सूंघना सफ़ेद चन्दन का लेप करना श्रेष्ठ है परन्तु सिरका खट्टी वस्तु रात में परिश्रम करना पर्य्यटन करना धूप में चलना अच्छा नहीं–

——※०※——

वर्षा ऋतुका पथ्य—

गेहूं, चांवल, उरद, दूध पीना, कुए का जल पीना, कुश्ती करना, शरीर पर मिट्टी लगाकर कसरत करना, घोड़े पर सवार होकर वायु सेवन करना धूप में फिरना, पानी में भीगना बहुत सोना ठण्डी वस्तुओं का सेवन करना नदी तालाब का पानी पीना अच्छा नहीं—

मांस खाने का निषेध—

अथर्ववेद का० ८ अ० ३ मं० २२ में ईश्वर आज्ञा देता है कि जो लोग कच्चे मांस को तथा पुरुषों के मांस को खाते हैं और जो दुष्ट पुरुष गर्भ रूपी अण्डों को अथवा गर्भ से तुरन्त निकले हुए बच्चों को अथवा गर्भ के तुल्य निस्सहाय प्राणियों को खाते उन को हम नाश करेंगे।

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयञ्च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥

इस के उपरान्त ऋग्वेद अ० २ अ० ३ वर्ग ९ मं० १ अ० २२ सू० १६२ मन्त्र १२ में कहा है कि जो लोग अन्न और जल को शुद्ध कर उनका बनाना और भोजन करना जानते हैं और मांस को छोड़कर भोजन करते हैं वे उद्यमी होते हैं जैसा कि—

येवाजिनं परि पश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति।

इस के अतिरिक्त महात्मा मनुजी का वचन है—

अभक्षाणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च।

वैद्यक विद्या के शिरोमणि महर्षि धन्वन्तरि जी का भी ऐसा ही मत है कि (अमेध्य) पदार्थों का कभी सेवन न करना चाहिये और जो २ पदार्थ बुद्धि को बिगाड़ते हैं उनका नाम अमेध्य है क्योंकि ऐसी वस्तुओं के खान पान से बुद्धि भ्रष्ट होजाती है कि जिस से (आध्यात्मिक) (आधिभौतिक) और (आधिदैविक) यह तीनों प्रकार की तापें घेरे रहतीं हैं कि जिनसे सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते,

इसी कारण मनुजी महाराज ने स्पष्ट लिख दिया है–"वर्जयेन्मधुमांसं च" अर्थात् शराव और मांस आदि हानिकारक पदार्थों को भक्षण न करना चाहिये।

मुख्य तो यह है (पशु) रक्षा से देश का उपकार होता है इस हेतु (अहिंसा) धर्म का एक मुख्य लक्षण माना गया है जैसा वेद में लिखा है—

" यजमानस्य पशून् पाहि "

अर्थात् परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो तुम लोग पशुओं को मत मारो मैंने तुम्हारी रक्षा के लिये बनाये हैं अर्थात् यजमान सम्बन्धी पशुओं की पालना तथा रक्षा करना उचित है।

और भी मनुजी महाराज ने मनुस्मृति के अध्याय १० श्लोक ६३ में लिखा है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥

अर्थात्–अहिंसा, सत्य, चोरी का त्याग, शौच, इन्द्रियों का रोकना, यह संक्षेप से चारों वर्णों का धर्म है।

ऐसा ही गीता में श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने अर्जुन से कहा है, इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् अ० ८ प्र० ८ में लिखा है–

" अहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः "

प्राचीन भारतखण्डी मनुष्यों ने सर्व भूतों अर्थात् जीवधारियों की कि जिन से देश का उपकार होता है जैसे गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा हाथी, इत्यादि रक्षा का नाम तीर्थ माना है।

इसी प्रकार चाणक्य मुनि ने ८ अध्याय के १३ में श्लोक में लिखा है–

शान्ति तुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परोव्याधिर्नच धर्मो दयासमः॥ १३॥

अर्थात् दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, फिर भला मांस खाने वालों को यह बड़ा धर्म मिलसकता है कदापि नहीं जैसा कि कहा है–

गृहधन्धो कुतो विद्या भार्यालुब्धे कुतः शुचिः ।
लोभलुब्धे कुतो लाभो मांसाहारी कुतो दया ॥

इसी कारण तो कहा है कि " विना दया के सन्त कसाई " ।

महाभारत के अनुशासन पर्व अ० ११६ के १८ श्लोक में लिखा है कि " अहिंसा परमो यज्ञः" अहिंसा परम यज्ञ है अर्थात् हिंसा न करने से देश का बड़ा उपकार होता है और यज्ञ से भी देश की भलाई होती है परन्तु अहिंसा यज्ञ का मूल है क्योंकि हिंसा होगी तो घी आदि पदार्थों की न्यूनता होगी तो फिर भला यज्ञ किस प्रकारसे होंगे जैसा कि वर्तमान समय में भारत के प्रधान नगरों में रुपये का आध सेर घृत बिकता है, अतः श्रेष्ट यज्ञ अहिंसा है, पूर्व मीमांसा में भी लिखा है–'अहिंसा परमो धर्मः' ।

महाभारत के श्लोक में लिखा है–

सर्वहिंसा निवृत्तिश्च नरः सर्व सहाश्च ये ।
सर्वस्याश्रयभूताश्चा ते नरः स्वर्गगामिनः ॥

और भी महाभारत के श्लोक ५७०२ में लिखा है–

अभयं सर्वभूतभ्यो यो ददाति दयापराः ।
अभयं सर्वभूतानि ददती स नुशुश्रमम ॥

इसी विषय में मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक ४६, ४८, ५१ और ५५ को विचारिये ॥

यो वन्धन वधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

जो मनुष्य किसी जीव के वध तथा वन्धन का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता वही अति सुख को पाता है ।

नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्य–स्तस्मान्मांसंविवर्जयेत् ।

प्राणियों की हिंसा के विना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणियों का वध स्वर्ग का हेतु नहीं इसलिये मांस न खाना चाहिये ।

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥

मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का वध बन्धन देखकर सब प्रकार के मांस खाने का निषेध किया है।

इस कथन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि हिंसा करना महापाप है, फिर न जानें कि भारतवासियों ने कौन से प्रमाण से मांस खाना स्वीकृत किया है, और बहुधा जन यह भी कहते हैं कि जीवहत्या का दोष मारने वालों पर होता है खानेवालों को क्या, इसके लिये उनका मनु जी महाराज के अध्याय ५ श्लोक ५१ को देखना योग्य है-

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

(अनुमन्ता) अर्थात् जिसकी सलाह से मारा जावे, (विशसिता) जो पशु के अङ्ग को शस्त्र से जुदा करे, और मारने वाला, मांस का मोल लेने वाला, मांस का बेचने वाला, मांस का बनाने वाला, परोसने वाला, भोजन करने वाला—यह आठो घात करने वाले ही कहाते हैं, परन्तु अब विचार करने का स्थान है कि यदि सर्व जन मांस खाना छोड़ दें जैसा कि पूर्व इस देश में था तो क्यों कसाई लोग पशुओं को मारें, क्योंकि जिस पदार्थ की विक्री अधिक होती है उसी को बेचनेवाले लाते हैं इसलिये पशुओं के मारे जाने में खानेवाले ही मुख्य पापी हैं, शेष उसकी सहायता करने से दोषभागी हैं।

हे प्यारे ! भाइयो यदि वेदस्मृति वा प्राचीन ग्रन्थ तथा अगले ऋषि मुनि और राजा प्रजा के खानपान पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय मांस खाना प्रचलित न था क्योंकि पशुओं की रक्षा से ही देश का उपकार होता है सो प्रत्यक्ष प्रकट है कि पूर्व समय में भारतही भारत होरहा था जिसका अब सत्यानाश होगया है।

तदनन्तर मांस खाना स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल है-(१) जितने मांसाहारी जानवर हैं उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता है, (२) मांसाहारी जीव चाव २ कर नहीं खाते, परन्तु मनुष्य अन्न

और वनस्पति खानेवाले पशुओं की तरह चाव २ कर खाते हैं, (३) सर रावर्ट होम इत्यादि (जो इल्म नवातात के आलिम थे) लिखते हैं कि मनुष्य के दांत और उनकी अंतड़ियां व सम्पूर्ण शरीर की बनावट और स्वभाव से प्रकट होता है कि वह मांसाहारियों की भांति उत्पन्न नहीं हुआ, (४) जो जन्तु मांसाहारी होते हैं वह रात में शिकार करते हैं, परन्तु मनुष्य या वह पशु जो मांसाहारी नहीं हैं रात को सोते हैं, (५) मांसाहारी पशु पानी को जीभ से चाट २ कर पीते हैं, परन्तु मनुष्य तथा वनस्पति खानेवाले पशु पानी को घूंट बांधकर पीते हैं, (६) मनुष्य की भांति वनस्पति खानेवाले जीवों के मुंह में जितना अधिक थूक रहता है उतना मांस खानेवाले जीवोंके नहीं रहता।

हे पाठक वर्गो ! उक्त प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मनुष्य जो सर्व प्राणी मात्र में उत्तम है उसको मांसभक्षी नहीं बनाया वरन वह अपनी स्वाभाविक प्रकृति को छोड़ मांसाहारी बनगया, हा शोक! हा शोक!! हा शोक !!! गाय, भैंस, घोड़ी, बकरी आदि जो मनुष्य से अत्यन्त निकृष्ट हैं वह तो अपने स्वाभाविक नियम पर चले जाते हैं—यदि कोई परीक्षा के अर्थ इन पशुओं के सम्मुख मांस का टुकड़ा डाल दे तो वह कदापि नहीं खाते—परन्तु मनुष्य का यह हाल, क्या यह पशुओं से भी निकृष्ट कर्म नहीं है ?

बहुधा मांसभक्षी यह कहते हैं कि इससे शरीर में बल रहता है और शरीर का पुष्ट रखना भी योग्य है, इसके उत्तर में विचारना चाहिये कि जब अन्य २ पदार्थों के खाने पीने से अधिक पुष्ट और नीरोग रहसक्ते हैं तो फिर भला इस हत्यारूपी कर्म को कि जिससे सर्वनाश होगया करना महा मिथ्या और पाप की बात नहीं है ! इसके उपरान्त जो पुष्टता वा आरोग्यता आदि शुभ गुण अनाज, शाकपात फल, फूल के खाने वालों में पाये जाते हैं वह इन मांसाहारियों में दर्शनमात्र को भी नहीं मिलते क्योंकि यह स्वाभाविक और शारीरिक बनावट से ही मांसाहारी नहीं हैं ।

इसके उपरान्त हमारे प्राचीन पुरुष कि जिनके वृत्तान्त महाभारत, रामायण इत्यादि इतिहासों में सुने जाते हैं क्या वे इस युग से किसी

बात में कम थे ? नहीं नहीं, और जो कार्य उन्होंने किये इन मांसाहारियों से कदापि नहीं होंगे, क्या यह प्रत्यक्ष प्रकट नहीं है ? हां कठोरता, निर्दयता, आलस्य, प्रमाद, रोग व्यर्थव्यय इत्यादि दुर्गुण फैल गये कि जिनके कारण कौड़ी के तीन२ होरहे हैं, और जरा २ से मनुष्यों से भय खाकर दुम दबाकर घरों में स्त्रियों की भांति छिपते हैं और पुष्टता का दावा करते हैं एक समय वह था कि जिसके रहते २ सबके छक्के छूटते थे, समस्त भूमण्डल के महाराजा कहलाते थे, सब यहां आकर सिर नवाते थे, तथा नाना प्रकार की विद्याओं में उन्नति थी जिनके वर्तमान समय में चिह्न तक दृष्टि नहीं आते, रोगों के मारे प्रति दिन प्रत्येक गृह में दुन्द पड़ा रहता है क्या इसी का नाम पुष्टता है ? प्यारे भाइयो ! मांसभक्षण से कोढ़, पथरी, अजीर्ण, पेचिश, गञ्ज आदि रोग होजाते हैं और मांस खाने वालों का मांस बुढ़ापे में अधिक ढीला पड़जाता है, तथा वायु के विकार भी शीघ्र असर करते हैं, उनके मुंह में दुर्गन्धि भी अधिक आती है फिर भला बल का क्या कहना !

मांस में केवल १०० में ३६ भाग वह सत्ता रहती है कि जिससे मनुष्य पुष्ट होता है शेष ६४ भाग पानी, परन्तु अनाज में ८० से ९० फी सैकड़े वह सत्ता होती है, और सिवाय इसके मनुष्य को एतद् व्यतिरिक्त मनुष्य की स्वाभाविक उष्णता (हरारत ग़रीज़ी) के लिये जिस उष्ण वस्तु की आवश्यकता है जिसको कार्बोनिशस कहते हैं वह मारेहुए पशु के मांस में वनस्पति की अपेक्षा बहुत कम है और जिस वस्तु से हड्डियां बढ़ती वा पुष्ट होती हैं वह भी वनस्पति में अधिक होती है फिर क्या कारण कि मिथ्या पशु मारकर देश का सत्यानाश मारदेवें और तनिक भी विचार न करें ?

इसके उपरान्त मस्तक शक्ति के देखनेसे प्रकाश होता है कि मांस का आहार मनुष्य के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि संसार में प्रायः जितने बड़े २ विद्वान् और अनुभवी पुरुष हुए कि जिन्होंने अपनी बुद्धि बलसे अनेकान नवीन विद्याओं में योग्यता प्राप्त की है वे या तो सारी अवस्था में अथवा आयु के एक बड़े भाग में मांस त्यागी हुए हैं— जैसे मनु पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, गोतम, कालिदास, धन्वन्तरि,

अर्जुन, भास्कराचार्य्य, श्रीकृष्ण, व्यास, युधिष्ठिर, भीष्मपितामह, रामचन्द्र इत्यादि, और अन्य देशों में प्लेटो (अफलातूं) प्लेटोमार्क डायोजनीज तथा सेन्टजेमस आदि (जो रूम के फिलासफरों में सब से बड़ा फिलासफर था) मांस त्यागी निश्चय किये गये हैं, इसी प्रकार और भी मनुष्य हुए हैं।

इसके सिवाय मांसाहारी जीवों से मांस न खानेवाले बलवान होते हैं जैसा कि सिंह मांस खाता है उस के समक्ष गैंडा जो कि मांस नहीं खाता सिंहको धर दबाता है, एवं अरना भैंसा जो मांस नहीं खाता बड़ा बलवान् होता है, इसी प्रकार मांसाहारी काबुली लोगों से इस देश के चौबे जो मांस नहीं खाते बलवान होते हैं, और इस समय जो ३० करोड़ बौद्ध मतवाले हिन्दुस्तान, चीन, जापान में रहते हैं जो मांस खाने का नाम भी नहीं लेते देखिये इन मांसाहारियों से बल, पौरुष, बुद्धि, आयु आदि कौनसी बात में कम हैं वरन अधिक हैं।

इसी भांति अन्यत्र देशों में जो मनुष्य मांस नहीं खाते कि जिनको 'वेजीटेरियन' कहते हैं उनलोगों की समस्त आयु इस बात का प्रमाण है कि उनको मांसाहारियों की अपेक्षा शारीरिक रोग बहुत कम होते हैं, इन लोगों में बहुत व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं कि बुढ़ापे तकमें कठिनता से कभी एक दिन के लिये भी कोई रोग हुआ हो।

इंगलैंड और एमरिका के 'वेजीटेरियन' लोगों में आज तक एक दृष्टान्त ऐसा सुनने में नहीं आया कि जिससे विदित होता हो कि उन में से कोई पुरुष विशूचिका (हैजा) के रोगों में ग्रसित हुआ है, प्यारे सुजनों! इस पवित्र भारत देश में प्राचीन कालमें हैजा एक अचम्भे की सी बात थी इस रोग के न फैलने का यही कारण था कि यहां के निवासी मांसभक्षण से बड़ा परहेज रखते थे, देरो स्पार्टा के रहने वाले जो दुनियां की समस्त जातों के इतिहास में धैर्य, साहस, उद्योग, श्रम, वीरता, और हृष्ट पुष्टता के विचार से अनुपम थे कुछ भी मांसभक्षण नहीं करते थे, जिन दिनों ग्रीस (यूनान) और रूम (इटली की राजधानी) की समर विजयपिता का झण्डा फहराता था उस समय उन विजयिनी सेनाओं के लोग मांसाहारी न थे, किन्तु उनके कथनोंसे मांस

खाने का आरम्भ किया तभी से उनकी अवनति का वीर्यारोपण हुआ यद्यपि उनकी अवनति के कई कारण और भी थे कुछ सन्देह नहीं ग्रीसके साधारण अखाड़े में जहां कि शारीरिक बल फुरती के अनेक दाव पेंच और करतब दिखाये जाते थे जब तक यह लोग मांसाहारी न थे अपने उक्त कर्त्तव्यों में एक शक्ति विशेष रखते थे किन्तु जब से यह मांस के व्यसनी हुए क्रमशः अचेत और पराक्रमहीन होगये, कि जिससे उनके शिर का मुकुट गिर गया, इसके अतिरिक्त जो लोग मांस नहीं खाते वे मांसाहारियों की अपेक्षा साधारणतः शरीर में गरू (वजनी) होते हैं और उनके पट्ठे बहुत पुष्ट और बली होते हैं और कठिन काम करने में नहीं घबराते, प्रोफेसर फाइरिस ने जो इस विषय में अनुभव किया है उनका ऐसा विचार है कि अंगरेजों की अपेक्षा जो अतीव मांसभक्षी हैं उनके भाई स्काटलेंड वाले जो मांस का कम और वनस्पति का अधिक आहार करते हैं शरीर की उंचाई, बोझ, और बलमें अधिक उत्तम हैं, स्काटलेंड के निवासियों से आयरलेंड के वासी जो रोटी दाल तथा आलू से निर्वाह करते हैं कई दर्जे श्रेष्ठता रखते हैं, औ डाक्टर लेंब भी अपने अनुभव से इसी बात की पुष्टता करते हैं उनका विचार है कि लापलेंड के रहने वाले जो सिर्फ़ मांस खाकर जीते हैं पस्त कद होते हैं और उन्हीं के आगे फिनलेंड वासी जो ठीक उसी भांति के पवन पानी में रहते और जो अधिक वनस्पति खाते हैं वह ऊंचे होते हैं।

अब उपरोक्त लेख से बल के अर्थ मांस खाने की भी आवश्यकता नहीं है वरन बल की न्यूनता होती और आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है, इसी कारण प्राचीन समय में भारत में क्या वरन समस्त देशों में मांस खाना प्रचलित न था, हां जब से वेद धर्म को त्यागन कर और २ पुस्तकों को धर्मपुस्तक समझने लगे वा किसी २ ने वेद की श्रुतियों के अर्थ अपने स्वार्थ के लिये बनालिये तब से मांस खाने का प्रचार होगया, उन के हेल मेल होने के कारण प्रति दिन इस अभक्ष्य की अधिकता होती गई यहां तक कि इस समय में कोई क़ौम इस बला से ख़ाली नहीं वरन पूर्व पूजनीय में से एक मुख्य फिरका

कि जिस को कान्यकुब्ज कहते हैं, वह पशु का मांस यज्ञ में चढ़ा उस को स्वर्ग पहुंचाने का दावा कर आप अच्छे प्रकार से उड़ाते तथा अपने चेलों को उड़वाते हैं, कि जिसके कारण भारत में और भी मांस भक्षण की रीति फैलगई।

प्यारे भाइयो! जब मैं वेदस्मृति आदि के प्रमाणों से पूर्व ही अहिंसा को धर्म की जड़ सिद्ध करचुका तो फिर भला यज्ञ में पशु को काटकर चढ़ाने की आज्ञा वेदमें कैसे होसकती है केवल अपने स्वाद पर संसारका नाश मार रहे हैं, हे सज्जनो तनिक तो विचारो यदि हवन में पशु काटकर चढ़ाने से स्वर्ग में पहुंच जाता है तो फिर वृद्ध माता पिता भाई बन्धु आदि को हवन में चढ़ा कर स्वर्ग क्यों नहीं पहुंचा देते जो स्वर्ग के जाने के अर्थ नाना भांतिके संयम नियम करते हैं और अनेक जन्म में स्वर्ग पाते हैं, फिर भला आप उन को क्यों कष्ट देते हो प्यारे सुजनो यह सब मिथ्या बातें हैं और इन मांसाहारियों ने कल्पित अर्थ कर मांस खाने का चसका डाल दिया, भाइयो सत्य ग्रन्थों को सुनो तो स्पष्ट प्रकट होजावेगा, देखो शतपथ ब्राह्मण में लिखा है-

राष्ट्रं वा अश्वमेधः अन्नंहि गौः अग्निर्वा अश्वः आज्यं मेधः।

इसका अर्थ यह किया है जो ऊपर वर्णन हुआ अर्थात् घोड़े गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना, इन्हीं कर्मों ने भारत वासियों को हिंसक बना दिया, धिक्कार ऐसे अर्थ करने वालों को कि जिन्होंने वेद और बुद्धि के विपरीत अर्थ कर अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थों को खोदिया क्योंकि परमेश्वर की आज्ञानुसार कार्य करने को धर्म कहते हैं सो यह हिंसा करना उस की आज्ञा के विरुद्ध है, क्योंकि उस ईश्वर ने तो 'अहिन्सा परमो धर्म्मः' कहा है, इस लिये हिन्सक होकर धर्म नष्ट किया तो फिर धर्म अर्थ काम मोक्ष शेष पदार्थ क्योंकर मिलसकते हैं।

अब उक्त श्रुति के सत्य अर्थ को भी श्रवण कर लीजिये—

देखो जब राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे तथा विद्या आदि देकर पश्चात् अग्नि में घी आदि से हवन करे तो उसको "अश्वमेध" कहते हैं।

अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथ्वी को पवित्र रखना "गौमेध" कहाता है। गौ नाम पशु का है मेधः नाम विद्वान् का है।

धन उपार्जन के अर्थ विद्वान् को योग्य है कि गौ आदि उपकारी पशुओं की रक्षा करे उसी का नाम "गौमेध" है,।

देखिये य० अ० २३ मं० १७ में स्पष्ट आज्ञा है कि हे मनुष्यो सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं न होमने योग्य हैं जो ऐसे जान कर सुगन्धि आदि अच्छे २ पदार्थों को भली भांति बना आग में होम करने हारे होते हैं वे पवन और सूर्य्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर ओषधी-प्राण शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस यज्ञ कर्म के करने वाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कार युक्त होते हैं जैसे—

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैता अपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः। सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः ॥ १७ ॥

और भी लिखा है—

गावोघृतस्य मातरः

घृत की माता गौ है क्योंकि गौ के समान घृत अन्य किसी पशु का नहीं होता और मनुजी ने अ० ४ श्लोक २३ में प्राण निरोध का नाम यज्ञ लिखा है तथा वेद में पञ्चयज्ञ नित्य करने की आज्ञा है अर्थात् बलिवैश्व देवादि करके भोजन करना चाहिये वहां पर भी कहा है—

शुनां च पतितानां च स्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

कुत्तों, कंगलों कुष्टी आदि रोगियों काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग २ बांट के देना और सदा उन की प्रसन्नता करना उचित है।

हा शोक इन स्वार्थियों पर कि जिन्होंने उलटे अर्थ कर सत्यानाश मार दिया क्योंकि भोजनों के समय पर कुत्ते, चींटी, आदि की रक्षा करने की शिक्षा वेद ने की है फिर भला गाय आदि पशु मारना किस प्रकार सिद्ध होसकता है। कदापि नहीं ३।

——:※:——

मछलियां और झींगा खाना—

भारतवर्ष में थोड़े दिनों से मांस के उपरान्त मछली तथा झींगा खाने का भी प्रचार होगया है जिनको कि हमारे परम पिता परमेश्वर ने पानी में केवल उस अशुद्धता के दूर करने के अर्थ जो उसमें मनुष्य अथवा पशु पक्षियों से होती है उत्पन्न किया है, क्योंकि शुद्ध जल ही पर सब जीवधारियों का जीवन निर्भर है।

यह दोनों जानवर बहुत गर्म होते हैं और तैल आदि गर्म वस्तुओं से ही बनाए जाते हैं, जो आरोग्यता के लिये हानिकारक तथा इन के भक्षण करने वाले बहुधा धातु क्षीण तथा गठ्ठ आदि रोगों से पीड़ित रहते हैं इस लिये इन दोनों को खाना कदापि न चाहिये इनके खाने से गठ्ठ आदि दोष विशेष कर उत्पन्न होते हैं॥

——o:※:o——

आखेट अर्थात् शिकार—

बहुधा मनुष्यों का यह कथन है कि जब मांसभक्षण करने की मनाई है तो शिकार खेलना भी अनुचित है, इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो शिकार खेलना राजा का काम है वह उन जानवरों का शिकार करे जिनसे प्रजा को नाना प्रकार के कठिन दुःख होते हैं, जैसे शेर भेड़िया आदि क्योंकि राजा का मुख्य धर्म प्रजा की रक्षा करने का है अतः राजा ऐसे पशुओं की शिकार करने में दोषभागी नहीं होता, जैसे जो कोई जन मनुष्यों को दुःख देते हैं उन को दण्ड देना

राजा का मुख्य कर्म है कि जिस से सब प्रजा को आनन्द हो, इसी भांति उन पशुओं के शिकार करने से वनवासियों तथा बटोहियों वा दीन पशुओं को सुख होता है, खेती की रक्षा होती है, परन्तु मांस उन का कोई नहीं खाता था और पृथ्वी में गड़वा दिया जाता था, हां जो राजा प्रजा में से सर्वहितैषी पशुओं का शिकार कर मांस खाते हैं वह महापापी होते हैं, जैसा कि मनु जी ने मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक ५२ में लिखा है-

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्यपितृन्देवां-स्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत् ॥

अर्थात् जो मनुष्य अन्य के मांस से अपने मांस बढ़ाने की इच्छा करता है उससे अधिक कोई पापी नहीं बहुधा मांस खाने वाले मनुष्य श्री रामचन्द्र जी की मांस खाने वालों में गणना करते हैं यह महा मिथ्या है क्योंकि वाल्मीकीय रामायण के आरण्य काण्ड सर्ग १० के ६ श्लोक में लिखा है कि मांस खाना राक्षस का काम है, फिर भला वह महात्मा सुजन जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में पूजनीय गिनेजाते हैं कब ऐसे अनुचित व्यवहार को कर सकते ?

नशों का वर्णन-

प्रिय सज्जन पुरुषो वर्तमान समय में नशों का ऐसा बाज़ार गर्म होरहा है कि कोई बिरलेही माई के लाल होंगे जो इनके फन्दे से बचे हों, वरन बड़े २ महन्त, महात्माओं, साधुओं, पण्डित, मुनियों की प्रशंसा अज्ञानी लोग इन्ही नशों के कारण करते हैं।

हाय भारत तेरी प्राचीन काल में जहां सद्गुणों की प्रशंसा होती थी वहां अब इस समय नाना प्रकार के नशों के पीने वालों की होती है कि जिसके कारण बुद्धि मारीगई तथा भारत ग़ारत होगया।

शराब पीने का निषेध।

प्यारे सुजनो! मनुष्य का शरीर एक एंजिन के समान है जिसको परमेश्वर ने उत्पन्न किया है अतः इसको नियमानुसार यथावत् रीति

से चलाने का सदा ही यत्न करना चाहिये, परन्तु कैसे शोक की बात है कि हम सब छोटी २ कलों और घड़ियों के यथावत् रहने के लिये तो पूरी रक्षा करैं परन्तु अपने अनमोल रूपी धन कि जिसका बनाना मनुष्य के बल और बुद्धि से बाहर है उसको जान बूझ कर ऐसी बुराइयों में डाल कर सत्यानाश मार अपनी सन्तानों की भी रेड़ मारदें!

शराब एक प्रकार का विष है जिसको अलकोहल कहते हैं जो मदिरा के पीने से मेदे में जाकर जलन पैदा करता है, उसके यथावत् कार्य में विघ्न डाल देता है कि जिससे पाचन नहीं होता तथा अङ्ग में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं, तत्पश्चात् आमाशय से भोजनों का बहुत सा भाग रगों के द्वारा कलेजे में पहुंचता है तब कलेजा उन भोजनों के रस को पचाकर पित्त उत्पन्न करता है तथा लोहू बनाता है, परन्तु शराब के पीने से उसके बारीक पुर्जे थोड़ेही काल में निकम्मे होजाते हैं तथा कलेजा सुकड़ कर बहुत छोटा होजाता है, वह किसी काम के योग्य नहीं रहता, कलेजा सूकजाता है जलोदर आदि रोगों में फंसकर नाना दुःखों को सहन कर अपनी प्यारी जान से हाथ धोते हैं, इसका असर मस्तक पर भी होता है जो सम्पूर्ण शरीर में भूषण है कि जिसके ठीक २ रहने ही से सांसारिक वा पारमार्थिक कार्य अच्छे प्रकार से कर सकता है, शराब के पीने से उसके मस्तक में लोहू जमा होजाता है कि जिनके कारण मारा यमपुर चलेजाते हैं, बहुधा शराबियों के मस्तक अत्यन्त न्यूनबल होजाते हैं, कि जिससे वह प्रति दिन के कार्य को अच्छे प्रकार से नहीं करसकते, इसके उपरान्त लकवा या सक्ता आदि भयानक रोग उत्पन्न होजाते हैं कि जिनके अपार दुःखों से अपने प्राणों को त्यागना उत्तम जानते हैं, कोई इस संकट से बचने के निमित्त नाना प्रकार की औषधि खा शरीर को त्याग आनन्द पाते हैं, इसके अतिरिक्त दिल भी इससे सुस्त होजाता है और इसका असर गुरदों पर भी होता है जो शरीर में दारोगा सफाई हैं और जिनकी नालियां शरीर के दुर्गन्ध दूर करने के अर्थ पनाली हैं, जब उनमें अन्तर पड़जाता है तो नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि शराबी श-

रीर रूपी वृक्ष के धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थों का नाश मार अपनी सन्तान की दुर्गति करजाता है, क्योंकि आरोग्यता तो नाम को भी नहीं रहती, बहुधा पीते २ पागल होजाते हैं, रक्त विकार के रोग उनको सदा घेरे ही रहते हैं, और जो २ रोग इसके पीने से उत्पन्न होते हैं वह भी असाध्य ही होते हैं, इसी कारण धर्मशास्त्र में इसका निषेध किया है तथा इसके पीने वालों की गणना महापापियों में की है, जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय ११ श्लोक ५४ में लिखा है—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह ॥

अर्थात् ब्रह्महत्या, शराब पीना, चोरी करना, गुरु की स्त्री से विषय करना, और ऐसे काम के करने वालों के साथ में मेल मिलाप अर्थात् मित्रता करना, यह पांच महापातक हैं, और भी उसी अध्याय के ९३ श्लोक में लिखा है—

सुरावै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुराम्पिबेत् ॥

अर्थात् अन्न के मल को शराब कहते हैं और मल त्यागन करने योग्य है, इस लिये प्रत्येक को शराब न पीना चाहिये ।

हे पाठक गणो ! यदि आप को अपनी शारीरिक उन्नति वा धन प्राप्ति करने तथा उसकी रक्षा का ध्यान है वा धर्म पालन करना वा नाना आपत्तियों से बचने तथा देश जाति को आनन्द मङ्गल में देखने की अभिलाषा है तो सदा इस ज़हरीले पानी से आप बचिये और औरों को बचाइये ।

अफीम खाना ।

(१) अफीम खाने से बुद्धि कम होजाती तथा मस्तक में खुश्की बढ़जाती है । (२) मनुष्य न्यून बल तथा सुस्त होजाता है । (३) मुख का प्रकाश कम होजाता है । (४) मुंह पर स्याही आजाती है ।

(५) मांस सूखजाता तथा खाल मुरझाजाती है। (६) वीर्य्य का बल निर्बल होजाता है। (७) घण्टों पिनगी में पड़े रहते हैं, रात्रि को नींद नहीं आती प्रातःकाल सोते हैं। (८) दोपहर को शौच जा वहां घण्टों बैठे रहते हैं (९) समय पर अफ़यून खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती तथा हाथ पायं ऐंठते हैं। (१०) जाड़े के दिनों में पानी से डर लगता है कि जिससे स्नान तक नहीं करते, शरीर में दुर्गन्ध आने लगता है। (११) रक्त पीला पड़जाता है, खांसी आदि रोग होजाते हैं।

इसी प्रकार चण्डू मदक को भी जानों, इसके पश्चात् गांजा, चरस, धतूरा, भांग माजून आदि के पीने से खांसी दमा आदि हृदय के रोग तथा सुज़ाक होजाती है।

———:*:———

तमाकू—

मान्यवरो! वैद्यक ग्रन्थों के देखने से स्पष्ट प्रकट होता है कि तमाकू सङ्खिया से भी अधिक नशेदार बूटी है अर्थात् किसी वनस्पति में इस से अधिक नशा नहीं है।

डाक्टर टैलर साहिब का कथन है कि जो मनुष्य तमाकू के कारखानों में काम करते हैं उनके शरीर में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं क्योंकि थोड़े ही दिनों में उन मनुष्यों के सिर में दर्द होने लगता जी मचलाने लगता है, न्यून बल होजाते सुस्ती घेरे रहती है, भूख कम होजाती है, काम करने की शक्ति नहीं रहती।

इसी प्रकार बहुधा डाक्टरों ने साबित किया है कि इसके धुएं में ज़हर होता है अर्थात् इसका धुंआं भी शरीर की आरोग्यता को हानिकारक है अर्थात् जो मनुष्य तमाकू पीते हैं उनका जी मचलाने लगता, क़ै होने लगती, हिचकी उत्पन्न होजाती, दम कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़जाती है, परन्तु जब मनुष्य को इसका अभ्यास होजाता है तब यह सब बातें कम होजाती हैं।

डाक्टर स्मिथ का वचन है कि तमाकू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज फिर धीरे २ कम होजाती है।

वैद्यक से स्पष्ट प्रकाशित है कि तमाकू बहुत ही ज़हरीली (विषैली) वस्तु है, क्योंकि इसमें नेकोशिया, कारबोनिकएसिड, मेगनेशिया इत्यादि वस्तु मिली रहती हैं जो मनुष्य के दिल को निर्बल करदेती हैं कि जिस से खांसी दमादि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होने से आरोग्यता में अन्तर पड़जाता तथा दिल पर कीट अर्थात् मल जम जाता तथा तिल्ली की चिर बीमारी होजाती है, प्रत्येक समय मुंह मचलाता रहता है, अब बुद्धि से विचारिये कि मुसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा परहेज, परन्तु वाहरे तमाकू कि जिसकी प्रीति में धर्म कर्म की कुछ भी सुध नहीं, देखो मुसलमान तमाकू बनाने वाले अपने वर्त्तनों में से ही अपने घड़ों का पानी डालते हैं वही सब मजे से पीते हैं, इसके अतिरिक्त एक ही चिलम को हिन्दू मुसलमान ईसाई आदि सब पीते हैं कि जिस के प्रभाव से आपस में अबखरात अदल बदल होते हैं अर्थात् जिस चिलम को प्रथम एक हिन्दू ने पिया तो उसके भीतर कुछ अबखरात गर्मी के कारण अवश्य चिलम में रहजावेंगे फिर उसी को मुसलमान ईसाई ने पी फिर उसी चिलम को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादि पीते हैं तो अब कहिये कि हिन्दू तथा मुसलमान ईसाइयों में क्या अन्तर रहा, क्या इसी का नाम शौच वा पवित्रता है ?

प्यारे सुजनो ! केवल पदार्थविद्या के न जानने तथा वैद्यक पर ध्यान न रखने के कारण इन मिथ्या बातों में फंसे हुये चलेजाते हो, जिससे हमारे धर्म कर्म तथा आरोग्यता आदि में अन्तर पड़गया, अतः अब आप को इन सत्यानाशी बातों का पूरा २ प्रबन्ध करना योग्य है कि जिससे आप की अगली सन्तानों को पूर्ण सुख तथा आनन्द प्राप्त हो।

हे विद्वान् पुरुषो ! हे प्यारे विद्यार्थियो ! आपने स्कूलों में पदार्थ विद्या अवश्य पढ़ी है, यह उक्त वार्त्ता अच्छे प्रकार आप पर प्रकट है, अतः आप इस हुक्के के पीने को त्याग अपने भाइयों को बचाइये, यही सत्य विद्या का पूर्ण उपकार है, इसी प्रकार स्कूल देशी पाठशाला तथा कालिजों के शिक्षकों को भी योग्य है कि वह कदापि इस हुक्के को न पियें कि जिनकी देखा देखी सम्पूर्ण विद्यार्थी चिलम का दम लगाने लगते हैं।

इस के अतिरिक्त तमाकू आदि पीने की आज्ञा किसी सत्शास्त्र में भी नहीं पाई जाती देखिये ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि-

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्ववर्णाश्रमेनराः ।
तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे ॥

अर्थात् इस घोर कलियुग में जो तमाकू खाता अथवा पीता है वह नरक को जाता है ।

पद्मपुराण में भी लिखा है—

धूम्रपानरतं विप्रं दानकृत्वेति यो नरः ।
दातारो नरकं यांति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥

अर्थात् जो मनुष्य तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और ब्राह्मण ग्राम के सुअर का जन्म लेता है।

हे देश के शुभचिन्तको आप को वैद्यक के अनुसार नशों की ओर दृष्टि करना चाहिये और इन नशेबाजों की कपोलकथन पर जैसा कि नीचे उदाहरण की भांति लिखे हैं कुछ ध्यान न देना चाहिये-

गांजा—

जिसने न पी गांजे की कली । उस लड़के से लड़की भली ॥

भंग—

भंग कहें सो बावरे, विजया कहें सो कूर ।
इसका नाम कमलापती, रहे नैन भर पूर ॥

हुक्का—

हुक्का हरि को लाड़लो, राखे सबको मान ।
भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिन में कान ॥

तमालपत्र—

कृष्ण चले वैकुण्ठ को, राधा पकड़ी बांह ।
यहां तमाकू खाय लो, वहां तमाकू नांहि ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! इन उपरोक्त हानियों के उपरान्त जो जितना इन नशों को पीता है उतनी ही उसकी रुचि अधिक बढ़जाती है,

दूसरे रुपया तथा समय भी मिथ्या जाता है बहुधा पागल होजाते और कोई २ मरभी जाते हैं, छोटे २ मनुष्यों में नशेबाजों की प्रतिष्ठा भी नहीं रहती फिर बड़ों में ऐसों को कौन पूछता है, अतः इनकी ओर दृष्टि भी न कीजिये।

अब हम सर्व साधारण के जानने के लिये अन्न, फल, शाकादि की कुछ व्याख्या करते हैं जिस से अधिक लाभ होने की आशा है—यदि इस विषय को अधिक देखना हो तो चरक इत्यादि वैद्यक ग्रन्थों को देख लीजिये—

गेहूं—वातनाशक, मधुर, शीतल जीवनकर्त्ता तथा भारी होते हैं।

जौ—रूक्ष, शीतल, भारी, मिष्ट, वायुकारक, दृढ़ताकारी, बलकारी, कफज विकारों के नाश करने वाले होते हैं।

तिल—कुछ कसीला पित्तकर्त्ता अग्नि बुद्धि को बढ़ानेवाला सब प्रकार के तिलों में काला तिल उत्तम है।

मटर—अत्यन्त वादी और वातकर्त्ता है।

मसूर—पाक में मधुर और मल को रोकती है।

उरद—पुष्टकारक, अत्यन्त वातनाशक स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, बलकर्त्ता मलवर्द्धक है॥

मूंग—मूंग की दाल का कषाय मधुर, रूक्षशीतवीर्य्य, कटुपाकी, लघु, विशद, कफ पित्त नाशक है॥

मोंठ—रस में मधुर, पाक में मधुर, रूक्ष शीतल, तथा रक्तपित्त और ज्वर में हितकारी है॥

चना—हलका, शीतल, मधुर, कषाय, रूक्ष कर्त्ता कफपित्त में हित कारक, इस की दाल भी अच्छी बनती है॥

कांगनी—कोदू, नीवार, शामक इन आदि तृण अन्न—शीतल, हलका, वातकरता, कफ पित्त हरता, तिन्हों में कांगनी टूटे को जोड़ती और धातुओं को पुष्ट करती है॥

कुलथी—गरम है पाक में खट्टी, वीर्य्य पथरी श्वास पीनस को हरती है और खांसी, बवासीर कफवातको नाशती और विशेषतः रक्त पित्त को देती है।

अरहर—कफपित्तनाशक, वातकर्त्ता है॥

सब प्रकार की बरी—कब्ज़ और बादी को बढ़ाने वाली होती हैं।

मूली—बैंगन अथवा और कोई शाक भरकर जो पकोड़ी बनाई जाती हैं वह वातकर्त्ता होती हैं॥

चावल—कई प्रकार के हैं शीतवीर्य्यरस, त्रिपाक में मधुर, अल्प-वात कारक मलको बांधने वाला—साठी के चावल—शीतल, स्निग्ध, भारी, त्रिदोष नाशक, दृढ़ता कारक होता है—सफेदसाठी—का चावल गुणों में उत्कर्ष होता है और काला सफेद साठी चावल उसकी अपेक्षा न्यून गुण वाले हैं॥

सत्तू—वातकर्त्ता, रूक्ष, मलको बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, प्यास पित्त और कफ को दूर करता है, जो पानी में घोल कर पिया जाता है वह तत्काल बल करने वाला भेदी और वातनाशक होता है जो सत्तू चाटा जाता है वह मृदु होने के कारण शीघ्र ही पचजाता है—खील—दीपन, कफ बल कर्त्ता, कसीली, मीठी, हलकी, प्यास मल दूर करता है—खील के सत्तू—प्यास, दाह और धूप लगने को नाश करता है

चिरवा—धान भिगोकर जो कूटे जाते हैं और फिर भाड़ में भूने जाते हैं उसे चिरवा कहते हैं। ये रक्तपित्त, दाह, ज्वरके नाश करने वाले, भारी, स्निग्ध और कफ वर्द्धक होते हैं॥

धान—नवीनधान अभिष्यन्दी होता है, एक बरस का पुराना धान हलका जो कम बढ़ाहो—दाहकर्त्ता, भारी, विष्टम्भी और दृष्टि को बिगाड़ता है॥

शाग (शाक)।

पालक का शाक—भारी है सर्द है।

गाजर—शीतल है पित्तवालों को हित नहीं करती।

जमींकन्द—दीपन है रुचि में हित है कफको नाशता है सुन्दर हलका है ववासीर रोग में पथ्य है ।

सरसों—का शाक बुरा है त्रिदोषकर्त्ता और मल मूत्रको रोकने वाला है ॥

चौलाई—का शाक—कसीला होने से विष्ठा को नहीं फाड़ता मूत्र को नहीं बढ़ाती न कफकारी है रस में स्वादु, पाक में मीठी तृप्तिकर्त्ता दूध बढ़ाने वाली और रुचिवर्द्धक है ।

सेम—रूक्ष है—कसीली है विषरोग, शोफवीर्य्य कफ और दृष्टि का क्षय करनेवाली । विदाही—कटु पाकी, दस्त करानेवाली और वादी और पित्त को बढ़ाती है ॥

पोई—का शाक—पाक रस में मिष्ट पुष्टिकारक, वातपित्त, मदनाशक, दस्तावर, चिकना, बलकारक कफकर्त्ता और ठण्ढा होता है ॥

कुलफा—का शाक को शहद और दूध के साथ न खाय क्योंकि इसके खाने से वर्ण तेज वीर्य्य का नाश तथा नपुंसकतादि कठिन रोग उत्पन्न होते हैं ॥

ककड़ी—स्वादु, भारी, विष्टम्भी, शीतल है । **फूंट—घीया**—मल भेदक रूक्ष शीतल भारी है ॥

पेठा—मीठा, खट्टा, हलका है मूत्र मल बहुत लाता है और सम्पूर्ण दोषों को दूर करता है ॥

कसेरू-सिंघाड़ा—भारी विष्टम्भी शीतल है ।

मकोय—का शाक त्रिदोषनाशक, वृष्य, रसायन अत्यन्तशीतल न अत्यन्तउष्ण है कण्ठको हित और कोढ़ को नाश करता है ॥

मेथी का शाक—पित्तनाशक है ॥

बैंगन—कईप्रकार के होते हैं गोल बैंगनको **मारू**—लम्बेको **भतिया** । कहते हैं रङ्ग भी दो प्रकार के हैं **काला**—और **श्वेत**—**गुण** कफ बादी नाशक, चरपरा, रोचक, कड़वा हलका दीपन है **पाक**—में नुनखरा, पित्तकर्त्ता है ॥

गोभी—कफ पित्तनाशक, शीतल, मिष्ट है।

मटर—का शाक-कफ पित्त नाशक वातकर्त्ता भारी रसमें कसीला पाक में मधुर है।

काशीफल—पित्तनाशक। अधपका—कफकर्त्ता। पका हुआ-हलका गरम लुनखरा दीपन और बस्तिशोधक है॥

करमकल्ला—दीपन विषदोषनाशक कड़वा है॥

करेला—और नाड़ी का शाक-बैंगन के समान गुण कर्त्ता है॥

परवल—के पत्ते और फल का शाक कफ पित्तनाशक, गरम, चरपरा, वादी रहित, कटु, पाचकी पुष्टिकर्त्ता, रुचिवर्द्धक और पाचन होता है॥

खीरा—कच्चा खीरा जिसका रङ्ग नीला होता है वह पित्त का हरने वाला। पीले से रङ्ग का पका हुआ—कफकर्त्ता, भारी रस में कसीला पाक में मधुर होता है॥

पिंडाले—कफकर्त्ता वादीको कोप करानेवाले और भारी होतेहैं।

ब्राह्मी—कसीली पित्त में हितकारी रसपाक में स्वादु हलकी होती है॥

शकरकन्द—भारी कफ वादी करने वाला और पित्तनाशक है।

चनेकाशाक—पाक रस में मिष्ट देर में पचने वाला है॥

सैंजनेकीफली—वात की नाशक है॥

अदरक—का शाक, कफ वात नाशक स्वर को हितकारी शूल को दूर करने वाला, स्वाद में कटु वीर्य्य में उष्ण रोचक हृदय को हितकारी और मलकारक होता है॥

मूली—छोटी मूली रस में कड़वी, चरपरी हृदय को प्रफुल्लित करने वाली रुचिको बढ़ानेवाली, जठराग्निको प्रबल करनेवाली, सम्पूर्ण दोषों को दूर करने वाली, हलकी और कण्ठ को हितकारी है॥

बड़ी मूली--भारी मल को रोकने वाली और तेज होती है **कच्ची**-त्रिदोष करने वाली है-**घी में भुनी**--पित्त को दूर करने वाली कफ और वादी को जीतने वाली-**सूखी**—त्रिदोष को शमन करने वाली और हलकी होती है ॥

आलू—सब प्रकार के आलू शीतल, मधुर, भारी, रूखे, विष्टम्भी, दुर्जर रक्त पित्त को दूर करने वाले हैं और मल मूत्र को गिराने वाले हैं ॥

भिण्डी—भारी बलकारक वात पित्त के रोगों को दूर करती है ॥

छोटी तोरई--चिकनी आम कफ को बढ़ाने वाली भारी रक्त पित्त को जीतने वाली है ॥

खरबूजाकाशाक—मूत्र को लाने वाला कोष्ट शुद्ध करता तथा बल वीर्य्य को बढ़ाने वाला, चिकना स्वादु शीतल वात पित्त नाशक है यह मीठे खरबूजे के गुण हैं ॥

ढेणस—रुचिकारक, भेदी, पित्त कफ को दूर करने वाले शीतल, वात कारक रूखे मूत्रकारक पथरी नाश करने वाले हैं ॥

सेमरके फूल का शाक--घी में भून सैन्धव नोन डाल बनावे कफ पित्त रक्त विकारों को दूर करै ग्राह्य, वात कारक मधुर कषैला शीतल भारी होता है और स्त्रियों के दुःसाध्य प्रदर रोग को दूर करता है ॥

अगस्त के फूल का शाक--स्वादु कटुतिक्त कषैला वात पित्त कफ को जीतने वाला रतौंध दूर करने वाला और पीनस नाशक है॥

केले का फूल--चिकना, मधुर, कषैला, भारी, शीत—वात, रक्त पित्त, क्षयी रोग नाशक है ॥

सूखाशाक--मूली के सिवाय और सब सूखे शाक विष्टम्भी और वात पित्त कर्त्ता हैं ॥



विशेष सूचना।

कीड़ों का खाया हुआ धूप या हवा से मारा हुआ, सूखा, पुराना कुऋतु का विना घी तैल से पकाया हुआ उबाल कर बिना निचोड़ा शाक न खाना चाहिये॥

फल--

सामान्यगुण--सम्पूर्ण फल सामान्य रीतिसे रस में खट्टे--पाकमें भारी, वीर्य्य में उष्ण, पित्तकर्त्ता वातनाशक और कफ को कठिनता से निकालते हैं॥

अनार--कसीला, कुछ पित्तकर्त्ता, रुचिकर्त्ता, हृदय को हितकारी, मल का रोकने वाला होता है अनार दो प्रकार का है-मीठा--और-खट्टा--मीठा अनार त्रिदोषनाशक है और खट्टा वादी कफ को दूर करता है॥

आंवला--मीठापन लिये हुये खट्टा, चरपरा, कसेला, कड़वा, दस्तावर नेत्रों को हितकारी सम्पूर्ण दोषों का नाश करने वाला और पुष्टिकारक है, खट्टा होने के कारण वादी को दूर कर्त्ता है। मीठा, ठण्ढा होने से पित्त नाशक, रूखा कसीला होने से कफ को दूर करता है, यह और फलों से गुणों में अधिक होता है।

बेर--झाड़ी बेर और गोलाबेर ये दोनों कच्चे पित्त कफ को नाशते हैं॥

पकाबेर--पित्त वात को दूर करता चिकना, मीठा, दस्तावर है॥

पुराना--बेर प्यास को कमकरता, दीपन, हलका, है-सौवीर--अर्थात खट्टा बेर चिकना, मीठा, और वात पित्त को नाशता है।

सेव--कसीला, मीठा, शीतल है॥

कैथ;कच्चा कैथ--बोली को बिगाड़ देता है, कफ नाशक और वादी करता है-पक्काकैथ--कफ वादी को दूर करता--रस में मीठा खट्टा है और भारी, है॥

पक्काआम--रस में कसीला, मीठा, वातनाशक, भारी, कुछ पित्तकर्त्ता और वीर्य्य का बढ़ाने वाला है ॥

बरहुर--त्रिदोषकर्त्ता, कबज़ियतकर्त्ता, वीर्य्य का नाश करता है ॥

करोंदा--खट्टा, प्यास को मारने वाला, रुचिकर्त्ता, पित्तकर्त्ता है ॥

आड़ू--हृदय को हितकारी, मीठा, कसीला, खट्टा, मुख का शोधने वाला, पित्त कफ को दूर करता, चिरपाकी, विष्टम्भी शीतल है ॥

नारंगी--खट्टी, मीठी, हृदय को हितकारी, भोजन में रुचि बढ़ाने वाली, वातनाशक, देर में पचने वाली, भारी है ॥

जम्भीरी--प्यासशूल, कफ का कठिनता से निकलना, वमन और श्वास का निवारण ये काम करने वाली होती है वादी कब-ज़ियत को दूर करती भारी और पित्तकर्त्ता है ॥

बड़ी जंभीरी--खट्टी रक्तपित्त करने वाली है ॥

जामन--अत्यन्त वादी कर्त्ता कफ पित्त को दूर करने वाली होती है ॥

खिरनी--चिकनी, मीठी, कसीली भारी होती है ॥

सीताफल--कसीला, मीठा, रूखा कफ वादी को जीतता है ॥

मोरसली--मीठी, कसीली, चिकनी, दांतों को दृढ करने वाली और विशद है ॥

अंजीर--विष्टम्भी, स्निग्ध तृप्ति करने वाली और भारी होती है ॥

फालसा--कच्चा अत्यन्त खट्टा कुछ मीठा, कसीला, हलका, पित्तकर्त्ता, पका हुआ मीठा और वातपित्त का रोकने वाला है ॥

ताड़फल--मिष्ट, भारी और पित्तनाशक है ॥

नारियल--भारी, चिकना, पित्तनाशक, स्वादु और शीतल बल और मांस का बढ़ाने हारा हृदय को हितकारी है ॥

केला का फल--स्वादु, कसीला, कुछ ठण्ढा होता है रक्तपित्त नाशक पुष्टिकर्त्ता, रुचिकारी, कफकर्त्ता, भारी होता है ॥

दाख--दस्तावर--बोली को सुधारनेवाली, मधुर, चिकनी, शीतल होती है रक्त पित्त ज्वर--तृष्णा, श्वास दाह और क्षयी को नाश करने वाली है।

खजूर--चोट, क्षयी को दूर करता है हृदय को हितकारी, शीतल, तृप्ति करने वाला, भारी रस पाक में मधुर रक्त पित्त नाशक होता है॥

महुआ--महुआ का फूल, बृंहण हृदय को अहित और भारी है महुआ का फल वातपित्तनाशक होता है॥

लिसौड़ा--भारी, कफकर्त्ता मधुर शीतल है॥

वायविड़ंग--चरपरा, कुछ विषनाशक और कृमिरोग नाशक है॥

हरड़--गरम, दस्तावर, बुद्धिदात्री, दोषनाशक, सूजन और कोढ़ को दूर करनेवाली, कसीली, दीपन, खट्टी नेत्रोंको हितकारी॥

बहेड़ा--हलका, रूखा, गरम, स्वर को अहित, नेत्रों को हितकारक, स्वादुपाकी, कसीला, कफ पित्त को जीतनेवाला है॥

सुपारी--कफ पित्त नाशक, रूखी, मुख की क्लेदता और विरसता को दूर करनेवाली, कसीली, कुछ २ मीठी और कुछ दस्तावर भी होती है।

जावित्री, जायफल, लौंग--ये चरपरी, कड़वी, कफनाशक, हलकी, तृषानाशक, मुख के गीलापन और दुर्गन्ध को दूर करते हैं।

कर्पूर--चरपरा, सुगन्धयुक्त, शीतल, हलका, लेखन होता है--प्यास मुखदोष, मुख की विरसता अर्थात् ज़ायक़ा दुरुस्त करने में उत्तम है।

चिरौंजी--की गिंगी मीठी, पुष्टिकर्त्ता, पित्तवातनाशक है।

बिजौरा-अमलतास का गूदा--स्वादुपाकी, अग्निबलवर्द्धक, चिकना पित्त वादी को मारनेवाला होता है।

विशेष सूचना ।

व्याधित, कीड़ों से खायाहुआ, जिसका पकने का समय बीतगया हो अनुचित काल में उत्पन्न हुआ हो और अपक्व इन सब फलों को छोड़ दे अर्थात् न खाय ॥

—:※:—

दूध ।

गायका दूध—स्निग्ध, भारी, रसायन, रक्तपित्त का दूर करने वाला, शीतल–रस और पाक में मधुर, जीवन को हितकारी वात पित्तनाशक है ॥

बकरी का दूध--सब तरह से गाय के दूध के समान गुणकारी है, विशेष करके शोष रोगवालों को बहुत हितकारी है अग्नि सन्दीपन है, हलका है, सङ्ग्राह्य है, श्वास खांसी, रक्त पित्त का नाश करनेवाला है बकरियों का देह बहुत छोटा होता है और वे कड़वी चरपरी नीम की पत्ती बबूल की पत्ती इत्यादि वनस्पतियों को खाया करती हैं पानी कम पीती हैं और परिश्रम अधिक करती हैं अर्थात् दिन भर डोलती हैं इससे इनका दूध सम्पूर्ण व्याधियों का नाशकर्त्ता है ।

भैंसका दूध--भैंसका दूध अत्यन्त अभिष्यन्दी मधुर और जठराग्निको मन्द करनेवाला है, आलस्य बहुत लाता है, ठण्डा करने वाला है गाय के दूध से चिकना और भारी होता है ॥

समय २ का दूध—प्रायः प्रातःकाल का दूध भारी विष्टम्भी और शीतल होता है क्योंकि रात्रि में चन्द्रमा के गुण अधिक होते हैं और परिश्रम का अभाव होता है परन्तु सायङ्काल का दूध प्रातःकाल की अपेक्षा गुणकारी, वादी मारनेवाला परिश्रम को दूर करनेवाला और नेत्रों को हितकारी होताहै क्योंकि दिन में पशु सूर्य्य की किरणों से तप्त रहता है परिश्रम और पवन का सेवन भी करता रहता है ॥

कच्चे पक्के दूध के गुण--प्रायः कच्चा दूध अभिष्यन्दी और भारी कहागया है, वही दूध **औटाहुआ**-बहुत हलका और अभिष्यन्दी होता है परन्तु **स्त्री का दूध**-तौ विन औटाही हितकारी है इसको गरम न करै ॥

वर्जित दूध--वह दूध जिस में दुर्गन्ध आने लगे, खट्टा होवै, जिसका रङ्ग बिगड़गया हो, जिसके स्वाद में अन्तर पड़गया हो, नमकीन हो और जिसमें फटकार गांठ पड़गई हों ऐसे दूध को न पीवै ॥

धारोष्ण दूध--थनों से निकला हुआ दूध गरम२ पीने में गुणदेताहै।

---*---

दही ।

दहीके गुण--दही मीठा, खट्टा, अत्यन्त खट्टा होता है रसमें कसीला स्निग्ध और गरम होता है, पीनस, विषमज्वर, अतीसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता इन रोगों को दूर करता है, पुष्टकारक है, प्राणों को चैतन्य करता है।

दही के भेद गुण--दही चार प्रकार का होता है यथा-**मीठा दही** बहुत अभिष्यन्दी है कफ और मेदा का बढ़ानेवाला होताहै **खट्टादही**-कफ और पित्त का करनेवालाहै **अत्यन्तखट्टा** रुधिर को दूषित करके विकारों को उत्पन्न करता है और **मन्दजात दही**--दाहकर्त्ता मल मूत्र को निकालने वाला और त्रिदोषकारी है ॥

गायका दही--चिकना है पाक में मीठा होता है, अग्नि सन्दीपन और बल का बढ़ानेवाला होता है वादीको दूर करता है शुद्ध और निर्मल है और रुचि को बढ़ानेवाला है ॥

बकरी का दही--कफ पित्तका नाशकर्त्ता हलका वादी और क्षयीको दूर करनेवाला है ववासीर, श्वास, खांसी इन में हितकारी है और अग्नि को बढ़ाता है।

दही की मलाई--भारी, बलकारक, वातनाशक, अग्निनाशक और कफ वीर्य्य को बढ़ानेवाली। दही सेवन ऋतु—शरद्, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओं में दही न खाना चाहिये हेमन्त शिशिर और वर्षा में दही खाना अच्छा है।

मठाके गुण--मधुर, खट्टा, कसीला, हलका, उष्ण वीर्य्य, रूक्ष, अग्नि सन्दीपन होता है। विष, सूजन, अतीसार, ग्रहणी, पाण्डु-रोग, बवासीर, तापतिल्ली, गुल्म अरुचि, विषमज्वर, तृषा वमन, कफ, वात रोगों को दूर करता है पाक में मीठा होता है हृदय को हितकारी, मूत्रकृच्छ्र, स्नेह, रोगों का शान्ति करनेवाला।

मठा देने का निषेध—जिसके घाव होगया हो उसको न पिलावे गर्मी की ऋतु में दुर्बल मनुष्य को मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्त पित्तवाले को तक्र न देवे॥

मीठा मठा—कफ को करता है पित्तनाशक है, **खट्टामठा**—वादी का नाशक और पित्त को करता है, वातव्याधि में खट्टा मठा सेंधा नमक डालकर पीना चाहिये पित्तव्याधि में मीठा मठा खांड डालकर पीना, कफकी अधिकता में सोंठ मिरच पीपल, सेंधानमक डालकर देना योग्य है॥

घी।

सामान्य घी के गुण—शीत, शीतवीर्य्य, मृदु स्वादु, उन्माद, मृगी-शूल ज्वर और वातपित्तका नाश करनेवाला अग्निसन्दीपन स्मरणशक्ति, मति, बुद्धि, कान्ति, स्वर, सुकुमारता, ओज तेज और बल का बढ़ानेवाला है, आयु को हितकारी, पुष्ट कारक भारी नेत्रों को हितकारी, कफबढ़ानेवाला, होताहै।

गऊ के घीके गुण—विपाक में मधुर, शीतल, मधुर वात पित्त विष रोगों का नाशक, नेत्रों का हितकारी अग्निबल बढ़ानेवाला सम्पूर्ण प्रकारोंके घृतों में गऊका घृत उत्तम है, **बकरी**—का

घृत दीपन, नेत्रों को हितकारी, खांसी, श्वास, क्षयी रोगों में हितकारी और पाक में हलका होता है-भैंस--काघी, वातपित्त और रक्तपित्त का नाश करने वाला, कफकर्त्ता, और शीतल होता है ॥

पुरानाघी--दस्तावर, त्रिदोषनाशक, और उन्माद उदर, मृगी, योनि-रोग, और कान, आंख शिरकी पीड़ाओं का नाश करता है।

मक्खन--यह नवीन निकाला हुआ दीपन हृदयप्रिय ग्रहणी और अर्श रोगों को दूर करने वाला, प्रातःकाल मिश्री के साथ खाने से विशेष कर शिर नेत्र को लाभ देता है ॥

———०:*:०———

मसाला।

सोंठ--अग्निदीपक, वात कफ नाशक, मधुर पाकी हृदय प्रिय और रुचि वर्द्धक होती है ॥

पीपल--हरी कफकर्त्ता और भारी और सूखी कफ वात नाशक कटु उष्ण होती है। मिरच--यह उष्ण नहीं होती अग्निसन्दीपन और कफ वात को जीतने वाली है और बल को कम करने वाली है हींग--कफ वात को दूर करनेवाली, अग्निसन्दीपन और शूलनाशक, पाचक और रोचक भी होती है।

अदरक--कफ वात नाशक शूल को दूर करनेवाली, स्वाद में कटु, वीर्य्यमें उष्ण, रोचक, हृदयकोहितकारी है सफेद जीरा और काला जीरा--यह दोनों प्रकार के जीरे पाक में कटु रुचिवर्द्धक पित्त अग्निको बढ़ानेवाले स्वाद में कटु कफ और वात को मारनेवाले और सुगन्धित हैं। कलौंजी--इसके गुण जीरे के गुण के समान यह भोजनों और शाकादि को बहुत सुगन्धित बनाती है। धनियां--हरा धनियां स्वादित होता है और सुगन्ध युक्त और हृदय को भाता है। सूखा--धनियां पाकमें मधुर प्यास और जलन को नाश करनेवाला है। सेंधानिमक रोचन दीपक हृदयप्रिय, नेत्रहितकारी, त्रिदोषनाशक, मधुर सब नि-

मकों में उत्तम है। **समुद्रनमक**—पाक में मधुर कुछ उष्ण जलन को दूर करनेवाला शूलनाशक और अत्यन्त पित्तकर्त्ता नहीं होता। **कालानमक** पाक में हलका वीर्य्य में उष्ण और कटु होता है यह गुल्म शूल को नाश करता है हृदय को हितकारी सुगन्धित और रोचक होता है॥ **सांभर नमक**—तीखा, अत्यन्त गर्म, कटुपाकी, वातनाशक, हलका, बहुत बारीक रोम कूपों में प्रवेश करनेवाला मलको फाड़ने और मूत्र लानेवाला। **खारी नमक**—हलका, तीक्ष्ण, उष्ण, कफ पित्तको कोप करने सूक्ष्म वातानुलोमी, चरपरा कटु और क्षार युक्त होता है॥

तैल—

तैल के गुण—गरम, तीक्ष्ण, मधुर, पाक में मधुर है, प्रसन्न करने वाला, पुष्टिकारक, त्वचा को चिकना रखने वाला, वृद्धि और मृदुता और मांस की थिरता, वर्ण और बल का बढ़ाने वाला नेत्रों का हितकारी—मूत्र को रोकने वाला, तीखा, रसमें कसीला, पाचक, वादी और कफ का नाश करने वाला, कृमिरोगनाशक, योनिरोग से सिर कान की पीड़ाओं का शान्तिकरने वाला, गर्भाशय का शोधक, टूटा हुआ और जला हुआ आदि के लिये परम हितकारी, इन सब कामों के लिये तिली का तेल अच्छा होता है। **अराडी का तैल**—मधुर, त्वचा को हितकारी, योनि और शुक्र के दोषों को शोधने वाला, उदर रोगों का नाश करने वाला, । **अलसी**—का तैल वादीका नाश करने वाला, गरम, भारी पित्तकर्त्ता होता है—**सरसों**—का तैल कृमिनाशक खुजली कोढ़ को दूर करने वाला हलका, वादी के रोगों को दूर करने वाला, और दीपन है। जो तैल फलों से बनाये जाते हैं उनमें फलों के ही अनुसार गुण होते हैं। सब प्रकार के तैल वादी को दूर करने वाले होते हैं।

गेहूं आदि के चून में जो दूध डालकर पदार्थ बनाये जाते हैं उत्साह करता, हृदय प्रिय, सुगन्धित अदाही, पुष्टिकर्त्ता, दीपन और पित्तनाशक

होते हैं-घेवर—उनमें से घेवर बलकर्त्ता, हृदय को हितकारी, कफकर्त्ता वातपित्तहर्त्ता पुष्टिकारक, भारी और रुधिर मांस को बढ़ाता है। गुड़के पदार्थ—गुड़ से बनी हुई पूरी लड्डू वातपित्तनाशक वीर्य्य कफ वर्द्धक भी है। गूंझा, पुआ लड्डू, खुरमा, अथवा बालूसाई, ये भारी हैं, एहूदेर में पचता है, तिलकुट, तिल और गुड़ को जो कूटकर बनाया जाता है उसे तिलकुटा कहते हैं यह कफकर्त्ता है पूरी कफपित्त कर्त्ता और ऊष्ण वीर्य है पिट्ठी से बने भोजन कफपित्तकर्त्ता हैं मेदाके बने पदार्थ—मेदा से बने पदार्थ वातपित्तनाशक और पुष्टिकर्त्ता हैं इन में से फीनी से आदि लेकर हृदय को हितकारी पथ्यतम और हलके होते हैं उरदकी दालसे—बने हुए पदार्थ विष्टम्भी, पित्तशमनकर्त्ता कफ नाशक, मलको फाड़ने वाला बलकर्त्ता, और भारी होते हैं-खोये—से बने पदार्थ भारी और कुछ पित्त करने वाले हैं-घृतपक्व—घीमें पकाये हुए पदार्थ हृदय को हितकारी सुगन्ध युक्त, पुष्टिकर्त्ता, हलके वातपित्त हरता बलकारक वर्ण और दृष्टि को प्रसन्न करते हैं-तैलपक्व—तैल में पकाये हुये पदार्थ, भारी, कटुपाकी उष्णवात और दृष्टि के कम करने वाले, पित्तल, और त्वचा को बिगाड़ते हैं।

खीर—कब्ज करने वाली, बलकर्त्ता, कफ करने वाली भारी होती है।

खिचड़ी—कफ, पित्त करने वाली, बलकर्त्ता और वातनाशिनी होतीहै।

शिखरण—पुष्टिकर्त्ता, वीर्य्यवर्द्धक चिकनी, बलकारक और रोचक होतीहै, तीन प्रकार का जो पानक अर्थात् पना होता है वह मल और दोषों को निकालता है गौड़ (खांड़, शक्कर गुड़ादि से बना हुआ) खट्टा और अनम्ल यह भारी और मूत्र को लाता है वह पना जो खांड़, दाख, और शर्करा डालकर तय्यार किया जावे तो यदि इस में इमली आदि खट्टे द्रव्य डाले जांय सोंठ मिरच पीपल आदि तीक्ष्ण द्रव्य डाले जांय तो यह बहुत उत्तम पानक बनता है॥

इन के अतिरिक्त निम्नलिखित वचनों पर दृष्टि देना योग्य है—

चौपाई ।

चैते गुड़, वैशाखे तेल, जेठे पन्थ, अषाढ़े बेल ।
सावन दूध, न भादों मही, क्वार करेला, न कातिक दही ॥
अगहन जीरो, पूसे धना, माहे मिश्री, फागुन चना ।
जो यह बारह देय बचाय, ताघर वैद्य कबहूं न जाय ॥

भोजन बनाने के विषय में ।

भोजन नाना भांति के बनते हैं कि जिनका वर्णन अच्छे प्रकार किया जावे तो इसी विषय में बहुत बड़ी पुस्तक बनजाय, अतः हम उन वस्तुओं के बनाने की रीति लिखते हैं जिनका प्रत्येक स्त्री को प्रतिदिन काम पड़ता है—

प्रथम प्रत्येक वस्तु को शोधना योग्य है अर्थात् प्रत्येक अन्न को बीन बान छांट फटक कर ठीक ठाक करले, ऐसेही हरे २ शाकों को धोय धाय मरे सड़े पत्तों को निकाल डाले ॥

दूसरे कोई वस्तु जलने न पावे न कचकची रहे ।

तीसरे सब पदार्थ सुहावने होना चाहिये ।

चौथे चौका ऐसे स्थान पर हो जहां वायु भी आता हो तथा धुयें के निकलने के लिये रोशनदान हों ।

पांचवें बहुधा भोजन के बनाने में नमक आदि के डालनेका पूर्ण ध्यान रखना योग्य है, नहीं तो रस नीरस होजाता है तथा मन उस को अङ्गीकृत नहीं करता फिर लाभ कैसा जैसा कि कहा है 'रुचेसोपचे'

(रोटी बनाने की रीति)

प्रथम गेहूं के आटे को छान अच्छी परात में माड़कर थोड़ा सा पानी देकर लोचदे फिर उस आटे को भिगोकर रखदें फिर थोड़ी देर के पीछे आटे को माड़कर ठीक कर लेवे अर्थात् आटा बहुत अच्छे प्रकार लोचदार होजावे, इतने में दाल को जो पहिले से चूल्हेपर होने को रक्खी थी उतार के घये में रखले, चूल्हेपर तवा रखदे फिर छोटी२ लोई तोड़ चकले पर बेलन से बेल तवे पर सेंक घये अर्थात् चूल्हे में अच्छे प्रकार सेकले पर रोटी जलने न पावे, लोई को हाथ से बढ़ाकर

सेकने से रोटी पाचक होती है, चने गेहूं की रोटी बनानी हो तो गेहूं चने का आटा मिलाकर माड़ लेते हैं, बाजरा मक्का ज्वार की रोटी करने में आटे को लोचदार उसी समय बनाते जाते हैं जिसको ईछना कहते हैं, जो मीठी रोटी करना हो तो आटे को मीठे पानी से माड़ लेते हैं, फिर रोटी करने या सेकने की वही रीतें हैं जो ऊपर लिखी हैं।

(उरद की दाल बनाने की रीति)

उरद की दाल जो पहिले ही से स्वच्छ कर रक्खी हुई है प्रातःकाल भिगोदे जब भीग जाय तो हाथों से मलकर चलनी में रखकर पानी डाले तो छीकले ऊपर आजावेंगे इसी भांति उसको पानी डाल २ कर धोले तत्पश्चात् दाल को फिर साफ करले अर्थात् उसमें के टोरे आदि निकाल कर घटले में पानी डाल चूल्हे पर रख गर्मकर दूसरे वर्त्तन में करले फिर बटुलोई में घी डाल उस में हल्दी मिरच पिसीहुई डालके अनुमान से भूने फिर दाल को डाल ऊपर से वह गर्म पानी जो पहिले से कर रक्खा था इतना डाले कि दाल से दो अङ्गुल ऊपर रहे फिर अनुमान से नमक डाल ढकदे तब धीमी २ आंच दे, जब दाल होजाय तो उसको उतार अङ्गारों पर रखदे फिर दाल में सोंठि धनियां पैसे २ भर दालचीनी कालीमिरच छदाम २ भर इलायची दो इन को महीन पीस कर आधसेर में इस मसाले में से आधा डालदे फिर जीरा तथा राई का छौंक दे मानों दाल बनगई।

ऐसेही मूंग अरहर आदि की दालें बनालें अलबत्ता मसाला कम डालें क्योंकि यह दोनों दालें गर्म हैं, मूंग की दाल में लौंग का छौंक देते हैं॥

बहुधा स्त्रियां उरद वा मूंग की दालों के साथ पालक सोया मेथी आदि का शाक डालती हैं, उनको उचित है कि प्रथम शाक डालकर पकालें, फिर मसाले डालें तत्पश्चात् बघार दें तो अति श्रेष्ठ शाक दाल बनजावेगी।

कोई २ मूंग उरद वा चना आदि की दालों में से दो २ को मिलाकर रांधते हैं उनकी भी यही रीति है।

(च वल बनाने की रीति)

प्रथम चावलों को शोधकर हाथों से पानी में डाल हौले २ मलकर पानी निकाल डाले, ऐसेही दो तीन बार मलकर पानी निकाल डाले फिर चूल्हे में आग बाल बटले में पानी डाल रखदे जब पानी खौल जावे तब चावल डाल कर करछी से चलाकर ढकदे फिर धीरे २ आंच दे जब चावल गल जाय फिर सेर पीछे उत्तम स्वच्छ एक पाव के हिसाब से बूरा डालकर उतारलें, यदि सुगन्धित करना होतो गुलाब या केवड़े के इतर का छींटा देदे।

(खिचड़ी)

चूल्हे पर बटलोई को चढ़ाकर पानी गर्म करे अर्थात् जब अदहन गर्म होजाय तब चावल धोकर डाले अगर मूंग की खिचड़ी बनानाहो तो मूंग की यदि उरद की बनाना हो तो उरद की दाल धोकर डाल दे तब अनुमान से नोन डालकर बटलोई को ढकदें फिर धीमी २ आंच देकर थोड़ी देर पश्चात् एक चावल को निकाल टटोले जब वह गला जान पड़े तब उसको चूल्हे से उतार चलनी में पसाकर घी का छींटा दे अङ्गारों पर रखदे॥

(खीर बनाने की रीति)

स्वच्छ चावलों को पानी से धो सुखाकर किञ्चित् घृत से मलकर रखलो फिर दूध को कढ़ाही में अच्छे प्रकार औटा बटलोई में चढ़ा एक सेर दूध पीछे छटांक भर कमोद या हंसराज या बांसमती या रहसुनियां वा अन्य कोई श्रेष्ठ चावल डाल उतार अंगारों पर रखदे।

॥ बूंदी के लड्डू बनाने की रीति ॥

प्रथम् पांच सेर शक्कर लेकर उसमें तीन सेर पानी और आधपाव दूध मिलाकर चासनी बनाले फिर एक सेर बेसन को खूब पतला कर दूसरी कढ़ाई में घी चढ़ाकर बूंदी बनाकर चासनी में छोड़ता जाय फिर उसमें यथाशक्ति मेवा आदि और ६ मासे इलायची डालकर लड्डू बनाले।

॥ बेसन के लड्डू बनाने की रीति ॥

प्रथम एक सेर बेसन को एक सेर घी में खूब भूने यहां तक कि सुगन्ध आने लगे नीचे उतार के जब ठण्ढा होजाय तो १॥ सेर बूरा, बादाम १ छटांक, पिस्ते १ छटांक, इलायची १ तोला मिलाकर लड्डू बनाले।

सट्टक—

लौंग, सोंठ, मिरच, पीपल इन को पीसकर दही में मिलाकर मथै फिर कपड़े में छानले ऊपर से अनारदाना और कपूर का चूरा बुरकै इस का नाम प्रमोदसट्टक भी है ॥

फेनी—

स्वच्छ सफेद मैदा को मथकर तेज घी में पकावै फिर उसे खांड़ की चासनी में डालता जाय तब फेन के समान फेनी बनती है ॥

॥ करेला ॥

प्रथम करेलों को चीर उनमें नमक, धनियें, सौंफ खटाई पीसकर भरदे फिर उबालकर घी वा तैल में छोड़कर अच्छे प्रकार भूनले ॥

॥ आचार नींबू ॥

यदि पांच सेर नीबू हों तो उन में से आधों का रस निकालले फिर उन में एक सेर नमक और आध पाव लौंग चूरा अर्क निकाले हुए में डाल दे यदि इच्छा हो तो छुहारा और करेला आदि डाल दे।

॥ आचार नमक ॥

प्रथम सौ नीबू का अर्क निकाल कर बुझावे फिर उसको छानकर उस में २॥ सेर खांड़ और आधसेर सांभर की डेलियां और पावभर काली मिर्च आधपाव एलायची इन सब को पीसकर अमृतवान में डालदे एक महीने के पश्चात् खावे।

॥ आलू बनाने की विधि ॥

प्रथम आलुओं को उबालकर छील ले फिर जितने आलू हों उन से चौथाई घी कढ़ाई में डाल आलुओं को तले, फिर घर के मनुष्यों

के स्वभाव के अनुकूल गर्म मसाला डालकर आलुओं को घी में भून ले तत्पश्चात् थोड़ासा पानी और नमक मिर्च डाल दे।

॥ मसालेदार भिण्डी बनाने की रीति ॥

भिण्डी सेर भर लेकर उनको बीच से खोलकर खटाई, सौंफ, धनियें अदरक एक एक तोले, लौंग, इलायची, जीरा, दालचीनी, एक एक मासे उसी के अनुसार नमक व घिसी हुई हल्दी यह सब मसाले भरकर पाव भर घी में भूने फिर किसी वर्तन से ढक धीमी २ आंच से होनेदे।

मालपुआ।

आधी छटांक सौंफ आध पाव पानी में भिगोदे थोड़ी देरके पीछे स्वच्छकर पीसले फिर छानकर एक सेर आटे में आध सेर शरबत खांड़ या बतासे या मिश्री वा गुड़ का छानकर डालें फिर सबको भलेप्रकार मथै कि जिस से उसमें फेन उठ आवे, फिर कढ़ाई में घी डालकर आंच दे जब घी गर्म होजावे तब कटोरे अर्थात् बेले में उस आटे को छोटे बड़े जैसे बनाना अभीष्ट हो कड़ाही में डाल दोनों ओरसे सेकें।

गुजिया।

प्रथम आटा की मोटी २ पूरियां बनाकर सेकले फिर उनको कूट कर धूप में सुखावे तत्पश्चात् चलनी में छानकर जो टुकड़े रहजावें वह चक्की में पीसले फिर तीन सेर में सवासेर खांड डाले वह गुली कहलाती है फिर गेहूं के आटे को महीन वस्त्र में छाने जिसको मैदा कहते हैं मांड़े जितनी बड़ी बनाना हो उतनी बड़ी लोई काटकर पूड़ियां बेले तिनमें उनके योग्य गुली भर फिर हाथ से औटे तत्पश्चात् कढ़ाई में घी डाल उत्तम प्रकार से सेकलें।

अनरसे।

प्रथम ढाई सेर चावल साठी वा कोदों को तीन दिनतक पानी में भिगोवे चौथे दिन मलकर साफ पानी से धोकर सुन्दर सफेद वस्त्र पर फैलाकर हवा लगने दे जब सरदी दूर होजावे तब ऊखली मूसल से कूटे कूटते समय एक सेर खांड मिला दे पश्चात् थोड़ी देर तक एक वर्त्तन में रखदे तत्पश्चात् कढाही में घी देकर पुओं की भांति घी में छोड़ कर एक ओर सेंककर रखलें।

घुइयां।

यह दो प्रकार से बनती है एक सूखी दूसरी पतली, बनानेवाले चाहें छीलकर बनावें चाहे उबालकर, जब सूखी बनाना हो तो प्रथम कढ़ाही में घी डाले उस में मेथी अजवायन, मिर्च, हल्दी, आदि मसाले को अच्छे प्रकार भूने, जब भुनजावे तब उस में घुइयां डाले यदि उबली हों तो पानी डालने की कुछ आवश्यकता नहीं वरन थोड़ासा पानी गलने के योग्य डालदे, जब गल जावे तब उतार ले, जो पतली रसे की बनाना हो तो जितना योग्य जाने पानी छोड़दे नमक आदि मसाले भी अनुमान से छोड़दे।

नोट—इसी प्रकार आलू रतालू बनाते हैं परन्तु उनमें अजवायन नहीं डालते हैं।

जमीकन्द।

प्रथम जमीकन्द पर कपड़ा लपेट कर चिक्कण मिट्टी भिगोकर अच्छे प्रकार भूने अथवा इमली के पत्ते वा उसकी खटाई डालकर उबाल ले, ऐसा करने में उस की परपराहट जाती रहती है फिर घुइयां के समान बनाले।

——०※०——

शाक बनाने की रीति—

प्रथम शाक को अच्छे प्रकार बीने और स्वच्छ करले कोई सड़ागला न रहे फिर बना कर कढ़ाई में उबाल ले जब उबल जावे तब पृथक् रखले फिर कढ़ाही में घी डालकर मेथी आदि मसाला डालकर शाक को डाल दे और अनुमान से नमक पीसकर मिलावे फिर जब पानी न रहे तब उतार ले।

वस्त्र—

वस्त्र देश काल के अनुसार पहिने सो अब प्रायः देखने में आता है कि कोई इन बातों को नहीं पूछता और जो जी में आता है पहिनते हैं, प्यारे भाइयो आज कल काला कपड़ा बहुत पहिना जाता है सो यह देश और काल दोनों के विपरीत है, देखिये यह देश उष्ण है और

उष्ण वस्तु में गर्मी अधिक घुस जाती है और वह बहुत देर तक रहती है। तिस पर तुर्रा यह है कि ग्रीष्म ऋतु में काला कपड़ा पहिनते हैं मानो अपने दुःखों को आप बुलाते हैं, क्योंकि काला कपड़ा भारत वासियों को सर्वदा अयोग्य और हानिकारक है, इस के पहिनने से रस रक्तवीर्य्य में अधिक गर्मी पहुंचती है कि जिसके कारण स्वस्थ भोजन खाने पर भी धातु क्षीण रक्त विकारादि रोग घेरे रहते हैं, इस समय बहुत कम भारत में ऐसे पुरुष निकलेंगे कि जिनको धातु की किसी प्रकार की बीमारी न हो नहीं तो जिधर जाइये उधर यही रोग फैला हुआ है, अतः अपने प्राचीन पुरुषाओं के सदृश पीताम्बर रक्ताम्बर आदि भांति २ के वस्त्र देशानुसार ऋतु के अनुकूल धारण करने योग्य हैं, देखो आप के सर्व ग्रन्थों में नीलाम्बर का निषेध किया है, क्या आप ने सुश्रुत का पाठ नहीं सुना।

हाय क्या समय आया है कि जिसमें सब वार्त्ता बुद्धि और वैद्यक वा धर्मशास्त्र के प्रतिकूल होतीं हैं, देखो बहुधा जन बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं, परन्तु उन की स्वच्छता पर ध्यान नहीं रखते इस कारण उन को शरीर की स्वच्छता से भी कुछ लाभ नहीं होता, अतः कपड़ा कैसा ही अधिक मूल्य वा न्यून दामों का क्यों न हो यथाशक्ति पहिनना चाहिये परन्तु उनको आठवें दिन उतार कर नवीन वस्त्र धारण करना योग्य है, जिसमें स्वच्छता को लाभ हों, दूसरे मलिन कपड़े से दुर्गन्ध निकलता है जिससे आरोग्यता में हानि होती और अन्य जन ऐसे पुरुषों से घृणा करते हैं, उनकी सर्व सज्जनों में निन्दा होती है। निर्मल वस्त्रों के धारण से कान्ति यश और आयु बढ़ती है अलक्ष्मी का नाश होता है, चित्त में हर्ष रहता है, श्रीमानों की सभा में जाने योग्य होता है, इस के अतिरिक्त अति सुर्ख़ और भीगे कपड़ों को न पहने।

इन सब बातों के उपरान्त अपने देशीय वस्त्रों को सब काम में लाना योग्य है जिससे यहां के शिल्प में उन्नति हो और यहां का रुपया भी बाहर को न जावे, हमारे भारत देश में बड़े २ उत्तम और दृढ़ वस्त्र बनते हैं यदि सम्पूर्ण देश भाइयों की इस ओर दृष्टि होजावे तो फिर देखिये भारत में कैसा धन बढ़ता है जो सर्व सुखों की जड़ है।

———:※:———

सायंकाल—

शाम के चार वा पांच बजे अपने २ कार्य्यों से निवृत्त हो अथवा जिस प्रकार से जिसको सुबीता हो नगर से बाहर बाग़ बगीचों में जावें तथा शौचादि से निवृत्त हो परमेश्वर का ध्यान करें पुनः अपने २ कार्य्यों में यथायोग्य प्रवृत्त हों।

सोना—

भाग्यशील वही मनुष्य हैं जो दिन भर अपने कार्य्यों में व्यतीत कर रात को सोते हैं उन को गहरी नींद के पश्चात् जागने पर बड़ा आनन्द आता है, परन्तु यह सब लाभ उन मनुष्यों को नहीं होता जो दिन में सोकर अपने समय को मिथ्या खोते हैं, वह रात भर करवटें लेते झपकी की दशा में लेटे रहते हैं, तो भी प्रातःकाल सुस्ती तथा काहली जान पड़ती है वारम्वार जम्हाइयां आती हैं इस लिये नीरोगता चाहने वाले मनुष्यों को दिन में कदापि न सोना चाहिये क्योंकि दिन के सोने वा रात्रि के जागरण करने से खांसी तप अङ्ग में पीड़ा सिर भारी होजाता है, पाचनशक्ति कम होजाती है, हां गर्मी के दिनों में एक घण्टा सो रहना अच्छा है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि ८ घण्टा से अधिक और ६ घण्टे से कम कदापि न सोना चाहिये, क्योंकि विपरीत दशा में रोग होजाते हैं लेकिन बच्चों और बूढ़ों के लिये यह नियम नहीं वरन उन की जितनी इच्छा हो सोवें, सोने का बैठका या कमरा तथा स्थान सब प्रकार से उत्तम हो जिस में वायु अच्छे प्रकार से आता जाता हो उस में रोशन दान खिड़की भी हों उस को जाड़े के दिनों में गुलाबी, वर्षा में श्वेत तथा गर्मी में हरे रङ्ग से रङ्गवाना उचित है।

चारपाई साढ़ेतीन हाथ लम्बी ढाई हाथ चौड़ी एक हाथ ऊंची होनी चाहिये पर यह भी स्मरण रहे कि एक स्थान पर अधिक मनुष्य न सोवें क्योंकि उनके श्वास लेने से हवा विगड़कर रोग उत्पन्न करदेती है, इस लिये प्रत्येक के लिये ४८ वर्ग फीट जगह होनी आवश्यक है, चारपाई लम्बी चौड़ी हो बहुत छोटी और बड़ी में लाभ नहीं होता,

खटमल आदि भी न हों, बिछौने के अर्थ तोषक वा गद्दा, गर्मियों में ग़लीचा वा दरी आदि हो, दो एक तकियों का होना आवश्यक है, चारपाई शिर की ओर ऊंची तथा पैर की ओर नीची होनी चाहिये, सोने के स्थान में कोई पशु भी न बांधना चाहिये क्योंकि हवा बिगड़ जाती है, गर्मी के दिनों में शरीर को ढांप कर सोना चाहिये, परन्तु भीने कपड़े पहिन कर या पावों को पानी में डुबोकर या बिलकुल नङ्गा होकर सोना न चाहिये, जाड़े के दिनों में लिहाफ़ ओढ़ कर सोना चाहिये परन्तु लिहाफ में मुंह छिपाकर या किसी मर्द या औरत के साथ एक ही बिस्तर पर एक ही लिहाफ़ के भीतर न सोना चाहिये, इस के उपरान्त मकान के भीतर कोयला वा लकड़ी जलाकर और दर्वाजा बन्द करके सोना बहुत बुरा है क्योंकि " कारबोनिक गास " मनुष्य के श्वासों के साथ शरीर में आकर प्राण हरलेता है, इसलिये इस छोटी सी बात की ओर हमारे देश भाइयों का ध्यान होना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि समाचार पत्रों के पढ़ने से जाना जाता है कि जो मनुष्य इस बात का विचार नहीं रखते वह अवश्य ही मरजाते हैं, कई एक स्थानों में ऐसा होचुका है।

इस लिये इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिये, यदि आगको भीतर रखने की ऐसी आवश्यकता है तो बाहर से खूब जलाकर और सुर्ख़ करके मकान के भीतर रखना योग्य है, मिट्टी का चिराग़ जलता हुआ छोड़कर बन्द मकान में सोने से भी ऐसे ही रोग होजाते हैं, इस लिये सोने से पहिले चिराग़ को जरूर ठण्ढा कर देना चाहिये, इस कथन का मुख्य प्रयोजन यह है कि इन उपरोक्त बातों को स्मरण रखकर सांसारिक कार्यों और नाना भांति की चिन्ताओं को त्यागन कर बिस्तर पर लेटे, उस समय करवट का विचार अच्छे प्रकार से रक्खे, क्योंकि करवट का असर नींद पर बहुत पड़ता है जैसा कि बे आराम और तङ्ग करवट से नींद रुक जाती है, अतः अच्छे प्रकार करवट लें, इसके उपरान्त तन्दुरुस्त मनुष्य के लिये पीठ के बल लेटना हानिदायक होता है, और जब दिल निर्बल होता है या किसी दिमाग़ी रोगों में या रगों की निर्बलता में इस प्रकार लेटने में खून सिर के पिछली तरफ़ को

तङ्ग होजाता है तो भयानक स्वप्न दीख पड़ते हैं, इसके उपरान्त जिन मनुष्यों की छाती तङ्ग होती है या किसी रोग से पीठ के बल सो नहीं सकते, प्रायः नींद में जोर २ से खुर्राटे के शब्द करते हैं उसका कारण भी करवट पर न सोना है, क्योंकि उनका नरम तालू और कौआ जबान पर लटक पड़ता है और जबान पीछे को हटकर हवा के नाली का रास्ता कुछ बन्द कर देती है तब घुर्राटों का शब्द निकलना शुरू होजाता है, इस लिये उचित है कि करवट पर सोये विशेष कर दाहिनी करवट पर सोना योग्य है, क्योंकि जो मनुष्य के शरीर की बनावट अच्छे प्रकार से जानते हैं वह इस बात को अच्छी भांति जानते हैं कि दाहिनी करवट सोने से भोजन मेदे के भीतर से सुगमता के साथ अन्तड़ियों में चले जाते हैं, विपरीत दशा में सोने से भोजन मेदे से दूसरी ओर पड़ा रहता है, इसके उपरान्त बाईं करवट सोने से क़लब भी दब जाता है, अतः प्रथम दाहिने करवट सोना योग्य है, जब थक जाय तो दूसरी करवट बदल ले, बहुधा जन सोते से उठ जल पीकर पुनः तत्काल सो जाते हैं, यह भी योग्य नहीं क्योंकि यह जल शरीर की आरोग्यता को हरता है।

प्रकट होकि पलङ्ग या चारपाई पर सोने से त्रिदोष का नाश होता और पृथ्वी पर सोने से दोष की वृद्धि, तथा काष्ठ पर सोने से वायु का कोप होता है।

इसके सिवाय सोने में दक्षिण को पांव न करना चाहिये क्योंकि मनुष्य के भेजे में एक शक्ति है जिसको अंगरेजी में "मैगनेट" तथा अरबी में "कुव्वत जाज़बा" कहते हैं, उस शक्ति का धड़कने वाला भाग अधिकतर मनुष्य की चोटी की ओर होता है, जब उसका शिर उत्तर की ओर होता है तब उसकी गति नियुक्त संख्या से बढ़जाती है देखो ध्रुवमत्स्य के (जिसको अंग्रेज़ी में "कम्पास" और उर्दू में "कुतुबनुमा" कहते हैं) लोहे में इस शक्ति का अधिक भाग होता है, अतः वह सुई जो कुतुबनुमा में लगाई जाती है सदा हिला करती है और उसका एक सिरा सदा उत्तर की ओर रहता है क्योंकि उस शक्ति का यही स्वभाव है पस जब कि मनुष्य दक्षिण की ओर पांव करके सोवेगा

और जब देह गतिका कम्प भेजेमें न पहुंचेगा और भेजा स्थिर होगा तो वह शक्ति (मेगनेट) जो भेजे में है अपना जोर करेगी और धड़कने लगेगी, और समस्त रात्रि नियुक्त संख्या से जो दूसरी ओर रहने से कम धड़कती है अधिकतर धड़केगी जिससे कुछ न कुछ हानि भेजे में होगी, यदि कोई मनुष्य सदा दक्षिण की ओर पांव करके सोये और उसके भेजे का मेगनेट उत्तर की ओर रहे तो निःसन्देह एक वर्ष में उसका भेजा डामाडोल होजायगा वा शिर में दर्द व्याप जायगा और सन्देह नहीं कुछ समय पश्चात् पागल होजाय।

——————

नगर, गांव, मकान।

वर्त्तमान समय में नगर और गांव की बनावट उत्तम रीति पर नहीं है प्राचीन समय में जितना लम्बा चौड़ा नगर वा गांव होता था उसके आस पास उतनाही लंबा चौड़ा जङ्गल छोड़ाजाता था।

प्यारे पाठकगणों विचार कर देखो तो नगर से आठगुणी पृथ्वी जङ्गल के लिये रहती थी यही कारण था कि जिस प्रकार से प्रत्येक नगर के न्यारे २ नाम होते हैं इसी भांति प्रत्येक नगर के नीचे जो जङ्गल होते थे उनके जुदे २ नाम होते थे यही कारणथा कि श्रीरामचन्द्र जी महाराज एक वन से उठ दूसरे वन और वहां से उठ तीसरे वन, इसी प्रकार बराबर वनोंही वन में ठहरते हुए चलेगये, पाठक गणों को ज्ञात हो कि हमारे देश के राजाओं को इतनेही वनों से सन्तोष नहीं था जिनका हमने वर्णन किया है, प्रत्येक प्रान्त में पहाड़ों के निकट नदियों के किनारे २ बड़े २ वन होते थे जिन वनों में ऋषियों के गण निवास किया करते थे, और वानप्रस्थ वाले महात्मा लोग उन्हीं जङ्गलों में रहते थे और वह वहां धर्मोपार्जन करते हुये विद्याकी उन्नति करना प्रति दिन उनका काम था, इन सब के अतिरिक्त जङ्गलों के होने से नगर वा ग्रामवालों को भी अति उत्तम पवन मिलता था जिससे सदा हट्टा कट्टा रहकर नाना प्रकार के उद्यम कर अनेकान प्रकार की वस्तुओं को भोगते थे तदनन्तर जङ्गलों में गौवों का पालन अच्छे प्रकार होता था, दूध घी की अधिकता रहती थी इनही गौवों

का गोवर खेतों के लिये उत्तम खाद था वहां निषिद्ध खाद के पड़ने से नाना भांति के अन्न फलादि सबके सबही पूर्ण बलको नहीं देते, ईन्धन की अधिकता का यही कारण था अधिक वृष्टि का हेतु यह वन ही थे, इसलिये जङ्गलों का अधिक होना अभीष्ट है।

प्यारो नगर की रचना और वनों के न होने से नाना प्रकार की हानि होरही है तिस पर तुर्रा यह है कि वर्त्तमान समय में हमारे और आपके गृह अर्थात् निवासस्थान भी विपरीत दशा पर बनाये जाते हैं कि जिस से उत्तम वायु के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते क्योंकि मकानों का निकट होना कुर्सी आदि नीची सहन, का नाम भी नहीं इसके उपरान्त अत्यन्त छोटे, तिसपर भी भोजन बनाने और सोने उठने बैठने का काम एकही स्थान से लियाजाता है, पाखाना और कुंयेभी निकट होते हैं, इसके उपरान्त और भी बातें हानिकारक होती हैं जिसके कारण गृहनिवासियों को पूर्ण सुखकी प्राप्ति नहीं होती देखिये वेद में भी लिखा है—

सूतायत्वा नारान्तये स्वराशि विख्येषन्द्व ७ हन्तां दुर्य्याः।
पृथिव्यामुर्वृन्तरिक्षमन्वेपि । पृथिव्यास्त्वानाभौ सादया
सादित्या उपस्थेग्ने हव्य७ रक्ष ।

हे मनुष्यो तुम को योग्य है कि खुले हुये स्थानों में अपने घर बनाओ जिन में जल वायु आदि पदार्थों के सब सुख हों और यह ऐसे लम्बे चौड़े होने चाहिये जिनसे अच्छे प्रकार से आराम मिले उत्तम दरजों की रक्षा के लिये सदा परमेश्वर की प्रार्थना करना चाहिये

य० अ० २८ म० ३६ में कहा है कि घर ऐसे बनावें कि जिस के द्वारे एक दूसरे के सामने रहें और जिनमें वायु अच्छे प्रकार से जावे उनमें निवास करने से अवस्था पवित्रता बल और नीरोगता बढ़ती है इसलिये बड़े२और बहुत दरवाजेवालेघर बनाने चाहिये ।जैसाकिः—

देवीर्द्वारो वयोधस७ शुचिमिन्द्रमवर्द्धयत् ।
उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्द
सुवनं वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥

मकान बनाने की रीति ।

१-घर की कुर्सी ऊंची हो उस के आगे सहन होना योग्य है। (२) नगर के मार्ग खुले रहैं। ३-एक घर से दूसरा घर कुछ अन्तर होना चाहिये। ४-मकान सम चौरस और उसके द्वार चारों ओर की वायु को अच्छे प्रकार से स्वीकार करते हों, उसके जोड़ और चिनाई दृढ़ हो। ५-उस में एक कमरा स्त्रियों और दूसरा मनुष्यों के निवास का स्थान हो। ६-रसोई बनाने और भोजन पाने के स्थान अलग २ हों, शेष स्थान ऐसे २ हों कि जिन में नाना प्रकार के पदार्थ रक्खे रहैं, एक स्थान मनुष्यों के मिलाप के लिये हो जिस को इस समय में बैठका कहते हैं, और एक अग्निहोत्र का स्थान हो और पास की भूमि सदा शुद्ध बनाये रहे, यदि बाग़ बाग़ीचा हो तो अति उत्तम है, प्रत्येक कमरे की छत ऊंची पाटनी चाहिये, मकान में "रोशनदान" भी अवश्य रखने चाहिये किसी ओर से ऐसी आड़ न हो कि जिसमें सूर्य का प्रकाश न आसके कुयें पक्के उत्तम हों, पाखाने का स्थान कुये से पृथक् और पशुशाला भी अलग हो, इसके उपरान्त नीचे लिखी हुई बातों पर भी सदा ध्यान बनाये रहे कि जिससे वायु में दोष उत्पन्न न हो ॥

(१)-बहुत से मनुष्यों का एक स्थान पर रहना। (२)-घर के निकट मुर्दों का गाड़ना वा जलाना वा अधूरा जलाकर छोड़ना वा घूरे का इकट्ठा रखना। (३)-मुर्दों वा मरेहुये पशुओं का आसपास सड़ना। (४)-दुर्गन्धित वस्तुओं और पाखानों के मैले के उठाने का उत्तम उपाय न करना। (५)-घरका आंगन बाहर की धरतीसे नीचे में हो। (६)-छत्तों पर पाखाना जाना। (७)-आंगन ऐसा न हो कि जिसमें पानी भरा रहे या उसके आसपास पानी इकट्ठा रहे। (८)-चमार, रंगसाज, छीपी, कसाई आदि के घर निकट न होने चाहियें ॥

प्यारी बहिनो इस समय गृहों के निकट वा आस पास बाग़ों वा फुलवाड़ियों का होना अति ही कठिन होगया है क्योंकि मकानों की

बनावट उत्तम रीति पर नहीं है इस के उपरान्त सामान्य जनों के पास इतना धन भी नहीं है जो इस रीति पर इस समय पूरा काम चला सकें कि जिस के न होने से बहुत प्रकार की हानि हो रही हैं क्योंकि जीवधारी वायु में इस रीति से रहते हैं जैसे पानी में मछलियां, क्या उनकी कुदशा होजाती है, जी को चैन नहीं आता, उदासी छा जाती है, अन्त में तड़प २ कर अपने प्राणों को त्याग देती हैं यदि पानी से निकाली जावें, उसी भांति मनुष्यों को वायु न मिले तो प्राण निकलजाते हैं देखो वायु हमारे जीवन का मूल है अन्न को त्याग कर एक दो दिन जी भी सक्ते हैं परन्तु विना वायु के पलमात्र जीना कठिन है और अशुद्ध वायु के सेवन से नाना रोग होजाते हैं सो वर्त्तमान समय में हमारे गृहों में छोटे २ हरे पौदे और फुलवाड़ी के दर्शन तक नहीं होते, हे युवतियो ! यह हरे पौदे नाना भांति के पुष्पों से सुशोभित केवल नेत्रों को तरावट ही नहीं देते वरन हमारे अपान प्राण के लिये भी बड़े गुणदायक हैं, क्योंकि यह पौदे यथाशक्ति अशुद्ध पवन को खैंच लेते हैं, उस के बदले कलियां पुष्प और स्वच्छ पवन का हमें दान देते हैं, कोमल २ पत्तियां चित्त को हरती हैं, हमारी समझ में स्त्री पुरुषों, पुत्र पुत्रियों आदि के मनरञ्जन और चित्तविलास के अर्थ गृह में छोटी २ क्यारियां बनाने, हरे हरे पौदों को जल से सींचने, और नये २ पत्ते और नरम २ कोपलों तथा शोभायमान पुष्पों के दर्शन से अधिक कोई काम नहीं, विशेष कर आर्य सुजनों के गृह में तो अवश्यमेव होना आवश्यक है कि जिनके पालन पोषण के अर्थ किसी बात की चिन्ता नहीं करनी पड़ती क्योंकि उनका आधार और जीवन मूल निर्मल जल और कभी २ गुड़ाई करनी पड़ती है सो दोनों कार्यों को छोटे से छोटा बच्चा करसकता है।

प्यारी बहिनो प्रतिदिन अग्निकुण्ड से होम के समय सुगन्धित पदार्थों का धुआं हमारी इस छोटी सी पुष्पावली के हरे २ पत्तों और रमणीक फूलों को चूंसता हुआ शनैः श्वांस लेकर यह सुगन्धित धुआं उठता हुआ किस आर्य को प्यारा न लगेगा, किसकी अभिलाषा न होगी, और पुष्पावली से होम का योग अवलोकन कर किसको आ-

नन्द न होगा ? अन्य देश के निवासी अपने गृहों में बेल बूटे कैसी रुचि के साथ रखते हैं और आप पानी देते अथवा देख भाल करते हैं कि जिसके कारण प्रत्येक गृह फूलों का उपवन दृष्टि आता है, यदि हमारे तुम्हारे घरों में सहन नहीं है तो मिट्टी के गमले इसको अच्छे प्रकार से पूरा करसकते हैं और बांस की खपचों पर बेलोंको चढ़ा सकते हैं, मुख्य प्रयोजन यह है कि मन से ऐसी बातों का विचार होगा तो सब वस्तु मिल सकती हैं।

प्राचीन कालमें हमारे पुरुष बेलबूटों से कैसा स्नेह रखते थे, पुराने ग्रन्थ राजाओं के महलों से लेकर ऋषियों की कुटियों तक के वर्णन सुनने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि यह सब इन्ही पुष्पों और बेल बूटों के आनन्द से जीवन सुफल करते थे, इस बात की साक्षी के लिये बंगदेश पर दृष्टि डालिये तो स्पष्ट प्रकट होता है और प्राचीन समय का अच्छे प्रकार स्मरण कराता है, क्योंकि वहां कोई घर ऐसा न होगा कि जहां हरे २ खजूर और नारियल के वृक्ष तथा केले के स्तम्भ न लहलहाते हों।

इसके उपरान्त विशेष वृक्ष और बेलों से विशेष लाभभी होता है, जैसा कि तुलसी के वृक्ष को घर में रखने से बड़ा लाभ होता है इसी कारण हमारे पूर्वजों ने प्रति गृह में रखने की आज्ञा दी है, चाहे वह कैसा ही छोटा मकान क्यों न हो तुलसी का वृक्ष अवश्य होना चाहिये क्योंकि एक प्रकार की तप जो दुर्गन्धित वायु से उत्पन्न होती है जो बहुधा भारत वासियों को होजाती है, जब यह दुर्गन्धित वायु तुलसी के पत्तों और डालियों में होकर जाता है तो उनका कडुआपन हवा में मिलजाता है कि जिससे वह वायु हानिकारक नहीं रहता कि जिससे पड़ोसियों को भी लाभ होता है।

प्यारी बहिनो इन बातों को विचार बड़ों ने तुलसी के वृक्ष रखने की आज्ञा दी थी, अब मुख्यप्रयोजन को न जानकर तुलसी शालिग्राम का विवाह करते हैं, क्या यह अज्ञानता का कारण नहीं है ?।

प्राचीन समय में स्त्री वा पुरुष दोनों वाटिकाओं में वायु सेवन के लिये भ्रमण करते थे इस समय में निर्लज्जता का दोष उन पर

लगाया जाता है, इसके उपरान्त भूत चुड़ैल के भय से भी स्त्रियां बागों में भ्रमण करने के लिये उद्यत नहीं होतीं, परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वह अपने प्राचीन ग्रन्थों, इतिहासों पर ध्यान नहीं देते-देखिये वाल्मीकीयरामायण में अयोध्या काण्ड के सर्ग ६० श्लोक १३ में लिखा है कि जब सुमन्त जी राम लक्ष्मण सीता जी को छोड़ कर घर लौट आये तो कौशिल्या जीने पूछा कि सीता जी की क्या दशा है, तब सुमन्त जी ने उत्तर दिया कि आप कुछ चिन्ता न करें सीता जी आनन्द से महाराजा रामचन्द्र के साथ वास कर रही हैं, जैसे निर्भय होकर यहां सीता जी फुलवाड़ी में घूमा करती थीं, उसी प्रकार वहां भी निर्जन वन में घूमा करती हैं।

इसके अनन्तर शकुन्तलानाटक में लिखाहै कि शकुन्तला एक वाटिका को अपने हाथों से सींचती थी और हरी २ लता वा पत्ताओं तथा पुष्पों की तरावत देखने के निमित्त सखियों समेत वायु सेवन के अर्थ जाया करती थी, इसलिये हे प्यारी बहिनो तुम भी सीता आदि की इस उत्तम चाल को ग्रहण कर अपने पति के साथ वायु सेवनार्थ जाया करो यदि किसी कारण से ऐसा समय न हो तो अपने ही गृह में अवश्यमेव बेल बूटे छोटी २ क्यारियां बांध कर रखलो प्रतिदिन उनको सींचा करो जिनके लाभ हम ऊपर वर्णन करचुके हैं।

गृहआदि को स्वच्छ रखना।

हे गृहरक्षिणियो गृह को तुम सदाही स्वच्छ बनाये रहो क्योंकि वही गृहनिवासियों को आरोग्य तथा बल बुद्धि आदि का देने वाला है गृह के स्वच्छ रखने का प्रयोजन यह है कि उसकी भीतें किसी प्रकार से मैली न होने पावें बहुधा लड़के लड़कियां कोयले आदि से भीतों पर अनेकान खेल और लकीरें खैंच देते हैं सो कदापि न करने देवे घरके आगे द्वार को भी स्वच्छ रक्खें वहां कूड़ा करकट इकट्ठा न करे और ऐसा भी न करे कि फल खाकर उसके बीज या छिकले जहां के तहां फेंकदें कि जिससे आंगन में मक्खी भिनकने लगें कोई २ स्त्री जहां जी चाहा वहां हाथ पांव मुंह धो स्नान कर पृथ्वी

को भी गीला करदेती हैं कि जिससे दुर्गन्ध आने लगती है जो वायु के साथ पेट से जाकर खांसी सरदी आदि रोग उत्पन्न करदेता है इसलिये कदापि ऐसा न करना चाहिये सम्पूर्ण गृह को सदा देखती भालती रहो ऐसा न हो कि कहीं घूंसने मिट्टी निकाल रक्खी हो कि किसी स्थान पर कुछ पड़ा किसी पर कुछ इस से भी वायु खराव हो जाता है औ उन जगहों में बहुधा जानवर रहने लगते हैं जो कभी कभी खाने पीने की वस्तुओं में घुसजाते हैं कि जिनके खाजाने से अनेक रोग होजाते हैं जिनमें अधिक क्लेश भोगने पड़ते हैं, कभी २ वह छोटे २ जीव बच्चों के ऊपर चढ़जाते कि जिसके कारण उनकी नींद जाती रहती है तथा अनेक प्रकार से दुःखी होजाते हैं, अतः प्रत्येक वस्तु को जहां की तहां रखदिया करो नहीं तो खटमल पिस्सू उत्पन्न होकर बहुत दुःख करते हैं अतः सदा ध्यान रखना चाहिये कि वर्ष के भीतर दो वार मकान को चूने वा मिट्टी से पुतवा दिया जावे तो अनेकान लाभ होते हैं— प्रथम भीतें उत्तम सुहावनी जान पड़ती हैं, दूसरे देखनेवालों के चित्त को हरती हैं, तीसरे रहनेवालों को उसकी तरावत से प्रफुल्लित वनी रहती है, चौथे जो वायु इकट्ठा होकर घर में आता है उसके दोषों को चूने की तरावत स्वच्छ तथा निर्वल करदेती है कि जिसके कारण गृहनिवासियों के शरीर नैरोग्य वलवान् वने रहते हैं, बहुधा धनाढ्य हजारों रुपये व्यय करके कच्चे तथा पक्के गृह वनवाते हैं परन्तु स्वच्छता पर ध्यान नहीं रखते इस कारण उनको लाभ नहीं होता वरन उपरोक्त दुःख ही सदा दुःखी वनाये रहते हैं।

अनेकान जन घर के द्वारों अर्थात् चौतरों पर गाय भैंस आदि पशु बांधते वा छोटे बच्चे खोद खाद कर विगाड़ देते अथवा उनका गोवर पेशाव वहीं दिन भर पड़ा रहता है और मोरियों के चहवच्चों में वहुत दिनों तक पानी भरा रहता है जिससे सड़ांध पैदा होकर गृह में मार्ग के चलनेवालों को नाना क्लेश देती है, अतः दूसरे, तीसरे वा चौथे दिन भंगी से पानी से धुलवा देना चाहिये और इन मोरियों को पक्का वनवा देना योग्य है।

इस उपरोक्त कथन से प्रकट है कि मकान कच्चा हो या पक्का, जब तक स्वच्छ न रहेगा कुछ लाभ न होगा, अतः स्वच्छता पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये, कहीं २ ऐसा देखागया है कि बहुधा स्त्री जन अपने गृह को तो स्वच्छ बनाये रखती हैं परन्तु आने जाने के मार्ग पर कुछ ध्यान नहीं देतीं इस कारण उनको पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होते, इस हेतु से सम्पूर्ण गृह और उसके आस पास पूर्ण प्रकार से स्वच्छता पर दृष्टि बनाये रहे।

यह भी स्मरण रखना योग्य है कि मकान चाहे कच्चा ही हो परन्तु पाखाने के कदमचे तथा मोरी अवश्य ही पक्की होनी चाहिये और दोनों को चौथे पाचवें दिन अच्छे पानी से साफ करादेना चाहिये, मोरी के खराब पानी को भङ्गी आदि से भरवाकर शहर के बाहर खेतों में फिकवा देना चाहिये जैसा कि वर्त्तमान समय में इसके लिये भङ्गी नौकर हैं, बहुधा स्त्रियां मोरी की डाट खोलदेती हैं कि जिस कारण वह दुर्गन्धित पानी मार्ग में फैलजाता है बहुधा स्त्री उस पानी को दरवाजों के सम्मुख छिड़कवा देती हैं, इन दोनों सूरतों में वायु मलिन होजाता है कि जिससे निवासियों के सिवाय मार्ग के चलने वालों को भी हानि होती और दरवाजों की शोभा बिगड़ जाती है और यह भी प्रकट रहे कि पाखाने तथा मोरी दोनों को सदा स्वच्छ कराते रहें, अथवा सम्पूर्ण गृहजन कूड़ा करकट तथा आने जाने के मार्ग आदि मलिन वस्तु को झाड़ बुहार इकट्ठा कर प्रतिदिन उठवा देना योग्य है, बहुधा गृहों में ऐसा पाया जाता है कि खा पी कर पत्तल आदि को चौक वा द्वार पर फेंक देते हैं वह भी हवा खराब करते हैं यदि यह दुर्गन्धित वायु सिर की ओर चला जावे तो सिर दर्द उत्पन्न करदेता है, भूक कम होजाती है, इसी वायु के अधिक खराब होने से हैज़ा विशूचिका आदि रोग उत्पन्न होकर सैकड़ों मनुष्यों को मारडालते हैं इन बातों के उपरान्त जब किसी गृह में कोई मनुष्य बीमार होता है तो दवाई तो बड़े जोर शोर से करते हैं परन्तु उस समय उसकी स्वच्छता पर ध्यान नहीं रखते कि जिससे बीमारी बढ़ कर असाध्य होजाती है बहुधा तो अपने प्राण को अर्पण करदेते हैं

और जो जीते जागते बाक़ी बचजाते हैं वह भी नाना भांति के क्लेश भोगते हैं, सैकड़ों रुपये हकीमों तथा अत्तारों के भेंटकर व्योपार आदि को खोते हैं, सम्पूर्ण गृह निवासियों को दुःख सहन करने पड़ते हैं, अतः हे सुजन स्त्रियो जिस मलिनता के कारण तुम्हारे घरों में प्रतिदिन बीमारी बनी रहती है उसको कभी गृह में न रहने दो अर्थात् स्वच्छता को कि जिससे बल बुद्धि आयु आदि सुख मिलते हैं तथा अपने गृह का हार बनाकर सदा दृष्टि डालती रहो।

इसके अनन्तर प्रतिवर्ष मकान की मरम्मत न होगी तो मकान टूट फूट कर खराब होजायगा फिर वह गिर भी पड़ेगा तो पुनः बनवाने में बहुत खर्च होगा, तथा उसकी स्वच्छता से भी कुछ लाभ न होगा, अतः टूटे फूटे को सदा बनवाते रहना चाहिये यदि चूना नहो तो मिट्टी ही से पुतवादेना चाहिये, वार २ घरकी धरती वा आंगन को लीपने से सील के कारण रोग उत्पन्न होजाते हैं अतः आठवें वा पन्द्रहवें दिन इस कार्य को करें, अथवा लीपने की मिट्टी में गोवर कम डालना चाहिये इसके अतिरिक्त प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम घर के दरवाजों और खिड़कियों आदि को खोल देना योग्य है कि जिससे रात का दुर्गन्धित वायु निकल जावे और प्रातःकाल का जीवन मूल वायु आजावे।

सूचना।

निम्न लिखित कर्म प्रतिदिन वा चौथे वा आठवें दिन
दिन के प्रथम भाग में करना चाहिये—

क्षौर।

हजामत बनवाने से प्रकाश और शोभा जान पड़ती है दरिद्रता का नाश होकर आरोग्यता बनी रहती है, क्योंकि सिर तथा मुख के वाल बनजाने से छिद्र खुल जाते हैं जिससे खराब परमाणु निकलते रहते तथा उत्तम वायु जाता रहता है।

बहुधा हमारे भाई इंगलेंडियों की भांति सम्पूर्ण सिर पर बाल रखाते हैं, परन्तु यह नहीं सोचते कि वह सर्द देश के रहने वाले हैं

उनके लिये यह रीति उत्तम है, एतद्देश वालों के लिये श्रेष्ठ नहीं क्योंकि यह देश गर्म है यदि ऐसा हो तो सिर के बीच में तालू थोड़ा सा खुलवालेना अभीष्ट है ।

जो लोग महीनों में हजामत बनवाते हैं यह अज्ञानता का कारण है क्योंकि विना आठवें दिन हजामत बनवाये हुए आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है अतः कदापि एक पैसे का लोभ न करे, समस्त कार्य्यों को छोड़ इस काम को भी आठवें दिन करना योग्य है ।

उबटन ।

उबटन लगाने से धातु तथा लोहू की वृद्धि होती है शरीर की त्वचा नरम मुख में कान्ति तथा दृष्टि में तीव्रता होती है, विशेष तात्पर्य यह है कि इस काम से शरीर की शोभा बढ़ती है ।

तैल ।

प्रतिदिन सम्पूर्ण शरीर में तेल लगाने से शरीर पुष्ट होता है बल की वृद्धि होती, सुख मिलता, नीद आती चमड़े की रङ्गत कोमल होजाती, वायु कफ तथा श्रम का खेद नाश होजाता है, विशेषकर कान और तलवे में अधिक तेल लगाना उचित है इससे बाल कोमल घने काले तथा पुष्ट होते हैं सिर का दर्द जाता है, कान में तेल डालने से कान के समस्त रोग जाते हैं ।

आईना ।

दर्पण के देखने से मङ्गल होता और शोभा बढ़ती है, बार २ देखना योग्य नहीं है ।

जूता ।

जूता पहनने से पावों को बहुत आराम मिलता है अर्थात् कांटा आदि नहीं लगता अशुद्ध वस्तुओं के लगने से पांव बचजाता है कि जिससे बड़े २ दुःख होते हैं इसी से कहाजाता है कि आयु की रक्षा होती है, परन्तु गीले जूते पहनना रोगी बनाता है ।

——०※०——

छाता ।

छाता लगाने से नेत्रों को आनन्द उत्साह सुख मिलता है सिरकी रक्षा होती है ग्रीष्म में धूप से, वर्षा में पानी से, सर्दी में शीत से बचाता है कि जिससे ज्वरादि रोग नहीं होने पाते ।

—※०※—

छड़ी ।

इससे हाथ की शोभा होती है, कुत्ता बिल्ली आदि से बचाती है, भय का नाश होता है ।

—:०:—

पगड़ी ।

पगड़ी पहनने से शोभा, बालों की रक्षा, तथा कफका नाश हो जाता है परन्तु थोड़ी देर तक हलकी पगड़ी सिर पर रखनी चाहिये देर तक धारण करने से पित्त वा नेत्र रोग होता है ।

—※—

गन्धमाला ।

सुगन्धित पुष्पों की माला आदि धारण करने से, पुष्टता, सुगन्धता आयु, बल की वृद्धि होती है मन प्रसन्न रहता है—

—※—

खड़ाऊँ ।

भोजन के पहिले या पीछे खड़ाऊं पहनने से काम, आयु वा नेत्र को हित होता है परन्तु अधिक पहनने से दृष्टि को हानि होती है ।

—※—

लालटेन ।

मनुष्य को उचित है कि यदि अन्धियाली रात में कहीं जाना हो तो लालटेन अवश्य लेले, क्योंकि मार्ग में सर्पादि जन्तुओं अथवा शत्रुओं का भय नहीं होता ।

———

[२--गर्भाधान विधि]

गर्भाधान।

गर्भाधान उस क्रिया को कहते हैं जिससे वीर्य को गर्भाशय में स्थापित करते हैं।

गर्भाधान का समय।

ऋषियों ने १६ वर्ष की स्त्री तथा २५ वर्ष के पुरुष को इस क्रिया के करने की आज्ञा दी है अर्थात् इस अवस्था के पुरुष स्त्री सन्तान उत्पन्न करें, यदि इससे प्रथम इस कार्य को किया जायगा तो गर्भ गिर जायगा अथवा सन्तान होते ही मरजायगी यदि न मरी तो दुर्बलेन्द्रिय होगी, प्रिय सज्जन पुरुषो स्त्री की योनि सन्तान के उत्पन्न करने का खेत है जिस प्रकार किसान अन्नादि के उत्पन्न करने में विचार रखता है उसी भांति वरन उससे भी अधिक सन्तानोत्पत्ति में विचार करना अभीष्ट है जिससे किसी प्रकार की हानि न हो, अर्थात् स्त्री जब तक १६ वार रजोधर्म से शुद्ध न होजावे तब तक बीज बोने अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा न करे यही मनुजी महाराज ने भी कहा है, आज कल इस विचार के त्यागने ही के कारण मनुष्य न्यून बल, निर्बुद्धि अल्पायु, रोगी अथवा नाटे होने लगे हैं।

जब स्त्री १६ वार रजोधर्म से निवृत्त हो, तत्पश्चात् जब स्त्री मासिक धर्म जो स्वाभाविक रीत्यनुसार प्रति मास रजस्वला होती है उस दिन से १६ दिन तक प्रसङ्ग करने की अवधि है ऐसा ही मनुजी ने लिखा है—

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥अ०३ श्लो० ४५॥

इसी को ऋतुकाल कहते हैं।

इन उपरोक्त रात्रियों में से प्रथम चार रात्रियों में कदापि प्रसङ्ग न करे क्योंकि इन रात्रियों में उसके शरीर से एक प्रकार का मलिन

रुधिर निकलता है जो कोई इन रात्रियों में स्त्री प्रसङ्ग करते हैं उनकी बुद्धि, तेज, बल, नेत्र, आयु यह सब हीन होजाते हैं जैसा मनुजी ने लिखा है—

रजसाऽभिप्लुतान्नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥ अ० ४ श्लो० ४१ ॥

इसके अतिरिक्त गर्भ भी नहीं रहता क्योंकि बहते हुए जल में कोई वस्तु नहीं ठहरती इस कारण रजस्वला के साथ प्रसङ्ग करने से वीर्य मिथ्या जाता है अतः इन चारों रात्रियों में स्त्री को अपने पति के दर्शन भी न करना चाहिये, वह कोई कार्य भी न करे, एकान्त में बैठी रहे, शृङ्गार भी न करे, जब रज बन्द होजाय तब स्नान करे, इसी को ऋतुस्नान बोलते हैं ।

यह भी प्रकट रहे कि ऋतुस्नान के पीछे जिस पुरुष का दर्शन करेगी उसको सादृश्य पुत्र की आकृति होगी अतः स्त्री को योग्य है कि अपने पति वा पुत्र अथवा किसी सम्बन्धी को कि जिसकी आकृति उत्तम हो देखे यदि इनका देखना किसी कारण से उचित न हो तो अपनी ही सूरत यदि उत्तम हो तो दर्पण में देखले, या किसी उत्तम आकृति वाले पुरुष की तसवीर मँगाकर देखले, कभी उनकी सूरत का चित्त में ध्यान भी बनाये रहे क्योंकि जिसका चित्त में बार२ ध्यान रहेगा उसका बहुत प्रभाव होगा, अतः उत्तम पुरुषों का ध्यान भी बनाये रहे कि जिससे उत्तम२ मनोहर पुत्र पुत्री उत्पन्न हों, जिस प्रकार से प्रथम की चार रात्रि का त्याग है उसी प्रकार ११ वीं १३ वीं रात्रि तथा अष्टमी, पूर्णमासी, अमावस्या का भी निषेध किया है और शेष रात्रि में ६, ८, १०, १२, १४, १६ में गर्भ रहने से पुत्र, और ७, ९, ११, १३, अथवा १५ में गर्भ रहने से पुत्री होती है क्योंकि इन दिनों स्त्री के वीर्य की अधिकता होती है ।

मुख्य प्रयोजन यह है कि मनुष्य के वीर्य्य अधिक होने से लड़का कम होने से लड़की और दोनों के बराबर होने से नपुंसक तथा दोनों के कम होने पर गर्भ ही नहीं रहता ऐसा ही मनुस्मृति और प्रश्नोपनिषद्, भविष्यपुराण, महाभारत आदि में लिखा है ।

लड़का और लड़की के अर्थ उपरोक्त रात्रियों में एक वार प्रसङ्ग करे और दिन में इस क्रिया को कदापि न करे क्योंकि दिन में प्रकाश तेज और गर्मी अधिक होती है, तथा मैथुन करते समय और भी गर्मी शरीर से निकलती है इस दो प्रकार की उष्णता से प्राणों का निकलना सम्भव है, इसलिये रात्रि में भी दीप जलाकर मैथुन न करना चाहिये।

इसका समय रात्रि में सदा १० या ११ बजे पर प्रसङ्ग करना उचित है जब वीर्यपात का समय निकट आवे तो उस समय दोनों सम हों अर्थात् ठीक नाक के सीध में नाक, मुंह के सम्मुख मुंह इसी प्रकार शरीर के सब अङ्ग समान रहैं, जैसा कि य० अ० १९ मन्त्र ८८ में लिखा है-

मुखꣳ सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन्त्सरस्वती । चप्यन्न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥

उपरोक्त कार्य के समय किसी बात की चिन्ता भी दोनों के चित्त में रहनी अच्छा नहीं प्रसङ्ग के पीछे स्त्री को शीघ्र न उठना चाहिये थोड़ी देर के पीछे गाय के दूध में मिश्री डाल ठण्डाकर दोनों पीवें इससे थकावट जाती रहती है और जितना वीर्य निकलता है उतना ही और बनजाता है इस से किसी प्रकार का क्लेश भी नहीं होता प्रातःकाल यदि शरीर पर उबटन लगा कर स्नान करे और खीर, मिश्री दूध, भात खावे तो अति ही श्रेष्ठ है, देखिये मनुजी महाराज ने लिखा है कि जो मनुष्य अपनी स्त्री से ऋतु के समय में प्रसङ्ग करते हैं वह गृहस्थ ब्रह्मचारी के समान हैं।

निन्द्या स्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ अ० ३ श्लोक ५०

विशेष सूचना-

सन्तान का उत्तम और बलिष्ट होना पति पत्नी के भोजनों पर निर्भर है इस लिये दोनों अपने आत्मा तथा शरीर पुष्टि के लिये बल और बुद्धिवर्धक सर्वौषधि और नियमानुसार उत्तम२ भोजन का सेवन करें जैसा कि पहिले वर्णन होचुका है।

मान्यवरो जैसा कि स्त्री गर्भ समय में अपना आचरण रखती है उसी लक्षण युक्त पुत्र पुत्री भी उत्पन्न होते हैं।

चरक शा० अ० ८ में ये लिखा है कि जो स्त्री गर्भ समय में नित्य दिन को सोती है तथा रात्रि को घूमती है उसके पागल व अपस्मार रोग युक्त सन्तान उत्पन्न होती है, जो नित्य प्रति लड़ती तथा पशुओं की भांति आचरण करती है उसके दुर्बल निर्लज्ज और स्त्री के आधीन रहने वाला पुत्र उत्पन्न होता है, सोच करने वाली के डरपोक, दुर्बल, न्यून आयु वाली, चोरी करने वाली के आलसी, कुकर्मी, धनादि पदार्थों के चाहने वाली के दूसरों को दुःख देनेवाली, ईर्षा करने वाली के अधिक सोने वाली, क्रोधवती के क्रोधी व छली, मद्य पीने वाली के प्यासी व गाफ़िल सन्तान उत्पन्न होती है।

इसलिये इन बातों पर भी ध्यान रहे जिससे कुचाल सन्तान न हो।

गर्भ परीक्षा—

(१) जब स्त्री गर्भवती होती है तो वह ऋतुवती नहीं होती। (२) स्तन का मुंह छोटा होजाता है। (३) नेत्रों के पलक चिमटने लगते हैं। (४) पथ्य भोजन खाने पर भी कै होती है। (५) हाथ पाव भारी जानपड़ते हैं। (६) आलस्य बना रहता है। (७) कभी कभी सिर में दर्द होता है। (८) सोंधी चीजों के खाने को जी चाहता है। (९) स्त्री को प्रसङ्ग करने की इच्छा नहीं रहती।

गर्भवती स्त्री को निम्न लिखित आशय पर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

गर्भवती गर्भ रक्षा के निमित्त शरीर और वस्त्र को शुद्ध बनाये रहे, लाल मिठाई, अति खटाई, लाल मिर्च, भङ्ग, गांजा, आदि किसी प्रकार का नशा न पीना चाहिये, बासी व सूखे भोजन से सदा बचे, दूध, घी, मिष्ठान्न, दही, गेहूं, चावल, मूंग, आदि अन्न, पालक, तुरई आदि पुष्टिकारक शाक भक्षण करे, जिसमें ऋतु २ के मसाले भी पड़े हों, सोमलता और गुरुचादि औषधि के रस पान का भी यथारुचि अभ्यास करे, सवारी पर न चढ़े और न मल मूत्र को रोके।

जब कमर और कूले में दर्द होना, खून आना, दूध का निकलना गर्भाशय में दर्द होना, यह सब चिह्न गर्भपात के हैं, उस समय कहरुआ मोती, और याकूत को कमर में बांधने से गर्भ पात नहीं होता।

आसन्नप्रसवा के लक्षण–

हृदय और उसके नीचे बायें दोनों ओर ढीले हों, यदि जांघ कमर पीठ में दर्द हो और बारम्बार मल मूत्र का त्याग हो तो उस समय जानना चाहिये कि अब शीघ्र प्रसव होगा।

व्यथायुत गर्भिणी उपचार।

(१) शरीर में तेल लगाकर गर्म पानी से स्नान कर थोड़ी सी मूंग की खिचड़ी खाकर कोमल तकिये और बिछौने के पलंग लर उत्तान दोनों जाघ फैलाकर बैठे (२) गर्म दूध या गर्म पानी पीवे (३) तीनमासे सौंफ़ गायका घी पावसेर एकसेर पानी में औटावे जब पानी जलजावे तो गुनगुना पिलावे अथवा काले सांप की केंचुली और मैनफल का चूरण बनाकर उसका धुंआं गर्भद्वार को दें। (४) पोई के पत्ते और जड़ पीस कर और तिलका तेल मिलाकर गर्भद्वार पर रक्खे। (५) पीपल वा वच पानी में पीसकर गर्मकर अंडी का तेल मिला नाभिपर लेप करे। (६) चोया और साबुन की बत्ती बनाकर लगावे। (७) चुम्बक पत्थर को जांघ से बांधे।

(८) किसी हुलास से छींकले वा हीरे की कनी अपने पास रक्खें तो बच्चा शीघ्र होजाता है कुछ क्लेश नहीं होता।

दाई।

तरुण, रोग रहित, अङ्गहीन और कुरूप न हो, नशे आदि न पीती हो, बुरे आचरण की न हो, अपने कार्य में निपुण निर्भय तथा चतुर हो।

प्रसूता के रहने का स्थान।

लम्बा चौड़ा हो, पृथ्वी चौरस हो, स्वच्छ और मनोहर हो, वह पहिले से लि वा पुतवा दिया जावे।

प्रसूता की रक्षा के लिये जब बालक का जन्म होजावे उसके तीन दिन के पीछे अन्न न देना चाहिये, यदि प्रसूता को ज्वरादि हो तो वैद्य या डाक्टर या हकीम की सम्मत्यनुसार उसकी दवा करनी योग्य है, ठण्डा पानी न देना चाहिये, शरद् ऋतु में २ सेर पानी १५ मुनक्के और १० पान डालकर जब छठा भाग रहजावे तो उसको ठण्डा कर पिलावे, इसी भांति ग्रीष्म में ७ पान २० मुनक्के तथा ६ माशे खरबूजे के बीज की मींगी डालकर औटाकर जब चौथाई रहजावे ठण्डा कर पिलावे चार दिन तक इसी भांति दे पीछे कोमल भोजन मूंग की दालादि देना उचित है और अजवाइन सोंठि मेवादि का जो हरीरा दियाजाता है उसके स्थान पर श्रीयुत मुनिवर अश्विनीकुमार ने प्रसूता स्त्रियों के लिये उत्तम पाक सुहागसोंठि कही है उसको खिलाना अभीष्ट है, इसके उपरान्त छः माह तक स्त्री से समागम न करना चाहिये तथा जो नियम गर्भरक्षा के समय बताये गये हैं उनका पूरा २ ध्यान रखना योग्य है॥

सुहाग सोंठि।

सोंठि विदारा १॥ पाव बकरी का दूध ५ सेर गायका घी १ पाव चीनी सफेद २॥ सेर दाल चीनी १॥ तोला तेजपात १ तोला छोटी इलायची २ तोला नागकेसर १॥ तोला धनियां १॥ तोला सफेद जीरा १॥ तोला स्याह जीरा १ तोला सोंफ १। तोला अकरकरहा १॥ तोला जावित्री १ तोला विधारा १। तोला कमलगट्टे की गिरी १॥ तोला त्रिफला २ तोला कङ्कोल १॥ तोला अजमोद १ तोला मुनक्का एक छटांक, वरिआरा की जड़ २ तोला पीपरामूल १ तोला चाय १ तोला चीता १ तोला नागरमोथा १॥ तोला खस तोला नागोरी असगन्ध २ तोला सफेद चन्दन १ तोला काला चन्दन तोला लौंग १॥ तोला सनाय २२ तोला सफेद मूसली तोला सोंठ तोला पीपल तोला मिर्च १॥ तोला जायफल १। तोला किसमिस छटांक अखरोट छटांक बादाम पिस्ता एक २ पाव।

(बनाने की विधि)

दूध को कढ़ाई में औटावे जब अधौटा होजावे तब सोंठि को कपड़छन कर उसको दूध में डालकर उसका खोया करले, फिर कढ़ाई में घी को चढ़ावे जब अच्छे प्रकार गर्म होजावे तब उसमें खोया को डालकर भूनले फिर कढ़ाई को साफ कर चीनी की चासनी बना ले, फिर उसमें सब दवाओं को कूट पीस छानकर और सब मेवाओं को कतरकर डाले और खोया को भी उसी में छोड़ दे, पुनः इन सब को अच्छे प्रकार मिलाकर आधी २ छटांक के लड्डू बनाले, प्रातःकाल और सायङ्काल बल के अनुसार लड्डू खाकर गाय का दूध मिश्री मिलाकर पीये।

प्यारी बहिनो मैंने इस पाक की अच्छे प्रकार परीक्षा की है यह यथावत् लाभ देता है।

सूचना।

बहुधा हमारे प्यारे भाई बहिन पुत्री के उत्पन्न होने की भनक कान में पड़ते ही उदास होजाते हैं और जैसा लड़का उत्पन्न होने के समय प्रसन्न होकर धूम धाम करते उसका एक अंश भी आनन्द नहीं मानते, इसी प्रकार उसके लालन पालन में भी पूरा ध्यान नहीं करते, यह बड़ी अज्ञानता व मूर्खता की बात है, क्योंकि लड़का और लड़की एक ही पेट व आत्मा से पैदा होते हैं और एक ही कार्य के सिद्ध करने के अर्थ उत्पन्न होते हैं, और भूक, प्यास, जन्म, मरण, बल, बुद्धि इन्द्रियां भी दोनों के एक समान होतीं हैं।

इसके पश्चात् यदि उन भाई बहिनों के विचारानुसार सब के यहां लड़के ही उत्पन्न हों तो बतलाइये फिर इस सृष्टि की वृद्धि विना स्त्री किस प्रकार सम्भव है, वरन संसार ही न होता अर्थात् हम आप ही न होते, देखिये पुत्रियों के कारण राजा दक्ष को प्रजापति की पदवी मिली थी, इसके पश्चात् पुत्रियों के कारण बहुत से राजाओं ने प्रतिष्ठा और मान को पाया और चहुंओर प्रसिद्ध होगये और आज तक उन के नाम चले आते हैं, जैसा द्रौपदी के कारण राजा द्रुपद, और जानकी के कारण राजा जनक आदि सज्जनों के नाम लिये जाते हैं, इन सब

बातों के अनन्तर लड़के से एक कुटुम्ब की प्रतिष्ठा होती है, और पुत्री से दोनों कुलों की शोभा होती है, और सदा से लड़की के अर्थ सुर मुनि ऋषि राजा आदि चाहना करते रहे, और इन्हीं पुत्रियों के कारण बड़े २ स्वयंवर रचे जाते थे कि जिनमें बड़ी २ दूरके राजा महाराजा, सुजन, साहूकार, विद्वान्, गुणी योग्य पुरुष इकट्ठे होते थे क्योंकि इन्हीं पुत्रियों से नाना प्रकार के रत्नरूपी मनुष्य उत्पन्न होते हैं कि जो संसार के उपकारार्थ नाना प्रकार की युक्ति निकालते हैं, देखिये एक महात्मा का वचन है—

दोहा ।

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान ।
नारी से नर ऊपजे, ध्रुव प्रहलाद समान ॥

इसी कारण मनुजी महाराज ने लिखा है कि जो मनुष्य स्त्रियों का नाना प्रकार सत्कार कर उसको उत्पन्न करते हैं, उनको सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं ।

इस उपरोक्त कथन से स्पष्ट प्रकट है कि यदि स्त्रियां न होतीं तो यह हमारे ऋषि, मुनि, महात्मा, गुणी राजा प्रजा कहां से होते, क्योंकि जब खेत ही नहीं तो बीज कहां बोया जायगा फिर फल कहां से आवेंगे, इसलिये इस अज्ञानता को अपने २ मन से दूर करदेना योग्य है।

शिशुपालन ।

प्रकट हो कि बालकों की अवस्था के शिशुकुमार किशोर यह तीन भाग हैं, जिन में से शिशु जन्म से दो वर्ष पश्चात् जब तक कि दूध के सब दांत न निकल आवें कहाती है, कुमार दांत निकलने के पीछे आठ वर्ष पर्यन्त बोलते हैं, इसके पश्चात् किशोर का आरम्भ होता है जो पन्द्रह वा सोलह वर्ष तक गिनी जाती है ।

जब बालक का जन्म हो तब दाई आदि उसके शरीर का जरायु पृथक् कर मुख नाशिका कर्णादि में से मल को निकाल कर सरसों या जैतून के तैल को सब शरीर पर कोमल हाथों से लगा रुई से पोंछकर रुई वा अन्य बहुत से कपड़े पर सुलाकर नाल को हौले से सूतकर चार

अङ्गुल छोड़कर एक डोरा बांधे फिर उस डोरे से थोड़े अन्तर पर एक और डोरा बांधे, तत्पश्चात् इन दोनों डोरोंके बीच में पैनी छुरी आदि बारीक हथियार से काटले, इसके पीछे जैतून के तैल में कपड़ा भिगो नाल पर रखदे, फिर एक घण्टे के पीछे गुनगुने पानी में दो या तीन मासे खारी नमक डालकर किसी बड़े पात्र में पानी भर उस बालक को कोमल हाथों से अच्छे प्रकार स्नान करावें कि जिससे शरीर पर गर्भ के मैल का अंश भी न रहे, फिर सम्पूर्ण शरीर को स्वच्छ कपड़े से पोंछ ले, और जो साबुन लगाकर स्नान कराना हो तो इस बात का स्मरण रखना योग्य है कि साबुन की छींटें बच्चे की आंखों में न जाने पावें, विना स्नान के मैल रहने से त्वचा में नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, शीतल जल से भी इस समय बच्चे को स्नान न कराना चाहिये नहीं तो बहुधा क्लेश होजाते हैं, तत्पश्चात् गाय के घी में सहत मिलाकर उसमें एक अङ्गुली डुबोकर बच्चे की जीभ पर लगादे, कि जिससे बच्चे के पेट का मल निकल जावे, फिर बालक को ऐसे स्थान पर पालन करना चाहिये जहां बहुत प्रकाश और वायु का बल न हो, वह स्थान सब प्रकार से स्वच्छ और मनोहर हो, फिर बालक को कभी२ हौले२ हिलाना और बाहर का वायु तथा प्रकाश दिखलाना चाहिये, आग या दीपक को ऐसे स्थान पर रखना चाहिये कि जिस पर बच्चे की आंख न पड़े, कि नेत्र रोग होजाने का भय होता है, गर्मी के दिनों में आग को कोठरी में कदापि न रखना चाहिये, और ५ वा ६ दिन तक बच्चे को मा का दूध न पिलाना चाहिये क्योंकि उन दिनों में उसके दूध में एक प्रकार का बुरा रुधिर रहता है, अतः उन दिनों में उत्तम बकरी या गायके दूध में थोड़ा सा पानी डाल गुनगुना कर रुई के फोये से देना उचित है कि जिससे उसके मुंह को किसी प्रकार का क्लेश न हो और बालकको दूध का स्वाद भी मालूम होजाय, ४० दिन तक बच्चे को आठवें दिन स्नान कराना योग्य है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि पानी गुनगुना हो यदि गर्मी के दिन हों तो सन्ध्याके ४ बजे, तथा सरदी के दिनहों तो दिन के १२ बजे जब बच्चा सोकर उठा हो उसके एक घण्टे पीछे स्नान कराना चाहिये, पानी हौले२ थोड़ा २ डालें कि जिससे बच्चा

रोने न पावे, पश्चात् सुपेद कपड़े से पोंछ देना चाहिये, बच्चे को फिर भीगे हाथों से न लेना चाहिये, बहुधा स्त्रियां ऐसा कहती हैं कि शीघ्र २ स्नान कराने से बालकों को सरदी होजाती है सो उनकी यह भूल है, क्योंकि जल से स्वच्छता न होने के कारण शिर में मैल जम जाने से फुंसी निकल आती हैं, इसी भांति गुदा में तथा कान के पीछे मैल जमकर रोग हो बच्चों को नानाप्रकार के क्लेश देते हैं।

जो बालक दो महीने के पीछे दुर्बल ही रहे तो उसके स्नान के पानी में नमक वा सेंधानोन डाल देना चाहिये, कि जिस से बालक बली होजाय, बहुधा देखने में आता है कि माता के बलवान होनेपर भी बालक बलयुक्त नहीं होते, इसका कारण यही है कि उनको दूध पिलाने की उत्तम रीति का ज्ञान नहीं है, बहुधा स्त्री किसी २ दिन तो दिनभर दूध पिलाती रहती हैं और किसी २ दिन दिनभर में दो चार बार पिलाती हैं, ऐसा होने से बच्चों को पेट की बीमारी होजाती है, अतः उनको दूध पिलाने का समय नियत कर देना चाहिये, अर्थात् पहिले महीने में दिन में आठ बार और रात्रि को दो तीन बार पिलाना उचित है, फिर ज्यों २ बालक की आयु बढ़ती जाय त्यों २ दूध पिलाने का समय बढ़ाती जांय और पांच छः महीने के पीछे चार २ घण्टे बाद दूध पिलाया करें, इस प्रकार दूध अच्छी भांति पचजायगा और नियत समय पर भूख भी लगेगी, बहुधा स्त्री बालकों को नींद से जगाकर दूध पिलाने लगतीं या सोते बच्चे के मुंह में स्तन देकर दूध पिलाये जाती हैं, यह भी उनकी भूल है, और अधिक रात्रि जानेपर दूध पिलाना बन्द करदें, अर्थात् ११ बजे रात्रि के दूध पिलाकर सुलादें फिर प्रातःकाल उठाकर पिलायें, ऐसा करने से बच्चों को दो चार दिन तो अवश्यही क्लेश होगा, परन्तु जब थोड़ेही दिनों में स्वभाव पड़जायगा तब यह क्लेश भी जाता रहेगा, इसके उपरान्त रात्रि को माता बच्चे को थोड़ी दूर पर सुलावे कि जिस से वह मनमानता दूध न पीजावे, इसके उपरान्त माता या दाई को दोनों स्तन का दूध पिलाना योग्य है, जो ऐसा नहीं करतीं तो जब कभी उनके स्तन में दूध इकट्ठा हो जाता है तो नाना प्रकार का क्लेश देता है, इसके अतिरिक्त रोटी करने,

चक्की पीसने धान आदि किसी और प्रकार के अधिक परिश्रम करने वा अति क्रोध करने वा भूख को मारने वा उपवास करने वा औंगा-नींदी हो तो उस समय बालक को दूध पिलाना उचित नहीं, क्योंकि ऐसे समयों पर दूध विकारी होजाता है, जिसके पीने से नाना प्रकार के रोग होजाते हैं, और जब सामने के दो दांत निकल आवें तब माता के दूध के उपरान्त साबूदाना वा पुराने चावल का भात दूध के साथ देना योग्य है और जब सम्पूर्ण दांत निकल आवें तब माता का दूध बालक को न पिलाना चाहिये, यदि किसी कारण से माता के स्तन में दूध न हो वा ज्वरादि बीमारी रहती हों तो उसका दूध बालक को न पिलाना चाहिये, उस समय किसी अन्य स्त्री वा दाई का दूध पिलाना योग्य है, यदि इसकी सामर्थ्य न हो तो गाय वा बकरी के दूध को जिसमें थोड़ा पानी पड़ा हो, दूध पिलानेवाली शीशीसे पिलाना उचित है, जो बिसातियों के पास आठ आने को मिलती है, और ज्यों २ बालक की उमर बढ़ती जाय त्यों २ पानी का भाग कम करते जायं, पानी इसलिये डालाजाता है कि दुग्ध पतला होकर शीघ्र पचजाय।

प्रकट हो कि जब बच्चा छः या सात मास का होजाता है तो उस को संसारी भोजनों की आवश्यकता होती है इसलिये दाल भात रोटी आदि भी थोड़ा सा खिलाने की टेव डालें और पुराने चावलों का भात दूध के साथ बच्चों को खिलाने से बहुत लाभ होता है, बहुधा स्त्रियां अधिक खिलाने से मोटा होना जानती हैं यह भी मूर्खता की बात है क्योंकि बिना पचे पर भोजन कराने से उसके स्वास्थ्य में अन्तर पड़जाता है तथा पेट निकल आता है कि जिससे वह देखने में भी बुरे जान पड़ते हैं इसलिये रातभर में तीन चार वार नियत समयों पर थोड़ा २ खिलाना योग्य है और यह भी स्मरण रहे कि जब तक बालक दश वर्ष का न होजाय तब तक बिना दूध के भोजन न कराना चाहिये।

वस्त्र पहिनाने के विषय में—

भारत की अनपढ़ी स्त्रियां बच्चे को होते ही शिर से पैर तक ऐसा ढांपती हैं कि जिसका कुछ ठीक नहीं, गर्मी के दिनों में रुई वा ऊन

पश्मीना के टोपे पहिनाती हैं जिनसे हानि के सिवाय लाभ कुछ भी नहीं होता, हां फुलालैन वा अन्य किसी कपड़े से बांध देना अच्छा है परन्तु कसकर न बांधना चाहिये क्योंकि अन्तड़ी का काम ठीक नहीं होता कि जिससे नाना प्रकार के रोग होजाते हैं और सदा एक नरम बारीक कपड़े से ढांके रहना चाहिये कि जिससे मक्खी आदि कुछ क्लेश न देसकें, हवा का कुछ प्रभाव न हो परन्तु नाक कान मुख नेत्र सदा खुले रहें, जब कपड़े पेशाब आदि से भीग जावें तो तुरन्त उतार देना चाहिये, तथा उसके स्थान पर स्वच्छ वस्त्र पहिना देना योग्य है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि कपड़े इतने ढीले न हों जो बालक के हाथ पांव हिलाने से फंस जायं वा ऐसे तङ्ग भी न हों जो उन की बाढ़ को रोकें, जाड़े के दिनों में रुई या ऊन के वस्त्र पहिनाना चाहिये परन्तु गर्मी के दिनों में शिर को रुई वा ऊन पश्मीने की टोपी आदि से न ढांपना चाहिये, वरन इन दिनों में बारीक सफेद कपड़े की टोपी पहिनाना योग्य है, पर नङ्गा रखना उचित नहीं, वस्त्रों को चौथे पांचवें दिन उतार कर अच्छे वस्त्र पहिनाना चाहिये क्योंकि स्वच्छता से परम सुख होते हैं, जाड़े के दिनों में बच्चे को पाजामा भी पहिना देना उचित है।

नींद—

बच्चे और उसकी माता वा दाई को सदा नींद भर सोना उचित है क्योंकि उनको थकावट अधिक होती है इसलिये यदि वह अधिक न सोवेंगे तो दोनों को हानि होगी, सोते हुए बच्चों को दूध पिलाने या और किसी कारण से उठाना भला नहीं, जो वह जाग पड़े तो उठालेना योग्य है न कि चारपाई पर पड़े रहने दें, इसके उपरान्त दोनों को सायङ्काल से सो रहना अच्छा है कि जिससे प्रातःकाल उठने का स्वभाव पड़जावे, क्योंकि प्रातःकाल जागना भला है, इसके उपरान्त चारपाई बहुत तनी हुई न हो तथा बिछौना नरम और स्वच्छ हो, और छोटे बच्चों को धरती वा तख्त पर न सुलावें, इस विषय में बहुधा

वैद्यों का यह कथन है कि पहिले कुछ हफ़्तों में रात दिन सोने दें और जाग उठे तो उसको उठाकर दूध पिलादें जब कुछ बड़ा होजावे तो कुछ थोड़ासा जगावें जब कई महीने का होजाय तो दिन के सोने की टेंव को धीरे २ दूर करदें, कभी २ बच्चों को खाट या खटोले पर कि जिस पर स्वच्छ बिछौना बिछा हो उस पर उत्तान अर्थात् चित्त लिटा दिया करें, तब देखिये बच्चा कैसी किलोलें करता व हँस २ कर हाथ पांव चलाता है कि जिससे उसकी पीठ की रीढ़ व हाथ पांव बलवान होते हैं तथा भोजन पचजाता है, सोते हुए बच्चों को जगाने से अनेकान बीमारियों के उपरान्त बच्चा सारे दिन रोरो कर काटता है इस कारण जहां वह सोता हो किसी प्रकार की चिल्लाहट न करनी चाहिये, अनेकान स्त्रियां सोते हुए बच्चे की मिठियां लेतीं हैं सो यह भी अनुचित है, बहुधा स्त्री सोने के अर्थ अफ़यून खिला देती हैं कि जिससे उनका स्वभाव बिगड़ जाता है जिससे नाना प्रकार की हानि होती है तथा अधिक खिलाने से मरण भी होजाता है जैसा कि मेरा भाई मरगया कि जिसका मुझको अपनी माता ही पर अफ़सोस आता है, इस कारण हे प्यारी बहिनो अफ़यून खिलाने की टेव न डालो।

हवा खिलाना—

यह बात देखने में आती है कि जब बच्चा उत्पन्न होता है तो दिल तथा फेफड़ा अपना कार्य तुरन्त करने लगजाते हैं, शेष अपने २ समय पर काम करते हैं, अतः फेफड़े की सहायता करनी आवश्यक है कि जिससे वह रुधिर को स्वच्छ कर दिल में पहुंचाता रहे कि जिससे सब शरीर का पालन होता है, फेफड़े की सहायता केवल शुद्ध वायु के पहुंचाने से होती है, अतः प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल बच्चों को गोद में लेजाकर किसी स्वच्छ स्थान पर जहां निर्मल, उत्तम आरोग्यदायक वायु हो वहां टहलना चाहिये, यदि कोई पूछे कि कितने दिनों के बालकों को बाहर लेकर हवा खिलानी चाहिये तो यह बात देश काल तथा ऋतु से प्रकट होसकती है, हां गर्मी के दिनों में चार पांच हफ्ते के बालक को घर से बाहर लेजाकर सड़कों पर जहां मनुष्यों के

झुण्ड न हों वायु सेवन कराना चाहिये, और जब चार पांच महीने का बालक होजावे तो निश्चय ही प्रतिदिन स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर अर्थात् हाथ पांव दाबकर गोद में या किसी छोटी सी गाड़ी में बिठलाकर पक्की सड़कों पर वा जहां कहीं सम धरातल हो हवा खिलानी चाहिये, इससे ही बालकों के शरीर आयु बुद्धि बल की वृद्धि होती है, अतः इस कार्य में कदापि ढील न करना चाहिये, यह भी देखिये कि बच्चा बाहर जाने में कैसा प्रसन्न होता है, और जब कुछ बल आजावे तो घोड़े पर सवार कराकर धीरे धीरे चलावे, एक या दो जन साथ रहें और वह पैदल चलने लगे तो उसकी इच्छानुसार पैदल हवा खिलावें, परन्तु यह भी विचार रखना योग्य है कि शरदृऋतु में शिर पांव छाती हाथ सब ढके रहें, वर्षाऋतु में कोई वस्त्र न भीगने पावे गर्मियोंके दिनों में जहां लूह न चलती हो वहां प्रातःकाल ही हवा खिलाना योग्य है।

दांत निकलना—

प्रकट हो कि दांतों के निकलने के समय बच्चों को बड़ी २ कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं, अतः उनकी माताओं को निम्न लिखित चिह्नों से परीक्षा करके उपाय करना चाहिये कि जिससे क्लेश न हो—

(१) मुह से राल गिरती है। (२) मसूड़े गर्म और सुर्ख मालूम होते हैं। (३) बच्चा अपनी उंगलियों को चबाता है। (४) पियास के कारण बारम्बार दूध पीता परन्तु दर्द के कारण शीघ्र छोड़ देता है। (५) कै तथा दस्त भी आने लगते हैं। (६) बच्चा रोता है तथा गाल सुर्ख होजाते हैं।

जब ऐसी हालत हो तो उसी दिन से धीरे २ अन्न के भोजनों को न्यून करना उचित है, व दूध अधिक कर दियाजावे कि उसका पालन दूध ही से होनेलगे, मसूड़ों पर शहद में लोन को मिला कर दूसरे तीसरे दिन मलना चाहिये अथवा मुलेठी कुचल कर बालक के हाथ में देदेना उचित है कि जिसको वह चूसता रहे जिससे दर्द कम होजावे यदि ऐसा करने पर भी दर्द की अधिकता हो तो फिर किसी बुद्धिमान् डाक्टर को बुलाकर मसूड़ों को चिरवा देना उचित है।

दांत निकलने के दिनो में बालक को गर्म टोपी न पहिनाना चाहिये, दूध के दांत तीन चार अथवा सात आठ महीने में निकलने लगते हैं दो वर्ष में सब पूर्ण होजाते हैं, हमारे देश में दांत निकलने के समय नाना प्रकार के रोग होजाने का कारण यह है कि इस देश से स्त्री शिक्षा उठगई हैं, जिससे दांत निकलने के समय बालकों का पूर्ण प्रबन्ध नहीं होता।

पेट का विकार—

यह भी स्मरण रहे कि जब बालक उत्पन्न होकर २४ घण्टे तक मल मूत्र न करे तो तुरन्त चतुर वैद्य यानी हकीम अथवा डाक्टर को अवश्य दिखलाना योग्य है।

बालकों का मल जो आरोग्य रहते हैं पतला तथा हरा होता है, दुर्गन्धि भी अधिक नहीं आती, यदि इसमें कुछ न्यूनाधिक हो तो शीघ्र डाक्टरादि को दिखलाना चाहिये लेकिन यह भी स्मरण रखना योग्य है कि भोजनों के खाने पीने से दुर्गन्ध आने लगता है।

यदि बालक को अजीर्ण हो तो दस्तों की औषधि न दे वरन गुलाब को शहद में मिलाकर देने से आराम होजावेगा, जब कभी उत्तम दशा में बालक को दस्त आने लगें तो बेल के गूदे में मस्तगी देना जरूर है, सदा इस बात को भी याद रक्खो कि कभी कब्ज न होने पावे दूसरे तीसरे दिन निम्नलिखित घूंटी देना योग्य है।

पोदीना ४ रत्ती, सौंफ ४ रत्ती, सोंठ २ रत्ती, मुसव्वर २ रत्ती, अमलतास ४ रत्ती, पलासपापड़ा २ रत्ती, पित्तपापड़ा ४ रत्ती, काला नमक ४ रत्ती।

यह औषधि प्रत्येक ऋतु के लिये लाभ दायक है, परन्तु जब कोई मनुष्य घूंटी लेने को जावे तो प्रत्येक दवा को अलग २ तोलकर देख भाल लेवे, यदि आप न जानता हो तो औरों को दिखलाले, क्योंकि पन्सारी लोग कुछ की कुछ दे देते हैं क्योंकि इस घूंटी की जमा थोड़ी मिलती है परेशानी अधिक होती है, अतः उस घूंटी से कुछ लाभ नहीं होता, वरन उलटी हानि होती है।

शीतला—

सम्पूर्ण बालकों के एक रोग होता है कि जिसके कारण सब शरीर पर छोटी २ फुन्सी या फफोले निकल आते हैं जिसको विस्फोटक तथा माता वा शीतला मसूरिका और मुसलमान लोग चेचक, तथा अंगरेज इस्मालपाक्स अथवा बङ्गदेश वासी बसन्त कहते हैं, यह एक ऐसा दुष्ट रोग है कि जो इस में फंसता है वह मानों मृत्यु से संग्राम करता है, यदि इससे बच गया तो जन्म पाया परन्तु तो भी यादगार के लिये ऐसे चिह्न छोड़ जाती है जो जीवन भर नहीं जाते, बहुधा अङ्ग भङ्ग होकर अन्धे लंगड़े लूले बहिरे होजाते हैं कि जिसके प्रभाव से उनका जीना व्यर्थ होजाता है।

यह रोग गर्भाधान से बालक के शरीर में रहता है क्योंकि जब स्त्री रजस्वला नहीं होतीं और गर्भ रहकर रक्त बन्द होजाता है उस रक्त की गर्मी बालक के पेट में रहती है, जब वह पृथ्वी पर आता है तब समय पाकर अर्थात् विष दूषित वायु के होने पर अपना प्रकाश करता है, जिस प्रकार ऋतु के बदलने पर ज्वरादि रोग फैलते हैं, उसी प्रकार इस रोग का भी स्वभाव जानो, जहां एक को हुआ उसके हेल मेल से अन्य बालकों को भी होजाता है॥

इसे दूर करने के अर्थ पथ्य को ही औषधि माना है, वास्तव में पथ्य ऐसीही वस्तु हैं, क्योंकि पथ्य के न होने से औषधि खाकर भी आरोग्यता नहीं होती, इसलिये प्रथम पथ्य फिर दवा इखिये लोलम्ब-राज ने कहा है—

पथ्येसति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणम्।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणम्॥

अर्थात् पथ्य करने वाले रोगार्त्त पुरुषों को औषधि सेवन से क्या उनका रोग पथ्य से ही विनष्ट होजाता है, इसी प्रकार पथ्य न करने वालों को औषधि सेवन करने से क्या, अपथ्य के कारण किसी औषधि से रोग नष्ट नहीं होता।

प्रकट हो कि इसके दूर करने के अर्थ पथ्य के अतिरिक्त एक ऐसी युक्ति निकाली है कि जिस से इस रोग का भय बिलकुल जाता रहता,

वरन होताही नहीं, यदि हुआ भी तो नाममात्र कोही समझना चाहिये, सचमुच वह युक्ति ही उसकी दवा है, क्योंकि दवा वह है जिसके करने से आरोग्यता हो, वह युक्ति गोधन शीतला का टीका लगाना है, जिस को प्रथम पूर्विये कायस्थ लोग लगाते थे अब उसी युक्तिको हमारी सरकार ने जारी किया कि जिससे यथार्थ में लाभ होता है, परन्तु महान् शोक का कारण है कि बहुधा अज्ञानी जन अपने २ बालकों को इसके लगाने से छिपाते हैं, कोई २ शठ यह भी कहते हैं कि जिस बालक के टीका लगाते समय दूध निकलेगा वह देवता का अवतार है।

कर्त्तव्य—

(१) जिस स्थान पर रोगी को रक्खा जावे वह हवादार तथा स्वच्छ हो। (२) चारपाई पर सफेद विछौना बिछा हो जो मैले होने पर तुरन्त निकाल कर फेंक देना योग्य है। (३) बालक तथा माता को सफेद वा हरे वस्त्र धारण करना योग्य है, वहां कोई मनुष्य सुर्ख वस्त्र धारणकर अथवा पान खाकर वा कोई लाल चीज़ लेकर न जावे, न उसके सम्मुख ऐसी वस्तुओं को रक्खे क्योंकि इन सबकी चमक नेत्रों को हानिदायक है, इसके उपरान्त जबतक रोगी को आराम न हो तबतक छींकादि का ऐसा शब्द न हो जो बालक के कान तक जावे। (४) जो बालक माता का दूध पीता हो तो माता को पथ्य से रहना योग्य है॥

——:※:——

नोट।

प्रकट हो कि उपरोक्त विषय अत्यन्त ही लाभदायक है, इस समय इसपर आन्दोलन करने की आवश्यकता है, अतः हमने इस विषयको पूर्ण रूप से पूराकर पुस्तकाकार में पृथक् प्रकाशित करदिया है, जिन सज्जनों को देखने की आवश्यकता हो ≡) भेजकर मंगालें। जिसका नाम गर्भाधानविधि है।

कुमार और किशोर अवस्था।

जब बालक के दूध के दांत निकल आवें वा बालक बोलने लगे तब सुन्दर वाणी से बड़े छोटे मान्य आदि के सम्भाषण करने बैठने

उठने की रीति आदि की शिक्षा करनी चाहिये जिससे उनका सर्वत्र मान्य होता रहे, वृथा लड़ाई झगड़ा न करने पावें, इसके उपरान्त मिट्टी धूल के खेलादि से भी वर्जित रहें, सदा प्रातःकाल उठाना, पाखाना पेशाब कराना, मुंह हाथ धोना आदि भी बतलाया जावे ॥

प्रकट हो कि सन्तान एक उत्तम धरोहर परमेश्वर जगत् कर्त्ता की है, कि जिसके उत्तरदाता हम माता पिता हैं, और यह ऐसी धरोहर है कि जिसमें गुण विद्या आदि के सीखने की स्वाभाविक प्रकृति है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि सन्तान को हमारे पढ़ाने लिखाने की कुछ आवश्यकता नहीं, इसका उदाहरण रेल के एंजन के समान है, देखो उसमें चलने फिरने बोझ लेजाने की स्वाभाविक प्रकृति है पर जबतक उसकी कलों को घुमाया न जायगा तब तक वह बिलकुल निकम्मा निठल्ला रहेगा, यद्यपि सन्तान में स्वाभाविक शक्ति विद्या ग्रहण आदि की है तथापि जब तक माता पिता उसको भली भांति शिक्षा न करेंगे तबतक उनकी स्वाभाविक प्रकृति घड़ी के पुर्जों की भांति निष्प्रयोजन तथा निष्फल,है इसके उपरान्त सन्तान अतिही प्यारी वस्तु है कि जिससे बढ़कर इस संसार में कोई पदार्थ नहीं, फिर भला कैसे शोक का स्थान है कि ऐसी अमूल्य सन्तान को विद्यारूपी रत्न से जटित न करें, कि जिसके कारण उनको नाना क्लेश भोगने पड़ें तथा माता पिता के नाम पर भी धब्बा आवे, अतः माता पिता को चाहिये कि जब सन्तान ५ वर्ष की होजावे तब प्रथम देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें फिर अन्य देशीय भाषाओं को भी सिखलावें, परन्तु प्रथम अन्य देशीय भाषा न सिखलाना चाहिये, क्योंकि अपनी मातृ-भाषा का निरादर करना अत्यन्त मूर्खता की बात है, इसके प्रथम सीखने से अन्य भाषाओं का सीखना अत्यन्त सुगम होजाता है, इस प्रथा के न रहने से देश भाषा की प्रतिष्ठा प्रतिदिन कम होती जाती है, दूसरी भाषा के शब्द प्रत्येक स्थानों पर बोलने की प्रकृति होजाती है, मातृ-भाषा के शब्दों के बोलने में लज्जा आती है, जैसा कि बहुधा देशी भ्रातृगण नमस्ते नमस्कार वा राम २ आदि के स्थान में सलाम बन्दगी तस्लीमात गुडमार्निङ्ग बोलना अपनी प्रतिष्ठा का कारण समझते हैं,

तथा अपनी सन्तानों को भी ऐसा ही सिखलाते हैं, इसी प्रकार विद्या आरम्भ संस्कार का नाम मक़तब होना या बिस्मिल्लाह होना बोलते हैं।

देशीय बन्धुवर्गों की देखा देखी हमारे पत्रापांडे भी बड़े हर्ष के साथ कहते हैं कि आज हमारे यजमान के लड़के की बिस्मिल्लाह है, धन्य है इनकी बुद्धि को कि फ़ारसी में अलिफ़ के नाम लट्ठा तक नहीं जानते परन्तु खुशामद तथा योग्यता जतलाने के अर्थ विना फ़ारसी बोले कल नहीं पड़ती, इसी कारण हमारी संस्कृत विद्या का भारत से लोप होगया, हमारी सन्तानों को उक्त विद्या की उत्तमता का निश्चय नहीं रहा कि जिससे धर्म में भी नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होगये हैं।

हे प्यारे सुजनो, पहिले संस्कृत विद्या का पढ़ाना योग्य है, फिर अन्य देशीय भाषा पढ़ाना चाहिये, देखो अंगरेज़ प्रथम अंगरेज़ी, मुसलमान अरबी फ़ारसी पढ़ा फिर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं, हमारे देशीय बन्धुगण विपरीत अर्थात् प्रथम अपनी घर की विद्या को जो सब विद्याओं में शिरोमणि है, त्यागन कर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं कि जिससे उनको ओम् के स्थान पर बिस्मिल्लाह रहमान उल्लरहीम तथा ईश्वर के स्थान पर खुदा गाड इत्यादि कहने का स्वभाव पड़जाता है, इसके अनन्तर संस्कृत अथवा देवनागरी के न जानने से अपने धर्म को भी पानी देदेते हैं, अर्थात् बहुधा मुसलमान व ईसाई होजाते हैं, तथा जो इधर उधर के जाने से बच रहते हैं उनके आचरण वेद आदि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध रहते हैं।

प्यारे बन्धुगण! संस्कृत विद्या की ओर ध्यान दो जो सब विद्याओं का कोष है, यह विद्या सृष्टि के आरम्भ से प्रचार हुई इसी में समस्त भूमण्डल के अर्थ परमेश्वर ने सकल विद्याओं का उपदेश किया इसी कारण इसमें प्रत्येक विद्या यथावत् रूप से पाई जाती है, इसका न्याय शास्त्र समस्त देशों के न्यायशास्त्र से बढ़कर है वैद्यकशास्त्र भी अद्वितीय है देखो यूनान वालों ने इस विद्या को अपनी भाषा में उल्था कर कैसा नाम पाया, व्याकरण ऐसा उत्तम है कि जिसकी प्रशंसा सम्पूर्ण जगत् के विद्वान् करते हैं, इसी प्रकार ज्योतिष खगोल गान

शिल्प तत्वविद्या आत्मविद्या आदि इसमें ऐसी २ हैं कि जिनके पारावार का कोई वर्णन नहीं करसकता, सच तो यह है कि इस विद्या के शिरोमणि होने में बहुधा विद्वानों के वचन पायेजाते हैं, यथा इसी सृष्टि के सृजनहार परमेश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसी भांति सम्पूर्ण ज्ञानी महात्मा विद्वान् योग्य इस विद्या की उत्तमता लालित्य तथा श्रेष्ठता योग्यता का दम भरते हैं तथा इसी विद्या को सम्पूर्ण विद्याओं का कोष बतलाते हैं।

अन्य देशीय लोग इस समय इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं, देखिये जर्मनी में कैसा चर्चा है कि जहां वेदों के खण्ड प्रत्येक के पास रहते हैं, ऐसे ही इंगलेंड में मोक्षमूलर इसी विद्या में अद्वितीय प्रसिद्ध हो रहे हैं, निदान जितनी विद्या इस समय अन्य भाषाओं में दीख पड़ती हैं सब इसी से उत्पन्न हुई हैं, डाक्टर हण्टर ने अपनी तारीख में लिखा है कि यह सब भाषाओं की मा है, अर्थात् सब भाषा इसी से उत्पन्न हैं, शोक का स्थान है कि इस परमेश्वरीय विद्या को कि जिससे सम्पूर्ण विद्या हैं, जिसकी अन्य देशीय जन भी ऐसी प्रतिष्ठा और प्रशन्सा करते हैं, हमारे स्वदेशी भाई उसके पठन पाठन की ओर किञ्चित् ध्यान नहीं देते फिर विचारी देवनागरी को कौन पूछता है जैसा पण्डित गङ्गाराम जीने कहा है—

सवैया—

जग जाहिर काव्य शिरोमणि से अब हिन्दके मानो विलाय गये।
यश आगरी नागरी के विरवा सुख सींचत ही मुरझाय गये॥
नागरी धीरज कैसे धरे विधना बुध भाल भुलाय गये।
गुण ग्राहक भारत वासिन के ऋषिराज जू हाय हिराय गये॥

परन्तु प्यारे मित्रो अब गवर्मेण्ट ने तुम्हारे लिये हिन्दी भाषा की उन्नति के अर्थ दर्वाजा खोल दिया है—इस लिये उनको धन्यवाद देते हुए तन मन धनसे नागरी भाषा की उन्नति में लगजाओ और संस्कृत पाठशालायें खोलदो प्यारे मित्रो तुम्हारे देशके कल्याण के यही कारण इन परहैं ध्यान पूर्वक कार्यवाही करो।

उर्दू—

उर्दू भाषा में एक बड़ी हानि यह है कि उर्दू अक्षरों में जैसा लिखा जाता है वैसा ठीक २ पढ़ा नहीं जाता किन्तु लिखा कुछ जाता और पढ़ा कुछ जाता है, नाम गांव ठांव तो कभी किसी से ठीक २ पढ़े ही नहीं जाते, भला कोई निरी उर्दू जानने वाला ऐसा मनुष्य भी है जो संस्कृत और अंगरेजी शब्द उर्दू अक्षरों में लिखे हुए ठीक २ पढ़दे तथा उच्चारण करदे, कोई नहीं एक भी नहीं, देवनागरी में जैसा लिखा जाता है वैसाही पढ़ाजाता है अर्थात् लिखने पढ़ने में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता, इसका कारण यह है कि देवनागरी अक्षरों में १६ स्वर होते हैं, और उर्दू अक्षरों में केवल तीन स्वर हैं, जो १६ स्वर का काम देते हैं, इस कारण एक २ स्वर कई २ प्रकार से उच्चारण होता है, उर्दू की लिखावट नुक़तों पर है, परन्तु सरकारी अदालतों में नुक़ते बहुत कम देते हैं और बहुत से अक्षर एक ही प्रकार के होते हैं, और बहुत से अक्षरों का उच्चारण भी एक ही प्रकार का होता है, जिस प्रकार उर्दू में स्वर थोड़े हैं उसी प्रकार व्यञ्जन भी बहुत थोड़े हैं, इसके उपरान्त दो २ तीन २ अक्षर मिलकर एक अक्षर बनता है, इन कारण बहुधा अदालतों में कुछ का कुछ होजाने पर बड़ी २ कठिनाइयां होती हैं।

इसके उपरान्त उर्दू और फ़ारसी में बहुधा किताबें इश्क़बाज़ी और माशूक़ के ख़तो ख़ाल के प्रशंसा में, और बहुतसी नाचने गाने में और बहुधा दुराचार और व्यभिचारियों के क़िस्से कहानियों में और अनेकान तावीज गण्डे मन्त्र मारण मोहन वशीकरण उच्चाटन में हैं, जैसा इज्जत इश्क़ फरेद इश्क़, बहार इश्क़, मसनवी, जुलेख़ा, मसनवी ग़नीमत, बहारदानिश, इन्दरसभा मदारीलाल और अमानत, लैलामजनू, शीरीफरहाद, गुल्जार नसीम, मसनवी मीरहसन, फिसाने अजायब नैरंगतिलस्म, इन्द्रजाल नक्शसुलेमानी, लज्जतुलनिसा तथा सब दीवानात अथवा वासोख्त, बारहमासे इत्यादि पुस्तकें हैं, जिन में से बहुधा तो मियांजी शौक़िया पढ़ाते हैं, जुलेखा, गनीमत, बहारदानिश का तो क्या कहना यह तो मकतबों में तालीम का कोर्स है कि जिनके पढ़ने से अपने आप उन बालकों तथा नवयुवकों में दुराचार अथवा व्यभिचारादि

अपगुण उत्पन्न होजाते हैं, इस पर तुर्रा यह है कि मियांजी ऐसी ऐसी किताबों के हर एक मिसरे और फिकरे को बड़े हास्यभाव से समझाते हैं, मानों इश्क़ की सूरत खींचकर दिल पर नक्श कर देते हैं कि जिसका यह फल प्रत्यक्ष होरहा है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के नौजवानों में वालकों के साथ कुचेष्टा रण्डीवाजी, शराबखोरी, गोश्तखोरी, स्त्रियों के समान वदन का शृङ्गार करना नाज़ो-अदा से चलना, व बदन का फड़काना नाक भौंहों से कटाक्ष करना, नाचना गाना आदि अपगुण और दुर्व्यसन उत्पन्न होगये कि जिनसे भारत का सत्यानाश होगया और होरहा है।

हे प्यारे सुजनों! प्रथम अपने वालकों को देवनागरी अच्छे प्रकार से पढ़ाओ परन्तु इन्द्रजाल, इन्द्रसभा, बारहमासे आदि जो बुद्धि बल धर्मनाशक पुस्तकें भाषा में भी होगई हैं न दिखलानी चाहिये वरन ऐसी २ खराब पुस्तकों के अपगुण सुनादेना योग्य है कि जिससे उनकी रुचि स्वयं ऐसी अनुचित पुस्तकों के देखने की न हो, फिर यदि उर्दू सिखलाना हो तो करीमा, खालक़वारी, आमदनामा, दस्तूर सिब्नियां, मस्दर फ़यूज, गुलिस्तां, बोस्तां, आदि पढ़ाओ और उपरोक्त प्रकार की पुस्तकों के पास न जाने दो, हे देश के शुभचिन्तको! अब कृपाकर आगे को ऐसी पुस्तकों का बनाना छोड़ दो कि जिससे देशका देश साफ हुआ जाता है, कि जिसका पाप आप के सिर चढ़ता है कि जिसके प्रभाव से आप को जन्म जन्मान्तर में नाना क्लेश भोगने पड़ेंगे।

किञ्चित् ध्यान देकर सुनिये यदि आप को अपना नाम चिरायु करना है तो पूर्वोक्त ऋषि मुनि महात्मादि सत्पुरुषों की भांति देशोपकारक विषयों में अपनी लेखनी को दौड़ाओ जैसा कि इस समय में भी बहुधा सुजन ग्रन्थ रचकर प्रचार कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त पादरी अर्थात् मिशन स्कूलों में भी वालक या वालिकाओं को शिक्षा के निमित्त न भेजना चाहिये क्योंकि वे उन के धर्म कर्म ईसा को खुदा का बेटा मान उसके वसीले से स्वर्ग का जाना उसका कुआरी कन्या से पैदा होना, और शूली देने के तीन दिन पीछे क़बर से उठकर सातवें दिन आसमान पर जाना, गुनहगार का ईसा पर विश्वास लाने ही से गुनाहों से निजात पाना, मुर्दे को मोजिज़े से

जिलाना आंखें देना, इत्यादि ऐसी महा अनर्थ और मिथ्या बातों को नित्यप्रति सुनाते हैं, हमारे प्राचीन सत्य ग्रन्थों अथवा महात्माओं में अनेकान दूषण बताते हैं, जैसा कि वेद को ५००० वा ६००० वर्षका बना हुआ कहना, उसको ईश्वरकृत न मानना, व्यभिचार शराब कायी ना हिंसा करना इत्यादि बातें वेद में बतलाते हैं, उसके उपरान्त राम कृष्ण आदि महापुरुषों और महात्माओं की नाना भांति से निन्दा करते हैं ऐसे विषयों ने सैकड़ों किताबें छपवाकर प्रकाशित की हैं और हर रविवार को बालकों को स्कूलों में बुलाकर नाना भांति के भजन गाकर सुनाते हैं, बाजे बजाते तथा उनको किताबें देते हैं अन्त को दुआ में शामिल करलेते हैं जिसको सण्डे स्कूल कहते हैं क्योंकि क्रिश्चियनों के मतानुसार परमेश्वर ने छः दिन में सब संसार के पदार्थों को रचा और सातवें दिन विश्राम किया अर्थात् थकावट को दूर किया यही कारण है कि हम भी उस दिन आराम करते और दुआ मांगते हैं, तत्पश्चात् खीष्ट मतको सब मतों से श्रेष्ठ बतलाते हैं, प्रत्येक प्रकार से उन्हीं आचारों को उन बालक और बालिकाओं में प्रवेश करने का उपाय करते हैं, अर्थात् क्रिश्चियनों की भांति चलना फिरना कोट पतलून पहिनना, गुडमार्निंग करने आदि का उपदेश करते हैं।

प्यारे पाठकगण अब विचारिये कि इन बातों का भारतपर कैसा असर हुआ है कि जिस से हज़ारों हमारे तुम्हारे भाई ईसाई होगये क्योंकि सत्सङ्ग का अवश्यही प्रभाव होता है, यथा—

दो०—संगतही गुण ऊपजै, संगतही गुण जाय।
बांस फांस औ मीसिरी, एकै भाव विकाय॥

बहुधा पादरी स्कूलों में यां अन्यत्र देशी मिसें गाना गाती तथा अंगरेज़ी बाजा बजाती हैं, ऐसे स्थानों पर बहुत भीड़ इकट्ठी होजाती है उनमें से कोई २ उनकी मीठी आवाज़ सुनकर ऐसे मोहित होजाते हैं कि प्रति दिन ईसाइयों के पास आते जाते तथा उनकी बातचीत सुनते हैं, तब वे लोग नाना प्रकार से भरोसा देते हैं, इधर हमारे भाई बिलकुल बेसुध रहते हैं उधर वह सब प्रकार से मुड़जाते अर्थात्

कृष्टान होजाते हैं, और जिस के साथ हाथ में हाथ मिलाये हुये गली और बाज़ारों में घूमते अथवा होटल में डबल रोटी विसकुट खाते मानों दूसरे पादरी बनजाते हैं ॥

बहुधा ग़रीब लड़कों को कि जिनको शाम तक रोटी मुश्किल से मिलती है उनका वज़ीफ़ा मिशन में करदेते हैं, कि जिससे वह लड़के मदर्सह के समय के अतिरिक्तभी पादरी साहबके बंगले पर आतेजाते हैं, तब उनको समय समय पर थोड़ा २ उपदेश तथा नौकरी आदिका लालच दिखलाते जाते हैं कि जिसके कारण वह कृष्टान होजाते हैं।

प्यारे सुजनो जो बालक उनके फन्दे से बचजाते हैं उनकी चेष्टा अवश्य पलट जाती है, अर्थात् प्रत्यक्ष में ईसाई नहीं होते परन्तु मनसे आचार वही होजातेहैं, अपने वैद्यक धर्मको तुच्छ जानने लगते तथा सन्ध्यादि का नाम भी नहीं लेते, यज्ञोपवीत कराना मिथ्या जानने तथा वेदों को मनुष्य कृत मानने के अनन्तर मांसादि खाने में अति प्रसन्न होते हैं, मेज़ कुर्सी लगाकर कोट पतलून बूट पहन भोजन करना, चुरट पीना इत्यादि बातों से उनके मनका स्वरूपही पलट जाता है ॥

इसके अतिरिक्त बड़े २ नगरों में ईसाई मेमें स्त्रियों में पढ़ाने, तथा मोजे, गुलूबन्द आदि बनाना सिखलाने के अर्थ प्रतिष्ठित २ गृहस्थों के घर में जाती हैं और वहां जाकर प्रत्येक प्रकार से अपना दिली मतलब सिद्ध करने के निमित्त नाना प्रकार के जाल फैलाती हैं, विशेष कर विधवाओं के चित्तों को हरती अर्थात् ईसाइन बनालेती हैं, इस-लिये हे सुजनों इन सब बातों को हानिकारक समझ बन्द कर देना योग्य है। इसके उपरान्त सन्तानों को ऐसी २ बातें सुनाते रहो कि जिससे वह किसी धूर्त्त की बातों में न फंस जावें ॥

आभूषण पहिनाना।

सन्तानों को चांदी सोने के आभूषण न पहिनाना चाहिये, वरन उनकी आत्मा को विद्यादि गुणों से भूषित करना योग्य है कि जिससे उनको समस्त आयु नाना प्रकार के सुख चैन आनन्द मिलते रहें, तत्पश्चात् इन आभूषणों के धारण करने से अभिमानादि दोष उत्पन्न

होजाते हैं कि जिससे बालक गुण ग्रहण करने में मन नहीं लगाते कि जिसके कारण समस्त आयु नाना प्रकार के क्लेश भोगने पड़ते हैं, इस के उपरान्त लालची मनुष्य बहुधा बालकों को मार डालते हैं, जिसके कारण अनेक घरानों के दीपक बुझजाते हैं, तथा अपनी प्यारी सन्तानों के लिये हाथ मलते अथवा कर्म ठोकते रहजाते हैं, यह सब बातें प्रत्यक्ष में देखते दुःख सहते हैं, परन्तु शोक तो इस बात का है कि विना आभूषण पहिनाने के कल नहीं पड़ती, हालां कि हमारी गवर्नमेंट नाना भांति से शिक्षा करती है, परन्तु हमारे देशभाइयों के मन में शेख़ी का भूत ऐसा प्रवेश हुआ है कि इन सब बातों के क्लेश होने पर भी नहीं मानते, सो हे सुजनो इस बुरी रीति को शीघ्र दूर करदो कुछ साहूकारी या बड़प्पन दो चार दश बीस पचास रुपये के आभूषण धारण करने से ही नहीं होता, फिर कौनसा लाभ आभूषणों के धारण करने का है, कि जिसके विना आपको कल नहीं पड़ती, इन सबके अतिरिक्त कलाई तथा पिण्डलियां बलयुक्त नहीं रहतीं, अर्थात्– पतली पड़जाती हैं, जो शोभा को भी कम करदेती हैं ॥

उपरोक्त हानियों के कारण अन्य देशी लोग अपने बालकों को सोने चांदी के आभूषणों से भूषित नहीं करते, क्या वह सब कङ्गाल हैं, अथवा उनको पेट भर रोटी नहीं मिलती, देखलो यही अंगरेज जो हजारों की तनखाह पाते तथा हजारों ही खर्च करते हैं, परन्तु भूषणों का नाम तक नहीं लेते, हां अपनी सन्तानों को विद्या आदि सद्गुणों से अच्छे प्रकार भूषित करते हैं, कि जिसके कारण नाना प्रकार के सुखों को भोगते हैं, अतः यह सब बातें जानकर सोने चांदी के आभूषणों का धारण कराना त्याग दो कि जिसमें नाना प्रकार की हानि है, मुख्य लाड़ यही है कि उनको विद्या आदि गुणों से भूषित कीजिये कि जिससे इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द प्राप्त हो ।

जुआ खेलना–

जुआ खेलना वा लाल मुर्गा आदि का दांव लगाकर तथा शतरञ्ज गञ्जीफा चौसर आदि खेलना भी भला नहीं, क्योंकि जुआ की हार

और जीत दोनों प्यारी होती हैं—जब मनुष्य जीतता है तो लालच में आकर खेलता ही रहता है, यदि हार गया तो जीतने की आशा पर घरवार खोलकर चोरी आदि बुरे काम करने लगजाता है कि जिस के कारण यह जुआ नाना प्रकार के दोष उत्पन्न करता है, देखो पूर्व काल में भी जुआ अर्थात् ताश पत्ते आदि खेलने ही के कारण राजा नल और दमयन्ती को वनवास हुआ, और जुए ने ही युधिष्ठिरादि पाण्डवों को बारह वर्ष वन में अकेला फिराया एक एक दाने को तरसाया, सब चैन आराम को छुड़ाया, जब इस पर भी न रहा गया तब अन्त को युद्ध हुआ जिसके कारण भारत का सत्यानाश होगया, जुआरियों की दशा तो प्रत्यक्ष प्रकट है, कि उनकी क्या २ दुर्दशा हो रही है, तिस पर जुआरी की बात पर कोई भरोसा नहीं करता, जब उनकी हार होती है तो एक रुपये का माल दो आने में देकर नङ्ग बनजाते हैं कि जिसके कारण भूखों मरने लगते तब चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं कि जिसके कारण कारागार भोगते हैं, बदमाशी का तमगा मिलता तथा बाप दादे का नाम डूबता है।

हे पुत्रो! ऐसे कर्मों को तुम कदापि न करो, हमारे देश में इस बुरे कर्म को दिवाली के दिन सब स्त्री पुरुष बालक बालिका बिना रोक टोक के अच्छे प्रकार करते हैं, वाह धन्य है इन भारतवासियों को कि ऐसे बुरे कर्म को त्यौहार के दिन करते हैं कि जिससे यह बुरा कर्म पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता है, और एक दिन सब जुआरी बनजाते हैं, कहते हैं कि कौरव पाण्डव खेले थे, हाय क्याही आश्चर्य्य की बात है कि उन पाण्डव और कौरव के अन्तिम फल पर दृष्टि नहीं डालते कि जिसको मैंने ऊपर वर्णन किया अर्थात् राज्य पाट गया, धन नष्ट हुआ वन २ मारे २ फिरे, अन्त को दोनों में लड़ाई हुई, लाखों महात्मा ज्ञानी मारे गये कि जिससे देश का नाश होगया, अतएव जो ऐसा करेगा उसकी यही दुर्दशा होगी, अतः प्यारे गृहस्थियो यह बुरे कर्म कदापि न करो और सदा अपनी सन्तान को भी शिक्षा करते रहो, इस विषय में मनु जीने लिखा है—

द्यूतकर्म व समाह्वय इनको राजा अपने राज्य में न होनेदे, क्योंकि यह दोनों दोष राज्य का नाश करने वाले हैं।

प्राण रहित पासा आदि से दाव लगा के क्रीड़ा करना "द्यूत" कहाता है, प्राण सहित भेड़ा भैंसा घोड़ा लाल मुर्गा आदि से दाव लगाकर क्रीड़ा करना "समाह्वय" कहाता है।

बड़ा वैर करने वाला द्यूत है, यह पूर्व काल में देखा गया, अतः बुद्धिमान् पुरुष हंसी के अर्थ भी इसका सेवन न करें।

इनके सिवाय शतरञ्ज चौसर गञ्जीफा आदि में समय मिथ्या जाता है और धर्मशास्त्रानुसार भी दोषभागी बनना पड़ता है, इस कारण इनको भी कदापि न करे और न अपनी सन्तान को करने देवे।

पशु और पंक्षी पालन।

य० अ० २४ मं० १३ में उपदेश है कि बैल गाय—ऊंट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कार्य सिद्ध करें और मं० १४ में आज्ञा है कि खेती करने वाले मनुष्य पशुओं से बहुत कार्यसिद्धि करें—इस हेतु विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के जो मार्ग कहे हैं उनको जान कार्य्य करना अभीष्ट है जैसा वेद में कहा है देखो य० अ० १४ मं० १७ इसी प्रकार पक्षिओं के स्वाभाविक गुणों को जान जो कार्य लेते हैं वह बहुश्रुत के समान होते हैं जैसा य०अ० २४ मं० २४ में कहा है कि इस के अतिरिक्त उलटे कार्य करने से नाना भांति की हानि होती है जैसी वर्तमान दशा में हमारे देश में होरही है—कबूतरों को पालकर प्रतिदिन उड़ाते ही उड़ाते आप उड़जाते हैं और मेढों और बटेरों को लड़ाते ही लड़ाते आप लड़कर समाप्त होजाते हैं प्यारे मित्रो वेद में इन के पालन से विचित्र २ गुण प्राप्त करने की आज्ञायें हैं वह अविद्या के कारण सब आपने नष्ट करदीं देखिये मं० २५ में आज्ञा है कि जो मनुष्य अपने २ समय के अनुकूल क्रीडा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जानकर अपने स्वभावको वैसा करते हैं वे बहुत जानने वाले होते हैं और य०अ० २४ मं० १३ में कहा है जो पशुओं से यथावत उपकार लेते हैं वे समर्थ होते हैं इसलिये वेदोक्त आज्ञाओं को जान उनसे अनेकान प्रकार के कार्य्यसिद्ध कीजिये।

इसके उपरान्त मिथ्या खेल और तमाशों से सन्तान को बचाते रहिये क्योंकि मोहचङ्ग बजाने से एक तरफ के मूंछ के बाल उड़जाते हैं और पतङ्ग उड़ाने से लड़कों के चोट आती तथा गिर भी जाते हैं और कभी २ लड़ाई भी होजाती है इसी भांति चकई लेटुआ आदि के फिराने कोभी जानना चाहिये॥

[३-ब्रह्मचर्य]

वीर्य्यरक्षा और विद्याध्ययन का समय।

प्रिय सज्जन पुरुषो "ब्रह्मणे वेदादि विद्यायै चर्य्यते इति ब्रह्मचर्यम् " अर्थात् "ब्रह्म" वेदविद्या को कहते हैं इस लिये जो उसके सीखने का व्रत किया जाता है उसको "ब्रह्मचर्य्य" तथा उस व्रत के पूर्ण करने वालेको "ब्रह्मचारी" कहते हैं, ऐसा ही सनतसुजात मुनि ने महाभारत उद्योगपर्व में कहा है।

यजुर्वेद अ० ११ मं० ३५ में लिखा है कि विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जगत् में दो कर्म निरन्तर करें प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोग रहित बल से युक्त पूर्ण अवस्था वाला, दूसरे विद्या तथा क्रिया की कुशलता से आत्मा का बल अच्छे प्रकार से साधे कि जिससे सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हो कर सब काल में आनन्द भोगें—

सीद होतः स्व उ लोकेचिकित्वान्त्सादया यज्ञं॑ सुकृतस्ययोनौ।
देवा वीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयोधाः॥

ऋग्वेद अ०२।अ०७।व०८।मं०२।अ०३।सू० २७ मं० १० में लिखा है कि विना ब्रह्मचर्य्यधारणकिये कदापि पूर्ण आयु वाले नहीं होते—

य० अ० २१ मं० में लिखा है कि जैसे प्रसिद्ध अग्नि, बिजली, पेट का अग्नि, बड़वानल ये चार और प्राण, इन्द्रियां तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये—

त्वष्टा॑ तुरीपो॒ऽअद्भु॑त इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना।
द्विप॑दा छन्द॑ इन्द्रियमु॒क्षा गौर्न वयो॑ दधुः॥

और य० अ०२९ मं० ४९ में कहा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य, औषधी, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उनके शरीर दृढ होते हैं और जिस प्रकार शरीरों का पृथ्वी आदि का घर है उसी भांति जीव का यह शरीर घर है जैसा कि—

ऋजीते परि वृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥

इसके उपरान्त चार आश्रम चार प्रयोजनों के लिये परमात्मा ने नियत किये हैं उनमें सब से प्रथम ब्रह्मचर्य्य आश्रम विद्या और शिक्षा के ग्रहणार्थ है द्वितीय गृहस्थाश्रम जो धन के सञ्चय और तृतीय वानप्रस्थ तप के अनुष्ठान के और चौथा आश्रम संन्यास लेकर वेदादि विद्या और धर्म के नित्यप्रकाश करने के लिये जैसा य० अ० १२ मं० १८ में कहा है—

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥

इसलिये चारों आश्रमों के यथावत् होने के निमित्त ब्रह्मचर्य्य आश्रम का पूर्णरूप से पालन करना योग्य है ॥

अथर्ववेद का० ११ अनु० ३ व० १५ में लिखा है कि सब जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाला मुख्य ब्रह्मचर्य्य व्रत है इसी से दुःखों की निवृत्ति होती है—

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्य भृतम् ॥

ऐसा ही शतपथ का० ११ प्र० ३ वा० क० २ में व्यास जीने कहा है, कपिल मुनि का वाक्य है कि इसी के बल से मनुष्य ऋषि लोक को जाता है, सनतसुजात का वचन है कि ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वालों को मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा ही मनुजी महाराज ने भी कहा है।

प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि जो मनुष्य बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी रहकर तपस्या करता है उसको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान होजाता है, ऐसेही श्रीकृष्ण महाराज ने गीता के ५ अध्याय के २८ श्लोक में लिखा है कि जो मनुष्य मन बुद्धि से जितेन्द्रिय होते हैं वही जीवन्मुक्त हैं।

भीष्मपितामह ने कहा है कि ब्रह्मचारी को सब लोकों की गति होजाती है, शुकदेव जीने राजा जनक से कहा है कि जिसने ब्रह्मचर्य्य आश्रम में चित्त की शुद्धि की है उसी को अन्य आश्रमों में आनन्द

मिलता है, छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जिस कर्म को कर्मकाण्डी लोग यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य्य ही है, जिसको इष्ट कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य्य ही है, जो वेदोक्त कर्मों को करना चाहें वह भी ब्रह्मचर्य्य है, मौन भी इसी को कहते हैं, पातञ्जलि योगसूत्र में लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य्य से वीर्य लाभ होता है—

"ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः"

मान्यवरो! इसी ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य देवता तथा मुनि होते हैं, यही शरीर का उत्तम तप है, यही अकाल मृत्यु को जीतता है, इसी कारण श्रीकृष्ण महाराज ने सञ्जय से कहा है कि इन्द्र ने देवताओं में उत्तम होने के अर्थ ब्रह्मचर्य व्रत किया था, देखो गौतमस्मृति में लिखा है कि विना ब्रह्मचर्य्य के आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री धनादि का नाश होजाता है जैसा कि—

आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः।
पुण्यं च मत्प्रियत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्य्यया॥

अमृतसिद्ध नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जो ब्रह्मचारी नहीं है उस को कभी सिद्धि नहीं होती वह सदा जन्म मरणादि क्लेशों को भोगता रहता है—

असिद्धं तं विजानीय यान्नरब्रह्मचारिणम्।
जरा मरणसंकीर्णं सर्वक्लेशसमाश्रयन्॥

इसके उपरान्त यह भी लिखा है कि जिस पुरुष के इन्द्रिय द्वारा वीर्य्य चलायमान रहता है उसका चित्त भी सदा चलायमान रहता है—

बिन्दुश्चलति यस्याङ्गे चित्तं तस्यैव चञ्चलम्।

चरक से प्रकट होता है कि पूर्व ऋषिगण इसी रसायन का सेवन कर अपनी आयु को बढ़ाते थे, इसी लिये उन ऋषियों ने वेदानुकूल मनुष्यमात्र के लिये यही उपदेश किया कि यदि तुम को आयु बढ़ाना है तो इसी ब्रह्मचर्य्य का सेवन करो, जैसा कि चर० चि० आ० १ पाद १ में लिखा है—

ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्य्यं चेरुश्चात्यन्तनिश्चयाः ।
रसायनमिदं ब्राह्ममांयुष्कामः प्रयोजयेत् ॥

प्रियवरो ! पूर्ण आयु तथा कल्याण का दाता नीरोगता प्रदान करने वाले मनको प्रफुल्लित रखने वाला सब पुण्यों में उत्तम ब्रह्मचर्य्य ही है जैसा कि चरक में लिखा है–

पुण्यतममायुः प्रकर्षकरं जराव्याधि प्रशमनं।
ऊर्जस्करममृतं शिवं शरण्यमुदातं मतः
श्रोतु मर्हथो पधारयितुम्र प्रकाशयितुञ्च ॥
प्रज्ञानुग्रहार्थमार्षं ब्रह्मचर्य्यम् ॥

सच पूछो तो शरीर में सब खेल धातु अर्थात् मनी रूपी राजाके हैं, जब इसकी उपरोक्त प्रकार से रक्षा नहीं होती फिर भला किस प्रकार शरीररूपी वृक्ष में धर्म काम मोक्षादि फल लग सकते हैं–कदापि नहीं, जिस प्रकार जब सेना का राजा भागजाता है तब उसकी सर्व प्रकार से दुर्दशा होती है, उसी भांति नाक, कान, हाथ, पांव, नेत्र, त्वचा, लिङ्ग,गुदा,जीभ, वाणी-इन दश रिसालों की शरीररूपी सेना से जब वीर्य्यरूपी राजा निकल जाता है तो यह सब रिसाले जिधर जिसकी इच्छा होती है चले जाते हैं, अर्थात् नाक, कान, नेत्र अपना कार्य्य करने के योग्य नहीं रहते, फिर भला बल पौरुष पराक्रम धैर्य्य ज्ञान आदि सुख मिलसकते हैं–कदापि नहीं !

तो वर्त्तमान् समय में ब्रह्मचारी के माता पिता आचार्य्य कुछ सुध नहीं लेते वरन नाम तक भी नहीं जानते कि ब्रह्मचारी किसको कहते हैं और न वह उनके लाभों को यथावत् जानते हैं क्योंकि वह आप भी ब्रह्मचारी नहीं बने, न सत्य शास्त्रों का पठन किया, न उन को वर्त्तमान् समय के नाममात्र के आचार्य्यों ने समझाया वरन उक्त तीनों न्यून अवस्था में विवाह होना उत्तम जानते हैं, वह कहते हैं। कि आज हमारे ललुआ के मुनुआ होजावे तो हमारे नेत्रोंको आनन्द मिले और चैन आवे, वेद पढ़ाकर हमको फकीर थोड़ाही बनाना है,

इसी कारण यज्ञोपवीत के समय वेदारम्भ का नामही रहगया है, जब हमारे देश के माता पिता आचार्य्यों की यह दशा होगई तबही तो भारत रसातल को चलागया, यहां न कोई वेद पूछता है न शास्त्र, फिर क्या है देखलो क्या था क्या होगया, मुख्य कारण ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ना ही है, क्योंकि वीर्य्य शरीर में पकने से उत्साह, उत्साह से विद्या, विद्या से ज्ञान, ज्ञान से धर्म, धर्म पर चलने से सर्व प्रकार के यथावत् सुख मिलते हैं, वही पदार्थविद्या में उन्नति करसकता है, वही सब आनन्द तथा परमानन्द अर्थात् मोक्ष सुख को पाता है, क्योंकि विना ब्रह्मचर्य्य सेवन के काया और विद्या दोनों का नाश होजाता है फिर सुख कैसा ? ।

हे सुजनो ! जिसके शिर पर काम सवार होजाता है वह तृणसे भी हलका होजाता है, राजपाट खोता तथा प्रतिष्ठा और मान को धूलमें मिलाकर संसार में अपकीर्त्ति पाता है, परलोक में भी दण्डभागी होता है, वन वन फिरता है, नदी नाले लांघता है ॥

इसी काम ने रावण को किस प्रकार नाच नचाये, अन्तको दुर्दशा से मारा गया, तारा (सुग्रीव की स्त्री) के हरण में बालि की मृत्यु हुई, द्रौपदी के हरण से कीचक को वध हुआ, मजनू को इसने किस प्रकार लिया, भारतवासियों ने भी इसके फन्दे में फंसकर सर्वस्व खोदिया, राजा पुरूरवा भी उर्वशी अप्सरा की प्रेमरूपी पाश में फंस कर तहस नहस होगया ।

प्राचीन इतिहासों के अवलोकन से स्पष्ट प्रकट है कि पूर्व समय में भारतवासी जन अपनी योग्यता तथा निपुणता में समस्त भूमण्डल में अद्वितीय तथा अपूर्व गिनेजाते थे ।

यही भारत जो वर्त्तमान् समय में अविद्या के समुद्र में डूबाहुआ है प्राचीन समय में विद्या के प्रकाशसे सूर्य्य के समान दीप्तमान होरहा था, यहां की विद्यारूपी नदी ने देश देशान्तरों को सींचकर हराभरा कर रक्खा था यहां तक, कि मिश्र यूनान के प्राचीन निवासी जो गणित वैद्यक ज्योतिष आदि विद्याओं के उत्पन्नकर्त्ता समझे जाते हैं उन आर्य्यों के शिष्य थे कि जिन से प्रथम इस संसार में किसी दूसरी क़ौम

की उत्पत्ति इतिहासों से प्रकट नहीं होती, उन की संस्कृतविद्या की लालित्य और मधुरता प्रकट है, व्याकरण की अपूर्वता विदित है, शिल्प तथा पदार्थविद्या में जो उस समय उन्नति थी उसका वर्णन करना कठिन है, विश्वकर्म्मा के बनाये हुये पुष्पकविमान कि जिन पर श्रीरामचन्द्र जी लङ्का से अयोध्या को आकाशमार्ग होकर आये थे कि जिन के सम्मुख रेलादि कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है, इन्हीं महात्माओं ने सूत कातने का चरख़ा कोल्हू हल इत्यादि, मयदैत्य ने राजा युधिष्ठिर के यहां सुधर्मा नाम सभा ऐसी अपूर्व बनाई थी कि जिसमें जल के स्थान पर थल, तथा थल की जगह जल जान पड़ता था, तत्पश्चात् इस भूमि के गुणियों ने सूक्ष्मदर्शक दूरदर्शकयन्त्र धर्मघड़ियां तथा जेबी घड़ियां तथा कलों के द्वारा बोलने वाले पक्षी आदि अद्भुत अथवा अनोखे यन्त्रकला बनायेथे-वैद्यकशास्त्रको अश्वनीकुमार व धन्वन्तरि ने मनुष्यों के सुख चैन तथा आरोग्य रहने के लिये बनाया था कि जिस में निघण्टुनिदान व चिकित्सा का ऐसा वर्णन किया कि जिनको पढ़कर यूनान वालों ने नाम पाया, इस विद्या में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टादि आचार्यों ने भी बड़े २ अपूर्व ग्रन्थ रचे, ज्योतिषविद्या भी ऐसी है कि जिसकी समता दृष्टि नहीं आती, ज्योतिष में आकाश व पृथ्वी विषयक दो प्रकार का ज्ञान है, आकाश विषयक वह ज्ञान है कि जिसमें ग्रह नक्षत्रादिकों का प्रमाण, चाल, ग्रहण होने के कारण आदि का वर्णन है, पृथ्वी विषयक ज्ञान में पृथ्वी पहाड़ नदी आदिका वृत्तान्त विदित होता है, ज्योतिष में गणित मुख्य है जो समस्त विद्याओं में उपयोगी है, जिसको 'पितामह' तथा 'भास्कराचार्य' ने निकाला है।

मीमांसाशास्त्र को जैमुनि ने, वैशेषिक को कणाद मुनि ने, योग को पतञ्जलि ने, सांख्य को कपिल देव तथा वेदान्त को व्यास जीने निर्माण किया, जिनमें से आत्मविद्या के जाननेवाले योगीजन दूर दूर से बातें करते थे नाना प्रकार की शक्ति रखते थे, क्योंकि योग ही के द्वारा वह मन की वृत्तियों को रोक अपने आधीन करलेते थे।

गानविद्या में भी पूरी योग्यता रखते थे, क्योंकि इन्होंने आठ राग चौंसठ रागनियां निकाली थीं जिनके ताल स्वर न्यारे २ थे, यही

कारण है कि इनके गान में जो रस आता है वह किसी देश के गान में नहीं आता है, ऐसे ही युद्धविद्या में बड़ी विज्ञता रखते थे, जो सालून दल गन इत्यादि शस्त्रों से लड़ते थे, तदुपरान्त वह विषभरी वायु से अरि सेनाओं को लपेट कर पवन में भयङ्कर शब्द उत्पन्न करके उन को विध्वन्स कर डालते थे और आकाश में डरावनी सूरत बनाकर शत्रुओं को भयभीत करते थे, सच तो यह है कि इस भूमि में पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, यास्क, गोतम आदि तत्ववेत्ता, कालिदास भवभूति बाणादि कवि शिरोमणि, धन्वन्तर्यादि आयुर्वेद चिकित्सक, अर्जुन भीम धनुर्विद्या में, गान विद्या में गन्धर्वसेन नारदादिक, गणितज्ञों में भास्कराचार्य्य, योगीश्वरों में श्रीकृष्ण, उपदेशकों में व्यास जी सरीखे, सत्य बोलने में युधिष्ठिर महाराज धर्मात्मा क्षत्रिय, जितेन्द्रियों में भीष्म पितामह, सुविज्ञ गुरु द्रोणाचार्य, निर्लोभ दानियों में कर्ण, विचारशीलों में विदुर महाराज, पिता के आज्ञाकारी सर्वज्ञ रामचन्द्र सरीखे, धर्मपालन में राजा हरिश्चन्द्र सरीखे, वाक्य पूरा करने में राजा बलि सरीखे, इसी प्रकार स्त्रियों में सीता, अनुसुइया, द्रौपदी, दमयन्ती गार्गी इत्यादि, धुरन्धर पूर्ण गुणवान विद्वान् अनेक मार्ग के दिखलाने वाले सच्चे निपुण भक्त इस भारतभूमि में होगये हैं।

हे प्यारे सुजनो! यह सब हम तुम ने मैथुन में खोदिया क्योंकि जैसा हमने वीर्य का नाश मारा वैसाही हमारा नाश मारागया, विचार की बात है कि जिस वीर्य्य के निकलने के आनन्द में हाड़ों की माला बनजाते हैं भला उसके डाटने के आनन्दों को कौन वर्णन करसकता है।

इन उपरोक्त गुणों को जान अपने २ पुत्र पुत्रियों को यथावत् ब्रह्मचर्य्य रहने के अर्थ तन मन धन से उनकी रक्षा कर विद्या पढ़ाओ, आप भी ऋतुगामी होने की टेव डालो कि जिस से उनको भी रुचि हो, सदा उनको वीर्य के डाटने तथा विद्या के पढ़ने के लाभ सुनाते रहो, कभी २ भीम कर्ण हनूमान अङ्गदादि बली पुरुषों के चित्र दिखाते रहो, उनको प्रतिदिन सत्यशास्त्रों में से यहां की विद्या तथा गुण आदि के व्याख्यान भी सुनाते रहो, कि हे ब्रह्मचारी तेरी सकल कामना अथवा मनोरथ अखण्ड ब्रह्मचर्य्य सेवन तथा विद्याध्ययन से ही पूर्ण

होंगे, इससे हे पुत्र पुत्रियो ! तुम इस तप को मनसा वाचा कर्मणा से पूर्ण कर विद्या ग्रहण करो जिससे तुम्हारा नाम, यश कीर्त्ति बुद्धि, पराक्रम, तेज, बल आदि की प्रशंसा हो, तुम नाना प्रकार के आनन्द प्राप्त करो, तुम्हारे कुल कुटुम्ब का नाम हो, इस तप के पूरा करने के अर्थ निम्नलिखित आज्ञाओं पर सदा आरूढ़ होकर इस व्रत को निर्विघ्न समाप्त कर भारत का उद्धार कीजिये।

ब्रह्मचारियों को शिक्षा—

हे ब्रह्मचारी ! तुम उबटन तथा सुगन्धित पदार्थों को शरीर में न लगाओ, पुष्पों की माला तथा शरीर की शोभा देने वाले तिलक छापादि को धारण न करो, नाचने गाने की ओर ध्यान न दो, मनुष्यों के समूह में गाने या सुनने का स्वभाव न डालो क्योंकि ऐसे विद्यार्थियों का चित्त पठन पाठन में नहीं लगता इसलिये धर्मशास्त्र के कर्त्ताओं ने जनगोष्ठी का निषेध किया है, इसके पश्चात् परीक्षा से भी जानागया है, गप्पी, जप्पी, तप्पी, इन तीन प्रकार के विद्यार्थियों को विद्या नहीं आती, अतः तुम इधर किञ्चित् ध्यान न दो, रात्रि में अकेला सोवे, सर्व प्रकार से वीर्य्य की रक्षा करता रहे, क्योंकि इस समय की रक्षा करने से मरण तक कोई रोग प्रबल नहीं होता, कहा भी है कि "जो बिन्द को मारेगा, वह जिन्द को पछाड़ेगा" अतः स्त्री का ध्यान उसकी वार्त्ता, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्त वास समागम इन आठ प्रकार के विषयों को छोड़देना चाहिये, जैसा कि कहा गयाहै—

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेवच ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं कदाचन ॥
एतैः सर्वोविनिर्मुक्तो यतिर्भवति ते नरः ॥

इन सब से बचने का उपाय यही है कि विषयों की बातों को न सुने न ऐसे मनुष्यों के पास बैठे, न ऐसे स्थानों में जावे जहां स्त्रियों

के झुण्ड आते जाते हों, न कभी उन की कथा कहानियों को सुने यदि स्त्री सम्मुख आजावे तो आप अपनी दृष्टि नीचे करले न कभी किसी सुन्दर स्त्री का हृदय में स्मरण करे, न कभी स्त्रियों के चित्र अर्थात् तसवीर को देखे, यथा–

न संभाषयेत्स्त्रियं काञ्चित् पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येत् लिखितामपि ॥

वर्त्तमान काल में बहुधा सेठ साहूकारों के कमरों में स्त्रियों की तसवीरें टङ्गी रहती हैं इससे सन्तानों को उपरोक्त हानियां होती हैं, अंतः बुद्धिमान् पुरुषों को कदापि स्त्रियों के चित्रों को न लटकाना चाहिये, प्यारे ब्रह्मचारियो तुम आलस्य या प्रमाद से सन्ध्योपासन तथा अग्नि-होत्रादि नैमित्तिक कर्मों को कभी त्याग न करो, अति खट्टा अमिली आदि तीखा, लालमिरच आदि कसैला क्षार लवणादि तथा रेचक जमालगोटा आदि पदार्थों को न खाओ, नित्य आहार विहार से युक्त रहकर विद्या ग्रहण करना ही अपना अभीष्ट समझो, जब तक विद्या पूर्ण न हो तब तक ब्रह्मचर्य को खण्डित न करो, आचार्य की सेवा तथा टहल नम्रतापूर्वक सदा करते रहो उनके उपदेश के अनुसार सदा अपने आचरण को सुन्दर बनाये रहो, क्रोध ईर्षा द्वेष आदि को त्याग सत्यसम्भाषण आदि उत्तम गुणों को धारण करो ।

तदुपरान्त अपने अमूल्य समय को मिथ्या खोना अभीष्ट नहीं, क्योंकि वह लाखों की ढेरी करने पर भी फिर हाथ नहीं आता जैसा कि कहा है–

"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं"–इस विषय को यदि अधिक देखने की इच्छा हो तो मेरे बनाये हुए अनमोलरत्न नामी पुस्तक को देखलो ।

इसके उपरान्त सुस्त बैठे रहना तथा कुछ काम न करना निर्बुद्धि ही नहीं वरन उसके मन के दोष भी प्रकट होते हैं, और विडम्बन से समय को काटने से अनेकान बुराइयां उत्पन्न होजाती हैं क्योंकि ऐसे आलसी जन जो कुछ कार्य नहीं करते थोड़े ही दिनों के पश्चात् निकम्मे होजाते हैं ।

इसलिये प्रत्येक को उचित है कि बुद्धिमानी के साथ समय को शुभ कार्यों में व्यतीत करे कि जिससे किसी प्रकार की हानि न हो, अपने समस्त कार्य नियत समय पर करना योग्य है और शरीर की आरोग्यता और मन बहलाने के अर्थ समय नियत कर दिया है प्रत्येक मिथ्या खेल तमाशे तथा गप शपन मारने के अर्थ शिक्षा की है, उसी प्रकार तुम भी समय को व्यतीत करो न कि वर्त्तमान की भांति मिथ्या थोथे धन्धे में व्यय करो, उत्सवों और खुशियों में तो समय की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं होती जहां तहां नशे खेल कूद व तवले, सारङ्गी, रण्डी या लौंडे के नाच या नक्कीमूठ या और कोई ऊट पटाङ्ग काम में व्यय किया जाता है कि जिनके नशे सालभर बने रहते हैं।

मान्यवरो! यह वार्त्ता सम्पूर्ण जन जानते हैं कि मनुष्य जैसी सङ्गति में रहता है, वैसाही होजाता है, ऐसा ही हितोपदेश और भर्तृहरि शतक में कहा है कि जल की बूंद तत्ते लोहे पर पड़ती है तो उसका चिन्ह भी नहीं रहता और वही बूंद कमल के पत्ते पर पड़कर मोती सी दीखती है और स्वान्ति योग से सीपी में पड़कर मोती होजाती है अतः समस्त ग्रन्थों में उत्तम जनों की सङ्गति करने की आज्ञा है। देखिये यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ३८ में लिखा है–

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥

पितादि को योग्य है कि अपनी सन्तानों को दुष्टों के सङ्ग से पृथक् रख श्रेष्ठों के सत्सङ्ग में प्रवृत्त कराके धार्मिक तथा चिरञ्जीव करें जिस से वे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण कभी न करें, शुक्रनीति अध्याय १ में लिखा है कि उत्तम जनों के सत्सङ्ग से सुख व अर्थ की प्राप्ति होती है, विदुरनीति में विदुर जी ने धृतराष्ट्र को उपदेश किया है कि मनुष्यों को सदा उत्तम पुरुषों का ही सत्सङ्ग करना चाहिये, प्रयोजन सिद्ध करने के अर्थ मध्यम पुरुषों के पास भी चलाजावे परन्तु कल्याण की इच्छा रखने वाला पुरुष नीच का सङ्ग कदापि न करे, क्योंकि मनुष्य नीचों की सङ्गति से नीच होजाता तथा उनकी बुद्धि सब नष्ट हो

जाती है जिस से उन की उन्नति कभी नहीं होती और प्रशंसा का नाश होजाता है इस से उनका गौरव भी जाता रहता है, उद्योगपर्व अध्याय १० में भी सज्जनों की सङ्गति करने की आज्ञा दी है, मान्यवरो भर्तृहरि जी ने कहा है कि वन तथा पर्वतों पर रहना अच्छा पर मूर्ख के साथ इन्द्रभवन में रहना अच्छा नहीं, महात्मा शुक्र व चाणक्य ने अपनी नीतों में वर्णन किया है कि काले सर्प का सङ्ग अच्छा है परन्तु दुर्जन का नहीं, हितोपदेश में लिखा है कि खल कभी सीधा नहीं होता चाहे उसकी नित्य सेवा करो, जैसे कुत्ते की पूंछ चिकनाने व मलने से सीधी नहीं होती इस के उपरान्त खल धनवानों को अपने प्रयोजन के लिये दुराचारी कर डालते हैं, इसी कारण विष्णुशर्मा ने कहा है प्राण त्यागना अच्छा, पर नीचों के पास जाना अच्छा नहीं, यथा–

वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ।

मान्यवरो ! मनुष्य जन्म का उत्तम फल विना सत्सङ्ग के नहीं मिलता इसी से उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है, धर्म अर्थ काम मोक्ष भी सत्सङ्ग से ही प्राप्त होते हैं यथार्थ में सत्सङ्ग ऐसी ही औषधि है जिस से मनुष्य तीनों तापों से छूटकर आनन्दधाम को पाते हैं, भर्तृहरि तथा चाणक्य ने लिखा है–चन्द्रमा व चन्दन दोनों की शीतलता प्रसिद्ध है परन्तु सज्जन सत्सङ्ग इनसे भी अधिक शान्ति का देनेवाला है, अर्थात् इन से सांसारिक अथवा पारलौकिक सर्व प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं–

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्दनाच्चन्द्रमश्चैव शीतला साधु सङ्गतिः ॥
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।

ऐसे ही सज्जनों के सत्सङ्ग के अनेकान गुण हैं देखो उत्तम पुरुषों के सत्सङ्ग से मूर्ख, कुमार्गी, ज्ञानी महात्मा होजाते हैं, वाल्मीकि दुराचारी हिंसक से ऋषि, नारद जो कहारी के पुत्र थे देवऋषि होगये, महाशयो क्या यह सत्सङ्ग का फल नहीं है कि महा नास्तिक का

बेटा प्रह्लाद परम आस्तिक तथा विद्वान् हुआ, इस कथन का तात्पर्य यही है कि उत्तम सङ्गति से उत्तम तथा नीच से नीच हो जाता है शान्ति पर्व में महात्मा भीष्म ने तथा विदुरनीति में विदुर जी ने कहा है कि जिस में क्षमा धृति अहिंसा इन्द्रियनिग्रह धीरज, स्थिरता संतोष दया शील कृतज्ञ इत्यादि गुण हों वही श्रेष्ठ है, ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कंद ३ अध्याय २५ श्लोक २० में कहा है तथा भर्तृहरि जी ने भी कहा है कि जिस प्रकार सूर्य कमल को, चन्द्रमा कमोदिनी को खिलाता है, मेघ विना मांगे पानी देते हैं उसी भांति श्रेष्ठजन विना कहे उपकार करते हैं, शान्तिपर्व अध्याय १०३ में बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि जो परोक्ष में दोषों को कहे उसको दुष्ट जानना चाहिये, श्रीरामचन्द्र ने भरत से तथा विदुर जी ने विदुरनीति में कहा है कि जिस में सहन, विद्या, त्याग, दान वचन की रक्षा नहीं वही दुष्ट है।

प्रिय सज्जन पुरुषो उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होगया कि मनुष्य का कल्याण सत्पुरुषों के ही सत्सङ्ग करने से हो सकता है, परन्तु वर्तमान काल में उन पुरुषों का सत्सङ्ग किया जाता है जिन में न विद्या न तप न ज्ञान न शील न गुण न धर्म, ऐसे ही मनुष्य गुरु अध्यापक व आचार्य नियत किये जाते हैं, मित्रता की भी पदवी उन को दीजाती है कि जिन को भर्तृहरि जी ने पशु के समान माना है, यथा—

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुविभार भूता।
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

इसलिये मृगतृष्णा के समान संसार को क्षण में नष्ट होनेवाला जान धर्म व सुख के लिये सज्जनों का सत्सङ्ग करो क्योंकि प्राणीमात्र की प्रतिष्ठा गुणों से होती है न ऊंचे आसन पर बैठने से क्या कोठे के ऊपर के भाग में स्थित कौआ गरुड होजाता है कदापि नहीं—इसके उपरान्त उन्हीं का सदा विजय राज्य—श्री प्रतिष्ठा, बड़ी अवस्था, बल विद्या होती है जो अपने अधिष्ठाता सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित रहते हैं जैसा य० अ० २६ मं० ४६ में उपदेश है—

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तोगभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥

इसलिये परमपिता परमात्मा की आज्ञा तथा सदाचार के अनुकूल सज्जनों की सङ्गत करो जिससे तुमको धन धान्य दीर्घायु आदि सुख मिल सकते हैं, जैसा कि यजुर्वेद अ० ३५ मं० १६ में लिखा है—

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

हे प्यारे सुजनो और ब्रह्मचारियो! इस प्रकार की सङ्गति करने से मनुष्य के हृदय कमल की भांति प्रफुल्लित होजाते हैं, अज्ञान अन्धकार इस प्रकार भाग जाते हैं जैसे सिंह की गर्ज सुनकर पशुपक्षी पलायमान होजाते हैं, अतः तुम भी इस समय को पूर्व भारतवासियों की भांति नाना कला कौशल्य सीखने उपदेश सुनने समाचारपत्र तथा अनेकान प्रकार की पुस्तकें पढ़ने आदि सुसङ्गति में व्यय करो कि जिस के प्रभाव से उपरोक्त गुण तुम में भी आजावें, देखिये वर्त्तमान् समय में अंगरेज़ बहादुर समय की कैसी प्रतिष्ठा करते हैं, प्रत्येक मनुष्य एक घड़ी पास रखकर उसके अनुकूल नियत समयों पर उत्तम उत्तम कार्य्य कर आनन्द उड़ाते तथा सुसङ्गति ही में अपनी २ आयु को व्यतीत करते हैं, जिसके प्रभाव से कैसे जितेन्द्रिय विद्वान् होरहे हैं, इनका एक पलमात्र भी मिथ्या नहीं जाता।

इसलिये तुम निन्दित—भीरू अपने शरीर के नाश करनेवाले उद्यमहीन, आलसी, मूढ़ और दरिद्री की कभी सङ्गति न करो जैसा य० अ० २० मं० ३७ में कहा है॥

नराशꣳसः प्रतिशूरोमिमानस्तनूनपात्प्रतिं यज्ञस्यधामं।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरंण्यैश्चन्द्रीयजति प्रचेताः॥

प्यारे ब्रह्मचारियो! इन सब बातों को जान जिस भांति सब लोक सूर्य्यलोक का आश्रय करते हैं उसी प्रकार सब लोगों को श्रेष्ठ पुरुषका आश्रय करना चाहिये जैसा इसी अध्याय मं० ४१ में आज्ञा है॥

हे प्यारे ब्रह्मचारियो! यह बड़ा भारी काम है क्योंकि विना वीर्य रोके कुछ नहीं होसकता, यदि तुम को आरोग्य रहने, दीर्घायु होने, विद्वान् व बुद्धिमान् बनने, अथवा सुख से रहने की इच्छा हो तो तुम इस उपरोक्त लेख पर पूरा२ ध्यान दो, जब तक तुम्हारा मन से ध्यान न होगा तब तक माता पिता की शिक्षा यथावत् उपकार न कर सकेगी, क्योंकि जब तक तुम इसके गुण दोष जान कर अखण्ड ब्रह्मचारी बनने की कोशिश न करोगे तब तक उनकी रक्षा से जैसा चाहिये वैसा कार्य नहीं बन सकता, क्योंकि 'खेती खसम सेती'—खसम कहते हैं मालिक को खेती नाम खेत या वस्तु का है, तात्पर्य यह है कि विना मालिक के किसी वस्तु की यथावत् रक्षा नहीं हो सकती, ऐसे ही जब तुम अपने शरीर के मालिक हो यदि तुम को शरीररूपी खेती का ध्यान न हो तो क्या उन की रक्षा से पूर्ण प्रबन्ध होसकता है? कदापि नहीं।

इसलिये तुम कोई खोटा पाप न करो ऐसे कुसङ्गी विद्यार्थी वा दुष्ट मित्र के पास जाओ क्योंकि सङ्गत के लक्षण अवश्य कुछ न कुछ आते हैं, इन्हीं कारणों को जान सम्पूर्ण धर्मशास्त्र व वेदादि सत्य ग्रन्थों व मुनीश्वरों तथा वैद्यों (डाक्टर) आदि ने शुक्र अर्थात् धातु की रक्षा के अर्थ बड़े२ कालम के कालम भरे हैं तथा अपने उत्तम समय को लगाया है, देखिये क्या२ सत्योपदेश इस विषय में किये हैं कि जिनके अनुकूल चलने से सब पदार्थ मिलते हैं, तथा जिनकी आज्ञा न मानने अर्थात् जिनके अनुसार न चलने से क्या२ क्लेश भोगने पड़ते हैं कि जिनका पारावार नहीं, अतः हे ब्रह्मचारियो! विना तुम्हारे ध्यान दिये कार्य्य निर्विघ्नता पूर्वक पूर्ण नहीं होसकता, क्योंकि यदि माता पिता ने तुम्हारा विवाह न्यून अवस्था अर्थात् २५ वर्ष से प्रथम न किया परन्तु तुमने अन्य क्रियाओं से वीर्य्य को स्खलित कर दिया तो बतलाइये कहीं पूर्ण लाभ होसकता है? कदापि नहीं।

बहुधा बालक बालपन से दुष्टों की सङ्गत में पड़कर नाना भांति से वीर्य्य का नाश मार देते हैं जिससे थोड़े ही दिनों में उन की सूरत पीली होजाती है, आंखों में वह प्रकाश नहीं रहता, मांस ढीला

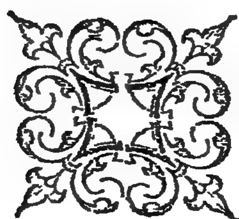
पड़जाता है, मन उदास रहता है, स्मरणशक्ति न्यून होजाती है, इसके उपरान्त प्रमेह, बवासीर आदि रोग होजाते हैं जिन से जन्म भर के आनन्दों पर पानी पड़जाता है।

हे प्यारे ! पुत्र पुत्रियो ! यदि आप को अपनी उन्नति सुख तथा सन्तानों का वैभव देखने की अभिलाषा हो तो इस शरीर को कामानल में हवन न कीजिये क्योंकि वीर्य्य रक्षा से सर्व प्रकार के सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है जैसा हमने ऊपर वर्णन किया है, और किसी महात्मा ने कहा है—

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्षमारोग्यमिच्छता।
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ॥
चित्तायतनृणां शुक्रं शुक्रायत च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयप्रयत्नतः ॥

प्यारे सुजनो भारत के उद्धार करने की अभिलाषा करने वालो यदि आप का पूर्ण ध्यान इस बुड्ढे आर्यावर्त्त के सुधारने का है तो आइये इस पूर्वोक्त रसायन का सेवन कीजिये, फिर भारत सन्तान को यही अमृतपान कराकर उनके मस्तक तथा शरीर को बलिष्ट कर दीजिये फिर देखिये कैसा आनन्द आता है, हे परमात्मन् ! हम सब भारत-वासियों को दुःख भोगते बहुत दिन होगये अब आप हम को साहस का दान दीजिये जिस से हम सब इस उत्तम रसायन का पान कर कृत कृत्य हों।

——:※०※:——



[४--विद्या]

विद्या उपार्जन-

प्रकट हो कि सन्तानों को उत्तम विद्या शिक्षा गुण कर्म स्वभाव आदि आभूषणों का धारण कराना माता पिता आचार्य तथा सम्बन्धियों का काम है, क्योंकि इन्हीं भूषणों से मनुष्य का आत्मा भूषित होता है, इसी से ज्ञान होता है, यह विद्या ही पशु अथवा मनुष्यों में अन्तर है, जैसा कि चाणक्य जीने कहा है-

आहारनिद्राभय मैथुनानि, सामान्य चैतानि नृणां पशूनाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो, ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥

इसके उपरान्त सोने चांदी के आभूषणों को शरीर में लादने से ज्ञान प्राप्त नहीं होता वरन अभिमानादि दोष उत्पन्न होजाते हैं, विषय रूपी जाल में फंसकर आत्मा शरीर दोनों का नाश मारदेते हैं जिससे भारत का पटरा होगया, अतः मैं इस स्थान पर आप को विद्या की महिमा सङ्क्षेप से सुनाता हूं कि विद्या क्या पदार्थ तथा उस से क्या आनन्द प्राप्त होते हैं, तथा पूर्व समय में उसकी क्या दशा थी ।

देखो यजुर्वेद अध्याय ४० मं० १४ में लिखा है कि जिससे मनुष्यों को सुख आनन्द मिलता है, उसी को विद्या कहते हैं-

विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में लिखा है जिसका नाश न हो उसको विद्या कहते हैं । पातञ्जल योगसूत्र पाद २ में लिखा है-

अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।

जिससे अनित्य को नित्य तथा नित्य को अनित्य अशुद्ध को शुद्ध तथा शुद्ध को अशुद्ध, दुःख को सुख तथा सुख को दुःख, अनात्मा को आत्मा तथा आत्मा को अनात्मा मानना यही अविद्या कहाती है ।

वैशेषिक में लिखा है कि अविद्या से विपरीत वस्तु को विद्या कहते हैं, जैसा कि—

अविद्या च विद्या लिङ्गन् ।

प्रियवरो ! सत्यसम्भाषणादि तप तथा विद्या से ही मनुष्यों का कल्याण होता है, क्योंकि सत्यादि नियम करने से मनुष्य सर्व पापों से छूटजाता है, विद्या से सर्व सुखों की प्राप्ति होती है, अतः प्राचीन समय में तप की उन्नति तथा शरीर की पवित्रता के अर्थ ऋषियों ब्राह्मणों तथा गृहस्थों ने विद्या को अच्छे प्रकार पढ़ा था जिस प्रकार मनुजी ने मनुस्मृति के अध्याय ६ श्लोक ३० में लिखा है—

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम् ।
तपसा किल्विषं हंति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविता ।
विद्या तपो विवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥

भर्तृहरि जी ने कहा है कि विद्या मनुष्य की अतुलकीर्ति का हेतु तथा छिपा हुआ धन है, विद्या सुख को देने वाली तथा दूसरों को वश में करने वाली है, यह सब में उत्तम गिनीजाती तथा विदेश में निर्वाह करती है, यही राजाओं में सम्मान तथा प्रतिष्ठा पाने योग्य बनाती है ।

चाणक्य नीति में लिखा है कि श्रेष्ठ रूप, उत्तम अवस्था तथा उत्तम कुल में जन्म होने पर भी मनुष्य विना विद्या सुगन्ध रहित ढाक के फूल के समान शोभा नहीं देता, यथा—

रूपयौवनसम्पन्न विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥

किसी महात्मा ने कहा है कि वेद का जानने वाला यदि दरिद्री हो तो भी उस मूर्ख से जो बहुधा रत्नों से संयुक्त हो श्रेष्ठ है, उत्तम नेत्र वाली स्त्री फटे वस्त्र पहरने पर भी उस नेत्रहीन स्त्री से जो नाना प्रकार के सुवर्ण के आभूषण धारण किये हो शोभायमान होती है यथा—

वरं दरिद्री यदि वेदपारगा न चापि मूर्खो बहुरत्नसंयुतः ।
सुलोचना जीर्णपटोपि शोभते न नेत्रहीना कनकैरलंकृता ॥

मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक ३५ में लिखा है कि मान्य करने के योग्य-धन, बन्धु, अवस्था, उत्तम कर्म, विद्या यह पांच स्थान हैं इन में विद्या सर्वोत्तम है अर्थात् विद्वान् की सब से अधिक प्रतिष्ठा होती है, यथा-

वित्तं बन्धुर्वयःकर्म विद्या भवति पंचमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥

भविष्य पुराण में लिखा है कि विद्या कामधेनु के समान फल देने वाली है, यह एक प्रकार का गुप्त धन है, भोजप्रबन्ध में लिखा है कि विद्या माता से अधिक समस्त आयु लालन पालन करती है, और माता केवल न्यून अधिक अवस्था ही में, इसी प्रकार पिता बालक को ऐसा उपदेश करता है जिससे उसका हित हो परन्तु विद्यारूपी पिता सम्पूर्ण आयु उपदेश करता है, जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति को सब प्रकार के दुःखों से बचाकर सुखी रखती है, उसी भांति विद्या सर्व प्रकार के क्लेशों से बचाकर सुख को देती है, यही जगत् में कीर्ति को फैलाती है, यही मोक्ष मार्ग बताती है ।

हितोपदेश में विष्णुशर्मा ने विद्या को अक्षय धन कहा है, विदुर महाराज ने तृप्ति का मूल कारण विद्या ही को कहा है, चाणक्य जी का वचन है कि विद्या से सर्वत्र पूजा होती है कुल तथा धन से नहीं इसके, पश्चात् विद्या से नम्रता, नम्रता से योग्यता योग्यता से धन, धन से धर्म, धर्म से सुख प्राप्त होता है तथा-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

महाभारत के शान्ति पर्व में पितामह ने कहा है-

" नास्ति विद्या समं चक्षुः"

विद्या के सामान संसार में कोई नेत्र नहीं, शुक्रनीति में लिखा है कि विद्यारूपी धन सब धनों से श्रेष्ठ है क्योंकि यह देने से न्यून नहीं होता किन्तु अधिकता को प्राप्त होता है । इसके उपरान्त जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं वे धनवान होतेहैं जैसा य० अ० २१ मं० ४६ में कहा है-

"दधुरिन्द्रियंवसुनेने वसुधेयस्य व्यन्तु यज"

केनोपनिषद् में लिखा है कि "विद्यया विन्दतेऽमृतम्" अर्थात् विद्या ही से आनन्द की प्राप्ति तथा सब पदार्थों की वृद्धि होती है, ऐसा ही चरक में लिखाहै "विद्या वृंहणानाम्"।

अब तो आप को विद्या की महिमा प्रकट होगई, देखो यहवह पदार्थ है कि जिसका प्रकाश शरीर के साथ रहता है और जिसकी रोशनी सूर्य के समान वरन उससे भी अधिक समस्त देशों में फैलजाती है, यह वह अस्त्र है कि जिसपर शान रखने की आवश्यकता नहीं होती, किसी २ विद्वान् ने १४ विद्या तथा उन की ६४ कला लिखी हैं, परन्तु बहुधा गुणी जन अनेक विद्या बतलाते हैं, जिनके प्रभाव से यहाँ तथा परलोक में आनन्द प्राप्त करते हैं, इसी के बल से सत्पुरुषों के नाम युगानुयुग तक लिये जाते हैं, देखो विश्वकर्मा अथवा मय दैत्य जिन्हों ने शिल्प विद्या को प्रकाश किया, अश्वनीकुमार तथा धन्वन्तर ने वैद्यक को प्रकाश किया, पितामह ने ज्योतिष को, जैमिनि ने मीमांसा, कणाद ने वैशेषिक, गोतम ने तर्क, पतञ्जलि ने योग, कपिल ने सांख्य, व्यास ने वेदान्त को प्रकट किया कि जिन को मरे बहुत काल होचुका परन्तु इन के नाम आज तक प्रशंसा के साथ लिये जाते हैं और जो कोई इनको पढ़ते हैं वह विद्वान् होजाते हैं, जिनकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है, राज्यसम्मान से भी अधिक मान्य होता है, जिस प्रकार चाणक्य मुनि ने नीति में लिखा है—

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्रपूज्यते ॥

इसके उपरान्त जिन राजाओं ने विद्वानों का आदर सत्कार किया उन के राज्य में भी आनन्द रहा और उनके नाम भी आज तक चले आते हैं, भला ऐसा कौन मनुष्य है कि जिसने विक्रम तथा राजा भोज का नाम न सुना हो अथवा उनकी प्रशंसा न करता हो ।

इसके उपरान्त विद्या सकल आपदाओं को टालती है, यह विद्या रूपी धन चोर चुरा नहीं सकता, भाई बन्धु सहोदर बांट नहीं सकते,

अग्नि भी उसे जला नहीं सकता, मनुष्य के विपत्ति तथा दरिद्रता की दशा में विद्या ही पूरा साथ देती है जब कि भाई बन्धु स्त्री मित्र उस को त्याग देते हैं, सच पूछो तो विद्या अनमोल रत्न है, अतः जो मनुष्य अपनी प्यारी सन्तान को विद्या नहीं पढ़ाते वह मानो उनका सत्यानाश मारदेते हैं, क्योंकि विना विद्या के वह ईश्वर को नहीं जानता, शेख़ सादी ने कहा है—

कि—बे इल्म न तवां खुदारा शनाख़्त।

इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना उचित है कि मूर्ख और विद्वान् के संग्राम में विद्वानों का ही विजय होता है जैसा मेघ और सूर्य्य के युद्ध में सूर्य्य का विजय होती है जैसा य० अ० ३३ मं० ६३ में लिखाहै—

ये त्वाहि हत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः॥

य० अ० ३४ मं० ५१ जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या पढ़ते हैं उन के न कोई चोर न दायभागी और न उन को भार होता है और मन्त्र ५२ में कहा है एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देनेवाली होती है और ५३ मन्त्र कहा है जिस भांति पृथिवी आदि पदार्थ मेघ और परमेश्वर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सब को पालते हैं।

प्यारे सुजनो! यह वह बाग़ नहीं है जिस को पतझड़ सता सके यह वह दर्पण नहीं कि जिस को जंग चट करजाय, यह वह प्रकाश नहीं कि सूर्य्य उदय होते ही छिपजाय, वरन विद्या वह अंजन है जिसके लगाते ही कपाट के नेत्र खुल जाते हैं, यह वह जड़ाऊ आभूषण है कि जिस के शृङ्गार के देखने की अभिलाषा जी को भी होती है, यह वह अमृतरूपी जल है कि जिसे पान कर मनुष्य मनुष्यता के पद को पहुंचकर अमर होजाता है, यह वह बल है कि जिस बल से सिंह सर्प से दुष्ट जीव आधीन होकर रहते हैं, मुख्य तो यह है कि संसार रूपी सागर में विद्यारूपी नाव ही पार पहुंचाती है, क्योंकि मूर्ख संसार में आपत्ति का घर बनजाता, सदा अप्रतिष्ठित रहता, चिन्तारूपी ज्वाला में शरीर को लकड़ी की भांति जलाता रहता,

प्रतिदिन इस उस में ग्रसित रहता है, इस के उपरान्त बुद्धिमान् उसकी संगत से दूर भागते तथा उसको बुरी दृष्टि से देखते हैं, मूर्ख को न यहां किसी प्रकार का सुख मिलता है, न परलोक में, अतः इस संसार में स्त्री पुरुष को योग्य है कि विद्या को अवश्य ही ग्रहण करें अपने पुत्र, पुत्रियों को सात आठ वरस तक घर में अवश्य शिक्षा दें, फिर पुत्र को पुत्रों की तथा कन्या को कन्याओं की पाठशालाओं में भेज देवें, इस विषय में मनु जी महाराज ने इस प्रकार लिखा है—

कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥

इस का अभिप्राय यह है कि पांचवें वा आठवें वर्ष पुत्र पुत्रियों को घर में न रक्खें, अर्थात् विद्या उपार्जन के अर्थ पाठशाला में भेज देवें, जो न भेजेंगे वह दण्डनीय होंगे।

फिर कैसे पछतावे का स्थान है कि पंचायती दण्ड का नाम ही न रहा इसी कारण से अविद्या का राज्य होगया, राजदण्ड तो किसी भांति मौजूद भी है क्योंकि जब तक पास नहीं होता तबतक सब धान बावन पसेरी गिने जाते हैं, अर्थात् किसी प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं होती, नौकरी नहीं मिलती, यदि यह भी न होता तो भारतवासी जन काला अक्षर भैंस के समान जानते, अतः यह भी धन्य है।

पहिले की नाईं दण्ड के न होने से धर्म सम्बन्धी शिक्षा जाती रही जिसका प्रभाव यह हुआ कि यदि किसी से धर्म विषय में कुछ पूछाजावे तो अंट का संट ऊटपटांग उत्तर देते हैं, जिस के कारण हजारों मनुष्य धर्म से विमुख हो, काम क्रोध लोभ मोह ईर्षा अहंकार में फंसकर भारत सन्तान का नाश मार रहे हैं, कि जिसके कारण राज गया, धन गया, मानादि सब ही जाते रहे, अतः पूर्ण जितेन्द्रिय हो कर पुत्र पुत्रियों को विद्याध्ययन करना चाहिये, क्योंकि विना जितेन्द्रियता के बल का नाश होजाता है, अतः जो स्त्री पुरुष विना पूर्ण विद्या के विवाह कर देते हैं मानो अपने हाथ से हलाहल पिलाकर जीते हुए होनहार सन्तानों को मृतक के समान बना देते हैं।

प्रिय सज्जन पुरुषो जब विद्या एक अमूल्य रत्न है तो यह परम आवश्यक हुआ कि उसकी शिक्षा करने वाले यथावत् विद्वान् तथा

धार्मिक हों, यदि ऐसे न होंगे तो विद्यार्थी बिगड़ जावेंगे, और कुछ लाभ न होगा, अतः वेदादि सत्य ग्रन्थों में ऐसेही गुरु आचार्य्य से विद्या सीखनेकी आज्ञा पाई जाती हैं, य० अ० ६ मन्त्र १४में लिखाहै-

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्तें शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्तें शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि ॥

गुरु तथा उनकी स्त्रियों को योग्य है कि कुमार तथा कुमारियों को वेद और उसके अङ्गों की शिक्षा देकर देह इन्द्रियां अन्तःकरण मन की शुद्धि और शरीर की पुष्टि आदि उत्तम गुणों को प्रवेश करावे।

शुक्र नीति अध्याय १ में लिखा है-

शास्त्राय गुरुसंयोगः।

अर्थात् विद्या पढ़ने के लिये गुरु किया जाता है, ऐसाही उपनिषदों का सिद्धान्त है, यथा-

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोध्ययन दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचर्य्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्त मात्मानमाचार्यकुले अवसादयत्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। छान्दोग्योपनिषद् अ० २ खं०२३॥

धर्म के तीन स्कन्ध अर्थात् अंश हैं एक यज्ञ अर्थात् पदार्थों की सङ्गति करण (क्रिया कौशल विद्वानों का सत्कार अग्निहोत्रादि), दूसरा ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करके आचार्य्य के समीप निवास करना, तृतीय क्लेशों को सहन करके बहुत काल तक सर्व विद्या सम्पन्न होना।

श्रीमद्भागवत पञ्चम स्कन्द के पांचवें अध्याय में लिखा है कि वह गुरुही नहीं जो मृत्यु से बचने का उपाय न बतावे-

गुरुर्नसस्यात् स्वजनो न सस्यात्,
पिता न सस्याज्जननी न सस्यात्।
दैवं न तत् स्यान्नपतिश्च सस्यान्,
न मोचयेद्य समुपेतमृत्युम् ॥

इस कथन से प्रकट होता है कि आत्मिक ज्ञान के अर्थ गुरु किये जाते हैं, क्योंकि विना उसके मृत्यु के क्लेश से नहीं बच सकता, लिङ्ग-पुराण अध्याय ८६ श्लोक १०१ में लिखा है कि गुरु की कृपा से निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है, यथा-

इत्थं प्रसन्नं विज्ञानं गुरुसम्पर्कजं ध्रुवम् ॥

शुक्रनीति में लिखा है कि-" शिक्षणो गुरुः " अर्थात् शिक्षा पाने के अर्थ गुरु किये जाते हैं।

श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अ० ६ में दत्तात्रय ने कहा है कि भ्रम की निवृत्ति के लिये गुरु किये जाते हैं, शङ्खस्मृति अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि गुरु वही है जो वेदों को पढ़ावे, ऐसाही लिङ्गपुराण अ० २९ में लिखा है कि श्रद्धापूर्वक गुरु से वेद पढ़े फिर विचार करे और धर्मों को जाने।

हारीतस्मृति अ० ३ प्र० १ में लिखा है-

उपनीतो माणवको वसेत् गुरुकुलेषु च ।

शिष्य जनेऊ कराकर गुरु के पास जाकर रहे, ऐसाही संवर्तस्मृति में अ० १ श्लोक ५ व व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २३ में भी लिखा है-

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत् ॥ संवर्त० ॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥ व्यास० ॥

मनुजी ने भी लिखा है-

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥

आचार्य्य शिष्यों को उपनयन कराकर वेदादि विद्याओंको पढ़ावे तथा सदाचार भी सिखलावे।

श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अ० १७ में भी ऐसाही कहा है—

द्वितीयं प्राप्यनुपूर्व्याञ्जन्मोपनयनाद्विजवसन् ।
गुरुकुले दान्तो ब्रह्म धीयतचाऽऽहुतः ॥

जाबाल ऋषि तथा यास्क मुनि का भी यही सिद्धान्त है, विष्णुपुराण व लिङ्गपुराण में भी लिखा है, जनक महाराज ने कहा है कि गुरु उपदेश विना ज्ञान और ज्ञान विना मोक्ष नहीं होती, इससे गुरु से ज्ञान प्राप्त करना ही मुख्य प्रयोजन है, गीता के अध्याय ४ श्लोक ३४ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि मुक्ति की रीति तत्व ज्ञान जानने वाले गुरु के द्वारा प्राप्त होसकती है।

व्यासस्मृति अध्याय १ श्लोक १४ में लिखा है कि गुरु तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों को होम कराकर गायत्री का उपदेश कर वेद पढ़ावे—

पुण्येन्हि गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुति क्रियः।
स्मृत्वोंकारं च गायत्री मारभेद्वेदमादितः॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय २८ में मंदालसा ने अपने पुत्र को वर्णों के धर्म सुनाये हैं वहा वर्णन किया है कि यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरु के समीप जाकर विद्याध्ययन करे, एक वा दो वा चारों वेद पढ़कर गुरुदक्षिणा दे गृह में आने की इच्छा करे।

तदुपरान्त अनुशासनपर्व अध्याय ५६ में भीष्मपितामह ने कहा है कि गुरु की सेवा से विद्या प्राप्त होती है, अर्थात् शिक्षा के अर्थ गुरु किये जाते हैं।

देखिये शुक्रनीति अध्याय १ श्लोक ८० में लिखा है कि गरु वह है जो विद्याभ्यासादि सदुपदेशों से शिष्य के दोनों का सुधार करे, यथा—

हितोपदेष्टा शिष्यस्य सुविद्याध्यापको गुरुः॥

इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में भी गुरुकुल में जाकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर विद्याध्ययन करते थे, देखो ब्रह्माजी ने अग्नि वायु आदि ऋषियों से वेदों का अध्ययन किया था, तथा ब्रह्मा जीके निकट जाकर देव मनुष्य तथा असुरों ने विद्याभ्यास किया था, भृगुजी ने अपने पिता वरुण के समीप निवास कर विद्या को पढ़ा, पिप्पलादि ऋषि का पुत्र अङ्गिरा और सनत्कुमार दोनों ने अथर्व ऋषि के पास रहकर विद्योपार्जन किया था, सनत्कुमार के पास निवास कर नारद जी महाराज ने अध्ययन किया था, उद्दालक ऋषि के निकट याज्ञवल्क्य जीने तथा याज्ञवल्क्य जी के समीप रहकर मधुक जीने, मधुक जी

से चूल ने अध्ययन किया था, महात्मा परसराम जी ने कश्यप जी महाराज के समीप रहकर अध्ययन किया था, ऐसे ही द्रोणाचार्य महाराज ने भीष्मपितामह से कहा है कि मैंने अस्त्रादि विद्या अग्निवेश मुनि के पास जाकर ब्रह्मचर्य सहित गुरुसेवा करके पढ़ी थी।

सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनि तथा पैल को व्यास जीने पढ़ाया था, ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनुको, मनुने प्रजा को पढ़ाया था, राजा जनक ने पञ्चशिख नामक महात्मा तथा याज्ञवल्क्य से पढ़ा था, वशिष्ठ जी महाराज ने राजा दशरथ और रामचन्द्र जी को पढ़ाया था, विश्वामित्र से भी श्री रामचन्द्र जी ने पढ़ा था, श्रीकृष्ण महाराज ने उज्जैननगर में निवास कर सन्दीपन नाम पण्डित से पठन किया था, इसी भांति पञ्चाब के राजा द्रुपद ने अग्निवेश ऋषि के पास निवास कर पढ़ा था, भीष्मपितामह ने द्रोणाचार्य की परीक्षा लेकर कौरव और पाण्डवों को पढ़ाया था, तथा गुरुकुल में रहने के लिये उन्होंने सब प्रकार का प्रबन्ध किया था, इसी भांति सर्व आर्य शिरोमणी ने गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन किया था।

प्रिय सज्जन पुरुषो उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि गुरु ज्ञान के अर्थ किये जाते थे, ज्ञान पूर्ण विद्वान् वा ज्ञानियों से प्राप्त होता है, अतः प्राचीन काल में विद्वानों के समीप रहकर अध्ययन करते थे, वेदों में भी अग्नि और सूर्य्य के समान विद्वानों से विद्या पढ़ने की आज्ञा है, यथा-

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ।
सहस्रदा असि सहस्रायत्वा ॥ ४० ॥

अर्थात् पूर्ण विद्वान् को ही गुरु कराना चाहिये देखिये लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय २० में लिखा है कि गुरु मान्य पूज्य और गुरु साक्षात् सदा शिव है, परन्तु वह गुरु शास्त्रवेत्ता, तपस्वी, बुद्धिमान्, लोकप्रिय, लोकाचार का जानने वाला, तत्ववेत्ता, मोक्ष देने में समर्थ हो, अन्य गुण सम्पन्न और सब विधानों में कुशल भी हो, आत्मज्ञान से हीन हो तो निष्फल है, क्योंकि जिसको आत्मिक ज्ञान न हो तो वह क्योंकर

शिष्य पर अनुग्रह करसकता है, अर्थात् ज्ञानी गुरु आप शुद्ध है तथा शिष्यों को भी शुद्ध करसकता है, आत्मज्ञान से हीन गुरु केवल पशु है, इस कारण तत्ववेत्ता आप मुक्त है तथा शिष्य को भी मुक्ति देसकता है, अज्ञानी गुरु मूर्ख शिष्य का उद्धार किस प्रकार करसकता है, एक शिला दूसरी शिला को नदी पार नहीं करसकती—

गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः ।
गुरुश्च शास्त्रवित प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः ॥
लोकाचार रतो ह्येवं तत्त्वविन्मोक्षदः स्मृतः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥
सर्व्वोपाय विधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलाम् ।
स्वसं वैद्ये परंतत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि ॥
आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम् ।
प्रबुद्धस्तु द्विजो यस्तु सशुद्धः साधयत्यपि ॥
तत्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ।
परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्व्वे पशवोदिताः ॥
पशुभिः प्रेरिता यत्तु सर्व्वे ते पशवः स्मृताः ।
तस्मात्तत्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयन्त्यपि ॥
संवित्तजननं तत्वं परानन्दसमुद्भवम् ।
तत्त्वन्तु विदितं येन सएवानन्ददर्शकः ।
न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तुयः ॥
अन्योन्यं तारयेन्नैवं किं शिलातारयोच्छिलाम् ।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्ति वै नाममात्रिका ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अध्याय ३ श्लोक २१ में लिखा है—

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे मरीचे विष्णाहं ब्रह्मण्युप शयाश्रयम् ॥

जो पुरुष वेद के अर्थ को अच्छे प्रकार से जानता हो, शिष्य के सन्देहों को अच्छे प्रकार से दूर करसकता हो, जिसको परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान हो, जो शान्ति प्रकृति हो उसको गुरु करना चाहिये।

शुक्रनीति अध्याय ४ में लिखा है कि जो मनुष्य मन्त्र और अनुष्ठान में सम्पन्न वेदवित्, कर्म में तत्पर, जितेन्द्रिय हो, लोभ मोह से रहित, वेद के व्याकरण आदि छः अङ्गों और धनुर्विद्या तथा धर्म का जानने वाला, जिसके क्रोध के भय से राजा भी धर्म नीति में तत्पर हो वही पुरोहित व आचार्य होने के योग्य है, यथा—

मंत्रानुष्ठान संपन्नस्त्रैविद्यः कर्मतत्परः ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ॥
षडंगवित्सांगधनुर्वेदविद्यार्थधर्मवित् ।
यत्कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत् ॥
नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादि कुशलस्तु पुरोहितः ।
सैवाचार्यः पुरोधायः शापानुग्रह योः क्षमाः ॥

इसके उपरान्त गुरु शब्द के शब्दार्थ पर ध्यान दीजिये कि (गु) अन्धकार और (रुः) अन्धकार के नाश कर्त्ता को कहते हैं अर्थात् जो अज्ञान का नाश करे उसको गुरु कहते हैं।

प्रिय सज्जन पुरुषो सत्य शास्त्रों में विद्याध्ययन तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये गुरु करने की आज्ञा पाई जाती है परन्तु वर्तमान समय में इसके विपरीत मूर्ख, अज्ञानी, नाना प्रकार के कुकर्म करते चले जाते हैं, मान्यवरो सनातन धर्म में ऐसे गुरुओं के समीप जाने की भी आज्ञा नहीं, त्यागने तथा दंडदेने के लेख पायेजाते हैं, देखो विदुर जी महाराज ने कहा है कि विना शिक्षा करनेवाले गुरु तथा मूर्ख पुरोहित से मनुष्य मात्र को कुछ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये, यथा—

षडिमान पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्य मनधीयानमृत्विजम् ॥

चाणक्य राजनीति में लिखा है कि "विद्याहीनं गुरुंत्यजेत्" अर्थात् विद्या हीन गुरु को छोड़ देना चाहिये।

इसके उपरान्त अयोध्या काण्ड सर्ग २० श्लोक १३ में लिखा है कि राजा को योग्य है कि जो गुरु कार्य वा अकार्य को न जाने, कुमार्ग में चले कामादि में फंस निन्दित कर्म करने लगे तो उसको भी दण्ड देवे।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥

ऐसा ही शुक्रनीति अध्याय ४ के श्लोक ४७ में लिखा है-

इसलिये विद्याहीन कुमार्गी गुरु की प्रथा को जिसका वर्त्तमान में अत्यन्त प्रचार होरहा है उठा दीजिये, क्योंकि मनुष्य जन्म सत्‌विद्या तथा उत्तम सत्संग से ही सफल होता है, वह इन मूर्ख गुरुओं से किस प्रकार प्राप्त होसकता है क्योंकि अन्धा अन्धे को कभी मार्ग पर नहीं लेजासकता।

देखो य०अ० २९ मं० २७ में कहा है जो जन स्वयम् पवित्र-बुद्धि-मान-वेदशास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् और पवित्र नहीं कर सकते-

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या॥

मान्यवरो प्राचीन काल में गुरुकुल में रहकर विद्या पढ़ने की दृढ आज्ञा थी तथा राज्यादि प्रबन्ध भी ऐसा ही था, देखो मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक २७ में लिखा है, जिस बालक के माता पिता का बाल्य अवस्था में देहान्त होजाय तो राजा को उचित है कि जब तक विद्याध्ययन करके अपने घर को न आवे तब तक उसकी सम्पत्ति की रक्षा करे, यथा—

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत्।
यावत्सस्यात्समावृत्तो यावच्चातीत शैशवः॥

मान्यवरो! इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २, ४ याज्ञवल्क्य अध्याय १ श्लोक ५१ विष्णुस्मृति अध्याय १ श्लोक २५, संवर्त० अध्याय १ श्लोक ३४, शंख० अध्याय ३ श्लोक १५,

व्यास० अध्याय १ श्लोक ४२, दक्ष० अध्याय १ श्लोक ७, ८ तथा हारीतस्मृति अध्याय ३ श्लोक १२ और मार्कंडेय पुराण अ० २८ श्लोक १४ १५ विष्णुपुराण अध्याय ३ श्लोक ९ तथा श्रीमद्भागवत स्कंद ११ श्लोक३८ से स्पष्ट प्रकट है कि ब्रह्मचारी गुरु के यहां से एक या दो या चार वेदों को समाप्त कर उनकी आज्ञा से समावर्त्तन संस्कार कर विवाह करे।

प्यारे मित्रो इस संसार में वही जन अपने जन्म को सफल कर सकते हैं जो स्त्री पुरुष का शरीर धारण कर विद्या—अच्छी शिक्षा—उत्तम स्वभाव धर्म—योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करते हैं जैसा य० अ० ३५ मं० २२ में कहा है—

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वद॒यं । जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥

इसी सुख की प्राप्ती के अर्थ परमात्मा ने ब्रह्मचर्य्य—गृहस्थ—वानप्रस्थ—सन्यास यह चार आश्रम नियत किये जिनके यथावत पालन करने से सुख मिलता है।

अब आप वर्त्तमान काल में चार आश्रमों जिनके लिये सम्पूर्ण वेद—स्मृतिपुराणादि सब ही एक स्वर से पुकार २ कर पुष्टि कर रहे हैं उड़ाये देते हैं हा शोक! अविद्या तू ने हमारा खोज मार दिया।

प्यारे सुजनो! और सुनिये प्राचीन काल में गुरु जन यज्ञोपवीत कराकर शिष्यों को वेद पढ़ाया करते थे उत्तम आचरण की शिक्षा किया करते थे देखिये य० अ० १६ मं० २ में लिखा है—

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥

शिक्षक अर्थात् गुरुजन शिष्यों को धर्मयुक्त राजनीति की शिक्षा तथा पापों से बचाकर के कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में लगावे।

इसके उपरान्त द्विजातियों के तीन जन्म माने हैं, उन में यज्ञोपवीतसंस्कार वेद पढ़ने के निमित्त है, यथा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७० में लिखा है, और मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ६१ में स्पष्ट

आज्ञा दी है कि गुरुजन यज्ञोपवीत कराकर सन्ध्योपासन की शिक्षा दें आचार भी सिखलावें, यथा—

उपनीयः गुरुशिष्य शिक्षयेच्छौ च मादिता ।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥

ऐसा ही हारीतस्मृति अध्याय ३ के ५ श्लोक तथा व्यासस्मृति अध्याय १ के २४ श्लोक और शङ्खस्मृति अध्याय ३ के श्लोक १ में तथा भविष्यपुराण अध्याय ३ में लिखा है ।

वर्तमान समय के सामान्य उपाध्याय सांसारिक विद्या के पढ़ाने वाले लोभ के वश हो पुत्रों को डण्डे लेकर गवाते नचाते हैं, ढोलक मजीरादि भी बजता है, धिक्कार है उन भैयाजू पर जो शास्त्र और बुद्धि के विपरीत शिक्षा देते हैं, तुर्रा यह है कि उनके पितादि इस प्रसन्नता में उपाध्याय जी को दक्षिणा देते हैं, क्या माता पिता पुत्र को नाचना गाना सिखाने वाले नहीं हुए, क्या लज्जा को भी तिलाञ्जुलि देदी है ?

प्रिय सज्जन पुरुषो! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होरहा है कि प्राचीन काल में वेदानुकूल गुरुजन यज्ञोपवीत के पश्चात् विद्याध्ययन कराकर नाना प्रकार के शुभ गुणों की शिक्षा करते थे, ऐसा ही अन्य ग्रन्थों में भी उपदेश दिया है, परन्तु वर्तमान काल में इस सनातन रीति का ऐसा खोज मारा गया है कि देश चौपट होगया, क्योंकि अब मूर्ख गुरु किये जाते हैं, जो यज्ञोपवीत के स्थान पर कण्ठ में कण्ठी बंधाते हैं, गायत्री के स्थान पर क्षत्रिय वैश्य को कपोलकल्पित मन्त्र का उपदेश करते हैं ।

मान्यवरो! यदि आप को धर्म पर प्रेम है, उसके नाम पर अपना धन तथा समय व्यय करते हो तो अब आप कृपाकर मेरे इस निवेदन को स्वीकार कर प्रथम आप मेरे लिखित प्रमाण अपनी २ पुस्तकों में अवलोकन कीजिये यदि यह सब वचन आप की पुस्तकों में मिलजावें तो फिर आप इन कुपढ़ मनुष्यों की शिक्षा न लीजिये, यज्ञोपवीत को धारण कीजिये, जिसको सनातन पुरुषा धारण करते थे, कण्ठी को गले में बांधना त्याग दीजिये, क्योंकि उसके लिये कोई वैदिक आज्ञा

नहीं, न स्मृतिकारों ने उसकी पुष्टता की है, न कभी प्राचीन पुरुषों ने धारण की न सद्गुरु ऐसी लीला रचते थे, इसके अतिरिक्त कपोल मन्त्रों से उपासना करना भी छोड़ दीजिये क्योंकि सत्य ग्रन्थों में गायत्री मन्त्र से उपासना करने की आज्ञा है।

इसके उपरान्त इन मूर्ख गुरुओं ने तो क्षत्रिय तथा वैश्य को वेद पढ़ने की आज्ञा को ही मेट दिया, फिर गुरुकुल में जाने की आवश्यकता ही न रही, फिर क्योंकर भारत में अन्धेरा न होता, इसके अनन्तर गुरुओं के आचरणों को आप स्वयं अवलोकन करते हैं कि इन मूर्खों में नाना प्रकार के कुकर्म भरे हुए हैं, जिनके संग से सन्तानों की भी कुदशा होगई है।

इसलिये मिथ्या पक्षपात को त्याग सत्यासत्य को विचार शीघ्र मूर्ख गुरु करने की प्रथा को भारत से उठा दीजिये और प्राचीन धर्म सभा की आज्ञानुसार कार्य कर कल्याण को लीजिये जैसा मैंने वेद स्मृति उपनिषद् पुराणों से वर्णन किया है।

वर्तमान में केवल जाति के अभिमान से गुरु कियेजाते हैं जिसका सर्वत्र निषेध किया है, देखो शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ६ में स्पष्ट कहा है कि विना विद्या के कोई किसी का गुरु नहीं होता, यथा—

योधीतविद्याः सकलः ससर्वेषां गुरुर्भवेत्।
नच जात्यानधीतो यो गुरुर्भवितु मर्हति॥

मान्यवरो ऐसे ही वेदोक्त धर्मात्मा परोपकारी गुरुओं की सेवा टहल करना शिष्य का परम धर्म है।

स्त्रीशिक्षा—

प्यारे सुजनों देश और धर्म की उन्नति स्त्रियों पर बहुत कुछ निर्भर है जिस घर की स्त्रियां सुशिक्षिता नहीं वह घर दुःख का स्थान है, जिस परिवार में स्त्रियों को उत्तम शिक्षा नहीं मिली वह परिवार संग्राम भूमि है, जिस देश की स्त्रियां विद्या से शून्य हैं वही सुविचार और आचार और सर्व प्रकार की उन्नतियों से रहित है, जब सितार के एक

तार टूट जाने से उत्तम राग नहीं निकलता तो फिर क्योंकर गृहस्थाश्रम रूपी सितार के स्त्रीरूपी आधे तार टूटे हुए होने पर मर्यादा रूपी राग ठीक २ नहीं निकल सकता है, कदापि नहीं, जैसे मूर्ख राजा अपनी प्रजा का नाश मारदेता है, जैसे अज्ञ सेनापति अपनी सेना का वध करादेता है, जैसे अज्ञान स्वार्थी घोड़े समेत रथ को चकनाचूर करदेता है, ठीक उसी प्रकार अपढ़ माता अपनी सन्तानों के शरीर की आत्मिक शारीरिक सामाजिक उन्नतियों के सर्वनाश करनेवाली होती है, इस के अनन्तर विद्वान् के संगसे विद्या में रुचि तथा मूर्खके संगसे अरुचि बढ़ती है, ऐसे ही साधु का संग हम में साधुपन तथा व्यभिचारी का संग व्यभिचारपन उत्पन्न करता है, प्रबन्धकर्त्ताओं के साथ रहने से प्रबन्ध करने का ढंग उत्पन्न होता है, इत्यादि।

जिस माता के साथ हमारा इतना गूढ़ सम्बन्ध है तो क्या उसका स्वभाव हमारे लिये तारनेवाला या डुबानेवाल न होगा? प्यारे भाइयो एक दिन के संग का प्रभाव होता है तो क्या जिस माता के साथ वर्षों रहने का संग हो कुछ प्रभाव न होगा?

मान्यवरो इस स्त्रीशिक्षा से देश में शुशीलता फैलती है, धर्म की वृद्धि होती है, यही वीररस को प्रवेश कर सकती है, यही शान्ति की शिक्षा दे सन्तोष का पात्र बनादेती है, इसी को देव और देवी बनाने की सामर्थ्य है, यही राक्षसीभाव को उत्पन्न कर देती है, यही परा तथा अपरा दोनों प्रकार की विद्याओं के अंकुर जमा देती है।

यदि आप को भारतोद्धार की इच्छा तथा भारत सन्तान पर स्नेह है तो आइये तन मन धन से स्त्री शिक्षा को प्रचलित कीजिये, तभी भारतवासियों का कल्याण होगा अन्यथा नहीं।

प्रिय सज्जन पुरुषो इसी कारण परमपिता परमात्मा ने वेद में स्त्रीशिक्षा के लिये आज्ञा दी है उसी के अनुसार स्मृतिकारों ने भी प्रेरणा की है, प्राचीन काल में स्त्रीशिक्षा अच्छे प्रकार से प्रचलित थी जिसके प्रभाव से भारत में नाना प्रकार के आनन्द थे।

अब मैं वेदादि ग्रन्थों की आज्ञायें तथा विदुषी स्त्रियों का संक्षेप

वर्णन सुनाता हूं, कृपापूर्वक श्रवण कर कृतार्थ कीजिये, देखिये यजुर्वेद अध्याय १४ मन्त्र १ में लिखा है कि विदुषी पढ़ाने वाली स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य्य अवस्था में गृहस्थाश्रम तथा धर्म की शिक्षा देकर उनको श्रेष्ठ करें। यथा—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया।
उख्यस्य केतु प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥

अथर्व का० ११ प्रपाठक २४० मन्त्र १८ में लिखा है कि जिस प्रकार पुत्र ब्रह्मचर्य धारण करते हैं उसी भांति पुत्री भी ब्रह्मचर्य धारण कर तरुण अवस्था में अपने समान पति को प्राप्त हों, यथा—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्॥

श्रौत सूत्रों में लिखा है कि स्त्री पुरुषों का समान ब्रह्मचर्य्य होना चाहिये,

य० अ० १३ मं० ५३ में कहा है कि सब मनुष्यों और स्त्रियों को वेद पढ़ा जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण कर कार्य साधन सहायता लेना योग्य है।

जिस भांति अध्यापक उपदेशक और अतिथि लोग बालकों को उत्तम शिक्षाकर उनके दोषों को दूर कर विद्या को प्राप्त करावे उसी भांति स्त्री भी कन्याओं को उत्तम आचरण कर वैद्यकशास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा-कर ओषधी देवे। य० अ० २३ मन्त्र ४२

दैव्या अध्वर्य्य वस्त्वाछ्यन्तु वि च शासतु।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन् तु शम्यन्तीः॥४२॥

य० अ० २० मं० ५६ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष वैद्यक विद्या को न जाने तो रोगों का निवारण और शरीरादि की स्वस्थता को और धर्म व्यवहार निरन्तर चलने को समर्थ नहीं होते।

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।
मध्वा रजांऽसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान्॥

माता पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यक शास्त्र पढ़ावें जिससे ये कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ करा स्थापन करने वाली ओषधियों को जान अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें। य० अ० ११ मं० ४८

ओषधयः प्रति गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः।
अयं वो गर्भऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥

य० अ० १९ मं० १५ में लिखा है कि कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर व्याकरण धर्म विद्या और कार्य विद्या सीख कर शरीर को आरोग्य रक्खें।

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परि षिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥

और य० अ० १३ मं० ३४ में आज्ञा है कि जिस प्रकार पुरुष ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमन्त्रों को जान कर विद्वान् हो शास्त्रों का उपदेश करते हैं उसी भांति स्त्रियां सृष्टिक्रम के निमन्त्रों को जान वेदार्थसार का उपदेश करें।

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः।
स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥

इसके उपरान्त स्त्रियों को युद्ध विद्या सीखने और सङ्ग्राम करने की भी आज्ञा है देखो य० अ० १७ मं० ४५ में सभापति आदि को आज्ञा दी है कि जिस प्रकार युद्ध विद्या से पुरुषों को शिक्षा दो उसी भांति स्त्रियों को भी शिक्षा करे और जिस प्रकार वीर पुरुष युद्ध करे उसी भांति स्त्रियां भी करें।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते।
गच्छाऽमित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥

य० अ० २९ मं० ५० में आज्ञा है कि जिस भांति राजा और राज पुरुष विमानादि रथ-घोड़ों के चलाने तथा युद्ध व्यवहारों को जाने उसी भांति उनकी स्त्रियां भी जानें।

आ जंङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२॥ऽउपंजिघ्नते ।
अश्वांजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥

इसके अतिरिक्त जिस भांति राजनीति और विद्या को राजा पढ़ा हो उसी भांति रानी भी पढ़ी हो वह दोनों अर्थात् स्त्री–स्त्रियों का और पुरुष पुरुषों का न्याय किया करें–जैसा य० अ० १३ मं० १६ में कहा है–

ध्रुवासि धरुणास्तृंता विश्वकर्मणा। मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं दृंᳬह ॥

क्योंकि पुरुषों के सम्मुख स्त्रियां भय और लज्जा से यथावत् बोल वा पढ़ नहीं सक्तीं–जैसा य० अ० १० मं० २६ में कहा है–

स्योनासि सीद सुषदासि सीद क्षत्रस्य योनिसि सीद ॥

इसके अनन्तर पत्नी सहित यज्ञ करने का अधिकार है।

इसके उपरान्त य० अ० २० मं० ६२ में लिखा है कि सन्तान अपनी माता से प्रार्थना करे कि हे (सरस्वति) बहुत विद्या से युक्त तू हमारी (पाहि) रक्षाकर अब बतलाइये इस प्रकार के वचन आप को क्या स्त्री शिक्षा की आज्ञा नहीं देते देखिये, य० अ० २९ मं० ४१ में लिखा है कि विदुषी माता अपने पुत्रों को अच्छे प्रकार पुष्ट करती है जैसा कि–

मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।

और य० अ० १० मं० ९ में कहा है कि सन्तान का सुधार जबही होता है जब कि विद्वान् माता से प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त होता है।

य० अ० ८ मं० ४३ में जो स्त्रियां पण्डिता स्त्रियों से शिक्षा पाती हैं वही अपने पतियों को सत उपदेश द्वारा कुकर्म से बचा सकती हैं और अ० १७ मं० २४ में कहा है कि जिस घरमें धार्मिका विद्यावती प्रशंसा युक्त स्त्रियां होती हैं वहां दुष्टकर्म नहीं होते–ऋग्वेद अ०३।अ०८।व०३। मं०४।अ०५।सं०५२।मं०७ में कहा है जो स्त्री विद्या विनय को जानती

है वही अपने पतिको प्रसन्न कर सकती है और य० अ० ३७ मं० १२ में कहा है कि सुलक्षणा पत्नी सब प्रकार से पतिको सुख देती है ऋग्वेद अ०१।अ०४।व०५। मं०१।अ०६।सू०४८।मं०१४ में कहा है जिस प्रकार उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विद्यावती स्त्रियां विश्वको सभूषित करदेती हैं।

अब आप इन वचनों को विचारिये और बतलाइये क्या विनय सुलक्षण विना विद्या और उत्तम शिक्षाके आसकते हैं कदापि नहीं— इसके सिवाय गृह प्रबन्ध स्त्रियों के आधीन होता है क्या यह प्रबन्ध विना उत्तम बुद्धि के उत्तम प्रकार से चल सकता है नहीं २ इसी लिये य० अ० २० मं० ८६ में लिखा है कि कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके अपनी बुद्धि को बढ़ावें।

महोअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥

ऋग्वेदः अ०१।अ०१।व०२३।मं०२।अ०१।सू०३।मं०८। में लिखा है कि एक माता दूसरे पढ़नेवाली और तीसरी उपदेश करनेवाली स्त्रियों के समीप रहने और सेवन करने से बुद्धि विद्या नित्य बढ़ती है।

सरस्वती साधयन्ती धियंन इळा देवी भारतीविश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥

क्यों कि य०अ०३७ मं० ४ में कहा है कि हे मनुष्यो जब तक स्त्रियां विदुषी अर्थात् विद्यावती नहीं होतीं तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती—

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं
देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

इसी हेतु ऋग्वेदः अ०२।अ०७।व०१४।मं०३।अ०३ सू०३१।मं०५ में कहा है कि जिस भांति पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के सब पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जानकर विद्वान् होते हैं उसी भांति स्त्रियां भी हों।

उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे॥

क्योंकि सुशिक्षित पशु भी उत्तम कार्य सिद्ध करलेते हैं तो फिर विद्या की शिक्षा से युक्त पुरुष और स्त्री सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते ।

इस लिये य० अ० १२ मं० ५३ में कहा है कि माता पिता और पढ़ाने हारी विद्यावती स्त्रियों को योग्य है कि कन्याओं को अच्छे प्रकार बुद्धिमती करें—

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

शतपथ में भी स्त्रियों को वेदाधिकार अर्थात् वेद पढ़ने की आज्ञा है—

अथ वेदेपत्नी विस्रंसयति इत्यारभ्य यजुषा
चिकीर्षे ते नैव कुर्यात् इत्यन्तं द्रष्टव्यम् ॥

यम ऋषि ने कहा है कि पहिले समय में स्त्रियां यज्ञोपवीत वेदाध्ययन तथा गायत्री का जप यह सब कार्य पुरुषों के समान करती थीं—

पुराकल्पेषु नारीणां व्रतवन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥

इस के उपरान्त गर्भाधानसंस्कार में—'ओं आदित्यं गर्भं' 'सूर्यो नो दिवस्पातु' 'ज्योषा सवितर्यस्य' 'चक्षुर्नोदेव' 'चक्षुर्नोधेहि' 'सुसंदृशत्वा' आदि मन्त्र हैं ।

इसके अनन्तर सीमन्तोपनयन, निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा चूड़ाकर्म में—'ओं वीरसूस्त्वं' ओंयददश्चन्द्रमसि' 'त्वमन्न परिस्न्नादो वर्धमानो भूमान' 'ओं त्वं जीव शरदः शतंवर्धमानः—इन मन्त्रों के उच्चारण करने की आवश्यकता पड़ती है, तथा विवाहसंस्कार में बहुधा स्थानों पर मन्त्र बोलने का काम पड़ता है, तथा प्रतिज्ञा वेद मन्त्रों से करनी होती है, मनुस्मृति तथा छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि पांचवें

वर्ष पुत्र तथा आठवें वर्ष पुत्री को शिक्षा के निमित्त पाठशाला में भेजदें, जो ऐसा न करें वह दण्डनीय होंगे—

कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ।

इसके उपरान्त शिवजी महाराज पार्वती जी को समझाते हैं कि विद्या पढ़ने से स्त्रियों को बहुमूल्य रत्न हाथ लगते हैं, क्योंकि इसी के बल से पति की सेवा तथा ईश्वर की आज्ञा पालन कर सकती है, वात्सायन ऋषि के बनाये हुए त्रिवर्गशास्त्र के सूत्रों में जो विद्या शम्भुदेश नाम तीसरा अध्याय उसके दूसरे सूत्र का यह अर्थ है कि स्त्री युवा अवस्था से पहिले विद्या को पढ़े ।

स्कन्दपुराण में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, अत्यन्त चाण्डाल आदि सब मनुष्यों की मुक्ति विद्या करके होती है, यथा—

स्त्रियो वा यदि वा शूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियाः परे ।
मुक्तिं च विद्यया प्रायुरिह भोगं तपास्सह ॥

इसके उपरान्त मनुजी ने लिखा है कि स्त्रियों की गवाही स्त्रियां दें—

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युः ॥

अब ध्यान करने का स्थान है कि जब उनको साक्षी देने की आज्ञा शास्त्र में है तो साक्षी के गुण निन्दनीय कर्मों का त्यागना है, तो बतलाइये कि वह अबला विना विद्या के सत् असत्कर्मों की विवेचना क्योंकर करसकती हैं, अतः स्त्रियों को अवश्य ही पढ़ना चाहिये ।

फिर (१) सञ्चय करना । (२) आय व्यय का हिसाब । (३) गृह कार्य्यों में चातुर्य्य होना । (४) स्वच्छता । (५) गर्भाधान । (६) शिशुपालन । (७) पति आदि की सेवा । (८) शिशु शिक्षा । (९) ऐक्य का बीज बोना । (१०) नम्रता पूर्वक प्रियभाषण करना । (११) आपत्य के समय में धीरज धरकर प्रबन्ध करना आदि प्रत्येक स्त्री को करने पड़ते हैं ।

भला बतलाइये कि इन कार्यों को मूर्खा स्त्रियां यथायोग्य करसक्ती हैं ? कदापि नहीं, क्योंकि इन सब कार्य्यों के अर्थ विद्या रत्न का होना

अति ही आवश्यक है, और विना विद्या के इन उपरोक्त वार्ताओं को उत्तम प्रकार से जान ही नहीं सकतीं फिर करना कैसा-क्या आप इस समय प्रत्येक गृह में इन उपरोक्त वार्त्ताओं के प्रबन्ध को यथोचित देखते हैं ? नहीं, नहीं।

देखिये (१) सञ्चयकी तो यह दशाहै कि फूटी कौड़ी पास न निकलेगी यदि मियां दश पैदा करके दें तो बीबी बारह में आग लगा देती हैं, सो भी निकम्मे तथा निठल्ले कार्य्यों में। (२) आय व्यय का हिसाब किताब कौन करे जब उनको दश तक गिनती ही नहीं आती, अक्षर का स्वरूप ही नहीं जानतीं। (३) गृह कार्य्यों में चातुर्य्य होना-यह तो भलीभांति प्रकट है कि न तो वह पाकविद्या को जानती हैं न शिल्प को, भोजनों की कुदशा के कारण नित्यप्रति गृह में रोग ही बने रहते हैं, निर्बलता ही दृष्टि आती है, क्योंकि वह पथ्यापथ्य को नहीं जानतीं, न व्यञ्जनों के बनाने की रीतों से भलीभांति जानकार होती हैं। (४) स्वच्छता-वह इस जीवन मूल पदार्थ से तो अत्यन्त ही अज्ञान हैं, इस विषय में तो उनको कुछ भी नहीं आता, क्योंकि शरीर की आरोग्यता विना स्वच्छता के नहीं होसकती, वह सदा मैले कुचैले रहना, मलिन कपड़े पहिनना भला जानती हैं, हां सोने चांदी के आभूषणों का लादना उनको आता है। (५) गर्भाधान की तो वह कुदशा है कि जिसके लिखने में लाज आती है अर्थात् अल्पायु से ही प्रतिदिन दो २ तीन २ बार गर्भाधान क्रिया में लगी रहती हैं, इस की रीतों वा उपायों को बिलकुल नहीं जानतीं, बहुधा स्त्री आठ मास तक समागम करती चली जाती हैं, कहती हैं कि धान विना पानी के सूख जाते हैं, उसी प्रकार यदि इस को पानी न मिला तो गर्भ सूखकर गिर पड़ेगा, इसके उपरान्त न उनको गर्भ रक्षा आती है, इन मूर्ख वार्ताओं का यह फल होता है कि थोड़े ही दिनों में दोनों हाड़ की माला बनजाते हैं, आयु बल सब ही चला जाता है, इसके उपरान्त लाखों गर्भपात होते हैं, सैकड़ों स्त्री पुरुष सन्तान के अर्थ शिर ठोकते रहजाते हैं, यदि सन्तान होने के उपाय किये जाते हैं तो यह कि धुना, जुलाहे, कोरी, माली, धीमर, काछी आदि मूर्ख भूतभैरव मियां शेख

सट्टोंको पुजवाते उतारे उतरवाते गएडा तावीज करते गोली चूरण खिलाते हैं, कि जिनके कारण उनके रोग असाध्य होजाते हैं, फिर बहुधा स्त्रियां पुत्रादि कामना के अर्थ हट्टे कट्टे सण्ड मुसण्डे नाम के साधू वैरागी के पास जो गांवों के समीप मढ़ी बनाकर रहते हैं, दर्शनों के बहानेआती जाती हैं फिर उन से व्यभिचार भी कराती हैं कि जिस से और भी अपयश होता अर्थात् दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। (६) शिशुपालन प्रथम तो गर्भाधान ही ने उनको सर्वसुख दे रक्खे हैं कि जिसके कारण न बल रहता न उत्साह, तिस पर बुढ़ापे की लकड़ी नेत्रों का प्रकाश, घर के दीपक सैकड़ों बुझ जाते हैं, इसका कारण अज्ञान वा असावधानी है, क्योंकि उनको दूध आदि खिलाने पिलाने नहलाने का कुछ भी ज्ञान नहीं होता वरन आप भी विना विचार भोजनादि करती रहती हैं कि जिससे बच्चों को अफरा जमोघा सूखा आदि रोग होजाते हैं, अन्त को वह यमपुर चलेजाते हैं, इन सब के उपरान्त टीका लगवाने से उनको महा चिढ़ है जिससे बहुधा बच्चे माता के भेंट होजाते हैं, फिर माता पिता का इस दुःख में और भी शिर हिलने लगता है, इन असावधानियों के कारण स्त्रियों को बुखार प्रसूत आदि ऐसे रोग हो जाते हैं कि जिनके कारण जन्म भर रोती रहती हैं, वैद्य की दवा कराने में तो पत्थर पड़ते पर गएडा तावीज के अर्थ चुपचाप धन लुटाती रहती हैं, सच तो यह है कि जो बालक इन विपत्तियों से बचजाते हैं उनके बल न्यून होजाते हैं, क्योंकि प्रथम तो बीज ही निर्बल होता है तिसपर न्यून अवस्था ही से विवाह रूपी बेड़ी डालदी जाती है। (७) पति आदि की सेवा की यह दशा है कि जहां बहू जीने होश सम्भाला पति के कान भरने शुरू किये, आप भी सास ससुर देवर जिठानी आदि से तनिक २ बात पर ऐसी झुंझलाती हैं कि मानों किसी को कारूं का खजाना देदिया है, वा भूमण्डल का राज्य इन्हीं के आधीन है, वा यह सब इनकी ज़र ख़रीद हैं, नित्य प्रति देवासुर सङ्ग्राम मँचा रहता है, परस्पर ताली बजा २ कर ऐसी लड़तीं कि खाना हराम करदेती हैं, अन्त को एक चूल्हे के दो कराकर भी पीतम प्यारे से प्रसन्न नहीं होती, वरन माता पिता भाई इत्यादि के साथ

ऐसी शत्रुता करादेती है कि एक दूसरे का मुंह तक भी देखना पसन्द नहीं करता। (८) शिशु शिक्षा का क्या कहना है, उनको तो विद्यादि कुछ आता ही नहीं जो वह शिक्षा दें, हां नाना भांति के अपगुणों के अङ्कुर उन बालकों के हृदय में जमा देती हैं कि जिनसे बड़ी हानि होती है। (९) ऐक्य का बीज—वाह जी वाह जहां सब कार्य फूट से ही हों वहां ऐक्य का क्या काम, बहुधा स्त्रियां अपने सुयोग्य पति की जो उनकी सब प्रकार से सुध लेता है किञ्चित् बात पर पगड़ी उतारने को तत्पर होजाती तथा ऐसे कटु वचन सुनातीं कि जिन से उसको सात पीढ़ी तक की याद आती है, शरीर क्रोध में भस्म होजाता है, जब एक गृह ही में एकता नहीं रहती फिर भला अन्यत्र एकता क्योंकर रहेगी? (१०) नम्रता पूर्वक प्रियभाषण करना—अजी साहब इस रोग ने तो भारत को और भी ग़ारत कर दिया क्योंकि नम्रता का तो नाम ही नहीं जानते, अपनी २ ऐंठ में डेढ़ चावल की जुदी ही खिचड़ी पकाते हैं, कोई किसी को नहीं गिनता, घर में बहू जी को अपना ही घमण्ड है, सास जिठानी अपने २ नशे में चूर सब ऊटपटांग ही हांकती रहती हैं। (११) आपत्ति के समय धीरज धरना—क्या खूब जब आराम तथा सुख से ही गृह रूपी राज्य का प्रबन्ध नहीं करसकती तो भला आपत्ति में उनका क्या ठीक, यहां तो तनक २ सी बातों पर बुद्धि मारी जाती है, हक्का बक्का होकर सारे दिन रोती रहती हैं, सब अड़ोसी पड़ोसी तथा सम्बन्धी उसके हितू बन अपना २ मतलब बनाते हैं।

इन सब के उपरान्त जब कभी पति आदि परदेश चले जाते हैं तब वह घूंघट वाली स्त्रियां चिट्ठी पढ़ने या पढ़ाने के अर्थ अन्य पुरुषों को बुलाती या उनके पास आप जाती हैं तो सम्पूर्ण भेद खुलजाते हैं तिसपर भी बहुधा बातें लज्जा के कारण लिखने से रहजाती हैं और इसके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियों के फिर और भी गुल खिलते हैं जिन के तमाशे हम आप देखते हैं, भला बताओ तो सही मेले आदि में यह मूर्खा स्त्रियां ठोकते लीला रचतीं तथा आभूषणों के अर्थ गृहों में किस प्रकार दुन्द धुना, जुल्के जमीन को उठालेती हैं, चाहो एक आने रुपये का सूद दो,

चोरी आदि कैसा ही दूषित कर्म करो परन्तु उनको छुम छुम अवश्य ही कराओ, चाहें रोटी मिले या न मिले परन्तु उनके कीमती वस्तु हों।

इनके उपरान्त मूर्खा होने के कारण विधवाओं की दशा कैसी सोचनीय होरही है कि जिसके कहने में लाज आती है, इन सब बातों के अतिरिक्त हम लोगों में मुसलमानों का कोई पानी नहीं पीता परन्तु जब कभी बच्चे बीमार होजाते या गर्भिणी स्त्री को किसी प्रकार की बाधा होजाती है तो उसी समय गृह की स्त्रियां उन रोगों की ओषधियां नहीं करती वरन थोड़ा पानी मसजिद में भेज मुल्ला से पढ़वा कर मंगवाती हैं तथा झूंठा पानी पीती पिलाती हैं।

२–जीवहिंसा करना हम सब के यहां महापाप माना गया है, परन्तु यह स्त्रियां काली देवी पर बकरे, मसानी पर घेंटा, मीरा पर कलेजी, होली दिवाली की रात को अनेक कौतुक करती हैं क्या यह महापाप की बात नहीं है?

३–इन्हीं की कृपा से सन्तान डरपोंक होजाती है क्योंकि उनको बचपन से ही हउआ लूलू आदि का डर दिखाया जाता है।

४–बालकों के बुरे नाम रक्खे जाते हैं जिससे बड़े होने पर उन को लाज आने के कारण नाम पलटना पड़ते हैं, बालकों में झूट बोलने की बान डालने वाली भी स्त्रियां ही हैं क्योंकि वह उनको सिखलाने के समय कहतीं कि लल्ला चीजी कौआ लेगयो, वा यों कहतीं कि–लेजा रे कौआ लेजा! लेजारी चिड़िया लेजा! ऐसा कहकर चीज को छिपा-देती फिर। रे कौआ देजा, ऐसा कहकर वस्तु को दिखलाती हैं। मात्, ऐसे ही वार्तालाप से तरुणाई में भी मिथ्या बोलने को बुरा नहीं झते, इन्हीं कारणों से माता की बात का विश्वास नहीं रहता।

५–जो प्रतिदिन गृह के भीतर रहकर लज्जावती कहलाती वही विवाह आदि में मन खोलकर सब के सम्मुख अच्छे प्रकार अपशब्दों सहित सीठनों को गा अपने को कृतार्थ मानती हैं।

६–बहुधा रीतें ऐसी प्रचलित करदीं कि जिनसे सभ्य मण्डली के सम्मुख लज्जा आती है यथा–चाक, कुआ, चौराहा, घुरा, बांबी, बरगद, क़बर, कूकर आदि पूजना, मियां मदार की जारत को जाना, शेखसद्दों पर चादर चढ़ाना, परी के नाम से बाहर जाना, आदि।

—*:०:*—

अब आप प्राचीन कालकी सुयोग्या विद्यावती स्त्रियों का संक्षेप वृत्तान्त श्रवण कीजिये ।

१—**अरुन्धती**—जो वशिष्ठ मुनि की पुत्री थी, इनका पढ़ा लिखा होना पोथी अरुन्धती से प्रकट है ।

२—**अनुसुइया**—जो अत्रि मुनि की स्त्री थी, रामायण से प्रकट है इन्हों ने सीता जी को धर्मशास्त्र के अनुकूल पतिव्रत धर्म सुनाया था।

३—**रुक्मिणी**—जो श्रीकृष्ण महाराज की स्त्री थी, इनका पढ़ा लिखा होना भागवत से विदित है, इन्हों ने श्रीकृष्ण महाराज को चिट्ठी लिखी थी ।

४—**रेनुका**—धर्मशास्त्र अच्छे प्रकार से जानती थी, अति चतुर गिनी जाती थी ।

५—**द्रौपदी**—जो अर्जुन की स्त्री थी, पोथी भक्तमाल और महाभारत के देखने से प्रत्यक्ष होता है कि यह विद्यावती चतुरा और कुशला थी ।

६—**उत्तरा**—जो राजा विराट् की पुत्री थी, महाभारत से विदित है कि इस के पिता ने पढ़ने के अर्थ अर्जुन के पास भेजा था जो पढ़ लिख कर ऐसी योग्या हुई कि जिस की गिनती विदुषी स्त्रियों में होनेलगी ।

७—**मन्दोदरी**—धर्मशास्त्र को अच्छे प्रकार से जानती थी इसी कारण से रावण को अनेकान प्रकार से समझाया था कि तुम रामचन्द्र जी से अपना अपराध क्षमा कराकर सन्धि करलो ।

८—**सुलोचना**—जो मेघनाद की बधू थी, रामायण से विदित है कि इसने अपने पति का लिखा हुआ पत्र पढ़ा था ।

९—**तारा**—बालि की स्त्री थी, इसका ज्ञानवती होना रामायण से विदित है, इसने अपने पति को रामचन्द्र की आधीनता स्वीकार के अर्थ बहुत कुछ समझाया था और बालि की विजय के कारण प्रसिद्ध थी ।

१०—चन्द्रसखी—अपने समय में कविता के कारण प्रसिद्ध थी।

११—ऊखा—बाणासुर की पुत्री थी, पार्वती से शिक्षा ग्रहण कर योग्यता प्राप्त की थी।

१२—कुन्ती और गान्धारी—इनका विद्यावती और चतुरा होना महाभारत से प्रकट है।

इनके उपरान्त, दमयन्ती जो राजा नल की स्त्री थी, लीलावती जो राजा भोज की स्त्री थी इनकी बनाई कई पुस्तक गद्य पद्य संस्कृत तथा भाषा में हैं, लीलावती इन्ही की बनाई हुई है, पद्मावती जो राजा विजयपाल की पुत्री थी, विद्योत्मा जो राजा शारदानन्द की पुत्री थी इस ने अपने पति कालिदास नामी मूर्ख को शिक्षा देकर अति उत्तम कवि बनादिया था, जिनके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ हैं, विद्याधरी जो मणिमिश्र की स्त्री थी इसी ने राजा भोज को शिक्षा देकर स्त्री शिक्षा का प्रचार कराया था, राजा पृथु की रानी जो शिक्षा पर दस लाख रुपया व्यय किया करती तथा आप ही परीक्षा लिया करती थी, अहल्या बाई यह विद्या बल से सम्पूर्ण राज्य कार्य धर्मशास्त्र के अनुसार किया करती थी जो हुलकर की स्त्री थी, वदूला ने अपने पुत्र को धर्मशास्त्र की शिक्षा दी थी, मन्दालसा ने अपने पुत्र को जन्म से ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया था, कैकेयी यह युद्ध शास्त्र को अच्छे प्रकार जानती थी, शिवा जो वेदविद्या को जानने वाली थी जिस की योग्यता की प्रशंसा व्यास जी ने की है, देवहूती जिनको कपिलाचार्य ने ब्रह्म विद्या और वेदविद्या पढ़ाई थी, तद् अनन्तर, राधिका, अञ्जनी, सत्यरूपा, अगमा, पदमा, सुनवा, गार्गी, सुलभा, कुरमती, राजा जनक की स्त्री, इत्यादि पढ़ी लिखी सुज्ञान होगई जिनके वृत्तान्त में एक ग्रन्थ बन सकता है इनके उपरान्त और भी बहुधा स्त्री सुज्ञान होगई हैं।

वर्तमान में भी ऐसी सुयोग्या स्त्री इस भरतखण्ड में (जैसी महाराणी स्वर्णमयी, महाराणी यमुनाबाई बड़ौदा, बेगम भूपाल) उपस्थित हैं जो अपनी बुद्धिमानी में प्रसिद्ध तथा राज्यशासन को अच्छे प्रकार से चलाती हैं, जिन की प्रशंसा चहुंओर फैलरही है, महाराणी स्वर्णमयी को तो सब ही भारतवासी जन जानते होंगे क्योंकि इन का पुण्यरूपी

यश प्रति स्थान पर सुगन्धित पुष्प के समान खिल रहा है, इसके उपरान्त श्रीमती महाराणी विक्टोरिया कैसर हिन्द को देखिये कि भारत आदि देशों का प्रबन्ध किस प्रकार से कर रही हैं कि जिन के राज्य में शेर और गाय एक घाट पानी पीते हैं जिस से राजा राज-प्रजा सुखी दिन पर दिन राज्य की उन्नति होती जाती है, सम्पूर्ण प्रबन्ध उत्तमता से चल रहे हैं, शत्रु उनके आतङ्क से भयभीत होते हैं, हम कहां तक इन के राज्य की प्रशंसा लिखें क्योंकि सर्व स्त्री पुरुष अपने नेत्रों से अवलोकन कर रहे हैं।

मान्यवरो! यही सब सुधारों का सुधार है, यदि आप प्राचीनकाल की भांति श्रीकृष्ण से योगिराज, व्यास से उपदेशक, युधिष्ठिर से सत्य-वादी, भीष्मपितामह से जितेन्द्रिय, द्रोणाचार्य्य से गुरु, कर्ण से दानी, विदुर से विचारशील, रामचन्द्र से आज्ञाकारी, भास्कराचार्य से गणि-तज्ञ, अर्जुन भीम से योधा, लक्ष्मण भरत से भाई इत्यादि धार्मिक गुणों से परिपूर्ण उत्पन्न करना चाहते हो तो महाशयो कुन्ती, अनुसुया गार्गी, मन्दालसा, कौशिल्या, देवहूती, शिवा, सुलभा, सत्यरूपा आदि की भांति स्त्रियों को वेदादि सत्य विद्याओं से भूषित करो, क्योंकि देव तथा देवियों के ही समागम से देवी देवता उत्पन्न हो सकते हैं, अन्यथा देव और राक्षस तथा राक्षस देवी के संयोग से कभी पूर्ण सुयोग्य सन्तान उत्पन्न नहीं होसकती, प्राचीन काल में स्त्रीशिक्षा के प्रभाव से आनन्द रूपी अमृत की वर्षा होती थी, यही भूमि विद्वान् रूपी बहुमूल्य रूपी रत्नों को उगलती थी।

मान्यवरो स्त्री शिक्षा न होने से नाना प्रकार के दुःखरूपी तप्त कुण्ड में पड़े हुए भुन रहे हैं, हे देश के सुधारनेवालो, हे सन्तान पर दया करनेवालो, हे देवताओं के रक्त से उत्पन्न होनेवालो, हे ऋषि सन्तानो इस भारत रूपी डूबती नैय्या को स्त्रीशिक्षा रूपी बल्ली से पार कर भारत के दुःखड़ों को मेंट यश के पात्र बनिये, प्यारे सुजनो अब मैं इस को समाप्त करता हूं—परन्तु इतनी और प्रार्थना है कि इन की शिक्षा विदुषी स्त्रियों से कराना चाहिये जिस से विद्या की वृद्धि हो जैसा य० अ० १० मं० ८५ में कहा है—

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥

ऋग्वेद अ० २ अ० ३ व० २२ मं० १ अ० २२ सू० १६ में कहा है कि जो स्त्री समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ के पढ़ाती है वही सब की उन्नति करती है ।

मुख्य तात्पर्य्य इस कथन का यह है कि इन की शिक्षा विदुषी और धर्मात्मा स्त्रियों से ही करानी चाहिये और पुरुषों से नहीं, जब ही देश का सुधार हो सकता है इसलिये कृपा करके शीघ्र पुरुषों से शिक्षा कराने की प्रणाली को भारत से उठा दीजिये । और—

पाठशाला का स्थान जनसमुदाय से पृथक् और उसकी दीवारें इतनी ऊंची हों कि कोई जन उचक कर न देख सके और परोस में वेश्या का वास न हो नगर से बहुत मिला न हो स्वच्छ स्थान हो जहां का पवन पानी शुद्ध हो इस विषय में मनु जी ने अ० ४ श्लोक १०७ और १०८ में लिखा है कि धर्म की अतिशय इच्छा वालों को नगर व ग्राम में सर्वदा अनध्याय है अर्थात् एकान्त जङ्गल में पाठशाला होनी चाहिये, दुर्गन्धित स्थान पर न पढ़ें जहां मुर्दे पड़े हों ऐसे ग्राम में और पापी कपटी के समीप रोते हुए और भीर भार में पढ़ने का निषेध है—

नित्यानध्याय एवस्याद् ग्रामेषु नगरेषु च धर्मनैपुण्यकामानां
पूतिगन्धे च सर्वदा अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ
अनध्यायोरुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥

और औशनस्मृति में कहा है कि पवित्र वा एकान्त जगह में ब्रह्मचर्य रख कर पढ़े परन्तु पुत्रियां ब्रह्मचर्य्याश्रम में भिक्षा न मागें उनके घर वाले भोजनादि का स्वयं प्रबन्ध कर देवें, हां उन को ब्रह्मचर्य्य से अवश्य रहना चाहिये ।

अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः । अ० ३ ॥

——*:०:*——

[५-विवाह अर्थात् शादी]

प्यारे सुजनो, इस समय हमारे देश में बुखार चेचक हैजा आदि रोगों की बहुतायत है कि जिन से भारत की कुदशा होरही है परन्तु एक अन्य महान् रोग फैलाहुआ है कि जिस मूजी के पन्जे से कोई भारतवासी रिहाई नहीं पाता, जहां वह रोग सिरपर चढ़ा थोड़े ही दिनों में ऐसा थोथा कर देता है जिस प्रकार गेहूं आदि का सत निकलने पर उसकी कुदशा होजाती है जो किसी काम में नहीं आता, इस बीमारी से फोक का फोक वरन उस से भी अधिक निकाला जाता है कि जिस से सूरत भयावनी नांक कान आंख आदि इन्द्रियां थोड़े ही दिनों में निकम्मी हो जाती हैं, विचारशक्ति का नाम ही नहीं रहता, उत्साह तथा साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, सच पूछो तो जैसे बुखार के रहने से तिल्ली आदि बीमारी हो जाती है उस से अधिक इस महारोग के होने से प्रमेह अफरा दमा खांसी आदि रोग उत्पन्न होकर शरीर की चमक दमक जाती रहती है, और आलसी क्रोधी हो बुद्धि भ्रष्ट होजाती है, मानो इसी रोग ने भारत को चौपट कर दिया, सभ्य से असभ्य, राजा से फक़ीर और दीर्घायु से अल्पायु बना दिया, भाइयो कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख तथा वैभव को इसने छीन लिया।

बहुधा हमारे पाठक गण इस बात को सुनकर अपने मन में विचार करने लगे होंगे कि यह महान् रोग कौन भला है, अथवा उस के नाम सुनने के लिये विकल होंगे, सो हे सज्जनो ! इस महान् रोग को तो सब जन जानते हैं, क्योंकि प्रतिदिन आप ही के घरों में उस का निवास है, कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो वर्त्तमान समय में उससे न सताया गया हो, किसने उसके पापड़ों को न बेला हो, कौन उसके दुःखों से घायल होकर न तड़पड़ाता हो, यह वह मीठी-मार है कि जिसके लगते ही अपने आप सर्वसुखों की पूर्ण आहुति दे [illegible] मिट्टू बनजाते हैं, इसी का नाम जादू है क्योंकि कहा है—

क्या लुत्फ़ जो ग़ैर परदा खोले।
जादू वही जो सिर पै चढ़के बोले॥

इस पर भी तुर्रा यह है कि जब यह बीमारी जिस गृह में प्रवेश करती है तो दो तीन चार छः माह से अपनी आमद की ख़बर सुनाती है, जब निकट दिन आते हैं तब सब गृह को पूर्ण रूप से स्वच्छता कराती है, कपड़े लत्ते सुथरे पहिनाती है, गृह में मङ्गलाचरण होते हैं, इधर उधर से भाई बन्धु आते हैं, जिस राति को उस महारोग की आमद होती है सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच जाता है, और उस गृह में तो वह उत्साह होता है कि जिसका पारावार नहीं, दर्वाजों पर नौबत झड़ती है, रण्डियां नाच २ कर मुबारकबादें देती हैं, धूर गोले चलते हैं, पण्डित जन मन्त्र उच्चारण करते हैं, फिर सब मिलकर उस महारोग को कि जिसके सिर "मौर" होता है चपेट देते हैं, प्रातः होते ही सब स्थानों में मनादी होजाती है।

अब तो यह महान् रोग प्रत्यक्ष प्रकट होगया, कहिये किस धूम धाम से आता है, क्या खेल खिलाता है, कैसे २ नाच नचाता है, सब को बेहोश करदेता है, अड़ोसी पड़ोसी तक इस कौतुक में वशीभूत होजाते हैं, सच पूछो तो इस रोग का ऐसे गाजे बाजे से दख़ल होता है कि जिस में किसी प्रकार की रोक टोक नहीं होती, वरन सब मिल के आप उस महारोग को बुलाते हैं कि जिसका नाम "न्यून अवस्था का विवाह" है।

अब ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि जो २ हानियें भारतवर्ष में हुईं उनका मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है, इसलिये अब हम वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रमाणों से सृष्टिक्रम और प्रचलित रीतों से अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाते हैं कि विवाह का समय क्या था वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता था, मान्यवरो जब हम उपरोक्त ग्रन्थों पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट प्रकट होता है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान उत्पन्न करना है जैसा कि अ० का० ५ अनु० ५ व० २५ और मनुस्मृति अ० ८ श्लो० ९६ में लिखा है—

प्रजायैत्वा नयमसि ॥ अ० ॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः ॥ मनु० ॥

इसीलिये मनुष्यो अपनी सन्तानों का विवाह उस समय करना अभीष्ट है जब कि वह उसके योग्य हो, इसके उपरान्त चरक में १६ वर्ष की स्त्री के साथ समागम करने की आज्ञा है अर्थात् यही समय विवाह करने का है और इससे प्रथम यह महात्मा विषय करने की आज्ञा ही नहीं देते और यह शिक्षा करते हैं कि जो स्त्री पुरुष इस से न्यून अवस्था में समागम करते हैं उनका प्रथम तो गर्भ ही नहीं रहता यदि रहा भी तो पूरे दिनों तक नहीं ठहरता अर्थात् गर्भपात होजाता है, कदाचित् ठहर भी गया तो होने पर मृत्यु के मुंह में जाता है यदि बच भी गया तो दुर्बल इन्द्रिय होता है, अल्पायु में परमधाम को चला जाता है जैसा कि—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान्गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

ऋग्वेद मं० ३ सू० ८ मं० ४ में लिखा है—

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवयो उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः ॥

जो मनुष्य तरुण होकर विद्याध्ययन कर अच्छे प्रकार सुन्दर आचरण पर चलकर विवाह करता वह विद्वान् तथा महात्मा पुरुषों में पूजनीय होता है ।

अथर्ववेद कां० ११ सू० ५ में लिखा है—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

कि ब्रह्मचर्य्य को पूर्ण कर कन्या तरुण पति को प्राप्त हो ।

फिर ऋग्वेद म० ३ सू० ५५ में लिखा है—

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥

अर्थात् तरुण पुत्री पूर्ण विदुषी होकर सुन्दर विद्या वाले जवान पुरुष से विवाह करे, अन्यथा न्यून आयु में कदापि पुरुष का ध्यान न करे।

और ऋग्वेद मं० १ सू० १७९ में लिखा है—

तुर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥

अर्थात् तरुण पुत्र को तरुण पुत्री के साथ विवाह करने से सुसन्तान उत्पन्न होती और दोनों पूर्ण आयु को पहुंचते हैं, इसलिये मनुष्यों को ऐसा ही करना चाहिये।

मनुजी महाराज ने अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि जिस मनुष्य ने विधिपूर्वक तीनों वेद अथवा दो वेद वा एक वेद पढ़लिया है और ब्रह्मचर्य्य नियम खण्डित नहीं किये उस को योग्य है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥

और अध्याय ३ श्लोक ४ में लिखा है कि शिष्य को उचित है कि गुरु से आज्ञा लेकर स्नान और विधि पूर्वक समावर्त्तन व्रत को पूर्ण कर उसके उपरान्त अपने वर्ण की स्त्री से जिसके लक्षण अच्छे हों विवाह करे, यथा—

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेतद्विजोभार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥

ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १ श्लोक ११ में लिखा है—

गुरुवेतु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
वेदं व्रतानि वापारं नीत्वा ह्युभयमेव वा॥

वेदों के व्रतों को पूरा कर गुरु की आज्ञा से स्नान कर विवाह करे।

विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २५ में लिखा है—

अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च।
गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः॥

गुरुकुल में जा वेद पढ़ उनकी आज्ञा लें दक्षिणा दे गृह में आ विवाह करे।

संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ३४ में लिखा है-

अतोद्विजः समावृत्तः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत् ॥

ब्रह्मचर्य्य आश्रम से समावर्त्तन संस्कार कर गृह में आकर विवाह करे

शङ्खस्मृति अ० ३ श्लोक १५ में कहा है-

एवं व्रतस्तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ।
गुरवे च धनं दत्वा स्नायति तदनुज्ञया ॥

वेद पढ़ गुरु की आज्ञा से स्नान कर गृहस्थाश्रम को ग्रहण करे।

व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४२ में लिखा है-

समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभंद्विजः ।
स्नायीतगुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तो दितदक्षिणः ॥

चारों वा एक वा दो वेदों को पढ़ गुरु की आज्ञा ले दक्षिणा देकर जो स्नान करते हैं उसको समावर्त्तन कहते हैं।

ऐसा ही दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ६, ७, हारीतस्मृति अ० १ श्लोक १२ से प्रकट है।

मार्कण्डेय पुराण अध्याय २८ श्लोक १४, १५ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरुके यहां से एक, दो, चार वेद पढ़ गुरु को दक्षिणा दे प्रणाम कर गृहस्थधर्म करने की इच्छा हो तो गृहस्थाश्रम में आये अर्थात् विवाह करे, जैसा-

एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्यगुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोऽथवान्दत्वा दक्षिणां गुरुवेचततः ॥
गार्हस्थ्याश्रम कामस्तु गृहस्थाश्रम मावसेत् ।

विष्णुपुराण अ० ३ श्लोक ६ में लिखा है-

गृहीतग्रात्थ्यवदश्च तदाऽनुज्ञामवाप्यवै ।
गार्हस्थ्य मावसेत्प्राज्ञो निष्पन्न गुरुनिष्कृतिः ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अ० १७ श्लोक ३८ में लिखा है कि समावर्त्तन नाम संस्कार को कर विवाह करे।

आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्पश्चरेत् ॥

ऐसा ही य० अ० १२ मं० ५४ में कहा है कि माता पिता आचार्य सन्तानों को धर्मयुक्त शिक्षा दें जिस से सन्तान बुरे व्यसनों को त्याग सनातन संस्कार के पीछे स्वयंवर में विवाह कर पुरुषार्थ के साथ आनन्द भोगें—

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो शास्त्रानुकूल समावर्तन का अधिक समय ४८ वर्ष और न्यून से न्यून २५ वर्ष का है जैसा आपस्तम्ब धर्मशास्त्र प्र० २ प० ११ खं० ३० में लिखा है—

तथा व्रतेनाष्टचत्वारिंशत्परिमाणेन ॥

छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि ब्रह्मचर्य्य तीन प्रकार का होता है पहिला यह कि जो अपने वीर्य्य को २४ वर्ष तक स्खलित नहीं होने देते उनके शरीर में प्राण बलवान् होकर शुभगुणों के वास करानेवाले होते हैं उसी को कनिष्ट ब्रह्मचर्य्य कहते हैं, दूसरा ३६ वर्ष तक जो अपने वीर्य्य को गिराने नहीं देता उसके प्राण इन्द्रियां अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होकर श्रेष्ठ होजाते हैं उसको मध्यम ब्रह्मचर्य्य कहते हैं, तीसरा ४८ वर्ष तक जो अपने वीर्य्य को रोकता है उसके प्राण अनुकूल होकर सब विद्याओं को ग्रहण करता है उसको उत्तम ब्रह्मचर्य्य कहते हैं।

प्रिय सज्जन पुरुषो! इन सब प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट होगया कि न्यून ब्रह्मचर्य्य में पुरुष की आयु २५ वर्ष तथा स्त्री की १६ वर्ष की नियत थी, ऐसे ही मध्यम ३६ तथा उत्तम ४८ वर्ष, यही विद्याध्ययन का समय नियत किया गया था।

शरीर व आत्मा बलिष्ट होजाने के पश्चात् विवाह का समय नियत

किया गया था, अर्थात् समावर्त्तन के पश्चात् गुरुकुल से गुरु की आज्ञा से विवाह होते थे, मान्यवरो यदि आप अपनी सन्तानों को सुखपूर्वक देखा चाहते हो तो सब से प्रथम वेदानुकूल ऋषियों की इस आज्ञा को प्रचलित कीजिये, यही आप के पुरुषों की सनातन रीति है, जिस के अनुसार प्राचीनकाल में वेदानुसार तुल्यगुण कर्म स्वभाव से संयुक्त स्त्री पुरुष स्वयंवर में विवाह कर आनन्द भोगते थे, जैसा कि य० अ० १५ मं० ८ में लिखा है—

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदासि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय २२१ में श्रीकृष्ण महाराज ने बलभद्र जी से कहा है कि जो पुरुष अपनी कन्या का विवाह विना उसकी इच्छा के करते हैं वह कन्यादान नहीं करते वरन अपनी कन्या को पशुवत् वेचते हैं, वह वेद तथा सदाचार के विरुद्ध हैं इसलिये उक्त योगीश्वर आज्ञा देते हैं कि विवाह स्वयंवर की रीति से होना चाहिये, यथा—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनु मन्यते ।
विक्रियं चाप्यपत्यस्य कः कुर्य्यात् पुरुषो भुवि ॥

और ऐसा ही मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक ९० में लिखा है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशम्पतिम् ॥

महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ४४ श्लोक १६ व १७ में भी लिखा है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुवती सती ।
चतुर्थेत्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्त्तारमर्जयेत् ॥
प्रजान हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ ! ।
अतोऽन्यथा वर्त्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः ॥

तीन वर्ष तक ऋतुवती होने के पश्चात् कन्या वर की इच्छा करे, तीन वर्ष उपरान्त अपने समान पति को प्राप्त होने पर कन्या आप विवाह करे।

देखो वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ११८—

पति संयोग सलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता ॥

अर्थात् सीता जी ने अत्रि ऋषि की स्त्री अनसुइयां से कहा है कि पति के सहवास योग्य मेरी अवस्था हुई तब मेरे पिता को मेरे विवाह की चिन्ता हुई, मान्यवरो जब राजा जनक ने स्वयंवर रचा था तो यह भी प्रण किया था कि जो कोई धनुष् को तोड़ेगा उस के साथ सीता का विवाह होगा, जिसके लिये अनेक राजा महाराजा एकत्र हुए परन्तु महाराजा रामचन्द्र ने धनुष् को तोड़ा सीता जी ने जयमाला डाली फिर रामचन्द्र के साथ वैदिकरीत्यनुसार विवाह हुआ, इसी भांति लोपमुद्रा तरुण अवस्था को प्राप्त हुई तब उस के पिता ने उसके सदृश अगस्त ऋषि को खोज कर व्याह दी, द्रौपदी का विवाह राजा द्रुपद ने मछली भेदने पर नियत किया था जिस को अर्जुन ने भेदकर विवाह किया।

इसी प्रकार राजा नल का दमयन्ती, पाण्डु का कुन्ती, तथा अज का इन्दुमती के साथ स्वयंवर की रीति से विवाह हुआ था, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने पूर्ण अवस्था में अपनी इच्छा से राजा ययाति से विवाह किया था।

अब इस बात की आवश्यकता उत्पन्न हुई कि स्वयंवर विवाह किसको कहते हैं, महाशयो यह आठ प्रकार के विवाहों में से परम उत्तम विवाह है, जिस में कन्या का पिता सम्पूर्ण मनुष्यों को एक तिथि पर एकत्र होने की सूचना देता था, उन आये हुए पुरुषों में से जिस को पुत्री अपने गुण कर्म स्वभावानुकूल जानकर जयमाला डाल विवाह करती थी।

बहुधा स्वयंवरों में कन्या का पिता कोई प्रण करता था तो उस प्रण के पूर्ण होने पर विवाह होता था।

देखिये महाभारत आदि पर्व अध्याय १२ में कुन्ती के स्वयंवर का वर्णन इस प्रकार से लिखा है कि उस रूपवती पूर्ण युवा समस्त गृह कार्यों और गुणों से युक्त कुन्ती से बहुत से राजा महाराजाओं ने विवाह करना पसन्द किया परन्तु उस महाराणी ने पाण्डु को उत्तम समझ स्वयं अपना पति स्वीकार किया इसके अनन्तर अनेक दृष्टान्त महाभारत में पाये जाते हैं।

अब आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि उस समय महाराणी कुन्ती की क्या अवस्था होगी उन्हों ने बड़े राजाओं को त्याग कर पाण्डु से विवाह किया, श्री महाराणी सीता जी की क्या आयु होगी जब उन्हों ने अनसूया से कहा कि मैं विवाह योग्य हुई, सुलभा की क्या अवस्था थी जब कि उन्हों ने श्रीकृष्ण महाराज को पत्र लिखा था, अब स्पष्ट प्रकट होगया कि उस समय इन सब की अवस्था युवा होगी, और विद्या में भी योग्यता रखती होंगी क्योंकि ऐसी परीक्षा विद्या के विना नहीं हो सकती।

इसी भांति कुन्ती श्रीकृष्ण की फूफी, गान्धारी जो महाराज धृतराष्ट्र की स्त्री थी, लोपमुद्रा जो अगस्त महर्षि की पत्नी थी, अरुन्धती जो बड़ी पतिव्रता श्री महर्षि वशिष्ठ जी की पत्नी थी, मैत्रेयी गार्गी बड़ी पण्डिताओं के दृष्टान्त से विदित होता है कि इन के विवाह पूर्ण अवस्था ही में हुए थे।

इसके अनन्तर विवाह होने से मनुष्य गृहस्थ हो जाते हैं जिनको प्रत्येक प्रकार के वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वह सब धन से प्राप्त होती हैं, धन विद्या आदि उत्तम गुणों से मिलता है, इसी कारण प्राचीन काल में विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह होता था, स्मृतिकारों ने भी यही आज्ञा दी है कि प्रथम आयु के चौथाई भाग में गुरुकुलमें रहकर विद्या पढ़े दूसरे भाग में विवाह कर गृह में वास करे, मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १ में लिखा है—

चतुर्थमायुषो भाग मुषित्वाऽऽद्यं गुरौ द्विजः।
द्वितीयं मायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्॥

क्योंकि विना विद्या और जितेन्द्रियता–पुरुषार्थ के गृहस्थाश्रम-रूपी यज्ञ पूर्ण नहीं होसकता इसलिये य० अ० १२ मं० १८ में स्पष्ट कहा है कि ब्रह्मचर्य्य–उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा के बल–आरोग्यता–पुरुषार्थ–ऐश्वर्य–सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग–यम नियम आदि सामग्री को सञ्चय कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना अभीष्ट है—

दि॒वस्परि॑ प्रथ॒मं ज॑ज्ञे अ॒ग्निर॒स्मद् द्वि॒तीयं॒ परि॑ जा॒तवे॑दाः।
तृ॒तीय॑म॒प्सु नृ॒मणा॒ अज॑स्र॒मिन्धा॑न एनं जरते स्वा॒धीः॥

य० अ० १८ मं० ६४ में कहा है कि स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें वे विवाह से प्रथम बल पराक्रम–परिपूर्णता आदि सामग्री करके युवावस्था में स्वयंवर की विधि से विवाह कर धर्म से दान अदान–मान सम्मान को जाने।

यद्द॒त्तं यत्प॑रा॒दानं॒ यत्पू॒र्त्तं याश्च॒ दक्षि॑णाः।
तद॒ग्निर्वै॑श्वकर्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत्॥

इसके अतिरिक्त वैद्यक पर ध्यान दीजिये जिसमें शरीर के आरोग्य रखने के नियम हैं, सुश्रुतशास्त्र अ० १० में स्पष्ट कहा है कि पच्चीस वर्ष के पुरुष का १६ वर्ष की कन्या से विवाह होना चाहिये, उनसे उत्पन्न हुई सन्तान ही माता पिता की सेवा तथा धार्मिक काम करने वाली होती है यथा–

अथास्मै पंचविंशति वर्षाय षोडशवर्षां पत्नीमा-
वहेत। पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति॥

चरक में लिखा है–

शुक्रन्तु क्षयते तस्य ततः प्राप्नोति सक्षयम्।
घोरांव्याधिमवाप्नोति मरणांवा समृच्छति॥

जो मनुष्य न्यून अवस्था में विषय करने लगजाते हैं उनका वीर्य्य विगड़ कर उनको बहुत प्रकार के रोग होजाते हैं।

यदि हम संसार भर की कौमों की ओर दृष्टि डालते हैं तो वही अपने पुराने पुरुषों की रीति जो वेद आदि सत्य शास्त्रों की कि जिस को बुद्धि भी स्वीकार करती है प्रचलित पाते हैं देखलो भारत ही में मुसलमानों में तरुणाई पर शादी होती है, अंगरेज भी इसी प्रथा पर चलते हैं, जिससे उनके डील, डौल गुण विद्या साहस आदि देखने में आते हैं, देखिये श्रीमती महारानी कैसरहिन्द ने १८ वर्ष तक यथावत् ब्रह्मचर्य्य सेवन किया जिससे श्रीमती की आकृति उत्तम, आंखें नीली, नाक स्वच्छ अत्यन्त उत्तम, मुखड़े की छवि मोहनी, दांत अच्छे सुन्दर साफ कि जिनके देखने से आरोग्यता व स्वभाव की उत्तमता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है, आपने फ़ारसी, जर्मनी, लेटिन आदि भाषायें सीखी हैं, गणित भूगोल के अनन्तर गान तथा शिल्पविद्या में पूरी महारत हासिल की है, राज्यशासन प्रजापालन की रीतें अच्छे प्रकार से जानती हैं, अपरमित व्यय तथा परमित व्यय के हानि लाभ से खूब जानकार हैं, इन सब खूबियों के अतिरिक्त उनके चित्त में दया, परोपकार, साहस, गम्भीरता, मधुर वचन आदि गुण हैं, श्रीमती ने श्रीयुत शाहजादे अलबर्ट को आप पसन्द कर विवाह किया था कि जो उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त वैद्यक न्याय मीमांसादि के पूरे विद्वान् थे पर विशेषता यह थी कि अच्छे प्रकार देशाटन किये हुए श्रेष्ठ घराने के थे, व्याह समय श्रीयुत की आयु २५ वर्ष की थी, तब ही तो पति पत्नी में वह प्रेम रहा कि जिसका हम वर्णन नहीं करसकते, राज्यशासन को देखकर उनकी बुद्धि की किससे तुलना होसकती है, आप के प्रताप से शेर और गाय एक स्थान पानी पीते हैं।

शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम रीति पर कुछ ध्यान न देकर लड़के लड़कियों की शादी ८ तथा १० वर्ष में करना उत्तम जान कहते हैं कि—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां॥

कन्या की आठ वर्ष में गौरी, नव वर्ष में रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या तदुपरान्त रजस्वला संज्ञा होजाती है, यदि इस समय तक लड़की का विवाह न हो तो माता पिता बड़ा भाई नरक को जाते हैं।

मान्यवरो! यह श्लोक कदापि माननीय नहीं हैं, क्योंकि लड़की का रजस्वला होना ईश्वरीय नियम है आरोग्यता अथवा युवा अवस्था प्रारम्भ होने का चिह्न है, फिर इसमें माता पिता ज्येष्ठ भाई का क्या दोष जो पापी गिने जावें, यही ठीक माना जावे तो उपरोक्त ऋषि मुनि तथा वैदिक ग्रन्थ कर्त्ताओं के वचन झूंठे होजावेंगे, सृष्टि की आदि से लेकर राजा जनक, द्रुपद, भीष्म आदि राजा प्रजा सब ही नर्कगामी हुए होंगे, परन्तु यह बात असम्भव है फिर हम क्योंकर नर्क में जासकते हैं?

वर्त्तमान समय में भी बहुधा कौमों तथा कान्यकुब्जमण्डली अथवा निर्धनों के विवाह लड़की के रजस्वला होने के पश्चात् होते हैं, क्या यह नर्क को जाते हैं, कदापि नहीं।

उपरोक्त श्लोकों का केवल यह अभिप्राय जान पड़ता है कि जब मुसलमान हमारी कन्याओं को छीनते थे तो उनके धर्म बचानें के अर्थ बनाये गये होंगे, ताकि कन्याओं का विवाह न्यून अवस्था में होजावे, क्योंकि मुसलमानों की धर्म पुस्तकानुसार व्याही कन्याओं का छीनना अधर्म मानागया है।

मान्यवरो! यदि यही बात है तो भी आप इस रीति को छोड़कर वेदानुसार चलिये, क्योंकि इस समय आप की धर्म परिपाटी में कोई बाधा नहीं डालसकता।

वर्त्तमान समय के डाक्टर लोग पुकार २ कर कहते हैं, कि ऐसे व्याहों से कुछ लाभ नहीं, देखिये डाक्टर छियूहवी स्मिथ साहब (साविक प्रिन्सिपिल मेडिकल कालिज कलकत्ता) का वचन है कि न्यून अवस्था के विवाह की रीति अत्यन्त अनुचित है क्योंकि इससे शारीरिक तथा आत्मिक बल जाता रहता है, मन की उमग चली जाती है, फिर सामाजिक बल कैसा!

डाक्टर नोबीमनकृष्ण बोष का वचन है कि शारीरिक बल के नष्ट होने के जितने कारण हैं उन सब में विशेष न्यून अवस्था का विवाह जानो, यही मस्तक के बल की उन्नति का रोकने वाला है।

मिसस पी० जी० फिफर्सिन (लेडी डाक्टर मुम्बई) का कथन है कि हिन्दुओं की स्त्रियों में रुधिर विकार तथा चर्मदूषणादि बीमारियां अधिक होने का कारण वाल्यविवाह ही है, क्योंकि सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती है, फिर उनको दूध पिलाना पड़ता है जब कि उनकी रगें दृढ़ नहीं होतीं जिससे माता दुर्बल होकर नाना प्रकार के रोगों में फस जाती है।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार एम० डी० का वचन है कि वाल्यावस्था का व्याह अत्यन्त बुरा है, इससे जीवन की उन्नति की बहार लुटजाती तथा शारीरिक उन्नति का द्वार बन्द होजाता है, उक्त डाक्टर साहब ने सभा के बीच में यह भी वर्णन किया था कि मैं तीस वर्ष की परीक्षा से कहसकता हूं कि २५ फीसदी स्त्री वाल्यावस्था के व्याह के हेतु मरती हैं तथा २५ फी सदी मनुष्य इसी से ऐसे होजाते हैं कि जिनको सदा रोग घेरे रहते हैं।

अब विचारिये कि विवाह क्या है, मानों स्त्री और पुरुष की दृढ़ प्रतिज्ञा है, अब मैं आप से पूछता हूं कि जो बातें हम आप न्यून अवस्था में किसी से कहते हैं क्या फिर वह तरुण होने पर कोई भी याद करता है ? कदापि नहीं, जब कोई किसी से कहता है वह कह-देते हैं जिस बालपन की बातों का क्या ठीक, यह भी सच है जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं होता तब तक उसके क़ौल फ़ेल का क्या ठीक, इसी कारण इस समय कानून अनुसार १८ वर्ष से पहिले किसी का लिखा हुआ वा कहा हुआ कौल प्रामाणिक नहीं होता, इसी भांति जब हमारे स्वदेशियों का राज्य था तो उस समय वेद और वैद्य तथा बुद्धि अनुसार यह बात नियत की थी कि २५ वर्ष से न्यून लड़के तथा १६ वर्ष से कम लड़की की कोई किस्म की प्रतिज्ञा प्रामाणिक नहीं, फिर न्यून अवस्था में विवाह कैसा ?

प्यारे भाइयो अभी तक गाय घोड़ी इत्यादि पशुओं पर जब तक कि वह पूर्ण नहीं होजाते बैल घोड़ा आदि नहीं छुड़वाते कि जिससे उनकी सन्तान निकम्मी न होजावे फिर मैं नहीं जानता स्त्री पुरुषों में जो संसार के जीवों में सर्वोत्तम हैं यह सुविचार जो गाय घोड़ी इत्यादि पशुओं के साथ किया जाता है क्यों छोड़ दिया ? क्या यह उन पशुओं से भी गये हैं ?

जिस समय जिस वस्तु की मन को इच्छा होती है उसी समय उसके मिलने से परम सुख होता है, विना समय के वस्तु मिलने से कुछ उत्साह और उमंग नहीं होती, न किसी प्रकार का आनन्द आता है, जिस प्रकार भूख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पड़ती है उसी प्रकार विना भूख के मोहन भोग को भी जी नहीं चाहता, छोटे २ पुत्र पुत्रियों का उस दशा में जब कि उनको काम-अग्नि नहीं सताती और न उनका मन उधर को जाता है, शादी करने से क्या लाभ होता है ? कुछ भी नहीं।

हे सुजनो इन उपरोक्त बुराइयों के सिवाय एक बहुत बड़ी हानि होती है कि जिस कारण भारत में हाहाकार मच रहा है, कि जिससे उसके निर्मल यश में धब्बा लगरहा है, वह बुरी बला विधवाओं का जत्था है कि जिनकी आहें भारत के घाव पर और भी नोन छिरक रही हैं, कौन सा ऐसा घर है जहां विधवाओं के दर्शन नहीं होते, उस पर भी वह विधवा कैसी जिनके दूधके दांत नहीं गिरे, न उनको अपने विवाह की कुछ सुध न वह यह जानती कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटी, फिर जब वह तरुण होती हैं तब कामानल प्रबल होने पर नियोग भी नहीं होता, फिर हजारों में से पांच सुन्दर आचरण वाली होती हैं नहीं तो नाना लीला रचती हैं, जिन बातों से हमारी लाज की पगड़ी सिर से गिरजाती है, क्या उस समय हमारी मूंछें मुह पर शोभा देती है ? हमारी जवानी का नशा एक दम में उतर जाता है आराम पर भी छार पड़जाती है, सच पूछो तो माता पिता इस जलती हुई चिता को अपनी छाती पर देख २ कर हाड़ों का सांचा बनजाते हैं। इन सब क्लेशों का कारण न्यून अवस्था का विवाह ही है क्यों कि भारत में विधवाओं की संख्या इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती क्योंकि अन्यत्र न्यून अवस्था में विवाह नहीं होता, इसी हेतु से प्राचीन काल में उनकी गणना बहुत न्यून थी, इसके प्रमाण प्रत्यक्ष हैं देखो जब किसी खेत में गेहूं आदि अन्न बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मरजाते हैं, एक महीने के पीछे बहुत कम, दो चार महीने पीछे अत्यन्त न्यून मरते हैं,

इसी प्रकार जन्म से पांच वर्ष तक जितने बालक मरते हैं उतने दश वर्ष पर नहीं, १० वर्ष से १५ वर्ष तक उससे भी बहुत कम क्योंकि न्यून अवस्था में सूखा, जमोवा, दांत तथा शीतलादि रोग मार डालते हैं, जब किसी पेड़ की जड़ मज़बूत होजाती है तो वह बड़ी २ आंधियों से बचजाता है इसी भांति बालपन में नाना भांति के रोग होकर मृत्यु कारक होजाते हैं जिस प्रकार १५ या २५ वर्ष में नहीं होते, यदि हों भी तो सौ में पांच।

अब इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि यदि न्यून अवस्था का विवाह भारत से उठादिया जावे तो किस कदर विधवाओं का जत्था कम होजावे तथा यह सब उपद्रव जाते रहें, इन पांच का विवाह २५ वर्ष के लड़के के साथ हो तो अवश्य उन पांच में से तीन के बाल बच्चे भी दो तीन वर्ष में होजावेंगे यदि ऐसी दशा में पति का मरण भी होजावे तो स्त्री उन बच्चों की आशा पर उनके लालन पालन में अपनी आयु को व्यतीत करती रहेगी, बस इस हिसाब से १०० में दो विधवा ऐसी रहजावेंगी कि जिन का कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता होगी।

इसलिये आप भी स्वयंवर की रीति से विवाह करने की प्रथा को प्रचलित कीजिये, यदि इस समय किसी कारण से यह न होसके तो आप स्वयं गुण कर्म स्वभाव मिलाकर कार्य कीजिये जिस प्रकार ऋषि मुनि तथा प्राचीन पुरुषा करते थे।

वेदों में विधि मिलाने की इस प्रकार आज्ञा है—

१—जब स्त्री पुरुष विवाह करने की इच्छा करें तब ब्रह्मचर्य्य और विद्या से स्त्री पुरुषों के धर्माचरण को जान कर ही विवाह करे जैसा य० अ० ३८ मं० २ में कहा है—

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥

य० अ० ११ मं० ७१ में लिखा है कि कन्याओं को चाहिये कि अपने से अधिक बल विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करें किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं—

परस्या अधि संवतोऽवरांश॥ अभ्यातर ॥
यत्राहमस्मितांर॥ अंव ॥ ७१ ॥

य० अ० ११ मं० ७० में कहा है कि कन्याओं को उचित है कि जिस वर का पिता ब्रह्मचर्य्य से बलवान् हो और पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि पदार्थों को इकट्ठा कर सके उस शुद्धस्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगो—

दूर्वन्नः सर्पिरा सुतिः प्रतूनो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥

य० अ० ८ मं० ११ में लिखा है कि ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सगुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करने वाले कन्या और पुरुष युवा अवस्था में पहुंच परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति अच्छे प्रकार देखकर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की वृद्धि होती है इसलिये उक्त गुणों से युक्त विवाह कर आनन्दित हो प्रतिदिन ऐश्वर्य्य की उन्नति करें—

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यान्त्वा ।
हर्य्योर्द्धानास्थ सहसोमा इन्द्राय ॥

य० अ० १२ मं० ६२ में कहा है कि हे स्त्रियो तुम को चाहिये कि पुरुषार्थ रहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य पुरुषों को ग्रहण करो—

असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा तइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥

य० अ० ८ मं० १ में उपदेश है कि विवाह की कामना करनेवाली युवती स्त्री को उचित है कि जो छल-कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही को चाहने वाले जितेन्द्रिय सर्वप्रकार का उद्योगी धार्मिक विद्वान् हो उसी के साथ विवाह कर आनन्द में रहे।

हे स्त्री जनो ! तुम उसी मनुष्य को पति स्वीकार करो जिस का

घर सब ऋतुओं में सुख देने वाला है और आप वीर्य्यवान हो फिर उसको सब प्रकार से सुख देती रहो य० अ० ८ मं० ८ में कहा है–

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥

मनुमहाराज अ० ३ में इस प्रकार कहा है—

(१) लड़के की आयु २४ तथा लड़की की १६ वर्ष की हो।

(२) ऊंचाई में लड़की लड़के के कन्धे के बराबर हो अथवा कुछ कम हो परन्तु ऊंची न हो।

(३) दोनों के शरीर सम हों।

(४) दोनों विद्वान् हों या मूर्ख।

पुत्री के गुण।

(१) जिसके शरीर में कोई बीमारी न हो।

(२) जिसके शरीर में दुर्गन्ध न आता हो।

(३) जिसके शरीर पर बड़े २ बाल न हों न लोम रहित हो।

(४) बहुत बकवाद करने वाली न हो।

(५) जिसका शरीर टेढ़ा न हो, अङ्ग हीन भी न हो।

(६) शरीर कोमल हो।

(७) जिसकी मधुर वाणी हो।

(८) जिसका वर्ण पीला न हो।

(९) जो भूरे नेत्रवाली न हो।

(१०) जिसका नाम वेदानुकूल हो (वेदानुसार नाम के लिये नाम करण संस्कार को देखो)।

(११) जिसकी चाल हंस वा हथिनी के तुल्य हो।

हारीतस्मृति अध्याय ४ श्लोक १, २, ३, ४ तथा शङ्खस्मृति अध्याय ४ श्लोक १ में उपरोक्त आज्ञा है।

मनुजी महाराज ने यह भी आज्ञा दी है कि कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो तथा पिता के गोत्र की भी न हो उससे विवाह करना चाहिये यथा–

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
स प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥

प्यारे सुजनो ! इन बातों को विचार करना अभीष्ट है, क्योंकि उत्तम कुल वृक्ष के तुल्य है, सम्पति पात्तों के सदृश, पुत्र मूलवत् जानो, जो पुरुष अपनी पुत्रियों को सदा सुखी रखना चाहें वह सुख तत्व को विचार कर विवाह करें वही लोग पेड़ पत्तों को देखसकते हैं, जो मूल पर ध्यान नहीं देते जो मेरी समझ में उसका देखना मुख्य है, क्योंकि जो मूल दृढ़ होगा तो वह बड़े २ प्रचण्ड वायु के झकोरों से वृक्ष को न गिरने देगा, यदि मूल ही निर्बल हुआ तो थोड़े ही झटके में उखड़ कर गिरपड़ेगा, इसी प्रकार जो पुत्र सपूत वा सुलक्षण होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति करेगा और सर्व प्रकार से अपने बाप दादे के नाम तथा यश को फैलावेगा तथा नाना भांति से सुख आनन्द देगा, यथा—

एकेनाऽपि सुपुत्रेण पवित्रगुणशालिना ।
सुरभिः क्रियते गोत्रश्चन्दने नैव काननम् ॥

एक ही सपूत गुणवान् उत्तम आचरण वाले पुत्र से सम्पूर्ण कुल शोभित और प्रख्यात होजाता है, जैसे चन्दन के एक ही पेड़ से वन का वन सुगन्धित रहता है, जो कुपूत अर्थात् कुलक्षण हुआ तो वह अपने तन मन धन मान बड़ाई आदि को धूल में मिलावेगा, इसलिये धन कुल आदि की अपेक्षा लड़के के गुण कर्म शील आदि का मिलाना अत्यन्त उचित है, क्योंकि धन बादल की छाया के समान प्रतिष्ठा पतङ्ग के रंग के सदृश, और कुल केवल नाम के लिये है, इस कारण मूल पर सदा ध्यान करने से परम सुख मिल सकता है, अन्यथा कदापि नहीं, किसी ने सच कहा है—

एकै साधे सब सधैं, सब साधे सब जायं ।
जो तू सेवे मूल को, फूले फले अघाय ॥

अतः वर कन्या के उपरोक्त गुण मिलाकर विवाह करना चाहिये,

जिससे उन दोनों की प्रकृति सदा एकसी रहें, यही सुख का मूल है, किसी कवि ने कहा है–

प्रकृत मिले मन मिलत है, अनमिल से न मिलाय।
दूध दही से जमत है, कांजी से फटि जाय॥

इस कारण इन उपरोक्त बातों को मिलाकर यह भी देख लीजिये कि लड़का ज्वारी, शराबी, रण्डीबाज, चोर आदि न हो, अर्थात् पढ़ा लिखा सुकर्मी सुधर्मी हो उससे परस्पर विवाह करना चाहिये नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा।

शोक! है कि वर्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर किञ्चित् ध्यान न देकर केवल कुम्भ मीन आदि का मिलान करके विवाह कर देते हैं जिसकी आज्ञा हमारे सतशास्त्रों में कहीं नहीं पाई जाती है, न पूर्व पुरुष इस परिपाटी पर चलते थे, यदि किसी को दावा हो तो श्रुति के प्रमाण से सिद्ध करके दिखलावे या यही बतलावे कि जब श्री रामचन्द्र व राजा नलादि के विवाह हुए थे तब कौन से ग्रह मिलाये गये थे?

महाशयो! मुझ को तो कहीं इस विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता फिर आप क्यों इस परिपाटी पर चलते हैं जिसके कारण अच्छी पुत्री का विवाह बुरे गुण वाले पुत्र के साथ होजाता है जिससे घरों में देवासुर सङ्ग्राम मचा रहता है, और पुत्रियां विधवा होकर पण्डित महाशय को आयुपर्यन्त आशीर्वाद देती हैं, इसके अतिरिक्त इन पण्डितों की भी तो लड़कियां जो बड़े सोच विचार के साथ गृह मिला कर विवाह करते हैं विधवा होजाती हैं इसका क्या कारण?।

इन हानियों के अतिरिक्त जब से भारत में बाल्यविवाह का प्रचार हुआ एक और बुराई उत्पन्न होगई है, कि लड़की के अर्थ वर खोजने के लिये, नाई, बारी, धीमर, भाट, पुरोहित भेजे जाते हैं।

अत्यन्त शोक की बात है कि जब हम १०० या २०० रुपया की वस्तु मोल लेते हैं तो उसको स्वयं जाकर देखते हैं परन्तु इस कार्य्य पर कि जिस पर हमारे आत्मजों का सुख निर्भर है किञ्चित् ध्यान न हो।

मान्यवरो! यह कार्य्य ऐसा नहीं है कि जिसको सामान्य बुद्धि वाला मनुष्य करसके, परन्तु यह ऐसे मनुष्य का कार्य है जो विद्वान्

तथा निर्लोभ हो, संसार को खूब देखे हुये हो, क्या इन नाई, वारी भाट, पुरोहितों को आप नहीं जानते कि केवल एक २ पैसे पर प्राण देते हैं, फिर उनकी बुद्धि का क्या कहना, बात तक कहना नहीं आती, न विद्वानों का सङ्ग किया है फिर भला यह लोभ से कभी बचसक्ते हैं, कदापि नहीं, क्योंकि लोभ बड़ा प्रबल है बड़े विद्वान् तथा महात्माओं को सताता है, इसी लोभ में आकर औरंगजेब ने अपने पिता भ्राताओं को मारडाला, लोभ के ही कारण आजकल भ्राता भ्राताओं में नहीं बनती, फिर भला उनका क्या कहना जो दिन रात धन की लालसा में लगे रहते हैं, चाहें लड़का काला कबरा आदि क्यों न हो जहां लड़के के बाप ने उनको मुट्ठी गर्म करने का प्रण किया या खूब आवभगत से लिया, लड़की वाले से आकर लड़का तथा कुल की बहुत प्रशंसा करते हैं अर्थात् सम्बन्ध कराही देते हैं, यदि लड़के वाले ने सुध न ली तो लड़का उत्तम होने पर भी बहुत अप्रशंसा करते हैं जिसके कारण पति पत्नियों में प्रेम नहीं रहता इन्हीं असम्बन्धों के कारण बहुधा जन नाना प्रकार के कुचाली हो गये जिनसे बहुतेरी बालिकाओं को जीते जी रण्डापे का स्वाद चखा दिया।

नाई, बारी आदि के दुःखड़े का तो रोना था ही परन्तु महान् शोक का स्थान है कि माता पितादि भी न पुत्र को देखें न पुत्री को, यदि आंखें खोलकर देखते हैं तो कितना रुपया पास है, क्या २ माल टाल है पुत्र पुत्री चाहें चोर ज्वारी क्यों न हों, चाहें समस्त धन को दो ही दिन में उड़ादें, लड़की अपने फूहरपन से गृह को पति के अर्थ जेलखाना क्यों न बनाये परन्तु इनकी कुछ चिन्ता नहीं।

उपरोक्त कथन से प्रकट है कि विवाह पुत्र के साथ नहीं वरन धन के साथ करते हैं, जब कोई बुराई प्रकट होती है तो कहते हैं कि क्या करें हमारे यहां तो सदा से ऐसाही होता है. प्रिय महाशयो नहीं २ देखिये हमारे ऋषि पुकार २ कर कहते हैं—

कामममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवेनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

चाहें पुत्र पुत्री मरणपर्यन्त कुमारे रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव का विवाह न करे।

विष्णुस्मृति अध्याय १ श्लोक २ में लिखा है कि उत्तम कुल में उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्री से शास्त्रोक्त विधिवत् व्याह करे।

अनेनैव विधानेन कुर्याद्दारपरिग्रहात् ।
कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्वितां ॥

इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि कुलों की उत्तमता जाति वा धनादि से नहीं होती वरन मनुष्यों के कर्म शील गुण इन्द्रियों के दमन अथवा नम्रता आदि से होती है। शुक्रनीति में लिखा है–

कर्मशीलगुणः पूज्यास्तया जाति कुले न हि ।
नजात्मा न कुले नैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥

इसी कारण हमारे परम पूज्य विदुर जी महाराज ने लिखा है कि वही कुल श्रेष्ठ है जिसके मनुष्य वेदों को पढ़कर यज्ञ दानादि वेदानुसार श्रेष्ठ कर्म करते हैं जहां माता पितादि दुःख नहीं पाते, झूठ नहीं बोलते धर्म भ्रष्ट नहीं करते तथा जिसमें सुकर्म न होते हों वह कुल बहुत धन होने पर भी नीच तथा त्यागने योग्य है–

तपो दमो ब्रह्म वित्तं वितानः पुण्या विवाहाः सततं चान्नदानम्।
येष्ववैत सप्तगुणा भवन्ति सम्यग्वृतास्तानि महाकुलानि ॥
येषां वृतं न व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ते धर्मम् ।
येकीर्त्तिमिच्छन्तिकुलेविशिष्टांत्यक्तानृतास्तानिमहाकुलानि ॥

मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १ व २ में लिखा है कि जिन कुलों में (१) क्रिया कर्म वेद विहित न होते हों, (२) जो सत्पुरुषों से रहित हो, (३) वेदाध्ययन से विमुख हो, (४) मनुष्यों के शरीर पर बड़े २ लोम हों, (५) जिन कुलों में बवासीर, (६) धातु क्षीण, (७) मृगी, (८) दम, (९) खांसी, (१०) कोढ़ अपस्मारादि रोग हों, तो ऐसे कुलों को धन, धान्य, गाय, अश्व, हाथी आदि राज्य तथा श्री से सम्पन्न होने पर भी त्यागदेना चाहिये–

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छदो रोमशार्शसम् ।
क्षय्या मया व्यपस्मारि श्वित्रि कुष्ठि कुलानि च ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥

मान्यवरो ! महात्मा मनु आदि ऋषि पुत्र पुत्री की विधि मिलाने की इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि पिता की सात पीढ़ी सगोत्र पिताके गोत्र तथा ऊपर कहे दश कुलों को त्याग हंस हस्तिनी के समान गमन करने वाली सूक्ष्म लोम उत्तम केश तथा कोमल दांत सुन्दर शरीर जिसका हो ऐसी पुत्री से पुत्र का विवाह करे, इसी भांति पुत्र के भी समान गुण कर्म शुभ लक्षण देखकर पुत्री का विवाह करे ।

प्यारे मित्र और सुजन स्त्रियो ! हम प्राचीन काल में उपरोक्त भांति स्त्री पुरुष विवाह करते थे उसी समय में गृहस्थाश्रम स्वर्गधाम की शोभा दिखलाते थे देखो ऋग्वेद अ० ३ । अ० ५ । व० २ । मं० ४ ।अ० १ सू० ५ । मं० ७ । में कहा है कि जो कन्या अपने समान वर और जो ब्रह्मचारी अपने तुल्य कन्या से विवाह करते हैं वह अन्तरिक्ष के मध्य में ईश्वर से स्थापित सूर्य्य और चन्द्रमा नक्षत्रों के तुल्य शोभित होते हैं।

तमिन्न्वे३व स॒म॒ना स॑मा॒नम॒भि क्रत्वा॑ पुन॒ती धी॒ति र॑श्याः ।
स॒सस्य॒ चर्म॒न्नधि॒ चारु॒ पृश्ने॑रग्रे॑ रू॒प आरु॑पितं॒ जवा॑रु ॥

य० अ० ३ मं० ३७ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष विद्या अच्छी शिक्षा से युक्त अपनी इच्छा से एक दूसरे को पसन्द कर विवाह करते हैं वह उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं ।

इस कथन का मुख्य तात्पर्य्य यह है कि इन उपरोक्त गुणों में जिस स्त्री से जिस पुरुष को और जिस पुरुष से जिस स्त्री को अधिक आनन्द मिले उन्हीं को परस्पर विवाह करना चाहिये—

इसके लिये ऋग्वेद अ० १ । अ० ४ । व० २१ । मं० १ । अ० १०। सू० ५६ । मं० ३ में स्पष्ट कहा है कि अति उत्तम विवाह वह है कि जिस में तुल्यरूप स्वभाव युक्त कन्या और वर का सम्बन्ध होवे परन्तु कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा होना चाहिये—

प्राचीन काल में इस विधि के अनुसार विवाह होते थे उसी समय सन्तान भी उत्तम बलिष्ट होती थी, अब कुम्भ सीन ने इस उत्तम विधि का सत्यानाश मारदिया जिससे भारत सन्तान का सत्यानाश होगया, अतः इस अप्रमाण विधि को शीघ्र त्याग कर दीजिये जिस का वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं प्रमाण नहीं मिलता।

इसके उपरान्त बहुधा जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात् पहिले करार होजाता है कि इतने रुपये खर्च करने पड़ेंगे, हमारी समझ में इसमें भी सर्वथा हानि है क्योंकि कहीं २ उतना धन न होने के कारण उत्तम और सुयोग्य जोड़े में अन्तर आजाता है, फिर लालच में आकर वेजोड़ जोड़ मिलाया जाता है कि जिससे उपरोक्त हानि होती हैं, कभी २ लड़की वाला लड़के के अर्थ कर्ज ले उसको राज़ी करता है कि जिसकी बदौलत सूद वा असल में गृहवस्तु बचकर फक्कड़ बनजाता है, भला क्या वह हमारा देशीय सम्बन्धी नहीं है? यदि है तो क्या उसकी यह कुदशा होने में हमारी नहीं होती, भला अब उस को दुःख तथा उसके बाल बच्चों को तकलीफ होने में क्या हमको कुछ भी लाज नहीं आती, यदि आती है तो इस बुरी रीति को तुरन्त त्याग देना चाहिये।

उपरोक्त बुराइयों के अतिरिक्त निम्न लिखित बातों का भी ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि जिससे दोनों ओर किसी प्रकार का क्लेश न हो, मन न बिगड़े, जैसा कि इस समय हमारे देश में होरहा है जिसके कारण भी भारत की प्रतिष्ठा रूपी पताका छिन्न भिन्न होगई तथा हम नीम वहशी कहलाने लगे—

(१) बरात में बहुत भीड़ लेजाना। (२) बखेर। (३) फूल टट्टी (४) आतिशबाजी। (५) रंडियों का नाच। (६) दान-भूड़।

बरात में बहुत भीरभार लेजाना।

प्रथम विचार करना चाहिये कि बरात ठाठ बाट से लेजाने में दोनों तरफ क्लेश होता है, अच्छा प्रबन्ध तथा आदर सत्कार नहीं बन पड़ता, इसके सिवाय इधर उधर का धन भी बहुत खर्च होजाता है, अतः बहुत धूम धाम से बरात लेजाना कुछ आवश्यक नहीं वरन थोड़ी

भी बरात अच्छे सजाव से लेजाना अति उत्तम है उसका दोनों तरफ वाले उत्तम खान पान आदि से सत्कार कर नामवरी हासिल कर सकते हैं, फिर इस कार्य में वृथा धन लगाना वृथा ही है कि जिससे आदर सत्कार न बन पड़ने से साथी जन यही कहते हैं कि फलाने की बरात में गये थे, वहां खाने पीने का कुछ भी प्रबन्ध न था सब भूखों के मारे मरते थे दाना घास भी समय पर न मिलता था, इधर लाला लेजाने के समय तो बड़ी सीप साप करते थे परन्तु वहां दुम दवाये जनवासे ही में बैठे रहे।

बखेर।

बखेर करना सर्वप्रकार हानिकारक से हानिदायक है, क्योंकि लालच बुरी बला है, बखेर का नाम सुनकर दूर २ के भंगी आदि लूले लंगड़े, अपाहज, कंगले दुर्बल इकट्ठे होते हैं, इधर नगरनिवासियों में छोटे बड़े अटा अटारियों तथा बाज़ारों में ठट्ट के ठट्ट लगजाते हैं, बखेर करने वाले वहां पर मुट्ठियां अधिक मारते हैं, जहां स्त्रियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक होते हैं, मुट्ठी के चलते ही हज़ारों स्त्री पुरुष बाल बच्चे तरा ऊपर गिरते हैं, कि जिससे अवश्य ही दश बीस के चोट आती तथा एक आध मर भी जाते हैं, अन्धे लंगड़े, लूले आदि की अत्यन्त कुगति होती है, और ऐसा कुहराम पड़ता है कि कोई किसी की नहीं सुनता, उधर ऊपर से मुट्ठी धड़ाधड़ चली आती है, किसी की नाक कान में लगता है वह वैसा ही रहजाता है, लुच्चे गुण्डे स्त्रियों की ऐसी दुर्दशा देख उनकी नथ आदि में हाथ मारकर भागते हैं कि जिससे नाक भी फटजाती है, समधी के दरवाजे पर जो झुण्ड के झुण्ड लगजाते हैं जब वहां रुपयों की मुट्ठी चलती है उस समय लूटने वालों को बेहोशी होजाती है, जो वहां दुर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है, भला बताइये तो इस बखेर में क्या लाभ कि जिस में ऐसे २ कौतुक हों तथा धन भी व्यर्थ जावे? जितना रुपया फेंकाजाता है उसमें से आधे से अधिक मिट्टी आदि में चलाजाता है बाक़ी एक तिहाई हट्टे कट्टे भङ्गियों को मिलता, शेष रहा सो सामान्य जनों को, लूले लङ्गड़े अपाहिजों के हाथ कुछ भी नहीं आता,

वरन उनका काम होजाता है, अनेकों के चोट आजाती, किसी की पहुंची छल्ला नथनी खडुए अंगूठी आदि जाते रहते हैं, इस सूरत में लाने वाले लाला जी की कुछ लोग प्रशंसा भी करते हों बहुधा वे जन कि जिनके चोट आजाती या जिनकी कोई चीज जाती रहती है वह सब लाला जी के नाम को रोते हैं, जिन मनुष्यों को कुछ नहीं मिलता वह कहते हैं बखेर का नाम था कहीं २ पैसे फेंकते थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है।

बागबहारी अर्थात् फूल टट्टी।

फूल टट्टी की वर्त्तमान समय में वह खबरी है कि रङ्गीन कागज और अबरक के फूलों के स्थान पर (जो वह भी फ़जूल खर्ची में कुछ कम न थे) हुण्डी नोट चांदी सोने की कटोरियां बादाम रुपये अशर्फियों के तख़्ता में लगाने की नौबत आपहुंची यों तो सब अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं, परन्तु हमारे देश भाई आंखों के सामने खड़े होकर खुशी से लुटवा देते हैं, कुछ लाभ नहीं उठाते, हां यह अवश्यमेव सुनने में आता है कि फलाने लाला या साहूकार की बरात में फूल टट्टी अच्छी थी, हरचन्द बचाई गई पर न बची, लड़की वाले के सामने तक न पहुंचने पाई कि फूल टट्टी लुटगई, अब विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसन्नता के पहिले लुटने की अशुभ वाणी मुंह से निकलना कि अमुक की फूल टट्टी लुटगई कैसा बुरा है? इसके सिवाय इसमें लट्ठ भी चलजाते हैं, टोपी तथा अम्मामें उतर जाते हैं, तब वह फूल हाथ आते हैं, मानों लूटने वालों की इज्जत जाने पर कुछ मिलता है, बहुधा मजिस्ट्रेट तक नौबत पहुंचती है, प्यारो सच पूछो तो आरम्भ ही में ग़मी का सामान होजाता है।

आतिशबाजी।

इससे न कोई संसार का लाभ न पारलौकिक, वरन वर्षों का उपार्जन किया हुआ धन क्षणमात्र में जलाकर राख की ढेरी बनादेते हैं, इस प्रकार भीर भार होती है कि एक के ऊपर दस २ गिरते हैं, एक इधर जाता एक उधर, यहां तक धकापेल मचती है कि बहुधा बेदम होजाते हैं, किसी की पैर की उंगली पिची, किसी की डाढ़ी

जली, किसी की भौहैं तथा मूछों का सफाया हुआ, किसी का दुपट्टा तथा किसी का अंगरखा जलगया, किसी २ के हाथ पावँ भुनजाते हैं, बहुधा मकानों के छप्परों में आग लगजाती है कि जिससे हाहाकार मचजाता है, बहुधा उनमें नुकसान होजाते हैं, कभी २ मनुष्य तथा पशु भी जलकर प्राण त्यागते हैं।

इसके अतिरिक्त वायु बिगड़ जाता है कि जिससे प्राणी मात्रकी आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है, सब का पाप समधी के सिर पर चढ़ता है, तिस पर तुर्रा यह कि घरवालों को कसरत कामों से घर फूंक के भी तमाशा देखने की नौबत नहीं पहुंचती है।

रण्डी का नाच।

रण्डियों के नाच ने भारत को गारत करदिया क्योंकि तबला सारङ्गी के विना भारतवासियों को कल नहीं पड़ती, बरात के आने जाने वालों की वह जीवन प्राण है, समधी तथा समधिन का पेट उसके विना नहीं भरता जहां बरात चली विषयी जन विना बुलाये चलने लगते हैं, जो रुपया उसको दिया गया उसका तो सत्यानाश हुआ ही, उसके साथ ही बहुत सी हानि होने के मार्ग खुलजाते हैं— नाच ही में कुमार्गी मित्र उत्पन्न होजाते हैं, नाच ही में हमारे देश के धनाढ्य साहूकार लज्जा को तिलाञ्जुलि देदेते हैं, नाच ही में इन हरामजादियों को शिकार फांसने तथा नौ जवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौक़ा) हाथ लगता, बाप बेटे भाई भतीजे सब एक महफ़िल में बैठ लज्जा का परदा डालकर सब अच्छे प्रकार घूरते तथा आंखें सेकते हैं।

यह मुरदारें महफ़िलों में ठुमरी, टप्पा, बारहमासा, गज़ल आदि इश्क विरह, वस्ल, इख़्तिलाफ़, इन्तजार को गाती हैं, तिस पर तुर्रा यह है कि यह नौजवान खूबसूरत, शृङ्गार किये हुए सुरीली आवाज़ से ऐसे २ तीर हाव भाव कटाक्ष से मारती है कि जिनको सुनकर स्त्री पुरुष ऐसे घायल होजाते हैं कि फिर उनको सिवाय इश्क वस्ल यार के कुछ भी नहीं सूझता।

सुनिये किसी महात्मा ने कहा है—

दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते बलम् ।
मैथुनात् हरते वीर्यं वेश्या साक्षात् राक्षसी ॥

दर्शन से चित्त, छूने से बल, मैथुन से वीर्य जाता है अतः वेश्या राक्षसी के समान जानो।

तिस पर भी तो बाप बेटे को कुछ नहीं सूझता, जहां आंख लगी चकना चूर होजाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनामी का तौक गले में पहिनते हैं, अनेकान इश्क के नशे में चूर होकर घरवार बेचकर दो २ दानों को मारे २ फिरते हैं, कोई धन कमा २ कर इनकी भेंट चढ़ाते हैं, फिर माता पिता दो २ दानों को मारे २ फिरते हैं, सच पूछो तो अपनी करनी का फल भोगते हैं, क्योंकि प्रथम तो प्रत्येक उत्सव अर्थात् लड़का होने, नामकरण, मुण्डन, सगाई विवाह के उपरान्त जन्मअष्टमी रासलीला रामलीला होली दिवाली दशहरा बसन्त आदि पर बुलवा २ कर इन नवजवानों को रसभरी आवाज तथा मधुभरी आखें दिखलाते हैं कि जिस से बहुधा रण्डीबाज हो जाते हैं, तथा आतिशक सूज़ाक आदि बीमारियां घेर लेती हैं कि जिन की आग में वह खुद भुनते रहते तथा औलाद को निरास छोड़ जातेहैं।

अनेकानेक जन रण्डियों के नाज़ नखरे तथा बनाव शृङ्गार आदि पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि घर की विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते, नाना प्रकार के दोष उन पर धर कर मुंह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते, वह विचारी दुःखों में रात दिन रोती रहती हैं।

बहुधा स्त्रियां जो महफिल का नाच देखलेती हैं उन पर इस का ऐसा बुरा असर होता है कि जिससे घर के घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि जब वह देखती हैं कि सम्पूर्ण महफिल के लोग उस मालजादी की ओर टकटकी लगाये हुये उसके नाज़ नखरे सहरहे हैं यहां तक कि जब वह थूकने का इरादा करती तो एक आदमी उगालदान लेकर हाजिर होता है, ऐसे ही यदि पान खाने की ज़रूरत हुई तो भी निहायत नाज़ तथा अदब के साथ मौजूद किया जाता है, इस के उपरान्त वह दुष्टा नीचे से ऊपर तक सोने चांदी के आभूषणों तथा अतलस गुलबदन, कमख्वाब, साटनलेट, गिरन्ट आदि बहुमूल्य वस्त्रों

का पिसवाज को एक २ दिन में चार २ दफे नई किस्म के बदलती तथा इतर फुलेल की लपटें उससे चली आती देखकर विद्याहीन स्त्रियों के मन में बस जाती है कि जिसका अखीर नतीजा यह होता है कि बहुधा वहीं खुल्लम खुल्ला लज्जा को त्याग रण्डी बनकर गुलछर्रे उड़ाने लगती हैं, कोई २ रेल पर सवार हो अन्य देशों में जा अपने मनकी आशा पूर्ण करती हैं, क्या यह हमारी तुम्हारी बहू बेटी नहीं हैं? यदि हैं तो फिर कैसे शोक का स्थान है कि कुछ भी विचार न कर आंखों पर पट्टी बांधें हुए हम चले जावें ।

इसके अनन्तर जब दर्वाजों पर रण्डियां गाली गाती हैं, उधर से उसका जवाब होता है, देखिये उस समय कैसे अपशब्द बोले जाते हैं कि जिनको अन्य देशीय सुनकर हंसते २ पेट फुला कर कहते हैं कि इन्होंने तो रण्डियों को मात कर दिया, धिक्कार है ऐसी सास आदि पर जो मनुष्यों के सम्मुख ऐसे २ शब्द उच्चारण करें अथवा रण्डियों से इस प्रकार की गालियां सुनकर भाई, बन्धु, माता, पिता आदि की किञ्चित् लाज न करें और गृह के बीच घूंघट में रहें तथा आवाज से बात भी न कहें, सच पूछो तो विवाह क्या मानो परदेवालियों को बेशर्म बनाना है, इस पर तुर्रा यह कि खुश होकर रण्डियों को रूपया देती हैं ।

प्यारे सुजनो ! इन रण्डियों के नाच के ही कारण जब मनुष्य वेश्यागामी होजाते हैं तो वह अपने धर्म कर्म पर भी धता भेजदेते हैं, जहां नाच होता है दस पांच मुड़जाते हैं, इसके उपरान्त जो रूपया उत्सव तथा खुशियों में उनको दिया जाता है उससे बताओ "बकरईद" में वह क्या करतीं हैं ? वह हत्या भी हमारे तुम्हारे सिर पर होती है, क्योंकि जब हमको यह बात प्रकट है कि यदि इनके पास रूपया न होगा तो हाथ मलकर रहजावेंगी फिर भला बताओ तो अब कौन अपराधी है, रण्डियों के गान को सुनिये वे क्या कहती हैं—

॥ कवित्त ॥

शुभ काज को छांड़ कुकाज रचैं धन जात है व्यर्थ सदा तिनको।
एक रांड बुलाय नचावत हैं नहीं आवत लाज ज़रा तिनको ॥
मिरदंग भनै धृक् है धृक् है सुर ताल पुछै किनको किनको ।
तब उत्तर रांड बतावत है धृक् है इनको इनको इनको ॥

यदि बुद्धिमानी से पक्षपात त्याग कर विचार किया जावे, तो प्रत्यक्ष प्रकट होजावेगा कि रण्डियों के नाच ही के कारण देश में निम्न लिखित हत्याओं की जड़ पड़गई—

(१) बालहत्या, (२) स्त्रीहत्या, (३) पुत्रीहत्या, (४) गोहत्या, (५) विश्वहत्या, (६) कुलहत्या, (७) आत्महत्या, (८) गुरुहत्या, (९) ब्रह्महत्या ।

अथोपरान्त भक्ति तथा योग की हानि धर्म अथवा ईश्वर में श्रद्धा का अभाव सत्सङ्ग व मित्रता की हानि होती है ।

प्रियवरो ! यदि आप के विचार में भी उपरोक्त वार्त्ता ठीक हो तो शीघ्र भारत सन्तान के उद्धार के अर्थ वेश्याओं के नाच को त्याग दीजिये वरना सम्मति देने से आप भी दोषी होंगे ।

भांड़ ।

ज्योंहीं वेश्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए त्योंहीं भांड़ों का लश्कर बसात के मेंड़कों की भांति २ की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा; अब लगीं तालियां बजने, कोई किसी की घुटी खोपड़ी में चपत जामाता है । कोई गधे की भांति चिल्लाता, एक मियओं, एक फुस अर्थात् अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते तथा ऐसी २ नकलें बनाते सुनाते कि लाला जी, सेठ जी पण्डित जी आदि की प्रतिष्ठा में पानी पड़जाता है ऐसे २ शब्दोच्चारण करते हैं कि जिनके लिखने में हमको लज्जा आती है परन्तु उस सभा के बैठने वाले जो सभ्य कहलाते हैं कुछ लाज नहीं करते, वरन प्रसन्न चित्त होकर हंसते २ अपना पेट फुलाते तथा पारितोषिक प्रदान करते हैं ।

प्यारे सुजनो ! इन्हीं व्यर्थ बातों के कारण हमारी सन्तानों का सत्यानाश मारागया, इस कारण इन मिथ्या प्रपञ्चों को शीघ्र त्याग कर दीजिये कि जिसके कारण इस देश का पटपड़ होगया, कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि जहां प्राचीन समय में प्रत्येक उत्सवों में ऋषि मुनि महात्माजनों के सत्योपदेश होते थे वहां रण्डी तथा लौंडे का नाच या भांति २ की नकलें आदि तमाशे दिखलाये जाते हैं हा शोक ! हा शोक ! हा शोक ! ! ! ।

अथोपरान्त स्त्रियों को बाजार तथा गली कूंचे या घर में फूहर गाली अथवा गीत न गाना चाहिये, हां जिनमें मर्यादा के शब्द हों उनको कोमल वाणी से गाना भला है क्योंकि युवतियों को युवा अवस्था में निर्लज्ज शब्द काढ़ना मानों बारूद की चिनगारी छोड़ना है तथा ऐसे स्वभाव भी बिगड़ जाता है, चित्त विकारों से भरजाता है, मन विषय की ओर दौड़ने लगता है फिर उसका साधना अत्यन्त ही कठिन वरन दुस्तर होजाता है।

उचित है कि मन को पहिले ही से विषय रस की ओर न झुकने देवे, यौवन मतवाले के हाथ में विषय रस रूपी हथियार देके अपने हितकारी सत्गुणों का नाश न करवावें इस से मन को पहिले ही से रोके रहे फिर रुकना कठिन है।

अथोपरान्त दोनों ओर से ऐसा कोई काम न करना चाहिये कि जिससे आपस में प्रेम न रहे यथा बहुधा बरातों में दाने घास परोसे आदि तनिक २ सी बातों में ऐसे झगड़े डालदेते हैं कि जिस से समधियों के मनों में अन्तर पड़ जाता है कि जिस के कारण लाख देने पर भी आनन्द नहीं आता, क्योंकि कहा है–

जहां गांठ तहं रस नहीं, यही प्रीति की बान।

सच है कि बिना प्रेम के सर्वस्व मिलने पर भी प्रसन्नता नहीं होती, अतः प्रीतिपूर्वक प्रत्येक कार्य को करें कि जिस से दोनों तरफ प्रशंसा हो पर खर्च व्यर्थ न हो, प्यारे सुजनो तनिक तो विचारांश करो कि जब एक की बुराई हुई तो क्या वह हमारा सम्बन्धी नहीं है, क्या वह हमारी बदनामी नहीं हुई? सच पूछो तो ऐसे सम्बन्धियों पर धता भेजना उचित है, क्योंकि प्यारे भाइयो यह विवाह का समय आनन्द तथा प्रेम बरसाने या मृदुल कोमल वार्तालाप करने का है न कि इस समय में एक दूसरे के विपरीत लीला रचकर युद्ध का सामान इकट्ठा करलेना, यह सर्वथा मूर्खता की बात है, अतः परस्पर एक दूसरे की भलाई तन मन से विचार कार्य्यों को कर यश लेना उचित है, अथोपरान्त उन मनुष्यों की बात जो मन से दोनों की धूर चाहते तथा बाहर से बहुत लल्लो पत्तो करते हैं, उनकी वार्त्ता पर कदापि ध्यान न दो, क्योंकि

इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय पर वास्तव में कल्याण करने वाला हो, उसका बोलने वाला तथा सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है, सः यथा—

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्यतु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

क्योंकि बहुधा गुप्त शत्रु तथा दुष्ट लोग सम्मुख उसकी हां में हां मिलाते हैं और पीछे बुराई निकाल कर दरसाते हैं, तथा सज्जन लोग मुंह पर प्रत्येक वस्तु के गुण दोष वर्णन करते हैं, परोक्ष में प्रशंसा करते हैं अतः दोनों समधियों आदि को योग्य है कि आप दो पर दो प्रत्येक बात का निर्णय कर जो दोनों के लाभदायक हों अङ्गीकार करें जिससे दोनों आनन्द में रहें, यह विवाह का मुख्य फल है, अतः एक दूसरे के धन को मिथ्या खर्च न करा कर जो धन दान के नाम से दिया जाता है उसको यथार्थ विचार के देना योग्य है । जैसा दान विषय में लिखा है—

वर्त्तमान समय में वर तथा कन्याओं में जो प्रतिज्ञा कराई जाती है वह महादेव व पार्वती के नाम से होती है इस से जान पड़ता है कि महादेव व पार्वती के विवाह से प्रथम प्रतिज्ञाएं नहीं होती थीं, मान्यवरो यह प्रतिज्ञाएं वेदोक्त तथा सृष्टि के आदि से चली आती हैं, इसलिये आप भी वेदोक्त प्रतिज्ञाएं कराइये जिस प्रकार श्री स्वामि दयानन्द जी महाराज ने अपनी बनाई संस्कारविधि में लिखी हैं परन्तु वर्त्तमान समय की प्रतिज्ञाएं सर्वथा वेदविरुद्ध हैं, अघोपरान्त वर तथा कन्या से ही इन प्रतिज्ञाओं को उच्चारण कराइये क्योंकि सचमुच इन्ही वचनों का नाम विवाह है।

वर्त्तमान समय के पण्डित लोग विवाह के समय हवन पूर्ण रीति से नहीं कराते वरन गणेश (महादेव के पुत्र) का पूजन वेदोक्त मन्त्र (गणानांत्वा०) आदि से कराते तथा बीच २ में दक्षिणा लेते जाते हैं, जिस की आज्ञा प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलती, बुद्धि के भी विरुद्ध है क्योंकि सर्वजन जानते हैं कि महादेव व पारवती के विवाह पश्चात् इन गणेश जी का जन्म हुआ होगा, तो इस से प्रथम जो हमारे

पूज्यों के विवाहसंस्कार हुए होंगे उस में इन गणेश का पूजन कैसे हुआ होगा, ज्ञात होता है कि प्रथम गणों के ईश परमात्मा का पूजन होता था जिस के स्थान पर अब मिट्टी के गणेश बनाकर पूजन करा कर दक्षिणा लेने लगे।

मान्यवरो! इस प्रकार दक्षिणा देना भी अत्यन्त बुरा है क्योंकि जब बीच में पण्डित तथा यजमान में दक्षिणा का झगड़ा होते ही वैदिकसंस्कार का स्वाद बिगड़ जाता है तब श्रोताओं को आनन्द नहीं आता, अतः संस्कार के अन्त में यथारुचि दक्षिणा देना श्रेष्ठ है।

तदुपरान्त वर्त्तमान समय में विवाहसंस्कार होने के पश्चात् पुत्र तथा पुत्री वाले दान भी करते हैं जो भूड़ दक्षिणा अथवा देहली के नाम से ब्राह्मणों को मिलती है, जिसमें प्रति वर्ष हजारों रुपयों के दान होजाते हैं परन्तु वर्त्तमान समय की रीति से दाताओं से लेनेवालों को एक दो दिन के भोजनों के अन्य कुछ लाभ नहीं होता अतः दान करने की रीतों को विचार कर दान करना अभीष्ट है जिससे दान का फल दाताओं को प्राप्त हो तथा देश का भी कल्याण हो, धन भी व्यर्थ नष्ट न होने पावे क्योंकि धन एक उत्तम पदार्थ है।

——*:०:*——

[६--धन की महिमा]

हे सज्जनो! इसी लक्ष्मी से सब कार्य्य संसार के चलते हैं, जितनी बातें हमारे जीवन के लिये आवश्यक हैं वा जिनसे हमारा जीवन भोग विलास सुख चैन तथा आराम से कटता है वे सब इन्हीं लक्ष्मी जी के आधीन हैं, क्योंकि संसार भरके मनुष्य जिनको कुछ भी बोध तथा ज्ञान है इस बात को मानते हैं तथा प्रतिदिन हमारी परीक्षा में भी आरहा है कि धन ही से गौरवता प्रतिष्ठा विभव ऐश्वर्य्य सुख धर्म तथा प्रभुता प्राप्त होती है।

पारमार्थिक काम भी बहुधा इसी के द्वारा निकलते हैं क्या राजा क्या प्रजा सब इसीके लालची तथा इसीके लोभी बने भटकते रहते हैं जैसा कि—

टका हर्ता टका कर्ता टका मोक्षप्रदायका ।
टका सर्वत्रपूज्यन्ते विनटका टकटकायते ॥

आत्मा की शुद्धि ज्ञान से, ज्ञान शरीर की आरोग्यता से, आरोग्यता उपयोगी आहार विहार से, वह संयम से, सुनियम निश्चिन्तता से, निश्चिन्ता धन से प्राप्त होती है, विद्याध्ययन में पुस्तकों तथा पत्रों की आवश्यकता होती है जो विना धन के नहीं मिल सकते, संसार में प्रतिष्ठा की सब कोई अभिलाषा रखता है, प्रतिष्ठा राज्यसम्मान से, राज्य सम्मान विद्या से, विद्या शिक्षा से, शिक्षा गुरु सेवा से, और गुरु सेवा धन से होती है, लोकेन्द्र, सुरेन्द्र, महेन्द्र, राना. राव, साहूकार, महाजन सेठ नव्वाब सब लक्ष्मी जी ही के खेल हैं, सी० आई० ई० (सितारे हिन्द) आदि उपाधें सब लक्ष्मी जी ही की तो उपाधें हैं, निदान उस सर्वशक्तिमान् ने धन को एक विचित्र शक्ति दी है मानो उसको उप सर्वशक्तिमान् बना दिया है, जिनके बाप दादे निर्धनता के कारण जुगनू से चमकते थे, आज उनके बेटे धन की बदौलत सूरज के समान दिगन्तर में प्रकाशित हैं, जिन घरों में प्रकाश चन्द्रमा की चन्द्रिका को लजाता था, आज उन घरों में घोर अन्धकार छाया हुआ है, ये चन्द्र-वन्शी तथा सूर्यवन्शी जिनका प्रभाव चन्द्रदिवाकर की भांति समस्त भूमण्डल में व्याप्त होरहा था, अब बहुतेरे कर्जे के बन्धन में ऐसे जकड़े हुए हैं कि जिससे पलमात्र चैन नहीं पड़ता, जिनकी जाति पांति का कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था, वह राय राव इत्यादि कहलाते हैं, हम क्या वरन सब जगत् के मनुष्य इस बात को कहते हैं कि विधना ने सम्पूर्ण सृष्टि से धन ही को उत्तम पद दिया है संसार के सब काम तथा सम्बन्ध उसी के आधीन रक्खे हैं, उस विश्वम्भर के पीछे हमारी आवश्यकता तथा सुखसाधन निमित्त धन से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं यह भर्तृहरि जी ने कहा है—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनाः ।
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ॥
स एव वक्ता स च दर्शनीयाः ।
सर्वे गुणाः कांचन माश्रयन्ति ॥

अर्थात् धनवान् ही कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत, गुणज्ञ, तथा दर्शनीय है, ऐसा ही उद्योगपर्व अध्याय ७२, चाणक्यनीति, तथा हितोपदेश में भी कहा है किसी महात्मा का वचन है कि शील, शौच शान्ति, चातुर्य, मधुरता, कुलीनता यह सब निर्धन मनुष्य को शोभा नहीं देते, भर्तृहरि जी ने लिखा है कि शील पर्वत से गिरकर चूर होजाय शूरता भी जाती रहे, जाति भी रसातल को चली जाय, परन्तु केवल एक धन बचा रहे, क्योंकि उसके विना सर्व गुण तृण के समान जान पड़ते हैं, ऐसा ही युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा तथा अर्जुन को उपदेश दिया है कि धन से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कीर्त्ति की उन्नति होती है, इसी कारण अथर्व काण्ड १३ अनु० १ व० ४ में लिखा है-

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं संस्पृशस्व॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो! शरीर को आरोग्य रखकर उद्योग द्वारा धनादि पदार्थों को प्राप्त करो, यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र २ में लिखा है, कि हे मनुष्यो! जब तक जियो तब तक उद्योग करते रहो आलसी कभी न हो जैसा कि-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः॥

वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग १२ में लिखा है कि उत्साह ही श्रेष्ठ है उत्साही मनुष्यों को कुछ दुर्लभ नहीं, यही लक्ष्मी तथा सुख का मूल है-

य० अ० २० मं० ७२ में कहा है कि ऐश्वर्य के विना राज्य, राज्य के विना राज्य लक्ष्मी और राज्य लक्ष्मी के विना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये।

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम्।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत॥

य० अ० २१ मं० ३८ में कहा है कि जिस प्रकार विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य्य-धर्म के आचरण विद्या सत्सङ्ग आदि से सब सुख को प्राप्त करते हैं उसी भांति पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवे-

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रम-श्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजᳫं श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

क्यों कि गृहस्थाश्रम घोड़े आदि उत्तम पशु और वीर अर्थात् बलवान् योधाओं और सुवर्ण आदि धन के यह यज्ञ पूर्ण नहीं होता अर्थात् आनन्द नहीं आता इस लिये सदा पुरुषार्थ करना उचित है जैसा य० अ० ८ मं० ६३ में कहा है।

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् ।
वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥

ऋग्वेद अ० २ अ० ३ वर्ग ४ मं० १ अ० २२ सू० १६१ मंत्र ५ में कहा है कि जो विद्वानों की निन्दा करें विद्वानों में मूर्ख बुद्धि और मूर्खों में विद्वद्बुद्धि करें वे ही खल सबको तिरस्कार करने योग्य हैं।

प्रिय सज्जन पुरुषों संसार में जो कुछ होता है वह सब पुरुषार्थ का ही फल जानो, वेदों का भी यही सिद्धान्त है, तथा—

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिताः ।

सब स्त्री पुरुष श्रम करके सुखों को प्राप्त करते रहें, इसके उपरान्त य० अध्याय ९ मंत्र २२ में भी लिखा है कि हे मनुष्यो तुम आलस्य मत करो सदैव पुरुषार्थ करते रहो, भर्तृहरि जी ने अपनी राजनीति में भी लिखा है कि आलस्य के समान मनुष्य के शरीर में कोई रिपु नहीं हैं इस लिये भाग्य के भरोसे बैठ कर उद्योग न करना अत्यन्त अज्ञानता का कारण है शास्त्र में प्रारब्ध को बीज के समान माना है, मान्यवरो विचार करने का स्थान है कि यदि किसी पुरुष के पास बीज हो और वह पृथ्वी आदि में न बोकर पानी आदि से उसका उचित वा योग्य उपाय न करे तो कदापि अन्न आदि की उत्पत्ति नहीं होसकती, हां प्रारब्ध रूपी भूमि में उद्योग रूपी जल से सेचन

करने से ही कार्यरूपी अङ्कुर निकल कर मनुष्यों को सुख होता है चाणक्यनीति में लिखा है कि उद्योग दरिद्रता का नाश करता है—

"उद्योगे नास्ति दारिद्रयम्"

भर्तृहरि जी ने कहा है कि उद्योग के समान मनुष्य का कोई बन्धु नहीं, है याज्ञवल्क्य जी भी कहते हैं कि एक चक्र से रथ नहीं चलता अयोध्याकाण्ड सर्ग २ श्लोक १६ लक्ष्मण जी का वचन है कि जो लोग डरपोक तथा वीर्य हीन होते हैं वही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं सूर वीर लोग उद्योग कर सुख प्राप्त करते हैं, परन्तु यह भी स्मर्ण रहे कि अन्याय से प्राप्त किया धन सुख नहीं देता न अधिक दिन तक ठहरता है वरन चाणक्य जी के लेखानुसार ग्यारहवें वर्ष प्राप्त होते ही मूल सहित नष्ट होजाता है—

अन्ययोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥

आपने यह भी सुना होगा कि जो धन जिस प्रकार आता है वह उसी प्रकार जाता है, 'माले हराम बूद बजाये हराम रफ़्त' ।

तत्पश्चात् जो मनुष्य दूसरों का द्रव्य झूठ बोलकर लेते हैं वह उनका सर्व प्रकार का नाश मारदेते हैं, अतः ऐसे पुरुषों को पूर्ण सुख नहीं मिलता वरन थोड़े ही दिनों में जड़ समेत नाश होजाते हैं—

अधर्म्मेण धतेतावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

इसके अतिरिक्त संसार में झूठा, वेधर्म आदि नाम से प्रसिद्ध होजाते हैं, इसी लिये घूस आदि अधर्म से धन कमाने वालों की शुद्धि मिट्टी अथवा जल से नहीं होती क्योंकि सम्पूर्ण शुद्धियों के बीच द्रव्यशुद्धि ही मुख्य है अर्थात् जो मनुष्य धर्म से धन को प्राप्त करता है वही शुद्ध कहाता है—

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परंस्मृतम् ।
योऽर्थशुचिर्हि स शुचिर्नमृद्वारि शुचिःशुचिः ॥

इसी हेतु परमात्मा ने यजुर्वेद में आज्ञा दी है कि हे मनुष्यो तुम किसी के धन की इच्छा मत करो—"मा गृधः कस्य स्विद्धनम्" इसी के अनुकूल ऋग्वेद अ०२।अ०७।व०११।मं०२।अ०३।सू०२७ मं०७ में कहा है कि अन्याय से किसी के धनके ग्रहण करने की इच्छा न करो किन्तु धर्मयुक्त व्यवहारों से यथाशक्ति धनका सञ्चय करते रहो और जो कोई चोरों की भांति द्रोह से पराये पदार्थों को लेते हैं वह धर्म को नहीं जानते जैसा ऋग्वेद ।अ०२। अ०८। व०३२। मं०१। अ०३। सू०२३। मं०१६ में कहा है।

इसी के अनुकूल मनुजी महाराज ने कहा है कि धर्म से रहित धन को त्यागना उचित है क्योंकि पाप से कमाई करने वाला किसी कर्म के करने का अधिकारी नहीं रहता इसी हेतु मनुजी यह उपदेश करते हैं कि अपने जीवन के अर्थ भी अधर्म से धन को प्राप्त न करना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं स्वात्मरक्षणम्।
अन्यायो नतुयोजीवेत्सर्वकर्मवहिष्कृतः॥

अतः धर्मानुसार धन उपार्जन कर दानादि कार्य्य करो ऐसा करने से ही कीर्ति होती है क्योंकि विना इस के जीता हुआ मनुष्य मरे के समान है अतः अन्य के धन को मिट्टी के समान जान त्यागना उचित जानो—

"परद्रव्येषु लोष्टवत्"

पक्का त्याग यही है कि सब आचारों की जड़, सब विचारों का सार यही है, इसके उपरान्त पाप के करनेवाले पुरुषों को ही दण्ड मिलता है अन्य मनुष्य खाकर अलग होजाते हैं, विदुर जी महाराज का वचन है—

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनाः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥

मान्यवरो फिर मोह में फंसकर सम्पूर्ण पाप सिर पर लेना वृथा है अतः धर्मानुसार द्रव्य उपार्जन करने की टेव डालना उचित है

देखिये श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने कहा है कि इस संसार में थोड़े ही दिन रहना है अतः अधर्म से पृथ्वी का राज्य लेना भी वृथा जानो, श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि जिस कार्य्य में धर्म की हानि होती हो उस कार्य्य को कदापि न करना चाहिये, देखिये विष्णुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १८, १९, २० में लिखा है-मैं सदा उन पुरुषों के समीप रहती हूं जो धर्मशास्त्र के अनुकूल कार्य्य करते हैं, जिनकी इन्द्रियां पाप में नहीं जातीं, जो अपनी स्त्री में सन्तुष्ट रहते हैं ऐसा ही विदुरनीति में भी लिखा है, हे प्यारे भ्रातृगणो सब मिलकर इन उपरोक्त आज्ञाओं के अनुकूल कार्य करके धन प्राप्ति कर सुख तथा आनन्द को भोगो। जैसा ऋग्वेदः मं० १। अ० ३। सू० १५। मं० ७ में लिखा है-

प्यारे सुजनो बहुधा जन धन उपार्जन में तो अधिक परिश्रम करते हैं पर उसकी रक्षा में किञ्चित् ध्यान नहीं देते, न उस द्रव्य को यथायोग्य समयों पर यथावत् रीति से व्यय करते हैं कि जिसके कारण उनको उस धन से वह लाभ प्राप्त नहीं होते जो अन्य देशी बुद्धिमान् प्राप्त कररहे हैं, वा हमारे प्राचीन पुरुषों ने फ़ज़ूलखर्ची तथा कंजूसी दोनों को त्यागन कर यथार्थव्ययी बन कर आनन्द उड़ाये थे, इसी भांति वर्त्तमान समय में भी बहुधा अकलमन्द जातों ने जो उन्नति में सूर्य के समान प्रकाश कर रहे हैं यथार्थ व्यय ही पर अमल किया है, संसार के मनुष्य मात्र को अपने समान जाना तथा इनको बढ़ने फूलने फलने की आज्ञा दी कि जिसका यह फल हुआ कि जात की जात बुद्धिमान्, विद्यावान्, चतुर होगई, अपने खर्च के निमित्त अत्यन्त उत्तम रीतें नियत कीं जिसका बदला यह मिला कि समस्त जात धनाढ्य तथा निश्चिन्त होगई, जिसके कारण से जो आराम तथा सुख एक गोरे को मिल रहाहै वह हमारे देश के धनवान् साहूकार को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता, जिसका मुख्य कारण यही है कि हमारे देश वाले द्रव्य को यथावत् रीति से खर्च करना नहीं जानते, देखिये रईस तथा जमींदारों का धन क्या सदा फजूलखर्ची में नहीं गया, महाजनों तथा साहूकारों की कंजूसी ने धन को इकट्ठा करने के उपरान्त धन से क्या कुछ अन्य काम लिया, कृषक जनों की दशा देखकर क्या शोक नहीं आता?

हे प्यारे सुजनो यदि उपरोक्त क्लेश मेटा चाहो तो तनिक विचार में मेट सकते हो, क्योंकि हम तथा आप अपने धन फजूलखर्ची तथा मिथ्या लज्जो पत्तो में उठाकर आप गौधू वनजाते हैं वा इस धन पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि उसको माण बचने की आशा पर नहीं देते, हम को यह भी नहीं आता, कि अपनी द्रव्य के कई भाग करें, तथा भविष्यत् का विचार रखकर उसको ऐसे कामों में व्यय करें कि जिससे शारीरिक तथा आत्मिक अथवा सामाजिक उन्नति हो, यथा शक्ति भोजन वस्त्र आवश्यक वस्तु से आनन्द उठावें, बाल बच्चों, माता पिता स्त्री आदि सम्बन्धियों को प्रसन्न रक्खें, मित्रों की मित्रता से भी लाभ उठावें, चैन चान से रहें, परन्तु यह सब कार्य यथाशक्ति करने चाहिये नकि उसमें ऐसा लिप्त होजावें, जो आपे को भी भूलजावें, इसी भांति विवाहादि में नाना भांति के सुख उठावें, उदार चित्त भी हों न कि ऐसे कि फिर आप किसी उदार चित्त को ढूंढते फिरें, भविष्यत् का भी ध्यान बनाये रहें, इसी से कहा है—

उतने पांव पसारिये जेती लांबी सौर ।

जो कोई अपनी पदुवी से अधिक बढ़ता है फिर वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है यथा बहुधा घमण्ड के नशे में चूर हो नामवरी में आकर द्रव्य में आग लगाते चले जाते हैं कि जिसके कारण ऋणी हो जाते हैं तो देश विदेश मारे २ फिरते हैं, बहुधा अपने बाप दादे के घरबार बगीचे बेचकर नंगे होजाते हैं, बहुधा अन्न वस्त्र को तंग होकर चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं, क्या यह कम विपत्ति की बातें हैं, जिन सज्जन पुरुषों के पास धन की अधिकता हो उनको भी इस धन को इन मिथ्या कार्यों में व्यय न करना चाहिये क्योंकि उन्हीं बड़े लोगों की देखा देखी सामान्य जन भी करने लगते हैं, भगवद्गीता में लिखा है यथा—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

अतः आप परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत मत चलिये कि जिस लीक पर अन्य जन चलने लगगये कि जिस से इस पवित्र भूमि का

सौभाग्य जाता रहा यह सब पाप भी आप के सिर होगा, हां खान पान उत्तम प्रकार से समयानुकूल पवित्रता के साथ नियत समयों पर अर्थात् दिन के १० बजे तथा रात्रि के ९ बजे पर होना आवश्यक है, प्रत्येक ऋतु के फल जो उत्तम २ स्वादिष्ट तथा लाभदायक हों खिलाने चाहिये प्रातःकाल कुछ उत्तम भोजन खाने के लिये जनमासे में भेजना अभीष्ट है तथा ग्रीष्मऋतु में ठण्ढाई अच्छे प्रकार से कि जिसमें गुलाव तथा केवड़ा भी पड़ा हो पिलावें, तथा पान आदि भी अच्छे प्रकार से दें, शाम को भोजनों के पीछे प्रत्येक को आधसेर दूध मिश्री संयुक्त पिलाना चाहिये।

इसी भांति प्रत्येक प्रकार के प्रबन्ध भली भांति कर सम्पूर्ण बरातियों को प्रसन्न कर नामवरी लें, वह धन जो उधर मिथ्या लुटाया जाता है कि जिससे किञ्चित् लाभ नहीं होता तथा इधर खान पान में भी कुछ ध्यान नहीं है चाहिये कि जितना होसके उतना धन लड़की तथा जमाई को दें कि जिससे उनका जीवन उत्तम प्रकार से हो, तथा आपको भी सदा परमानन्द हो बहुतसा धन गोटा पट्टा आदि में व्यय न करो कि जिस में रुपये के छः आने रहजाते हैं, जो २ पदार्थ दिये जावें वह भी अच्छे तथा काम के हों न कि पुरानी डेगची, कलई की भड़क, भला ऐसे देने में क्या लाभ होता है?

——०:*:०——

[७--दान माहात्म्य]

मान्यवरो संसार में दान भी एक अद्भुत पदार्थ है जिसके बड़े २ माहात्म्य सुनने में आते हैं, प्रतिदिन नाम मात्र के साधू भी यह कह कर चिताया करते हैं कि "जो देगा सो पावेगा"

दोहा-

तुलसी दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
कर का धरा न पाइहो, जो कर दिया न होय॥

पण्डित जन भी आपत्ति के समय यही उपदेश करते हैं कि दान कर सुख लीजिये राजा करण, तथा हरिश्चन्द्र ने इसी के कारण इस

संसार में यश प्राप्त कर अन्त को स्वर्ग पाया, ज्ञानी, अज्ञानी, उत्तम, नीच, सेठ, साहूकार, स्त्री पुरुष प्रत्येक इस के गुणों को जानते हैं इसके अतिरिक्त आप के वेदादि सत्य शास्त्रों में दान करने के बड़े २ माहात्म्य वर्णन किये हैं देखिये यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र २४ में लिखा है जो मनुष्य सत्य विद्या आदि पदार्थों को दान करते हैं, वह अतुलकीर्ति को पाकर सुखी होते हैं तथा अन्य को भी सुखी करते हैं—

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

पराशरस्मृति में लिखा है कि धन से परम सुख तथा स्वर्ग मिलता है, अर्थात् दान करने से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है—

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥

महाभारत में भीष्मपितामह का वचन है कि तीनों लोक में दान से बढ़कर कल्याण करने वाला कोई धर्म नहीं, विदुर महाराज ने कहा है कि दान करने से नाना प्रकार के सुख होते हैं, परशुराम जी ने दान देने से अतुल लाभ कहा है महाराजा युधिष्ठिर जी ने दान को परमशान्ति का कारण कहा है, शुक्रनीति तथा चाणक्यनीति में कहा है कि बिना दान के एक दिन भी व्यतीत न करना चाहिये।

यथार्थ में दान करने से मनुष्य को संसार में सुख तथा परलोक में आनन्द प्राप्त होता है, परन्तु मान्यवरो परमेश्वर ने जितनी वस्तुएँ संसार में रची हैं उनके काम में लाने की एक विद्या भी बनाई है, जो मनुष्य उन वस्तुओं को उस विद्या के अनुकूल यथावत् काम में लाते हैं वह अपने कार्य को सिद्ध कर आनन्द को पाते हैं, अन्यथा कार्य की सिद्धि नहीं होती तथा बहुधा क्लेश उठाने पड़ते हैं, क्या किसी ने ऊषर में बीज डालकर अन्न को काटा है? क्या बालू की दीवार से किसी ने अपने घर की रक्षा की? या किसी ने नीम के पेड़ को लगा

कर आम खाये हैं ? नहीं, वरन अपने धन तथा बीज अथवा परिश्रम को व्यर्थ खोकर नाना प्रकार के क्लेश को उठाया होगा।

प्यारे सज्जनो ! अब आप जो विना विचार किये नाना प्रकार के कुल अन्न वस्त्र सोना, चांदी इत्यादि दान करते चले जाते हो तथा उनसे अक्षयफल की प्राप्ति की आशा रखते हो, पर मान्यवरो कभी आपने दान करने की रीतों को भी सुना या देखा है ? नहीं, फिर क्योंकर यथार्थ फल आप को मिलसकता है, कदापि नहीं, वरन विपरीत रीति के अनुसार कार्य करने से उपरोक्त किसानादि की भांति धन को व्यर्थ खोकर ईश्वरीय नियम के तोड़ने के कारण दण्डभागी होना पड़ेगा, इसलिये सब से प्रथम दाताओं को यह विचार करना योग्य है कि किस पदार्थ को किस प्रकार देने का नाम दान है देखिये याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि स्वधर्म के अनुसार न्यायपूर्वक सञ्चित किये हुए द्रव्य को विधिवत् श्रद्धा करके जो याचकों के प्रति समर्पण करते हैं उसका नाम दान है, सः यथा–

न्यायार्जितधनं चापि विधिवद्यत्प्रदीयते ।
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतदुदाहृतम् ॥

देखिये हितोपदेश में लिखा है–"दरिद्रते दीयते दानम्" अर्थात् दरिद्री को दान देना चाहिये, देखो कहा है–

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम् ।
वृथादानसमर्थस्य वृथा दीपो दिवापि च ॥

जैसे समुद्र पर वर्षा व्यर्थ है दिन के समय दीपक निष्प्रयोजन, उसी भांति पेट भरे को भोजन कराना तथा धनवान् को दान देना व्यर्थ है।

अब इस विषय में विचार करना योग्य है कि दरिद्री कौन है ? प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि दरिद्री वह मनुष्य है जो अङ्गहीन अर्थात् लूला, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा, वा असाध्य, रोगी वा जठर वा रांड़ वा अनाथ जिनका पालन कर्ता कोई सम्बन्धी न हो वा ऐसे सत्पुरुष जो समय के हेर फेर से कङ्गाल होगये हों जो किसी से याचना करते

सकुचते हों तो उनका अवश्य ही खान पान वस्त्र इत्यादि का सहारा करना चाहिये क्योंकि दोनों की रक्षा करना परम आवश्यक है, न कि हट्टे कट्टे सण्ड मुसण्डे नाम के ब्राह्मण वा वैरागी साधु सन्तों की जो परिश्रम कर दो चार आठ आने रोज पैदा कर सकते हैं, अच्छे प्रकार माल भेंट चढ़ाकर अपने को कृतार्थ मानते हैं कि जिसके कारण वर्त्तमान समय में "एक चौथाई भारतवासी भीख मांगकर भोजन करते हैं" क्योंकि जब मनुष्य देखते हैं कि बिना परिश्रम किये नाना प्रकार के पदार्थ घर बैठे चले आते हैं तथा समस्त मनुष्य सेवा में रहते तो फिर क्यों परिश्रम करें, विद्या पढ़ने की कुछ आवश्यकता नहीं, आचरण कैसा ही हो, जहां तिलक छापे लगाये, कण्ठी माला गले में डाली, पत्रा बगल में दाबा वा जटा रखाली चमिटा हाथ में लिया पण्डित जी महात्मा जी, योगी महाराज, बावा जी आदि बन मजे से चैन उड़ाते हैं, बहुधा उन में से धन जमाकर नाना प्रकार के व्योपार करते हैं, अनेकान नाम मात्र के ब्राह्मण दो २ रुपये की नौकरी कर लाला जी मुंशी जी तथा ठाकुर साहब के पीछे लट्ठ लेकर चलते हैं, नीचे आसन पर बैठते हैं, पानी भरकर पिलाते हैं, बोझ लेकर चलते तथा भोजन बनाकर खिलाते हैं, उनके बच्चों का लालन पालन कर पशुओं आदि की सेवा करते हैं।

इसके उपरान्त नवयुवकों तथा स्त्रियों के कान फूंक कण्ठी गले में बांध तन मन धन स्वामी के अर्पण करा अच्छे प्रकार आनन्द भोगते हैं

इसके उपरान्त कोई २ जङ्गलों में मढ़ी बनाकर रहते हैं, बहुधा प्रकटरूप से स्त्रियों को साथ रखते हैं, बहुधा परस्त्री वेश्यागमन आदि कर चरस भङ्ग आदि के दम भरते हैं कोई २ खडेश्वरी बन ऊंची भुजा करलेते हैं, कोई भूले पर भूल अन्न त्यागन कर दूध उड़ाते तथा दूधाधारी कहलाते हैं, कोई सदा नङ्गे ही रहा करते हैं, कोई पञ्चाग्नि तापते हैं कोई मौन धारण करलेते हैं, कोई खाक पर लेट आयु व्यतीत करते हैं. इनके सिवाय पुरोहित आचार्य्य गुरु बन मतलब निकालते हैं—क्या इन्हीं का नाम पण्डित ब्राह्मण महात्मा साधु वैरागी आदि है?

प्यारे भ्रातृगणो! सद्ग्रन्थों को श्रवण करो या विचारो तो ज्ञात

होजावे कि पण्डित महात्मा साधु वैरागी पुरोहित आचार्य्य किसको कहते हैं देखिये महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर में लिखा है—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि निसेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधानएतत्पण्डितलक्षणम् ॥

अर्थात् जिसको आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख दुःख हानि लाभ मानापमान निन्दा स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिसके मन को उत्तम २ पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न करसकें वही पण्डित है ।

जो सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन अधर्मयुक्त कर्मों का त्याग ईश्वर वेद सत्याचार की निन्दा न करने हारा ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो यही पण्डित का कर्त्तव्य कर्म है, हितोपदेश में भी लिखा है—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥

पराई स्त्री को माता, अन्य के द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, अपने आत्मा के समान सब जीवों के आत्मा को जाने वही पण्डित है।

श्रीकृष्ण जी महाराज ने ब्राह्मणों के लक्षण अ० १३ श्लोक ४२ में लिखा है—

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥

अर्थात् अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का निरोध, विचार करना, बाहर भीतर पवित्र, क्षमा, कोमलता, शास्त्राचार्य्य द्वारा ज्ञान, अनुभव विश्वास आदि उत्तम कर्म जिसमें हों उसको ब्राह्मण कहते हैं और भी कहा है

"ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः"

यह तैत्तरीय उपनिषद् का वाक्य है कि शुद्ध भाव से सत्य मानना सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय मन से शुभ कर्मों को करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि धर्मयुक्त कामों का नाम तप है, इन्हीं कर्मों के करने वालों को साधु वैरागी महात्मा कहते हैं, ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय ११ में लिखा है—

"साधयंति परकार्याणि स्वकर्माणि च कार्याणि च साधु०"

अर्थात् जो मनुष्य यथावत् परोपकार करना ही अपना कर्त्तव्य कर्म समझता है उसका नाम साधु है, परमेश्वर के पूर्ण ज्ञान होने से जो प्रकृति के गुण तथा कार्यों में अरुचि होती है उसे वैरागी कहते हैं, पूर्णज्ञानी का नाम महात्मा है, जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ, और भी कहा है—

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्म लेपनैः ॥

धर्मात्मा शास्त्रोक्तविधि की पूर्णरीति को जानने हारा विद्वान् कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी मनुष्य को पुरोहित कहते हैं, जो सांगोपांग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित अति प्रेम से सब को विद्या का दाता परोपकारी तन मन धन से सब को सुख बढ़ाने में तत्पर निरपेक्ष होकर सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय हो उस को आचार्य्य अर्थात् गुरु कहते हैं ।

कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि बिना वेदादि विद्या पढ़े तथा उसके अनुसार आचरण सुधारे, किसी को महात्मा, वैरागी, साधु, सन्त, पुरोहित, आचार्य्य न कहना चाहिये ।

अब भारत के वैरागी, साधु, महात्मा, पण्डित, पुरोहित, आचार्य्य आदि को किञ्चित् ध्यान से अवलोकन कीजिये तथा उपरोक्त गुण मिलाइये तो नाम मात्र की गिनती रह जावेगी न कि जिधर दृष्टि

इसलिये चधर पण्डित साधु महात्मा आदि ही दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि इन उपरोक्त नामों के धारण करने में किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता परन्तु पूजा नित्यप्रति होती है, पण्डित जी महात्मा जी पुकारे जाते हैं, हलवा पूरी खाने को मिलती हैं, अतः कोई घर से लड़कर कोई माल मारकर कोई स्त्री के ऊपर कोई बहार देखने को बहुधा नीच काछी लोधे चमार कुम्हार गड़रिये धोबी आदि मूंड मुंडाय वैरागी साधु सन्त बन चैन उड़ाते हैं, कोई हरे कृष्ण जयसीताराम जी के भण्डार खोल देते हैं, यदि इन से कहाजाय कि आप ने विद्या नहीं पढ़ी, आचरण नहीं सुधारा तो बड़े क्रोध में आकर लाल आंखें चढ़ा कहते हैं कि विद्या पढ़कर क्या होगा हम को कुछ दुनियां का काम थोड़ा ही है, जङ्गल में रहना तथा मङ्गल करना, माई के लाल बने रहैं हम को कमी क्या है, देखलो बच्चो माइयां आती हैं दर्शन कर फल पाती हैं, एक कहने लगते हैं–

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि, सन्त की
महिमा वेद न जानी ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ॥

प्यारे भाइयो यह सब नास्तिक हैं क्योंकि मनु जी ने लिखा है कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" अर्थात् जो वेद की निन्दा करे वह नास्तिक है, यह जन वेद को कहानी बतलाते हैं जो परमेश्वर का वाक्य होने से संसार के अर्थ सम्पूर्ण विद्याओं का कोष है जिसको सनातन से मानते चले आते हैं, ब्राह्मणों ने उसका पढ़ना ही छोड़ दिया यदि कुछ पढ़ना भी किया तो उसका अर्थ अपने स्वार्थ का सुनादिया कि जिससे भारत का ऐश्वर्य रसातल को चलागया तो भला ऐसों को दान देने से देश की क्या भलाई होसक्ती है, कदापि नहीं, वरन समस्त देश साफ़ होगया और होता जाता है तो क्या इन बुराइयों का पाप दाता के शिर पर न होगा ?

प्यारो आप ने तो मनुजी के ४ अध्याय के ३० श्लोक को भी कभी नहीं सुना जिसमें लिखा है कि वेदविरुद्ध व्रत तथा चिह्न के धारण करने वाले तथा निषिद्ध जीविका से जीने वैडाल व्रतिक शठ जिनकी वेद में श्रद्धा नहीं वेदविरोधी तर्क करने वालों का वाणीमात्र से भी आदर न करना चाहिये ।

अब वैडालव्रतिक तथा वकव्रतिक के लक्षण लिखते हैं जिस प्रकार मनुजी महाराज ने अध्याय ४ के श्लोक १९५ व १९६ में लिखा है—

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च वकव्रतचरो द्विजः ॥

अर्थ-(धर्मध्वजी) जो बहुत मनुष्यों को दिखलाने के अर्थ धर्म करता है तथा अपने मुंह से कहता भी फिरता है, तथा उससे अपनी प्रशंसा कराता है, सदा पराये धन में इच्छा रखता, बहाने से चलने वाला, हिंसा में प्रीति रखनेवाला, बिल्ली के समान जिसका आचरण हो उसको वैडालवृत्ति कहते हैं।

अपनी विनय जताने के अर्थ नीचे देखनेवाला, निष्ठुर अर्थात् दया शून्य अपने अर्थ साधन में तत्पर टेढ़ाई से रहनेवाला, झूंठी नम्रता करनेवाला, अर्थात् बगुले के समान जिसके लक्षण हों उस को वकवृतिक कहते हैं।

प्यारे भाइयो! अब आप विचारिये कि मुनिवर श्री मनुजी महाराज ऐसे पुरुषों के सत्कार ही की आज्ञा नहीं देते वरन उनसे यह भी न कहिये कि आइये पधारिये, क्योंकि जब उन का इस प्रकार निरादर होगा तो उन को अवश्यमेव लज्जा आवेगी तब परिश्रम कर विद्या पढ़ेंगे तथा आचरण सुधारने का विचार होगा, सो आप तो विद्या तथा आचरण को देखते ही नहीं वरन थैली का मुंह खोल 'माले मुफ़्त दिले बेरहम' की भांति नाममात्र के साधु, सन्त, वैरागी, संन्यासी ब्राह्मणों को घर बैठे ही पहुंचाते हो, अर्थात् सब धान बावन पसेरी करदिये, अथोपरान्त गङ्गा, यमुना, हरद्वार काशी प्रयाग आदि तीर्थों में बड़े २ दान करना, बद्रीनारायण द्वारिका जगन्नाथ सेतुबन्दरामेश्वर आदि पुरियों में धन लुटाना, मृतक पिता के नाम पर सण्डों को खिलाना, ऐसे ही ठगों के लिये काशी प्रयागादि में क्षेत्र खोलना, तदनन्तर सुथरे साईं मुसलमान फकीरों, अघोरी आदि नाना

रूप धरने वालों को भी एक पैसा क्या एक कौड़ी तक न देना चाहिये क्योंकि इनकी देखा देखी बहुधा जन उन्ही रूपों को प्रतिदिन धारण करते चले जाते हैं जो अनेकान प्रकार से रात दिन मांग२ कर दो चार आने रोज जमाकर फिर भट्टीखाने में जा शरावें पीते रण्डियां रखते, भंग चरस आदि के दम मारते, मांस खाते जिन के सत्सङ्ग से भारत सन्तान का सत्यानाश हुआ जाता है ऐसे ही भिखारियों की सङ्ख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती है कि जिससे भारत के सिर का छत्र गिर गया। मनु महाराज ने अ० ३ मं० ९७

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम्।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः॥

अर्थात् वेदविद्यारहित भस्म सदृश ब्राह्मण में जो मोह से दाता लोग हव्य कव्य दान करते हैं वह सब निष्फल होता है, मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १५८ में लिखा है—

यथा सण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफलम्।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रो नृचोऽफलः॥

अर्थात् जिस प्रकार से नपुंसक मनुष्य स्त्रियों में निष्फल है, गो गौ में, उसी प्रकार मूर्ख ब्राह्मण को दान देना निष्फल है तैसे ही वेदाध्ययन के विना ब्राह्मण निष्फल है, इसी प्रकार मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १४२ में लिखा है-

यथेरिणे वीज मुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
यथाऽनृचेहविर्दत्वा न दाता लभते फलम्॥

जिस प्रकार ऊपर भूमि में बीज बोने से बोनेवाला फल को नहीं पाता उसी भांति से जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता उसको ईश्वराराधन सम्बन्धी पदार्थ देने में दाता फल को नहीं पाता, उक्त अध्याय के १६८ श्लोक में लिखा है—

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते॥

जैसे तृण की अग्नि झट पट शान्त होजाती है, तैसे ही वेद रहित ब्राह्मण है, अतः उसको हव्य न देना चाहिये क्योंकि राख में होम नहीं होता, मनु० अध्याय ४ के श्लोक १९३ में है—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदकेतरन् ।

तथा निमज्जतोऽधस्ता दज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥

जिस प्रकार पत्थर की नाव पर चढ़कर मनुष्य जल में डूबजाता है, उसी प्रकार मूर्ख दाता तथा प्रतिगृहीता दोनों नरक में डूबते हैं, इसी प्रकार गीता में अ० १२ श्लो० २०

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

जो दान कुपात्रों को निषिद्ध देश काल में दियाजाता वह तमोगुणी अर्थात् राक्षसी दान कहलाता है।

व्यासस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५१ में लिखा है कि शौच से नष्ट तथा व्रत से विहीन ब्राह्मणों को अन्न तक न दें, यथा—

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ।

दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृताकृतं ॥

उक्त अध्याय के ३७ श्लोक में लिखा है कि काठ का हाथी चमड़े का हिरण वैसा ही विना पढ़ा ब्राह्मण केवल नाम को धारण करने वाला है—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।

यश्च विप्रो नाऽधीयानस्त्रयस्ते नामधारकः ॥

मनु जी महाराज ने अध्याय ४ श्लोक ९० में कहा है कि जो ब्राह्मण तप या विद्या शून्य है दान लेकर दाता समेत नरक में जाता है जैसे पत्थर की नाव पर चढ़नेवाला मल्लाह सहित डूबता है—

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।

अम्भस्यश्म प्लवेनैव सहते नैव मज्जति ॥

ऐसा ही भविष्यपुराण के तीसरे अध्याय पूर्वार्द्ध तथा शान्ति पर्व अ० २६ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि जो धर्म भ्रष्ट लोगों को दान देते हैं वह १०० वर्ष तक परलोक में पुरीष भोजन करते हैं, भविष्यपुराण के १३६ अ० उत्तरार्द्ध में कहा है कि अकुलीन मूर्ख लोभी पिशुन ब्राह्मण को कभी दान न दे।

मार्कण्डेय महर्षि ने वनपर्व अध्याय १९७ में लिखा है कि धर्म से हीन पतित, चोर, पापी, कृतघ्न, शूद्र के पुरोहित वेद के बेचनेवाले जिसने वेश्या से समागम किया हो उनको कदापि दान न दे, विदुर जी ने महाराजा धृतराष्ट्र से कहा है कि नमक, दूध, शहत, तेल, घी तिल, फल, फूल, शाक, कपड़ा, गुड़, अन्न तथा सम्पूर्ण सुगन्धों के बेचने वाले ब्राह्मणों के पैर भी न धोना चाहिये, वृद्धगौतमसंहिता में श्रीकृष्ण जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि हे राजेन्द्र! अपात्रों को विपुलदान करना भी राख में हवन करने के समान निष्फल है–

अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानान्यसु बहून्यपि ।
वृथा भवन्ति राजेन्द्र! भस्मन्याज्याहुतिर्यथा ॥

मनुस्मृति अध्याय ११ के श्लोक ७० में लिखा है कि जो ब्राह्मण निन्दित जनों से दान लेता हो, व्योपार, शूद्र की चाकरी करता हो, झूठ बोलता हो, उसको दान लेने का अधिकार नहीं रहता।

कृमिकीटवयो हत्या मद्यानुगतभोजनम् ।
फलैधः कुसुमस्तेय मधैर्यं च मलावहम्

अत्रिस्मृति के ३४३ से ३४७ श्लोक में लिखा है कि अङ्गहीन, श्रुतिस्मृति रहित मिथ्यावादी, व्योपारी, हिंसक, कपटी, भिक्षुक पीले रङ्गवाला, काना, जिसकी देह बिगड़ी हो, केश गिरगये हों, पाण्डुरोगी जटाधारी, बोझका ढोनेवाला, जिस के दो स्त्री हों, जिसने शूद्राणी से विवाह किया हो, मनों का फाड़नेवाला, अङ्ग अधिक हो, बहकाने वाला जो दूसरे के गुणों में दोष देखनेवाला, कठोर बुद्धि वाला, इन उपरोक्त ब्राह्मणों को दान न देना चाहिये, यथा–

न हीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ।
नित्यां च नृतवादी च बणिक् श्राद्धेन भोजयेत् ॥
हिंसारतं च कपटं उपगुह्यश्रुतं च यः ।
किङ्करं कपिलं काणश्वित्रिणं रोगिणं तथा ॥
दुश्चर्माणं शीर्णकेशपाण्डुरोगं जटाधरम् ।
भारवाहितरौद्रं च द्विभार्यं व्रषलीपतिम् ॥
भेदकारी भवेश्चैववहुपीडाकरोपि वा ।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥
वहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरवुद्धिमान् ।
एतेषां नैव दातव्यः कदाचित्तु प्रतिग्रह ॥

मनुस्मृति के अध्याय ४ श्लोक १९२ में मनु जी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि जिस ब्राह्मण की वृत्ति बिल्ली अथवा बगले के समान हो, जो वेद को नहीं जानता, उस को जल मात्र भी दान न दे।

नवार्यपि प्रयच्छेतु वैडालव्रतिके द्विजे ।
न वकव्रतिके विप्रे ना वेद विदि धर्मवित् ॥

लिङ्गपुराण में लिखा है कि जिसके शरीर पर गर्म करके शङ्ख चक्र की छाप लगाई हो वह जीते जी मुर्दा तथा सर्व धर्मों से पतित के समान त्यागने योग्य है जैसा कि—

शङ्खचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते ।
सजीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥

फिर ऐसे चिह्न के धारण करने वाले ब्राह्मणों को लिङ्गपुराण का कर्त्ता जो वैदिक आज्ञा के प्रतिकूल है दान देना उचित नहीं बताता है क्योंकि दान श्रेष्ठों को दिया जाता है न कि पतित को।

पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तमाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है लेनेवाला ब्राह्मण गांव के सुअर का जन्म लेता है, यथा—

धूम्रपानरतं विप्रं दानकृत्वेति यो नरः ।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥

महाभारत शान्तिपर्व में व्यास जीने कहा है कि वेद ज्ञान से हीन ब्राह्मण को दान न देना चाहिये जिस प्रकार कपाल में पानी तथा कुत्ते के चमड़े में दूध बिगड़ जाता है उसी भांति कुपात्र को दान देने से पापी बनना पड़ता है, बृहस्पतिस्मृति श्लोक ५७, ५८, ५९, ६० में लिखा है कि कच्चे पात्र में रक्खा हुआ दूध दही घी सहत पात्र की दुर्बलता से नष्ट होजाता है उसी प्रकार गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथ्वी, तिलहन, को जो मूर्ख लेता है वह काष्ठ के समान नष्ट होजाता है अतः कुपात्रों को कभी दान न देना चाहिये ।

प्रिय सज्जन पुरुषो ! जब उपरोक्त नाममात्र के पण्डितों का पेट सोने, चांदी, अन्न, घी, हाथी, घोड़े आदि से भी न भरा तब उन्होंने स्त्रीदान का भी आर्डर पास कर दिया, छिः ! छिः ! हा लज्जा को भी तिलाञ्जुलि देदी, दोनों के हिये के नेत्र मारेगये, वेदादि सत्य ग्रन्थों में तो स्त्रीदान के अर्थ कोई आज्ञा नहीं है, अथोपरान्त बुद्धि से भी विचार करना योग्य है कि स्त्रीदान करने से क्या हानि लाभ हैं—

प्यारे भाइयो ! गङ्गादि स्थानों पर बहुधा मनुष्य स्त्रीदान करते हैं फिर पुरोहित जी मुंह मांगी दक्षिणा यजमान से लेकर स्त्री फेर देते हैं, अब विचार कीजिये कि यदि यजमान मुंह मांगे दाम न दे तो स्त्री गई यदि दे तो मनमाना धन गया, विना पूरे मूल्य के भेंट किये स्त्री का लेना मानो पाप को मोल लेना है क्योंकि अब तो पुरोहित जी का पूरा अधिकार है अपने सौदे को जितने मूल्य पर चाहें बेचें, अथोपरान्त यदि पति स्त्री से नाराज ही हो तो वह पुरोहित जी को मुंह मांगे न देगा तो पुरोहित जी इस सूरत में जो अधिक दाम लगावेगा वह उस माल को लेलेगा, यदि स्त्री नव यौवना हुई तो पुरोहित जी के कुटुम्बी जन ही उसको क्यों बाहर जाने देंगे, तो बताओ इस दशा में उसका पतिव्रत धर्म गया या नहीं, इसके अतिरिक्त पुरोहित जी अपने यजमान की स्त्री को पुत्री के समान जानते हैं तो क्या वह पुत्री

का दान लेते हैं वा उस कहावत को यथार्थ रीति से पूरा कर दिखाते हैं कि "मन में राम बगल में ईंटें" अर्थात् हाथी के दांत दिखलाने के और खाने के अन्य होते हैं, उसी प्रकार का हाल इन तीर्थ के पण्डों पुरोहितादि का जानना चाहिये, धिक्कार है ऐसे यजमान वा पुरोहित पण्डों पर जो ऐसे अनुचित कर्म को खुले मैदान में अच्छे प्रकार से कर धर्मात्मा कहलावें, पर राज दण्ड के भागी न हों !

हे प्यारे दाताओ ! इन सत्यानाश के मारने वाले दानों को त्यागो, यह विषयी तथा लालची पुरुषों ने चलाये हैं कि जिससे यजमान से मुंहमांगा द्रव्य मिलसके नहीं तो विषयरूपी आनन्द तो कहीं गया ही नहीं !

अथोपरान्त सुनिये कि सूर्य्यग्रहण चन्द्रग्रहण में कुरुक्षेत्रादि स्थानों पर भी ऐसी ही लीला रचकर अपना पेट भरते तथा कहते हैं कि ऐसा समय दान का अति दुर्लभ है इस समय दान देने से विशेष फल होता है, इसका कारण यह बतलाते हैं कि जब विष्णु जी देवताओं को अमृत बांट रहे थे उस समय राहु नाम राक्षस देवता का रूप धर उन के साथ बैठगया तथा अमृत पीलिया पर सूर्य चन्द्रमा ने चुगली खा दी तब विष्णुने क्रोधकर चक्र से राहु का सिर काटडाला पर वह अमृत पीचुका था अतः वह मरा नहीं, इसी से सूर्य चन्द्रमा को जहां पाता पकड़ लेता है, फिर जब भारतवासी उस समय भङ्गी आदि को दान देते हैं तो वह छुटकारा पाते हैं इस हेतु सूर्य चन्द्रमा उन लोगों को जो दान देते हैं आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारा सदा भला हो जो तुमने हमको छुड़ाया ! हा अविद्या तूने भारतवासियों के जी में ऐसा विश्वास कराया है, उनको कुछ भी विचार नहीं जो जैसा चाहते हैं गपोड़े सुनाकर हाथ मारते हैं, हमारे स्वदेशी भाई बहनों को कुछ भी विचार नहीं, हाय कैसा अचम्भा, क्या ही शोक की बात है देखिये ग्रहलाघव में लिखा है—

"छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः"

अर्थात् जिस समय पृथ्वी घूमती हुई सूर्य चन्द्रमा के बीच में आजाती है तब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है इसी को चन्द्र

ग्रहण कहते हैं, इसी भांति जब सूर्य तथा पृथ्वी के बीच चन्द्रमा आजाता है तब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है अर्थात् सूर्य कटता सा दिखाई देता है इसी को सूर्यग्रहण कहते हैं, ऐसा ही अथर्व० कां० १४ अनु० १ मं० १ में लिखा है–

"दिवि सोमो अधिश्रितः"

अर्थात् सूर्य्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है अतः भूमि के बीच में आजाने से चन्द्रमा में अन्धकार होने लगता है अर्थात् चन्द्रमा कटा सा दिखलाई देता है।

इसी प्रकार अङ्गरेज़ों ने भी माना है, कालिजों तथा स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों पर यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है फिर पुराणों के इस लेख को मानना महामिथ्या है, फिर भङ्गी तथा नाम मात्र के ब्राह्मणों या कुपात्रों को सूर्य्य वा चन्द्रमा के छुटाने के निमित्त दान देना महामिथ्या है।

देखिये यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र २९ में लिखा है कि गृहस्थ जनों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्यादान करें वा करावें, संन्यासी आदि की सेवा कर विशेष विज्ञान को ग्रहण करे।

नमः॑ कप॒र्दिने॑ च व्युप्तकेशाय च॒ नमः॑ सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि वेद समस्त धर्मों का बतलाने वाला है अतः वेद विद्या का दान सब से श्रेष्ठ है–

सर्वधर्ममयंब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकंपतः।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥

मनुजी महाराज का वचन है कि जल अन्न गो पृथ्वी वस्त्र तिल सुवर्णादि के दानों से वेदविद्या का दान अति श्रेष्ठ है।

संवर्तस्मृति में लिखा है कि विद्यादान से मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है–विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते ॥

और य० अ० २८ मं० २४ में कहा है जो सत्यविद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुलकीर्त्ति को पाकर आप सुखी होते हैं और दूसरों को सुखी करते हैं जैसा—

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॑नं म॒हद्यश॒: सुस॑मिद्धं॒ वरे॑ण्यम॒ग्निमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। गा॒य॒त्रीं छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्र्य॒विं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वा॒ज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥

ऐसा ही मनुमहाराज ने अध्याय ४ श्लोक २३२ में लिखा है "ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम्"।

प्यारे सुजनो यदि यह दान प्रचलित रहता तो क्या भारत की यह कुदशा होती. मान्यवरो विद्या दो प्रकार की होती है एक परा दूसरी अपरा, परा से आत्मज्ञान तथा अपरा से सांसारिक व्यवहारों की सिद्धि होती है परन्तु ब्रह्मज्ञान से सांसारिक पदार्थों का ज्ञान आप से आप होजाता है अतः ब्रह्मअर्थात् वेदविद्या का दान सर्वोपरि माना है अतः आओ सब लोग मिलकर पाठशालायें प्रचलित करें उनमें वेदादि विद्याओं का पठन पाठन विद्यार्थियों को कराया जावे, तथा उनके अर्थ भोजनादि का प्रबन्ध कियाजावे तो आशा है कि भारत से अविद्या निकल जावे जब ही आप तथा आप की सन्तानों को पूर्ण सुख मिल सकता है अन्यथा नहीं।

प्यारे सुजनो सब आर्ष्य ग्रन्थों में सुपात्र को दान करने की आज्ञा है, सुपात्र विद्या तथा ज्ञान से होता है, उस प्रथा को भारत से उठा दिया फिर जब शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध कुपात्र को दान देते हैं तो फल किस प्रकार से आप को मिल सकता है देखिये मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २०१ में लिखा है कि गाय पृथ्वी सुवर्णादि जो कुछ दान करना हो विधिपूर्वक सुपात्र को दे, यदि अपना भला चाहो तो जान बूझ कर कुपात्र को कभी दान न दो—

गो भू तिल हिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥

याज्ञवल्क्य महर्षि जी आज्ञा देते हैं कि पवित्रदेश और पवित्र काल में जो वस्तु श्रद्धापूर्वक सुपात्र को दीजाती है वह महा उत्तमहै—

याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १ श्लो० ६।

देशकाल उपायेन द्रव्यंश्रद्धा समन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥

संवर्तस्मृति श्लोक ५६ में लिखा है कि जो मनुष्य उत्तम गुण वाले ब्राह्मण को दान देता है उसको लक्ष्मी प्राप्त होती है।

ताम्बूलं चैव यो दद्यात् ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ।
मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥

व्यासस्मृति अ० ४ श्लोक ३२ में लिखा है कि पात्र अर्थात् वेद-पाठी तथा तपस्वी को दान दे—

किंचिद्वेदमयपात्र किंचित्पात्र तपो मयं ।
पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥

मनुजी ने अध्याय ४ श्लोक २२७ में कहा है कि जब सत पात्र मिल जावे तो उत्साह के साथ यथा शक्ति दान दे तथा यज्ञादि कर्म करे—

दानधर्मं निशेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकं ।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्यशक्तितः ॥

मनुजी महाराज ने अध्याय ३ श्लोक ६८ में सत पात्र के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं कि जो ब्राह्मण विद्या तथा तप अर्थात् शुद्ध आचरण से युक्त होता है उसका मुख अग्नि के समान होता है उस में डालागया अर्थात् दान दिया गया हव्य कव्य आदि इस लोकमें कठिन रोग, अरि तथा राजपीड़ा आदि भय तथा बड़े पाप से बचाता है।

विद्या तपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैवकिल्विषात् ॥

मार्कण्डेयपुराण अध्याय ३५ में लिखा है कि योग्य ब्राह्मणों को ही दान दे—

"दानानि चैवादेयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः"

पाराशरस्मृति अध्याय १ श्लोक ४७ में लिखा है कि अच्छे खेत में बोया हुआ बीज कभी नष्ट नहीं होता इसी भांति सुपात्र को दिया धन उत्तम होता है—

सुक्षेत्रे वापयेद्वीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥

दक्षस्मृति अध्याय ३ श्लोक ४ में तथा भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध अ० १३२ में लिखा है कि सुपात्र को दान देना योग्य है इसी का फलदाता को होता है ऐसीही कपिल तथा युधिष्ठिर महाराज की सम्मति है ऐसा ही वशिष्ठ जीने राजा जनक से कहा है ।

याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक २०० में लिखा है कि केवल विद्या और तप से सत्पात्र नहीं होता हां जो विद्वान् हैं तथा वेदानुकूल उनके सुन्दर आचरण भी हैं उनको सत्पात्र कहते हैं—

न विद्या केवलया तपसा वापि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमेचोभे तद्धिपात्रं प्रकीर्त्तितं ॥

ऐसा ही व्यासस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५५ में लिखा है—

यद्भुंक्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ।
दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्मतदक्षयं ॥

शांतिपर्व में महात्मा कपिल ने कहा है कि सत्पात्र वही हैं जिन्हों ने कभी पाप कर्मों का सहारा नहीं लिया तथा जो अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं जिनका जन्म कर्म तथा विद्या तीनों पवित्र हैं ।

देखिये अत्रिस्मृति श्लोक ३३९-३४० में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद को जानता हो तथा सब शास्त्रों में चतुर हो माता पिता की सेवा करता हो, अपनी स्त्री के साथ ऋतुगामी हो शीलवान हो उत्तम आचरण हो, जो प्रतिदिन प्रातः स्नानकर नित्यकर्म करता हो, अपने कल्याण की इच्छा रखता उसको दान दे, यथा—

ब्राह्मणे वेदविदुषी सर्वशास्त्रविशारदे ।
मातृ पितृ परै चैवा ऋतुकालाभिगामिनी ॥
शीलचारित्रसम्पूर्णं प्रातःस्नानपरायणे ।
तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥

संवर्तस्मृति अध्याय १ श्लोक ४९ ५० में लिखा है वेदपाठी कुलीन सुशील बुद्धिमान् तथा शुद्ध ब्राह्मण को दान दे ।

शङ्खस्मृति अध्याय २ श्लोक १३ में लिखाहै कि जो ब्राह्मण नियमपूर्वक शुद्ध आचरण से गायत्री का जप करे उसको दान दे, ऐसा ही वनपर्व अध्याय १९९ में लिखा है, हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक २२, २३, में लिखा है कि वेद शास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों ही को दान देना चाहिये ऐसा ही बृहस्पति स्मृति श्लोक ५१ में लिखा है कि कुलीन, दरिद्री, वेदपाठी, सन्तोषी नम्र, सब का हितैषी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, जितेन्द्रिय, देवताओं में उत्तम ऐसे सज्जनों को दान दिया जाता है वह अक्षय फल को प्राप्त होता है ।

मनुजी महाराज ने ११ अध्याय के ६ श्लोक में लिखा है कि वेद के जानने वाले तथा वन में रहने वाले सुयोग्य ब्राह्मण को दान देने से स्वर्ग होता है ।

और जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथा योग्य सत्कार करना चाहिये जैसा य० अ० २४ मं० १८ में कहा है—

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणां सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदां कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥

य० अ० २० मं० ७९ में लिखा है गृहस्थ पुरुषों को उन्हीं पुरुषों का भोजनादि से सत्कार करना चाहिये जो लोग पढ़ाने–उपदेश करने और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् के बल पराक्रम, यश धन और विज्ञान को बढ़ावे ।

अहांऽथग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥

और अ० २५ मं० ४७ में कहा है कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे विद्वान् उन उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देते रहें जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े २ सुखों का लाभ हो।

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिन्दाः ॥

और देखिये गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणी ।
देशेकाले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

अर्थात् देशकाल पात्र को देखकर जो दान दिया जाता है उसको सात्वकी दान कहते हैं ॥

प्यारे भाइयो ! देश से यह प्रयोजन है कि जिस मुलक में जो वस्तु खाई जाती या काम में लाई जाती हो अथवा उस देश में जिस बात की आवश्यकता हो, काल अर्थात् ऋतु यानी सरदी गरमी वर्षा—इन सब को देख भाल कर जो जिस समय में उत्तम हो उसको दान करे, परन्तु पात्र को देखकर जैसा कि पूर्व वर्णन होचुका है दान देना चाहिये, ऐसे ही दानों से दाता यथावत् फल को पाता है, सो अब विना देख भाल किये खस्ता कचौड़ी तथा मोहनभोग के उपरान्त गोदान गजदान आदि देते चले जाते हो, हा शोक ! जब ही तो ब्राह्मणों ने वेद का पढ़ना पढ़ाना सुलक्षण होना सत्योपदेश करना यज्ञ करना कराना इत्यादि छोड़ दिया है।

पूर्वकाल में हमारे ऋषि मुनि महात्मा योगी ब्राह्मण नाना भांति से वेदादि विद्या पढ़ाते थे तथा योगाभ्यास कर नाना विद्याओं का प्रकाश करते थे चहुं ओर यज्ञ तथा हवन होते थे, समस्त भूमण्डल में

भ्रमण करके अपने सत्य उपदेश से तम हरते थे, उनके अर्थ लाखों के दान यहां से जाते थे, न कि वर्त्तमान समय की भांति काशी प्रयाग गयादि तीर्थों में स्वार्थी कुमार्गी दुष्ट आलसी लम्पट आदि को हजारों के दान दिये जावें पर विद्यादान पर जिसका पूर्व वर्णन किया गया किञ्चित् विचार न किया जावे, शोक का स्थान नहीं तो क्या है ? इसके उपरान्त दान के विषय में किसी महात्मा ने कहा है उसके अनुकूल दान करना योग्य है, यथा–

नष्टं कुलं भिन्न तडागकूपं भ्रष्टं च राज्यं शरणागतं च ।
गो ब्राह्मणं देवगृहं च जीर्णं य उद्धरेत्पूर्वचतुर्गुणानाम् ॥

(१) नष्ट कुल वही हैं जिनमें दूध पीते बालक बालिकाओं का कोई लालन पालन करने वाला न हो जिनको अनाथ कहते हैं, उनकी पालना इस दान से यतीमखाने वा अनाथालय बनवाकर करना चाहिये।

प्यारे सुजनो ! इस ओर आप आंख भी नहीं उठाते हजारों अनाथ पादरियों ने लेकर धर्म भ्रष्ट कर दिये क्या यह पाप की बात नहीं कि हमारे तुम्हारे होते स्वदेशियों की सन्तानों को अन्यदेशीय पालन कर पीढ़ी दरपीढ़ी का नाश मारदें, क्या यह शोक की बात नहीं, क्या इन सण्ड मुसण्डों के लालन पालन से अधिक पुण्य की बात नहीं ? सच पूछो तो धिक्कार है हमको जो हमारे तुम्हारे जीते जी भारत सन्तान का धर्म भ्रष्ट कर सदा के लिये अपना दास बनालें तिस पर भी दान का घमण्ड करें अथवा नशे में चूर रहें, ज़रा आंख खोलो अविद्या रूपी नशे में ऐसे न डूबजाओ जो घर तक की भी सुध न रहे अब उठ बैठिये, क्योंकि अब बरेली तथा फीरोजपुर अजमेर आदि में अनाथालय नियत होगये हैं, जहां इन दुःखियों का अपनी सन्तान से भी अधिक पालन पोषण होता है, गवर्वमेन्ट भी सहायता देती है, बहुधा देश के शुभचिन्तक भी दान देकर उनको सनाथ कर रहे हैं, अतः अब सम्पूर्ण भारतवासियों को इनके पालन की सुध लेना योग्य है।

(२) टूटे फूटे कुए तालावों की मरम्मत कराना, अर्थात् कुए बावली तथा तालाव को ऐसे स्थानों पर बनवाना चाहिये जहां

ग्रीष्म ऋतु में विना जल के पथिकों तथा पशु पक्षियों के प्राण संकट में पड़ते हों वा पिआऊ लगवाना कि जिससे दीनों को उत्तम जल मिलता रहे।

प्यारे सुजनो! विना जल के प्राण जाते रहते हैं इस कारण इसका दान करना भी पुण्य है क्योंकि उस समय कोई दान काम नहीं देता अर्थात् रुपया पैसा मोती कञ्चन आदि भी मिट्टी के सदृश जान पड़ता है, जैसा कि किसी कवि का वचन है-

चौपाई।

निरजल वन में प्यास सतावे। मोती सीप काम नहिं आवे॥

३-(भ्रष्टराज्यं) अर्थात् राज पर विपत्ति हो तो उसकी सहायता करना भी पुण्य है क्योंकि उसके रहने से नाना भांति के आनन्द रहते हैं

४-(शरणागतं च) अर्थात् जो मनुष्य आपत्ति वा विपत्ति के कारण अपनी शरण आया हो तो उसकी अवश्य ही सहायता तन मन धन से करनी चाहिये परन्तु डाकू चोर बदमाश राज्य का अपराधी आदि कुकर्मियों अधर्मियों की सहायता करना भला नहीं क्योंकि ऐसे खोटे मनुष्यों के बचाने तथा सहायता करने से जो वह सांसारिक जनों को नाना भांति से क्लेश पहुंचावें उन का पाप उन दाताओं की गर्दन पर होगा जिन्हों ने ऐसे कुपात्रों की सहायता की है।

५-गौ की रक्षा करना-हे सज्जन पुरुषो! यह आप का बड़ा उपकारी जीव है इसी कारण हमारे पूर्वजों ने इस के गुण देखकर " तरण तारण " नाम इसी को दिया, गोमाता भी इसी को कहते हैं क्योंकि यह माता के समान अपने रक्षकों का समस्त आयु पालन करती है, इसे कामधेनु भी कहते हैं क्योंकि यह सकल कामनाओं को पूर्ण करती है, इसका अमृतरूपी दूध मनुष्यों के जीवन का बीज, आयुर्बल, आकृति, धारणा, स्मृति, कान्ति का धारण, शौन्दर्य शरीर तथा रूप का देनेवाला, शुद्ध तथा मन के मल को पवित्र करने हारा है, ऐसा ही इसका घी भी निर्बलता, शोष (खुश्की) कृशता (दुबलापन) पित्त, वायु का हरने वाला, जीर्णज्वर, चेहरे की जर्दी, नेत्र विकार आदि विकारों को दूर करता है।

इन उपरोक्त लाभों के अनन्तर इसी के घी से यज्ञ होते हैं कि जिससे वृष्टि होती है, कि जिससे सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिनसे संसार की रक्षा होती, है, गीता का वाक्य है-

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

मनुजी महाराज ने मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १६२ में लिखा है

आचार्यञ्च प्रवक्तारं पितरम्मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद्ब्राह्मणाङ्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥

अर्थात् आचार्य, पिता, माता, गुरु तपस्वी तथा गाय को किसी प्रकार से न सताना चाहिये, क्योंकि इन से सब संसार का उपकार होता है देखो इसी गाय के बच्चे खेती के काम करते हैं जिससे जीव मात्र का पालन पोषण होता है इसलिये ऐसे उपकारी जीव की सर्व प्रकार रक्षा करनी चाहिये बूढ़ी गाय का दान करना भी छोड़ दीजिये गोशाला बनाकर नगर २ में रक्षा करनी चाहिये ।

प्यारे सुजनो ! ब्राह्मणों की सदा सहायता करना योग्य है क्योंकि इन्हीं के सहाय से हमारा देश सदैव उन्नति पाता रहा इन्ही के द्वारा वेदादि सत्यविद्याओं का प्रकाश हुआ, इन्ही के प्रभाव से ज्ञानरूपी प्रकाश ने संसार के अन्धकार को मेट दिया, इन्ही ने हमारे अर्थ अपने घरबार सकल परिवार को त्यागन कर प्राण तक न्योछावर कर दिये, सच पूछो तो जो कुछ वैभव प्रकाश तेज होगया सब इन्हीं का प्रताप था, फिर भला कौन ऐसा मनुष्य है जो इस उपकार को न मानता होगा कहा है-

" ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत् "

अर्थात् ब्राह्मणों तथा गौओं के अर्थ प्राण को भी समर्पण करना चाहिये फिर भला धन की क्या गिनती, परन्तु ब्राह्मणों के लक्षण स्मृति वा गीता आदि में जो लिखे हैं कि जिनका मैं पूर्व वर्णन कर आया हूं उन्ही की ब्राह्मण संज्ञा है यथा " ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं "

अर्थात् ब्राह्मणों का तप ज्ञान है अर्थात् स्वयं पूर्ण विद्वान् होके धर्म के लक्षणों का यथावत् पालन कर सदा दया युक्त निर्पक्ष हो सत्य सनातन वेदोक्त धर्म का प्रचार करें, सो भ्रातृगणों ऐसे सुलक्षण युक्त पूर्ण विद्वान् ब्राह्मणों के इस समय दर्शन दुर्लभ होगये हैं, इसी कारण तो भारत के सिर का मुकुट गिरगया, समस्त देश बल हीन तेज रहित विद्या विहीन होगया, वर्तमान समय के गोबर गणेश वीर्य से ही ब्राह्मण बन मूर्ख रहकर, पञ्चमहायज्ञों को त्याग, पत्रा पांडे होगये सत्योपदेश की दुकानें बन्द होगईं तथा नाना भांति के प्रपञ्च फैलगये।

हे बन्धुवर्गो सदा देश काल देख कर दान करना उचित है, अर्थात् प्रथम प्रत्येक स्थान वा बड़े २ नगरों में संस्कृत पाठशाला खोल कर विद्याध्ययन करना कराना चाहिये कि जिस से यह यथावत् विद्वान् बनजावें तो फिर देश का सुधार होना कुछ कठिन नहीं क्योंकि विद्या की प्राप्ति भी मनुष्यों को विद्वानों ही के समागम से होती है अतः प्यारे स्त्री पुरुषो शीघ्र शीघ्र दान करके पाठशालायें खोल कर नाना प्रकार की विद्याध्ययन कराइये जिस स्थान पर ऐसी पाठशालायें हों उनको दान से सहायता पहुंचाना चाहिये जिस से हमारे पूज्य ब्राह्मणों की दशा सुधर जावे। इस योग्य वर्त्तमान समय में गुरुकुल हरिद्वार और गुरुकुल सिकन्दराबाद आदि है॥

देवग्रह उन स्थानों को कहते हैं जहां पूर्वोक्त गुण युक्त महात्मा ब्राह्मण संन्यासी निवास करते हैं अथवा जहां कहीं सदा नियत समयों पर धर्मोपदेश होता रहता है जिस को सुनकर सर्वजन धर्म अर्थ काम मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

क्योंकि देव नाम विद्वान् का तथा ग्रह नाम घर का है इसी से जिस स्थान में विद्वान् महात्मा निवास करें उस को देवग्रह कहते हैं, सो हे प्यारे भ्रातृगणों ऐसे देवग्रह प्रत्येक नगर में होने आवश्यक हैं जहां प्रतिदिन नियत समयों पर वेदादि सत्य शास्त्रों के व्याख्यान हों कि जिससे प्राणीमात्र परमेश्वर की आज्ञाओं को जान सदा प्रेमपूर्वक उन आज्ञाओं को पालन कर आनन्द को प्राप्त हों, सो वर्तमान समय में इस भांति के व्याख्यान न होने से देखिये भारत की क्या गति हो

गई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब ने अपने २ धर्म पर पानी देदिया, वेद का नाम ही नाम रहगया, मुख्य तो यह है कि सत्योपदेश के न होने से ही मत मतान्तर फैलगये, कि जिन के कारण फूट ने अपना राज्य कर सब को तितर वितर करदिया सुख आनन्द जाता रहा, विद्या का नाम ही मिटगया जिस के कारण देवग्रह के स्थान पर नाना भांति के मन्दिर बनगये जहां मूर्ख बाबा जी झांझ, ढोलक, मजीरा, शङ्ख आदि बजाकर भंग गांजा अफ़यून आदि नशे जमाते हैं, कहीं रण्डियों या लड़कों के नाचादि कौतुक होते हैं, सच पूछो तो यह नाममात्र के साधु वैरागी ब्राह्मण संन्यासी आदि ने भारत को गारत करदिया क्योंकि विना श्रेष्ठज्ञानी, बुद्धिमान्, हिंसा रहित, विद्या वा परमैश्वर्य युक्त सत्यवादी उपदेशक विना 'यथानामः तथागुणाः' देव-ग्रह मिलना तथा उन में सत्योपदेश का होना अत्यन्त कठिन वरन दुस्तर होगया कि जिस के कारण लाखों मनुष्य ईसाई होगये कि जिस से धर्म का स्वरूप ही पलट गया।

प्यारो यह वही भारतभूमि है कि जहां धर्म का नक्कारा बजता था, यह वही भारतवर्ष है जो सभ्यता में अद्वितीय था, यह वही जम्बू द्वीप है कि जहां के निवासी सत्यता के कारण देव शब्द के नाम से पुकारे जाते थे, यह वही रत्नमय भूमि है कि जहां के निवासी धृति तथा क्षमा के कारण प्रख्यात होरहे थे यह वही भूमि है जहां के सुजनों ने धर्म के अर्थ अपने प्राण तक समर्पण कर दिये।

हा शोक! आज वही आर्यावर्त्त रहगया है कि जहां के निवासी अपने धर्म को भी नहीं जानते हाय! भारत तुम्हारी क्या गति होगई, तुम्हारा तो स्वरूप ही पलट गया, तुम्हारा नाम, प्रकाश, वैभव प्रतिष्ठा सब सत्योपदेश अर्थात् धर्मपालन ही के कारण हुई थी, सो आज सब खाक में मिलगई, यह फतह का झण्डा तुम्हारे हाथ से जाता रहा परन्तु धन्य है उस परमेश्वर जगत्पितामह अन्तर्यामी को कि जिस ने इस अन्धेरे के समय में श्री स्वामिदयानन्दसरस्वती जी महाराज को उत्पन्न करदिया कि जिन्हों ने धर्मोपदेश कर भारत वासियों को अधर्म से बचाया है, अब सम्पूर्ण भारत तथा अन्य देशों

में भी यहां के सत्योपदेश की रोशनी पहुंच रही है, बहुधा नगरों में आर्य्य मन्दिर अर्थात् देवग्रह बन गये कि जिन में प्रति रविवार को ४ बजे से ६ बजे तक वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्मोपदेश होते हैं, जिन को अब हज़ारों मनुष्य सुनते और प्रसन्नचित्त हो उन कार्यों को करते चले जाते हैं, यद्यपि पेटार्थी जन नाना प्रकार के कोलाहल करते हैं तथापि धर्मजिज्ञासु धर्म ही को मुख्य जान कर मूर्खों की मूर्खता पर किञ्चित् ध्यान नहीं देते, अतः मैं श्री स्वामी जी महाराज को कोटयानुकोटि धन्यवाद देता हूं कि जिन्हों ने भारत के धर्मरूपी प्राणों को सत्योपदेशरूपी अमृत पिला कर चैतन्य कर दिया, कि जिसके कारण भारतवासी घोरनिद्रा को त्याग कर भारत के पुनरुद्धार के लिये तन मन धन से नाना भांति की चिकित्सा कर रहे हैं, पर शोक तो यही है कि इतने पर भी लाखों के दान करने पर भी सच्चे दानों की ओर ध्यान नहीं देते कि जिसके बिना भारत का भारत हुआ जाता है।

प्रत्येक नगर में वेदप्रचारफ़ण्ड को दान देकर वेदप्रचार कराओ, देवालय अर्थात् आर्यमन्दिर बनाकर सदा प्रत्येक उत्सव तथा त्यौहारों पर बड़े धूम धाम से हवन कराओ, सत्योपदेश सुनो कि जिसके कारण समस्त नगर में धर्म की चर्चा होने लगे, मनुष्य धर्म को जान उस पर चलें कि जिस से भारत में सुख और आनन्द की वर्षा होने लगे।

इन सब दानों के अतिरिक्त अपने कुटुम्ब तथा घराने अर्थात् बिरादरी वा मुहल्ले के दीनों तथा सच्चे प्रेमी भक्तों की प्रत्येक प्रकार से सुध लेना परम आवश्यक है परन्तु ऐसा भी न करना चाहिये जैसा कि किसी कवि ने कहा है—

नौ बुलाये तेरह आये देखो यहां की रीत।
बाहर वाले खागये और घर के गावें गीत॥

इसी प्रकार नगर की विधवाओं के खान पान तथा उन की आत्मिक उन्नति के अर्थ शिक्षा सत्योपदेश का प्रबन्ध होना भी परम आवश्यक है कि जिस से वह धर्म पर यथावत् आरूढ रहें कि जिस के बिना देख लीजिये कि इस भारत की विधवाओं की क्या २ कुगति होगई, ऐसे ही दान के प्रबन्ध से पुत्रीशिक्षा होना उचित है।

तदनन्तर प्रत्येक नगर में औषधालय खोलने चाहियें जहां दीनों को औषधि नियत समय पर विना मूल्य के प्रतिदिन मिला करें, धर्मशाला वनवाना कि जहां दीन बटोही तथा नगर के दीनों को आनन्द मङ्गल के साथ भोजन मिला करें, ऐसे ही जहां पूर्ण विद्वान् महात्मा रहते हों वहां भी क्षेत्र खोलना उत्तम है, पाठशाला के विद्यार्थियों का अच्छे प्रकार भोजनों का सुप्रबन्ध होना उचित है न कि वर्तमान समय की भांति क्षेत्र तथा धर्मशाला, ब्राह्मण भोजनों में लुच्चे गुण्डे पेटभरे पुरुष अच्छे प्रकार से खाजाते हैं पर दीन, अन्धे, लंगड़े, विद्यार्थी सच्चे साधु महात्माओं को नाम मात्र भी नहीं मिलता, इन सब बातों का शोधन कर दान कीजिये।

इस के उपरान्त अन्य २ देशोपकारक कार्यों का करना परम आवश्यक है, इसी को "रिफाह आम" कहते हैं, जैसा बगीचे लगवाना, मार्ग ठीक कराना, दीनों की पुत्रियों तथा पुत्रों का विवाह करना, नाना भांति के गुण सीखने के अर्थ निर्धनों को सहायता देना, उपदेशकों को मासिक देकर उपदेश कराना, धर्म ग्रन्थों को बांटना, बड़े २ हवन कराना परमधर्म तथा पुण्य की बात है, क्योंकि इससे संसार का बड़ा उपकार होता है।

जिस स्थान पर इन ईश्वरीय आज्ञाओं के अतिरिक्त विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थ मूर्खों को दिये जाते हैं तथा विद्वानों का तिरस्कार होता है उसी देश में अकाल मरी तथा नाना प्रकार के उपद्रव होते हैं यथा भारतवर्ष में इस समय होरहा है—जैसा कहा है—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च वितिक्रमात् ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा ॥

अतः अब मैं अपने भाई बहनों से प्रार्थना करता हूं कि यदि आप को दान के फल की इच्छा हो तो सदा मन वच कर्म से परमेश्वरीय नियमों का यथावत् पालन कीजिये क्योंकि परमात्मा की आज्ञा के प्रतिकूल कार्य करने में नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं, अतः उसकी आज्ञा का यथार्थ ज्ञान होने के अर्थ सदा विद्वान् धर्मात्माओं का कि जिन्होंने मन वच कर्म को एक कर दिया है, समागम कर सदा

पुरुषार्थ के साथ मन को काम क्रोध लोभ मोहादि दोषों से पवित्र करते रहो क्योंकि विना मन की पवित्रता के किसी प्रकार के दान से उत्तम फल नहीं मिल सकता, अतः मन को दोषों से बचाकर वाणी से सत्य २ बोलने का पूर्ण नियम अर्थात् व्रतधारण करके अपने स्वदेशियों को सत्यवाणी का पूर्ण दान कीजिये कि जिससे प्राणीमात्र को आनन्द मिले तथा श्रद्धापूर्वक ऐसे ही सत्यवादी वेदप्रिय महात्माओं की सम्मत्यनुसार धर्मानुसार प्राप्त किये हुए धन को दान कीजिये।

प्यारे सुजनो वाणी से प्रयोजन केवल शब्द ही से नहीं वरन वाणी शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनों के योग को कहते हैं, सम्पूर्ण संसार का वाणी से ही प्रबन्ध किया जाता है, वाणी ही सारे मनुष्य तथा पशु सृष्टि पर आज्ञा चलाती है, वाणी में जो प्रत्यक्ष शक्ति है वह किसी इन्द्रिय में दृष्टि नहीं आती वाणी ही ने समय पाकर कामों के विचारों को पलट दिया, वाणी ही मनुष्यों की प्रतिष्ठा के लिये एक सच्चा हथियार है, इसकी सहायता से मनुष्य जाति ने समस्त भूमण्डल के जीवों को अपने आधीन कर रक्खा है, जो वाणी न होती तो शब्द अर्थ सम्बन्ध का कुछ भी ज्ञान न होता, तो भला मनुष्य तथा पशु में क्या अन्तर होता, यही ज्ञान तथा उसके प्रकाश करने की शक्ति है, अर्थात् वाणी मनुष्य को मोक्ष सुख का आनन्द दिलाती है, यही उसको नर्क के दुःख सागर में लेजाती है।

अतः आओ प्यारे भाई बहनो हम सब मिलकर पूर्ण प्रेम के साथ नम्रतापूर्वक उस जगत् पिता परमात्मा से मन वच कर्म के साथ उस शुद्ध निर्मल वाणी के अर्थ प्रार्थना करें, जिसको प्राप्त करके मनुष्य ने अपने आप ही को वरन हजारों जीवात्माओं को पाप के अथाह समुद्र से पार लगाया है, आओ प्रिय सांसारिक भाइयो हम सब अपने प्रेम से उस जगदीश्वर से प्रार्थना करें, कि वह हमें ऐसी मधुर तथा आकर्षण शक्ति वाली वाणी से विभूषित करे जिसको पाकर संसार के सच्चे शूरों ने अपने सच्चे घर में पहुंचने तथा अपने प्यारे के गले में लिपटने के लिये अपना तन मन धन सब न्यौछावर कर दिया है, जैसा कि वेद में लिखा है—

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥

——*:०:*——

[८--गृहस्थाश्रम]

प्रिय सज्जन पुरुषो! और चतुरा स्त्रियो वेद स्मृतियों में गृहस्थाश्रम को सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है- इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये इस आश्रम के विना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती जैसा य० अ० ३ मं० ४१ में कहा है।

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥

और मनुस्मृति अध्याय ६ श्लोक ८९ में कहा है-

सर्वेषामेव चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठःसत्रीनेतान् बिभर्ति हि॥

क्योंकि जिस प्रकार वायु के आश्रम समस्त जीव रहते हैं, उसी प्रकार अन्य आश्रम वाले ब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा संन्यासी अपनी २ जीविका के अर्थ इस आश्रम का आश्रय लेते हैं, मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ७७ में लिखा है कि-

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तंते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः॥

शङ्खस्मृति अध्याय ४ श्लोक ६ में लिखा है कि गृहस्थ ही यज्ञ करता है वही तप और दान देता है अतः यह आश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ है-

गृहस्थएव यजते गृहस्थस्ततपते तपः।
ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान्ग्रहाश्रमी॥

श्रीमद्भागवत स्कन्द ३ अ० १४ श्लोक १७ में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य नाव में बैठकर समुद्र पार होजाते हैं उसी प्रकार इस आश्रम में रहकर सम्पूर्ण व्यसनों से पार होजाते हैं, यथा-

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलजानैर्यथार्णवम् ॥

इसी स्कन्द के अध्याय १४ में कश्यप जीने कहा है कि इस आश्रम से धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ की प्राप्ति होती है इसी कारण यह श्रेष्ठ है ऐसा ही भविष्यपुराण अ० १५० में लिखा है, मार्कण्डेय पुराण अध्याय २९ में इसको कामधेनु गाय की समता दी है ।

दक्षस्मृति अध्याय २ श्लोक ४२ से ४८ तक लिखा है कि यह आश्रम तीनों आश्रमों की योनि है अतः इस आश्रम के दुःखी रहने से सब दुःखी तथा सुखी रहने से सब सुखी रहते हैं, अतः व्यासस्मृति अ० ४ श्लोक २ में लिखा है कि इस आश्रम के नियमों को यथावत् पालन करने से समस्त तीर्थों का फल मिलता है, संवर्तस्मृति श्लोक १०० में इस की पुष्टता की है ।

महाशय ! अब तो आप को ज्ञात होगया कि यह गृहस्थाश्रम जिसमें कि आप आनन्द उड़ारहे हैं कैसा उत्तम है परन्तु इसकी उत्तमता तब ही तक रहती है जब तक इसके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र रूप चार खम्भे अपने २ धर्मों के करने में कटिबद्ध रहें जैसे खम्भों के गिरने से उत्तम से उत्तम ग्रह गिरकर चकनाचूर होजाता है उसी भांति वर्त्तमान् समय में इस आश्रम की दुर्दशा होरही है क्योंकि इस समय में समस्त वर्णाश्रम शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध कार्य कररहे हैं और कृष्ण महाराज का भी वचन है कि जो मनुष्य शास्त्र के प्रतिकूल कार्य करते हैं उनको न सिद्धि न सुख न परमगति प्राप्त होती है, जैसा कि कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ।
न स सिद्धमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥

और य० अ० ८ मं० ३३ में कहा है कि इस आश्रम के आधीन सब आश्रम हैं यदि उसकी सेवा वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहारों से कीजाय तो दोनों लोकों के सुख प्राप्त होते हैं ।

इसलिये अब हम शास्त्रानुकूल वर्णाश्रम धर्मोंका वर्णन करते हैं विचारपूर्वक उनका प्रचार कीजिये उसी समय आनन्द मिलेगा अन्यथा नहीं ।

ब्राह्मणों के लक्षण मनु अ० १ श्लोक ८८

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

पूर्ण विद्या पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना विद्या वा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देना, न्याय से धन उपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेना ब्राह्मणों का धर्म है ।

क्षत्रियों के लक्षण मनु अ० १ श्लोक ८९

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥

दीर्घ ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों का यथावत् पढ़ना अग्निहोत्रादि कर्मों का करना, सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि तथा प्रजा को अभय दान देना, तथा उनका सब प्रकार से यथावत् पालन करने वालों को क्षत्रिय कहते हैं ।

वैश्यों के लक्षण मनु अ० १ श्लोक ९०

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुशीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

वेदादि शास्त्रों का पढ़ना अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना दान देना पशुओं का पालन करना देशों की भाषा हिसाब भूगर्भविद्या भूमि बीजादि के गुण दोषों को जानना सर्वपदार्थों के भाव समझना व्योपार करना कुसीद अर्थात् व्याज का लेना खेती की विद्या का जानना अन्नादि की रक्षा करनेवालों को वैश्य कहते हैं ।

शूद्रों के लक्षण मनु अ० १ श्लोक ९१

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषा मनसूयया ॥

जिसको विद्या पढ़ने से भी न आवे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनतीनों वर्णों की निन्दा रहित प्रीतिपूर्वक सेवा करे उसको शूद्र कहते हैं ।

प्रकट हो कि उपरोक्त कर्मों में से दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना यह तीन धर्मार्थ तथा यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना, दान लेना यह तीन जीविकार्थ ब्राह्मणों के कर्म हैं, दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना, यह तीन धर्मार्थ तथा प्रजा का पालन करना, अस्त्र धारण करना, यह जीविकार्थ क्षत्रिय के कर्म हैं, इसी प्रकार दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना धर्मार्थ, तथा पशु, पालन, व्योपार, व्याज लेना यह जीविकार्थ वैश्य के कर्म हैं, शूद्र का केवल एक ही कर्म अर्थात् तीनों वर्णों की यथावत् सेवा करना धर्मार्थ वा जीविकार्थ हैं।

मान्यवरो! इसी भांति हारीतस्मृति अध्याय १, श्लोक १७ तथा अत्रिस्मृति श्लोक १३, १४, १५, शङ्खस्मृति श्लोक २, ३, ४, ५, विष्णु पुराण के तीसरे अंश के ८ अध्याय मारकण्डेयपुराण अध्याय २७ के श्लोक ३, ४, ५, ६, ७, भविष्यपुराण अध्याय १ तथा शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ५७, ५८, ५६ विदुरनीति तथा गीता, उद्योगपर्व, श्रीमद्भागवत में ऐसा ही वर्णन किया है।

मान्यवरो वर्णों का अन्तर गुण कर्मों के अनुसार नियत है शूद्र ब्राह्मण तथा ब्राह्मण शूद्र होजाता है, यदि ब्राह्मण का बालक कर्मों से भी योग्य हो तो वह यथार्थ ब्राह्मण होता है वरन क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्र की पदुवी को पाता है इसी भांति शूद्र का लड़का मूर्ख हो तो वह शूद्र ही रहता है वरन गुण कर्मों के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्ण में पहुंच जाता है, इसी प्रकार इसी क्षत्रिय वैश्य की दशा होती है जैसा मनु० अ० १० श्लो० ६५ में लिखा है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यस्तथैव च ॥

शुक्रनीति अ० १ श्लो० ३८ में लिखा है कि जन्म से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य शूद्र म्लेच्छ नहीं होते वरन गुण तथा कर्म के भेद से होते हैं—

नजात्याब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियोवैश्यएवन ।
न शूद्रो न चैवम्लेच्छोभेदितागुणकर्मभिः ॥

और गीता में भी लिखा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥

शुक्रनीति तथा मनुस्मृति में यह भी लिखा है कि ब्राह्मण उत्तम गुणों के कारण सब वर्णों से श्रेष्ठ मानागया है, यथा—

सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणः ॥

वनपर्व अध्याय ३१३ में राजा युधिष्ठिर तथा यक्ष का संवाद इसी विषय में हुआ है उसको भी सुनिये देखिये यक्ष ने राजा युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि ब्राह्मण-कुल गुण, वेदपाठ, तथा कर्म इन में से किस कर्म के करने से होता है तब युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण न कुल न वेदपाठ से होता है किन्तु आचरण ही का नाम ब्राह्मण है अतः मनुष्य को विशेष कर आचरण ही सुधारना चाहिये क्योंकि जिसका आचरण नहीं बिगड़ा वह निर्बल नहीं है वरन आचरण बिगड़ने ही से हीन अर्थात् नीच कहाता है, पढ़ने पढ़ाने तथा शास्त्र का विचार करने वाले जितने मनुष्य हैं वेदादि शास्त्रों के प्रतिकूल अधर्म का सेवन करें तो सब मूर्ख वा शूद्र हैं तथा जो क्रियावान् अर्थात् वेदोक्तधर्म सम्बन्धी कर्म करते हैं वही पण्डित अर्थात् ब्राह्मण हैं यदि कोई ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर चारों वेदों को भी पढ़ा है परन्तु उसके आचरण अच्छे नहीं हैं तो वह शूद्र से भी नीच है तथा जो अग्निहोत्र आदि कर्म करता है तथा इन्द्रियों वा मन को वश में रखनेवाला है वही ब्राह्मण है जैसा कि—

यक्षोवाच—

राजन्कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत्सुनिश्चितम् ॥

युधिष्ठिरोवाच—

शृणु यक्ष कुलं तात ! न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।

अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥
पाठकापाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वे व्यसनिनाः मूर्खाः यः क्रियावान् स पण्डिताः ॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादितिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्र परोदान्तः स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥

इसके पश्चात् युधिष्ठिर महाराज और सर्प का संवाद जो महाभारतवनपर्व अध्याय १७९ में है जिस के पाठ मात्र से ही स्पष्ट प्रकट होता है कि गुण कर्म स्वभाव ही से वर्णों की व्यवस्था नियत थी देखो सर्प ने प्रश्न किया है कि हे महाराज युधिष्ठिर! ब्राह्मण किस को कहते हैं, युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि जिस में सत्य, दान, क्षमा, शील, लज्जा, तप तथा घृणा हो उसी को ब्राह्मण कहते हैं तब फिर सर्प ने कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारों वर्ण वेद का प्रमाण मानते हैं, यदि किसी शूद्र में सत्य, दान, क्षमा, शील, लज्जा, अहिंसा तथा घृणा हो तो क्या वह भी ब्राह्मण होजावेगा? तब युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि जो लक्षण शूद्र में हैं वे ब्राह्मणों में न हों तथा शूद्रों में हों तो शूद्र भी ब्राह्मण होसकता है, शूद्र के लक्षण में ब्राह्मण हो तो वह ब्राह्मण भी शूद्र ही है, यथा—

सर्पोवाच—

ब्राह्मणः कोभवेद्राजन्! वेद्यं किं च युधिष्ठिरः ।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वांहि वाक्यैरनुमिमीमहे ॥

युधिष्ठिरोवाच—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र! स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥

सर्पोवाच—

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोधमेव च ॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिरः ।

युधिष्ठिरोवाच—

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्य द्विजे तच्च न विद्यते ।
नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प ! वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रै तन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमितिनिर्दिशेत् ॥

श्रीमद्भागवत में लिखा है—

यस्य यल्लक्षणम्प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्राऽपि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

कि जिस मनुष्य में जिस प्रकार के गुण होते हैं वह उसी वर्ण में मिलाने के योग्य होते हैं, आपस्तम्ब के सूत्र में लिखा है—

धर्म्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वंपूर्वंवर्णमा-
पद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥

कि अपने कर्मों से छोटा बड़प्पन को पालेता है, फिर लिखा है—

अधर्म्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यंजघन्यं ।
वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥

बुरे कर्मों के कारण ऊंचे वर्ण का मनुष्य भी नीचे वर्ण को पहुंच जाता है, यही कारण है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से तथा नारद ऋषि नीच वर्ण से ब्राह्मण होगये ।

इसके उपरान्त भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अध्याय में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद पढ़कर वैश्यादि कर्म कर शूद्र की सेवा करे तथा नट चोरी चिकित्सा से निर्वाह करे वह भी शूद्र कहाता है, मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ९७ में लिखा है कि मूर्ख ब्राह्मण को लकड़ी के हाथी तथा चमड़े के मृग के समान ही समझना चाहिये, शान्ति पर्व अध्याय ७७ में भीष्मपितामह तथा याज्ञवल्क्यस्मृति के आपतद्धर्म प्रकरण में लिखा है कि हस्तक्रिया, लेन देन, गो, घोड़ा, गाड़ी, व्योपार, मुद्रा, लवण तिल, फल, पत्थर, वस्त्र, रस, मधु, तक्र, मांस, पृथ्वी, कम्बल,

शाक, गन्ध इनको कदापि न बेचे, दूध दही मदिरा के बेचने से भी ब्राह्मण हीनवर्ण होजाते हैं, इसी प्रकार नाचने गाने वाला भी शूद्र होजाता है तथा श्रीमद्भागवत-स्कन्द ११ अध्याय १७ में ब्राह्मण को नीच वृत्ति करने की आज्ञा नहीं है, वशिष्टस्मृति अध्याय ६ श्लोक ३ में तथा पाराशरस्मृति अध्याय ८ श्लोक ३ में लिखा है, जो वेद नहीं जानता व्योपार खेल से आजीविका करता है सन्ध्या अग्निहोत्र नहीं करता खेती से पालन पोषण करता है वह नाममात्र को ब्राह्मण है।

प्रिय सज्जन पुरुषो! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होरहा है कि कर्म ही मनुष्य को ऊंची पदुवी अर्थात् उच्च वर्ण में लेजाता है, कर्म से ही नीचा होजाता है, ऐसा ही शान्तिपर्व अध्याय १८८ में भारद्वाज ने भृगु जी से कहा है, ऐसा ही भविष्यपुराण अध्याय ३६ में सुमन्त मुनि ने राजा शतानीक की शङ्काओं को समाधान कर कहा है कि कर्म ही ब्राह्मण का हेतु है, ऐसा ही अनुशासनपर्व अध्याय १४३ में महादेव जीने पार्वती जी से कहा है, वनपर्व अध्याय १५० में हनूमान जीने भीमसेन से कहा है कि जो क्षत्रिय काम क्रोध द्वेष से रहित होकर उचित रीति से दण्ड का विधान करते हैं वह पण्डितों की जात को पाते हैं।

ऐसा ही अनुशासनपर्व अध्याय १४३ में महादेव जी ने कहा है इसके अतिरिक्त चाणक्यस्मृति अध्याय ११ श्लोक १२, १३, १४, १५, १६, १७ में स्पष्ट रूप से वर्णन किया है कि जो ब्राह्मण अच्छे कर्मों को करता हो ऋतुगामी हो वह द्विज तथा जो सांसारिक कर्मों में रत हो पशुओं का पालन बनिगाई तथा खेती करने वाला हो वह वैश्य, जो लाखादि पदार्थ तेल, नील, कुसुम, मधु, घी, मद्य, अथवा मांस का बेचनेवाला है वह शूद्र, जो दूसरे का काम बिगाड़ने वाला दम्भी अपने अर्थ का साधने वाला छली द्वेषी मृदु तथा अन्तःकरण में निठुर हो वह बिलार, जो बावली कुआ आदि को बिगाड़ता है वह म्लेक्ष,, जो देवता वा गुरु के द्रव्य को हरता या परस्त्री से सङ्ग करता तथा सब प्राणियों में निर्वाह करलेता वह चाण्डाल कहाता है इसी प्रकार अत्रि जी महाराज ने ३७१ श्लोक में दश प्रकार के ब्राह्मण लिखे

हैं, जिनके लक्षण उपरोक्त कथन से कुछ २ मिलते हैं जिनको अधिक जानने की इच्छा हो वह श्लोक ३७२ से ३८१ तक को देखलें, हम विस्तार के कारण यहां नहीं लिखते।

और य० अ० १८ मं० ४८ में कहा है परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मण आदि वर्णों के समान प्राप्ति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें जो ईश्वर के गुणकर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान है वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य हैं।

प्यारे भाइयो! इस प्रकार वर्णव्यवस्था को जान धर्मानुसार वर्णों के धर्म करने से ही कल्याण होता है अन्य वर्ण के धर्म करने से पतित होजाता है मनुजी ने अध्याय १० श्लोक ९७ में लिखा है—

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतितजातितः॥

इसी प्रकार गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से, मार्कण्डेयपुराण में मन्दालसाने अकलर्न से और श्रीमद्भागवत स्कन्द ३ के २८ अध्याय के २ श्लोक में हारीतस्मृति अध्याय ७ श्लोक १७-१८ दक्षस्मृति श्लोक ३, ४ तथा अत्रिस्मृति अध्याय १ श्लोक ३२ विष्णुपुराण अंश २ अध्याय ६ में यही आज्ञा है।

प्यारे भाइयो! जब तक इस देश में गुणकर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था नियत होने की रीति प्रचलित थी तब तक प्रत्येक मनुष्य परिश्रम करता था, जब से यह भय इस देश से निकल गया अर्थात् जन्म ही से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बनगये उसी दिन से इस देश की हीन दशा होगई, इसका कारण यही है कि कोई दण्ड देनेवाला नहीं रहा, विना दण्ड के कोई नियम ठीक नहीं रह सकता, जैसा मनु अ० ७ श्लोक १८ में कहा है—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्डएवाभिरक्षति।
दण्डसुप्तेषु जागर्ति दण्डधर्मम्विदुर्बुधाः॥

दण्ड ही से प्रजा की रक्षा होती यही शिक्षा देनेवाला यही सोतों को जगाता है, शुक्रनीति में भी लिखा है कि दण्ड ही से धर्म की रक्षा होती है।

——*:०:*——

[९--पति पत्नी धर्म]

प्रिय सज्जन पुरुषो ! ब्रह्मचर्य्य पूर्ण होने के पश्चात् जब विवाह हो जाता है तब स्त्री पुरुष एक स्थान पर रहते हैं उस समय परस्पर ऐक्य का होना बहुत आवश्यक है क्योंकि गृहस्थी एक राज्य है जिस का राजा पुरुष और स्त्री मन्त्री है, अब आप जानते हैं कि जब तक राजा और मन्त्री विद्वान् होने के पश्चात् एक मत होकर अपने २ धर्म को नहीं करते तो उस राज्य की दशा प्रशंसनीय नहीं होती वरन नाना प्रकार के कष्ट राजा और प्रजा को उठाने पड़ते हैं और देश देशान्तरों में अप्रतिष्ठा होती है और शत्रु भी समय पाकर अपना कार्य पूरा करते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में वह राज्य नष्ट होजाता है, मान्यवरो ठीक उसी भांति गृहस्थ रूपी राज्य को समझो यदि स्त्री और पुरुष विद्वान् होकर सम्मति के साथ प्रबन्ध नहीं करते तो वह गृहस्थ रूपी राज्य भी शीघ्र नष्ट होजाता है इसलिये शास्त्रकारों ने स्त्री और पुरुष को यही आज्ञा दी है कि परस्पर पूर्ण आयु प्रीति युक्त रह पुरुषार्थ धन और श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूल सांसारिक और पारलौकिक कार्यों को कर इस संसार में नित्य आनन्द करें।

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥३५॥

और य० अ० १४ मं० ८ में कहा है कि स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों का सुनना–ओषधी आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें।

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय । अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥

प्यारी स्त्रियो और सुजन पुरुषो जिस प्रकार श्रेष्ठ अर्थात् शिक्षक दो घोड़ेयुक्त रथ सुख के साथ अपने स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाता है उसी भांति परस्पर प्रसन्नचित्त योग्य दो विद्वान् गृहस्थरूपी रथ के द्वारा अपने सब मनोरथों के पूर्ण करने में समर्थ होते हैं जैसा ऋग्वेद अ० ३ अ० ३ व० १९ मं० ३ अ० ४ सू० ५३ मं० ४ में कहा है—

जा॒येदस्तं॑ मघव॒न्त्सेदु॒ योनि॒स्तदि॑त्त्वा यु॒क्ता हर॑यो वहन्तु ।
य॒दा क॒दा च॑ सु॒नवा॑म॒ सोम॑म॒ग्निष्ट्वा॑ दू॒तो ध॑न्वा॒त्यच्छ॑ ॥

ऋग्वेद अ० ३ अ० ४ व० २ मं० ३ अ० ५ सू० ५७ मं० ४ में कहा है कि जहां स्त्री और पुरुषों में प्रेम होता है वहां सब प्रकार के आनन्द में रहते हैं परन्तु हे सुन्दरियो इस प्रेम की जड़ विद्या और धर्मात्मा होना ही है अर्थात् गृहस्थाश्रम में सुख जब ही प्राप्त होते हैं जब कि स्त्री पुरुष दोनों विद्वान् और धार्मिक हों जैसा ऋग्वेद अ० २ अ० १ व० ४ मं० १ अ० १८ सू० १२३ मं० ३ में लिखा है।

इसलिये हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों को ऐसे व्यवहार और वर्त्ताव करना चाहिये जिस से उन का परस्पर भय और उद्वेग नष्ट होकर आत्मा को दृढता—उत्साह और गृहस्थाश्रम में व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और वे दोषों तथा दुःख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आह्लादित हो जैसा य० अ० ६ मं० ३५ में लिखा है—

माभे॒र्मा संवि॑क्था॒ऽऊर्ज्जं॑ धत्स्व॒ धिष॑णे वी॒ड्वी स॒ती
वी॑डयेथा॒मूर्ज्जं॑ दधाथाम् । पा॒प्मा ह॒तो न सोम॑: ॥

क्योंकि तुम्हारा पति के साथ ऐसा सम्बन्ध है जैसा शब्दों का अर्थों के साथ वाच्य वाचक सम्बन्ध सूर्य के साथ पृथिवी का किरणों के साथ वर्षा का यज्ञ के साथ यजमान और ऋत्विजों का जैसा य० अ० ३८ मं० ६ में कहा है—

गा॒य॒त्रं छन्दो॑ऽसि॒ त्रैष्टु॑भं॒ छन्दो॑ऽसि॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ त्वा॒ परि॑गृह्णाम्य॒न्तरि॑क्षे॒णोप॑यच्छामि । इन्द्रा॑श्विना॒ मधु॑नः सार॒घस्य॑ घ॒र्मं पा॑त॒ वस॑वो॒ यज॑त॒ वाट् । स्वाहा॒ सूर्य॑स्य र॒श्मये॑ वृष्टि॒वन॑ये ॥

जिस प्रकार ऋत्विज् लोग सामग्री का सञ्चय करके यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे ही तुम दोनों प्रीति युक्त घर के कार्यों को किया करो, जैसा य० अ० १९ मं० १८ में कहा है—

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रा-
यैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥

पुरुषों को योग्य है कि अपनी २ स्त्रियों का सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित हो कर प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा आदि निरन्तर करें उसी भांति स्त्रियां भी करें—और पुरुष अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्री की और स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरे पुरुष का कभी सङ्ग न करें—इसी भांति प्रीतिपूर्वक सदा आपस में रहें जैसा य० अ० १३ मं० १९ में लिखा है—

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देव-
तयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

और विवाह के समय में जिन व्यभिचार आदि के त्याग के नियमों को करे उन से विरुद्ध कभी न चले क्योंकि पुरुष विवाह समय स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तब ही पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का जितना स्त्री का वह सब पुरुष का समझा जाता है जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ कर अन्य स्त्री के निकट जाता है वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं इसलिये स्त्री सम्मति के विना कोई कार्य्य पुरुष को और पुरुष की आज्ञा विना स्त्री को कुछ भी न करना चाहिये यह दोनों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला कर्म है इसलिये व्यभिचार को सब समय में त्याग दें जैसा य० अ० १२ मं० ६५ में कहा है—

यन्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् । तं ते
विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः। नमो भूत्यै
येदं चकार ॥

और य० अ० ११ मं० ५० में कहा है कि विवाह समय में स्त्री पुरुषों को चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का संग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषय शक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होकर परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें—क्योंकि स्त्री पुरुष के लिये अप्रिय आयु का नाशक निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं इसलिये व्यभिचार कर्म को सब प्रकार से छोड़ धर्माचरण करने वाला हो के पूर्ण अवस्था के सुख को भोगें, य० अ० ११ मं० ५० में कहा है—

और य० अ० १३ मं० २२ में कहा है कि जिस कुल में स्त्री और पुरुष प्रीतियुक्त होकर रहते हैं वहां सब विषयों में कल्याण होता है ॥

अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥

जिस प्रकार स्त्री अपने पति को रक्खे उसी भांति पति भी स्त्री को सुख देवे—दोनों युद्ध कर्म में भी पृथक् २ न वर्से अर्थात् सदा इकट्ठे होकर वर्त्ताव करें जैसा य० अ० ११ मं० ५० में आज्ञा है—

आपो हिष्ठा मयोभुवस्तानं ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥

क्योंकि ऋग्वेद अ० ३ अ० ४ व० २ मं० ३ अ० ५ सू० ५७ मं० ४ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष पृथिवी और सूर्य्य के सदृश संयुक्त हुए वर्तमान हैं वे भाग्यशाली होते हैं इसलिये स्त्रियों को उचित है कि जिस भांति माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं उसी भांति अपने २ पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें ऐसे ही अपनी २ स्त्रियों की पति भी सेवा करें, जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे ही अच्छे स्वभाव से स्त्री और पुरुष आनन्द में रहें जैसा य० अ० ११ मं० ५१ में लिखा है—

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः

और मं० ५२ में कहा है जिस पुरुष की जो स्त्री हो वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्ट चिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म से घर के कार्य करें जैसा कि—

तस्मा अरंङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जन-यथा च नः ॥

मन्त्र ८३ में कहा है कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार को ग्रहण कर शरीर और आत्मा की आरोग्यता को प्राप्त हो कर अच्छे २ सन्तानों को उत्पन्न करे।

जिस भांति पुरुष स्त्री को अच्छे कामों में नियुक्त करे उसी भांति स्त्री भी अपने पति को अच्छे कामों में प्रेरणा करें जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े य० अ० १४ मं० १२ और स्त्री पुरुष का पुरुष स्त्री का जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें जैसा य० अ० १४ मं० १७ में कहा है।

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्म मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥

स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुद्धि विद्या क्रिया और स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा कर ऐश्वर्य्य बढ़ावें जैसा य० अ० १४ मं० १६ में कहा है—

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥

य० अ० ११ मं० ५४ में कहा है जैसे वायु सूर्य का सूर्य प्रकाश का प्रकाश नेत्रों के देखने का व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस में सुख के साधन और उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें जैसा—

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे। तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥

इस कारण तुम (इष्टापूर्त्ते) अर्थात् विद्वानों का सत्कार—ईश्वर आराधन अच्छा सङ्ग—सत्य विद्या आदि का दान यह इष्ट और पूर्णबल ब्रह्मचर्य्य—विद्या की शोभा—पूर्ण युवा अवस्था साधन और उपसाधन यह पूर्त्त दोनों प्रकार के कर्मों को करते रहो जैसा य० अ० १५ मं० ५४ में कहा है इसके अतिरिक्त दोनों शीतल स्वभाव से गृह में रहकर कार्य्य करें क्योंकि विवाह के पश्चात् विना इसके सुख नहीं मिलता जैसा ऋग्वेद अ० २। अ० १। व० ४। मं० १। अ० १८। सू० १२३। मं० १ में कहा है—

और विवाहिता स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रक्खें॥

य० अ० ११ मं० ४० में कहा है—

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ॥

और कभी धन के अहङ्कार से किसी के साथ ईर्षा द्वेष मत करो दूसरों की वृद्धि वा धन देखकर सदा आनन्द मानो जैसा य० अ० ११ मं० १५ में कहा है—

रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम।

और जिस भांति शिशिर ऋतु सुखदाई होता है उसी भांति स्त्री पुरुष सन्तोषी हो उत्तम कर्मों के करने का अनुष्ठान कर दुष्ट कर्मों को छोड़ परमेश्वर की उपासना कर आनन्द करें य० अ० १५ मं० ६४ में कहा है—

जैसे बिजुली और सूर्य्य जल वर्षा से ओषधी आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं उसी भांति तुम दोनों कुटुम्ब को बढ़ाया करो जिस प्रकार प्रकाश और पृथिवी आकाश का आचरण करते हैं उसी भांति गृहस्थाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करो जैसा य० अ० १४ मं० ११ में कहा है—

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विबाधसे ॥

जब २ तुम्हारे यहां आनन्ददायक कार्य्य हों तब २ तुम अपनी सहेलियों और पुरुष अपने मित्रों और बन्धु जनादि को बुलाकर भोजनादि पदार्थों से यथा योग्य सत्कार कर सदा प्रसन्न करती रहो और नाना भांति के विचार—शास्त्रार्थ उपदेश विद्या विषयक वाग्विलास (वार्तालाप) में समय को व्यतीत करो जैसा य० अ० ८ मं० १२ में कहा है—

यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त ऽइष्टयजुषस्तु-तस्तोमस्य शस्तोकथस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥

कभी सौगन्द न खाओ न्याय के विरोध कभी कोई कार्य्य और मूर्खों के समान ईर्षा को न करो जैसा य० अ० १२ मं० ९७ में कहा है—

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देव किल्विषात् ॥

कभी अपने आत्मा को शोक में न डालो और न किसी पर वज्र छोड़ो और उपकार को भी न भूलो वरन सदा ध्यान बनाये रहो ।

जैसा य० अ० २५ मं० ४३ में कहा है ।

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्रा-ण्यसिना मिथू कः ॥

जब कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा कराये जैसा य० अ० २० मं० १४ में लिखा है।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥

तुम सदा उन्हीं लोगों को बुद्धिमान् समझो जो अन्याय से किसी की वस्तु का ग्रहण नहीं करते और दुष्टवेश—हिंसा करने वालों का सङ्ग और न्याय से प्राप्त हुए धन का व्यर्थ खर्च दुष्ट बन्धु का सङ्ग और शत्रु का विश्वास नहीं करते वही आनन्द को भोगते हैं जैसा ऋग्वेदः अ० ३ । अ० ४ । व० २२ । मं० ४ । अ० १ । सू० ३ । मं० १३ में कहा है ।

मा कस्यं यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥

इसके उपरान्त जिस २ कार्य करने से विद्या अच्छी शिक्षा-बुद्धि-धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस २ कर्म को सदा करती रहो जैसा य० अ० ८ मं० ४ में कहा है ।

यज्ञो देवानाम्प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवंतामृडयन्तः आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवो वित्तरासंदादित्येभ्यस्त्वा ॥

गृहस्थ जनों घरके कार्यों को यत्न से कर राजभक्ति राज सहायता उत्तम धर्म से गृहस्थाश्रम का पालन कर आनन्द भोगें ।

य० अ० ८ मं० २२ में कहा है-

हे स्त्री पुरुषो! वेदों में इस प्रकार तुम्हारे धर्मों की व्याख्या की है जिसकी व्याख्या हमने संक्षेप से यहां की है इसी के अनुसार मनु आदि ऋषियों ने भी उपदेश किया है तुमको इसी के अनुसार कार्य कर कृतार्थ होना चाहिये जैसा मनु० अ० ३ श्लोक ६० में कहा है ।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्राभार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुलेनित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

अर्थात् स्त्री और पुरुषों में प्रेम रहने सेही गृहस्थाश्रम में सुख की प्राप्ति होती है ।

और अ० ९ श्लोक १०१, १०२ में आज्ञा है कि पति पत्नी का परम धर्म यही है कि सम्पूर्ण आयु आपस में प्रीति पूर्वक रहें जैसा कि ।

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एषधर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥
तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ता वितरेतरम् ॥

स्त्री-धर्म ।

प्यारी स्त्रियो वेदानुकूल जीवन का प्रधान फल मुक्ति ही माना गया है उस के प्राप्त करने के उत्तम २ उपाय वेदों में दर्शाये गये हैं उन्हीं के अनुकूल ऋषि और मुनियों ने भी उपदेश किये हैं तिन पर चलने से दोनों लोकों के सुख प्राप्त होते हैं जो हमारे प्राचीन पुरुषों ने भी उठाये परन्तु जहां तक हम देखते हैं स्त्रियों के लिये केवल एक ही साधन पति सेवा को मुख्य माना है जिस के यथावत् पालन करने से स्त्रियों को पूर्ण सुख की प्राप्ति होती है।

प्यारी बहिनो यह बात स्पष्टरूप से प्रकट है कि स्त्री का पति ही सर्वोपरि धन वही उस का इष्टदेव है उस की सेवा करने तथा आज्ञानुवर्त्तिनी होने से परम सुख अर्थात् वैकुण्ठ मिलता है और वही इस भवसागर में सुखों को देता आनन्द को बढ़ाता, उसी से जीवन सुफल होता है, वही सौभाग्य की उन्नति करता तथा शरीर में प्राण के तद्वत् है, मुख्य तो यह है कि पति के तुल्य इस असार संसार में कोई पदार्थ नहीं, यदि है, तो वही पति, क्योंकि वही उसका तन मन धन है, हे सुन्दरियो! जब पति तुम्हारा ऐसा इष्टदेव है कि जिस के विना तुम्हारे प्राण नहीं रह सकते तो भला कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि जिस पति के रहने से तुम्हारे प्राण रहते हैं फिर तुम उस को नाना प्रकार से क्लेशित करती हो, उसकी सेवा आज्ञा-पालन इस भांति करना योग्य है कि जिस से तुम्हारे प्राणनाथ जीवन मूल सदा आनन्द मग्नानन्द में रहें क्योंकि पति से अधिक तुम्हारा कोई मित्र नहीं, वह तुम्हारे जीवन भर के दुःख सुख का साथी है विना उस के तुम को संसार सूना जान पड़ता है, धरती आकाश भी दृष्टि नहीं आता सम्पूर्ण ऐश्वर्य मिथ्या झूठा मालूम होता है, यथार्थ में विना प्राणनाथ के प्राणों को चैन नहीं आता, जो स्त्री अपने पति को दुःख देती वा उसके दुःख में साथी नहीं होती उस से अधिक इस संसार में कोई अपराधिनी नहीं वही नर्क को जाती, वही तरुणाई में विधवा होती, उसी को इस संसार में नाना क्लेश उठाने पड़ते हैं,

इस कारण हे स्त्रियो तुम सदा पति सेवा को स्वीकार करो जो तुम्हारे अर्थ अमृतरूपी रस है, कि जिसके प्राप्त करने से सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं इसलिये य० अ० १४ मं० १३ में कहा है—

कि हे स्त्री तू पूर्व दिशा के तुल्य प्रकाशमान है दक्षिण दिशा के समान अनेक प्रकार की विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त है और पश्चिम दिशा की भांति चक्रवर्ती राज्य के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथ्वी पर प्रकाशमान है और ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य तेरा घर में अधिकार है इसलिये तू पति को तृप्त कर।

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीचीदिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥

जिस प्रकार ऋतु और गौ अपने २ समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों को सुखी करती है उसी भांति उत्तम स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि को तृप्त कर आनन्दित करें जैसा य० अ० १७ मं० ३ में कहा है—

ऋतवः स्थ ऋतावृधं ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधः। घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥

हे स्त्री जैसे पगड़ी आदि वस्तु सुख देने वाले होते हैं वैसे तू पति के सुख देने वाली हो, य० अ० ३८ मं० ३।

इसी लिये य० अ० ३७ मं० १२ में लिखा है कि जिस भांति अग्नि जीवन को बिजुली प्रजा को सूर्य्य देखने को धारण करता ईश्वर लक्ष्मी शोभा को और महाशय जन बल को उसी भांति सुलक्षणा स्त्री सुखों को देने वाली होती है।

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः। पुत्रवती दक्षिणात इन्द्रस्याऽधिपत्ये प्रजां मे दाः। सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥

क्योंकि जिस भांति सूर्य्य और चन्द्रमा अपने प्रकाश से शोभित होते हैं उसी प्रकार सती स्त्री से उत्तम पति और उत्तम सेना से सेनापति अच्छे प्रकार शोभित होते हैं जैसा य० अ० १७ मं० १० में कहा है

पाव॒कया॑ यश्चि॒तय॑न्त्या कृ॒पा क्षाम॑न् रु॒रुच उ॒षसो॒ न भा॒नुना॑ ।
तूर्व॒न्न याम॒न्नेत॑शस्य॒ नू रण॒ आ यो घृ॒णे न त॑तृषा॒णो अ॒जरः॑ ॥

इस हेतु तुम कभी अपने पति से विरोध न करो और कभी ऐसी स्त्रियों का सत्सङ्ग न करो सदा सत्यभाषण कर प्रशंसायुक्त कार्य्य करती रहो ऐसी ही स्त्री श्रेष्ठ स्त्री कहाती है—

जैसा ऋग्वेदः अ० ३ । अ० ८ । व० ३ । मं० ४ अ० ५ । सू० ५२ । मं० ४ में कहा है

या॒वय॒द्द्वे॑षसं त्वा चिकि॒त्वित्सू॑नृतावरि ।
प्रति॒ स्तोमै॑रभुत्स्महि ॥

और ऋग्वेदः अ० ३ । अ० ४ । व० ८ मं० ३१ अ० ५ । सू० ६१ । मं० १ में कहा है कि जिस प्रकार प्रातर्वेला सब प्राणियों को जगाय कार्यों में प्रवृत्त करती है उसी भांति पतिव्रता होकर स्त्रियों को पति के साथ अनुकूलता से रह कर कार्य कर प्रशंसित होना योग्य है ।

उषो॒ वाजे॑न वाजिनि॒ प्रचे॑ताः॒ स्तोमं॑ जुषस्व गृण॒तो म॑घोनि ।
पु॒रा॒णी दे॑वि युव॒तिः पु॑रन्धि॒रनु॑ व्र॒तं च॑रसि विश्ववारे ॥

मं० ३ में कहा है कि जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भुवनों के खण्डों को प्रकाशित करते हैं उसी भांति उत्तम स्त्रियों को उत्तम व्यवहार कर प्रकाशित करना चाहिये और मं० ४ में कहा है कि जिस भांति दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया सदृश अपने २ पति के साथ अनुकूल होकर वर्त्ताव करना उचित है, जैसा कि—

अव॒ स्यूमे॑व चिन्व॒ती म॒घोन्यु॒षा या॑ति॒
स्वस॑रस्य॒ पत्नी॑ । स्व१॒र्जन्ती॑ सु॒भगा॑ सु॒दंसा॰ ॥

व्यासस्मृति अ० २ के १८ श्लोक में लिखा है कि पति ही स्त्री का परम देवता है जो उस की सेवा करती हैं उन्हीं को दोनों लोकों में सुख मिलता है इस से पृथक् कोई अर्थ काम नहीं जैसा कि-

एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ।
न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनं ॥

महाभारत आदिपर्व अध्याय १६८ में कुन्ती महारानी ने भीमसेन से कहा है कि स्त्रियों के लिये नाना प्रकार के यज्ञ तप-नियम-दान इन सब कार्यों से परमधर्म यही है कि पति सेवा अर्थात् पति का हित सदा करती रहे ऐसा ही मनुजी महाराज ने अ० ५ श्लोक १४५ में तथा पाराशरस्मृति के अ० ४ श्लोक १७ में भी ऐसा ही कहा है वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ११९ में अनुसुया जी ने सीता जी को उपदेश दिया है कि स्त्रियों के लिये पति ही सुख का दाता तथा बन्धु है इसलिये जो उस को दुःख देती है उसी को नर्क प्राप्त होता है श्री महारानी ने इसके उत्तर में कहा कि सच है स्त्रियों का जप तप आदि एक पति सेवा ही है इसी से वह स्वर्ग पाती है जैसा सावित्री रोहिणी ने पाया और अ० का० सर्ग ३८ में कौशिल्या जीने सीता जी को उपदेश दिया है कि स्त्रियों को आपत्ति समय में भी अपने पति का अनादर न करना चाहिये और श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० १८ में कश्यप जीने दिति से कहा है कि पति ही स्त्री का परम देवता है जैसा कि।

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ।

मनु० अ० ५ श्लोक १५४ में लिखा है जैसा-

सततं देववत्पतिः ।

इस लिये अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञान युक्त सुन्दर देव स्वरूप पति को दृढ़ता के साथ सेवन करो जैसा य० अ० १३ मं० २४ में कहा है-

अग्निरेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद ॥

य० अ० १३ मं० १९ में उपदेश है कि स्त्री देवता स्वरूप पति को कार्य-कारण के सम्बन्ध के अनुसार निश्चल होकर सेवा करे जैसा कि-

अग्निष्ट्वाभियातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा
शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

और याज्ञवल्क्यस्मृति श्लोक ८३ में भी लिखा है कि गृहकार्यों को कर पति की सेवा में तत्पर रहना ही स्त्रियों का धर्म है और श्लोक ८७ में लिखा है कि जो स्त्री इन्द्रियों को वश में कर पति की इच्छानुसार कार्य करती है उसकी सब लोक में प्रशंसा होती है तथा पर लोक में सुख मिलता है वनपर्व अ० २०४ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है तथा सत्य को धारण करती है तथा सन्तान पालन पोषण में नियुक्त रहती है वही पतिव्रता है और य० अ० ३६ मं० १३ में कहा है कि जिस प्रकार सब प्राणियों को सुख ऐश्वर्य देने वाली पृथिवी वर्त्तमान है वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि को आनन्द देनेवाली होती है।

स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा
निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥

जिस भांति प्रातःकाल का सेवन करते हुए लोग उत्तम बल को प्राप्त होते हैं उसी भांति स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर पुरुष शरीर आत्मबल और आरोग्यपन को प्राप्त होते हैं।

जैसा ऋग्वेद अ० ३। अ० ४। व० ८। मं० ३। अ० ५। सू० ६१ मं० ५ में कहा है–

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥

और मं० २ में कहा है जैसे चन्द्रमा रूपी रथवाली प्रातःकाल की वेला तेजस्वरूप होकर सबको जगाती है वैसे ही उत्तम पण्डिता स्त्रियां अपने २ पति की सेवा और विनय से सुशील करती हैं।

तुम इसी के अनुकूल पति सेवा करो यदि पति खोटेस्व भाव का और कुकर्मी हो तो तुम्हारा यह भी परमधर्म है कि उनको समयानुसार निम्न और प्रियभाषण से धर्मोपदेश कर योग्य बनाओ क्योंकि।

य० अ० ८ मं० ४३ में भी कहा है कि जो स्त्रियां पण्डिताओं से शिक्षा पाती हैं वही अपने पतियों को सत उपदेश द्वारा कुकर्म से बचा सुकर्म में लगाती हैं।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम्ब्रूतात् ॥

हे देवियो ! तुम को यह भी जान लेना उचित है कि जिस घर में धार्मिक विद्वान् प्रशंसायुक्त पण्डिता स्त्री होती हैं वहां दुष्ट अर्थात् बुरे कर्म नहीं होते और वहां ही धन की अधिकता से बहुत प्रकार के सुख मिलते हैं जैसा य० अ० १७ मं० ५४ में कहा है—

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषेऽअधि यज्ञोऽअस्थात्॥

इस हेतु तुम अपने खोटे स्वभाव वाले वृद्ध, मूर्ख, रोगी, दरिद्री पति का भी कभी तिरस्कार न करो जैसा मनुजी ने अ० ५ श्लोक १५४ में कहा है—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥

और जो स्त्री प्रबल पिता बान्धव धनादि के अभिमान से पति को छोड़ के दूसरे से सम्बन्ध करे तो राजा बहुत आदमियों के बीच कुत्तों से नुचवावे जैसा मनु अ० ८ श्लोक ३७१ में कहा है—

इसलिये जो स्त्री मन वाणी तथा शरीर के दोषों से रहित होकर अपने पति को त्याग अन्य पुरुष का संयोग नहीं करती वह पति लोक को पाती है जैसा मनु० अ० ५ श्लो० १६५ में कहा है—

पतिं यानाभि चरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीतिचोच्यते ॥

और मनु० अ० ५ श्लोक १६४ में कहा है कि—जो स्त्री पतिव्रत धर्मको छोड़ देती है उसकी इस लोक में निन्दा मरने के पीछे गीदड़ी के पेट में जन्म लेती है और सदा रोगी रहकर पाप के फल को भोगती है—

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम् ।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥

फिर दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ११, १२ में लिखा है कि जो स्त्री अपने दरिद्री व रोगी पति का भी तिरस्कार करती है वह कुत्ती, गीदड़ी, मच्छी, बार बार होती है—अब धिक्कार ऐसी स्त्रियों पर जो पति को छोड़कर अन्य पुरुष से सम्बन्ध रखती हैं वा उसको किसी प्रकार से क्लेश दे आप रौरव नर्क में जाती हैं, सच पूछो तो स्त्री को धर्म अर्थ काम मोक्ष का देनेवाला केवल एक पति ही है, सो वर्त्तमान समय में बहुधा स्त्री उसको त्याग अनेक लीला रचती है, चेली होजाती है, कोई गङ्गा यमुना आदि के स्नान में बैकुण्ठ समझती है कोई तीर्थ यात्रा में जन्म सुफल मानती है, कि जिनसे हानि के अतिरिक्त कुछ भी लाभ नहीं होता ऐसी स्त्रियों के उसलोक बिगड़ने के उपरान्त इस लोक में नाना दोष देखने में आते हैं कि जिनके वर्णन करने में लाज आती है हृदय दाणिम सा दड़कता है परन्तु देश की दशा देखकर कुछ वर्णन करता हूं।

प्यारी बहनो ! ऐसी कुचाल स्त्रियों की प्रथम तो संसार में अपकीर्ति होती है और पति को तो मरना ही सूझता है कोई २ मनुष्य ऐसी स्त्री को मार भी डालते हैं मन में प्रेम नहीं रहता कि जिस से प्रतिदिन क्लेश बना रहता तथा गृहस्थी के प्रबन्ध में विघ्न पड़जाता है और गर्भ भी नहीं रहता, उसके उपरान्त माता पिता बहन भाई आदि को भी लज्जा आती है, बाप दादे का नाम डूबजाता है कहीं लाठी चलती है, न्यायशालों में मुकद्दमे होते हैं, सच तो यह है कि ऐसी स्त्री दोनों कुलों को दग्धकर देती है, धिक्कार है ऐसी स्त्रियों पर जो पलमात्र के सुख में डूबकर अपयश का टोकरा सिर पर धरती हैं, इसके सिवाय, सत्य शास्त्रों में भी ऐसे कर्म करने की आज्ञा नहीं पाई जाती वरन स्मृतिकारों ने पति ही को देवता कहा है जैसा मनु० अ० ५ श्लोक १५४ में लिखा है—

"सततं देववत्पतिः"

जिसको तीर्थस्नान की इच्छा हो वह अपने पति के चरणों को धोकर पीवे जैसे, अत्रिस्मृति श्लोक १३५ में लिखा है—

तीर्थस्नानार्थिनोनारी पतिपादोदकं पिबेत् ।

इस श्लोक का मुख्य अभिप्राय यह है कि स्त्री जन तीर्थों का तीर्थ अपने पति ही को समझे अर्थात् पति के चरणों के समान जान उधर अपने चित्त की वृत्ति को न जाने दें और घरही में पति को तीर्थराज के तुल्य मानकर उन्हीं की आज्ञानुसार आज्ञावर्त्तिनी हो सेवा टहल से प्रसन्न करना अपना मुख्यकार्य्य समझ जीवन तक उन्हीं का हित करना परमधर्म है, १३३ श्लोक में अत्रि जीने भी कहा है कि तीर्थयात्रा करने से स्त्री पतित होजाती है इसलिये प्यारी तुम सत्यशास्त्रों की आज्ञानुसार अपने गृह में रहकर ही तीर्थराज अर्थात् पति की सेवा टहल करो तुम्हारा इसी में कल्याण है ।

प्यारी स्त्रियो ! कैसे शोक का स्थान है कि तुम तनिक २ से क्लेशों में अपने पति का साथ छोड़ देती हो क्या आप ने श्री सीता दमयन्ती द्रौपदी आदि का नाम नहीं सुना जिनका निर्मल यश चहुं ओर प्रकाश हो रहा है इसी कारण उनके नाम आज तक लिये जाते हैं, देखो जब श्री सीताजी ने रामचन्द्र जी को वनोवास में भी नहीं त्यागा यद्यपि उन को सास ससुर आदि ने बहुत समझाया परन्तु श्री सीता जीने कुछ ध्यान न दिया तिसपर श्रीरामचन्द्र जीने वन और जङ्गल के क्लेश सुनाये तब श्री महाराणी जी ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि—

चौपाई

मातु पिता भगनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद् समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु स्वजन सुहाई । सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते । पियविन तियहि तरणिते ताते ॥
तन धन धाम धरणि पुर राजू । पति विहीन सब शोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषण भारू । यम यातना सरिस संसारू ॥
प्राण नाथ तुम विन जग माहीं । मोकहं सुखद कतहुं कोउ नाहीं ॥
जिय विनु देह नदी विनु वारी । ऐसे नाथ पुरुष विनु नारी ॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद विमल विधु वदन निहारे॥
मैं पुनि समझि दीख मनमाहीं। पिय वियोग सम दुःख जगनाहीं॥
वन दुःख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे॥
पियवियोग लवलेश समाना। सब मिलिहोहिं न कृपानिधाना॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने उन की ऐसी पूर्णभक्ति उत्साह तथा प्रेम देखा तो उनको साथ चलने की आज्ञा दी, दमयन्ती भी ऐसी ही प्रेम भक्ति अपने पति राजा नल से रखती थी जब राजा नल अपने भाई पुष्कर के साथ सब राज पाट हार गया तब बारह वर्ष का वनोवास हुआ, उस समय दमयन्ती भी अपने प्राणनाथ के साथ हुई, वन में नल ने उसको दुःख सहन करते देखकर कहा कि हे सुन्दरि ! तू आ घर चलकर रह, मेरे साथ तुझको अत्यन्त क्लेश हैं मैं तेरे दुःख देखकर और भी दुःखी होता हूं, दमयन्ती ने उत्तर दिया कि हे कृपासिन्धु ! हे जीवन प्राणनाथ ! मुझको आप के साथ ही परमसुख है, अन्यथा नाना भांति दुःख है, क्योंकि स्त्री को पति के समान कोई सुख नहीं, जैसे छाया शरीर से अलग होते ही मरजाती है, कमल को सूर्य्य और कमोदनी को चांद के रहते ही सुख मिलता है, मछली का प्राण पानी है पपीहा स्वांती के बूंद को चाहता है, हंस को दूध से प्रीति होती है, उसी भांति हे पीतम स्त्रियों को सर्वसुख की जड़ पतिही का साथ है सो आप मुझको दुःखी बताते हैं यह कदापि नहीं होसकता, जब दमयन्ती ने राजा नल का कहना न माना तब नल एक दिन उसको सोता हुआ छोड़कर चला गया तो वह नाना प्रकार से विलाप करती थी कि हे प्रियनाथ ! मुझको अपने सुख दुःख का विचार नहीं है केवल शोक यही है कि मैं आपकी सेवा न कर सकूंगी जिस समय आप रात को थकित होकर किसी पेड़ के नीचे विश्राम करेंगे तो आप की सेवा कौन करेगा, हे नाथ ! मुझसे क्या अपराध हुआ जो आपने मुझसे इस समय सेवा भी कराना उचित न जाना, मेरे अपराध को क्षमा कीजिये और दर्शन देकर मेरे मन की कली को खिलाइये।

इस भांति विनती करती हुई वन जङ्गल छानती अपने पिता के यहां पहुंची, दूसरे स्वयंवर के मिस से राजा नल की खोजने का उपाय कराया उसके साथ ही मन में यह भी प्रण कर लिया कि यदि राजा नल आज न मिला तो मैं अपने प्राण अनल में दाह करदूंगी, परन्तु राजा नल मिल गया फिर दोनों ने आनन्द से आयु व्यतीत की।

इसी प्रकार शकुन्तला कि जिसने तपोवन में गन्धर्वविवाह राजा दुष्यन्त के साथ किया था फिर जब वह राजमहलों को गई तो राजा ने भ्रम से उस को नहीं जाना तब उसने कई वर्ष तक पति के विरह में वन में तपस्या की, फिर भेंट होने पर अपने पति दुष्यन्त को उस की भूल चूक पर लज्जित नहीं किया वरन अपना ही दोष समझ कर राजा को बड़े आदर सत्कार के साथ धन्यवाद देकर निवेदन किया कि हे प्राणनाथ पीतम प्यारे यह आप की बड़ी कृपा है जो आज तक मुझ दासी पर आप का वही स्नेह तथा प्रेम बना है।

इसी प्रकार पद्मावती जो चित्तौर के राजा भीमसिंह से व्याही गई थी कि जिस का रूप वा गुण तथा सुन्दरता सुन दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चढ़ाई की थी, राणी पद्मावती पतिव्रतधर्म बचाने के अर्थ आग में जल कर मरगई, बादशाही को तुच्छ जाना।

प्यारी बहिनो आप को तो इतने पर भी कुछ ध्यान नहीं होता आप तो तनिक २ से दुःखों तथा निर्धनता में साथ छोड़ देती हो, यदि तुम में इन के समान प्रेम स्नेह होता तो भारत की आज यह कुदशा क्यों होती, इन के उपरान्त तारा, सुलोचना, द्रौपदी आदि होगईं कि जिन के नाम सुयश के साथ चले आते हैं।

धन्य है उन सुन्दरियों को जो ऐसी ही सुहावनी चाल से चलकर अपने पति आदि को प्रसन्न रख कर पतिव्रता कहाती हैं।

हे स्त्रियो! तुम्हारी नाव का खेवट पति है विना उसके तुम्हारा पार करनेवाला इस भवसागर में दृष्टि नहीं आता क्योंकि जो स्त्री पति को नाना भांति से दुःखित रखती है यदि वह भी तुम्हारी भांति अज्ञान हों, वह भी किसी अन्य स्त्री से प्रीति करलें तो बतलाइये कि तुम्हारी क्या दशा हो, मैं तो यही जानता हूं कि फिर यह दुःख

तुम्हारे टाले नहीं टलेगा इसी अग्नि में जल कर भस्म होजाओगी, यदि यह कहो कि हम भी ऐसा ही करेंगी तो फिर विचारिये कि घर तो गया, नष्टता तो हुई, तिसपर तुर्रा यह होगा कि थोड़े ही दिनों के पश्चात् तुम्हारे अपगुणों से वह भी अप्रसन्न हुआ तथा उसने भी तुम्हें छोड़ दिया तो उस समय तुम्हारी दशा धोबी के कुत्ते के समान होजावेगी, जो घर का न घाट का।

इस के उपरान्त ऐसे पुरुष एक स्त्री के बन्धन में नहीं रहते, जहां नवीन शोभायुक्त स्त्री पाते हैं तुरन्त मोहित होकर पहिली स्त्री को पुराने जूते की समान निकाल कर फेंक देते हैं, फिर बतलाइये उस समय आप की क्या गति होगी, सच पूछो तो तुम्हारे प्राण सङ्कट में होंगे और अपने किये हुए को स्मरण कर पछताओगी परन्तु फिर क्या होता है जब चिड़िया चुग गईं खेत, फिर तुम अपनी छाती आप ही कूटोगी या अफ़यून खाओगी या दो दो दानों को मारी २ फिरोगी यथार्थ तो यह है कि जो स्त्री अपने पति की आज्ञा के विरुद्ध चलती है वह इसी भवसागर में नाना नर्कों को भोगती है।

प्यारी बहिनो शास्त्रों में तुम्हारे स्वतन्त्रता से कार्य करने की आज्ञा नहीं है अर्थात् स्त्री बालक हो या तरुण या बूढ़ी परन्तु गृह में स्वाधीन होकर कोई काम न करे, अर्थात् स्त्री बाल्यावस्था में बाप के, तरुणाई में पति और पति के देवलोक होने पर पुत्र के आधीन रहे, जैसा कि मनुस्मृति अ० ५ श्लोक १४७ में लिखा है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
निस्वातंत्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्य्यं गृहेष्वपि ॥

ऐसा ही व्यासस्मृति अध्याय २ श्लोक ५४ तथा याज्ञवल्क्यस्मृति श्लोक ८५ में भी लिखा है।

अथोपरान्त पतिव्रता स्त्री पति मरने पर पतिव्रता रहने से विना सन्तान के स्वर्गलोक को जाती है, जिस प्रकार कुमार ब्रह्मचारिणी गई जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक १६० में लिखा है—

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि तथा ते ब्रह्मचारिणः ॥

बहुधा नारी अपने सासु श्वसुर देवर जेठ जिठानी आदि से बात २ पर लड़ती झगड़ती हैं अथवा दिन रात अपने पति के कान भरती हैं यहां तक कि विना अलग हुए नहीं मानतीं, भला विचारियो कि कौन ऐसे सास श्वसुर आदि हैं जो अपने बहू बेटे का भला नहीं चाहते कि जिस बेटे के अर्थ अपना तन मन धन तक अर्पण किया, बहू के आने की बधाई बांटी, धिक्कार उस बहू पर कि जिसने उनको सुख के स्थान पर दुःख दिया तथा उनके मन को ऐसी ग्लानि करदी कि जिस से वह बहू का नाम तक नहीं लेते, जब कोई उन के सम्मुख बहू का नाम लेता है ठण्डी सांस लेकर रहजाते हैं, भला विचारिये तो कि ये जो अब तुम्हारे पति कहलाते हैं, कि जिनके ऊपर तुम उछलती कूदती नख़रे करती हो, किसने उन को पाल ऐसा किया तो कहोगी माता पिता ने, फिर भला उन के सुख विना तुम्हें कहीं सुख मिल सकता है कदापि नहीं, वरन थोड़े ही दिनों में जब कि तुम्हारी सन्तान का विवाह होगा तो वह तुम्हारी नई बहू आते ही तुम को वह फटकार बतावेगी कि तुम्हारे पते तक न लगेंगे, उस समय तुम को उपरोक्त क्लेश जान पड़ेंगे कि हाय २ क्या किया बहू ने आते ही हमारी कुगति कर दी अब हम से काम काज भी नहीं होते हाय यह हमारा बुढ़ापा क्योंकर कटेगा, बड़े दिनों में तो ज्यों त्यों कर यह दिन नसीब हुआ था सो भाग्य वश और भी अधिक दुःख हुआ इस से तो सन्तान न होती तो अच्छा था, अब क्या करें कहां जायं किसी ने सच कहा है—

जाके पैर न जाय बिवाई । सो क्या जाने पीर पराई ॥

इसलिये तुम सदा अपने माता पिता आदि के समान अपने सास श्वसुर आदि को समझकर उनकी आज्ञा पालन और शुश्रूषा करती रहो कि जिससे तुमको भी सुख मिले और दोषभागिनी भी न हो, इसके उपरान्त क्या तुम्हारे पति को जो तुम्हारे साथ में रहता है अपने माता पिता के

क्लेशित होने से प्रसन्नता रहती होगी, कदापि नहीं, सदा चिन्ता रूपी ज्वाला में शरीररूपी लकड़ी के भांति जलता ही रहता होगा, फिर भला कैसा सुख कैसा आनन्द, इससे हे युवतियो तुम कदापि ऐसा न करो वरन पति के नाते के अनुसार प्रत्येक का आदर भाव सदा करती रहो कि जिससे घर में सब प्रकार के आनन्द सुख रहैं संसार में तुम्हारी भलाई हो। जैसा य० अ० ११ मं० ७१ में कहा है कि पति के माता पिता और सास श्वसुर आदि सम्बन्धियों और मित्रों सहेलियों को सर्व काल में प्रसन्न करती रहो।

अवरां २॥ अभ्यातर। यत्राहमस्मि तां अव॥

और ऋग्वेद अ० २। अ० १। व० ५। मं० १ अ० १८। सू० १८ मं० ९। में कहा है कि जिस भांति प्रातः समय की बेला अन्धकार से उत्पन्न होकर दिनको प्रसिद्ध करती है दिनसे विरोध करने वाली नहीं होती उसी भांति स्त्री सत्यभाषण से तथा माता पिता और पति के कुल को कीर्ति से प्रशंसित कर अपने श्वसुर और पतिके प्रति उनके अप्रसन्न होने का कोई व्यवहार न करें।

इसके तदन्तर तुम अपने आश्रित अर्थात् सेवक सेविकाओं को दान मान से सदा प्रसन्न करती रहो जिस भांति समुद्र जल सब को बढ़ाता है जैसा ऋग्वेद अ०२। अ० ६। व० ३। मं० २। अ० १। सू० ११। मं० १ में कहा है।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वा मूर्जो वर्द्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥

य० अ० १४ मं० ३ में कहा है कि अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करो और विवाह के पीछे तुम अपने माता पिता से कभी प्रीति न छोड़ो क्यों कि उन्ही दोनों से तुम्हारे शरीर उत्पन्न हुए हैं और पाले हैं जैसा य० अ० ३५ मं० ५ में कहा है।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु तस्मै पृथिवी शं भव।

ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० ९। म० २। अ० ३। सू० २८। मं० ५ में भी ऐसा ही उपदेश है कुल का प्रकाशित होना भी तुम्हारे ही

हाथ है क्योंकि ऋग्वेद अ० १। अ० ४। व० ४। मं० १। अ० ६। सू० ४८। मं० ९। में कहा है कि विदुषी धार्मिक कन्या दोनों अर्थात् माता पिता के कुलों को उज्ज्वल करती है और य० अ०१४ मं० २२ में लिखा है कि जहां कि स्त्रियां पृथिवी के समान क्षमायुक्त और आकाश के समान निश्चल यन्त्र कलाके तुल्य जितेन्द्रिय होती है उन्हीके कुलका प्रकाश होता है जैसाकि-

यन्त्री राड्यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥

और ऋग्वेदः अ० ३। अ० ८। व० ३। मं० ४। अ० ५। सू०५२ मं० ५ में कहा है कि जो स्त्रियां किरणों के समान उत्तम व्यवहारों को प्रकाश करती हैं वेही निरन्तर कुलकी उन्नति करनेवाली होती हैं और मन्त्र ३ में लिखा है कि जो स्त्री पति आज्ञानुसार मित्रके समान सेवा करती है वही प्रभात के समान कुलका प्रकाश करती है और ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। मं० ४। व० ३४। अ० २ सू० १४। मं०३ में कहा है कि जो स्त्री पतिव्रता सुन्दर प्रिय लक्षणों से युक्त अत्यन्त बली होती है वही प्रातःकाल के समान कुल का प्रकाश करती है और य० अ० १३ मं० २० में कहा है

जिस प्रकार दूर्वा ओषधी रोगों का नाश कर सुख को बढ़ाने वाली है और वह सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती है उसी भांति विदुषी स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे जैसा-

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो
दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥

इस लिये तुम सदा व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित अर्थात् जितेन्द्रिय होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करो जैसा य० अ० १३ मं० १६ में कहा है-

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा। मा त्वा समुद्र
उद्बधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥

और इसके लिये अपने पति से नित्य प्रार्थना करती रहो कि जिस प्रकार मैं प्रसन्नचित्त होकर आपकी सेवाकर आपको चाहती हूं आप भी वैसी ही मेरे ऊपर कृपाकर अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षाकरो जिससे मैं दुष्टाचरण करने वालों की भांति पाप की भागिनी न हूं जैसा य० अ० ८ मं० २७ में कहा है—

इसी हेतु ऋग्वेद अ० २ अ० ५ व० २३ सं० २ मं० १ सू० ३ मं० ५ में कहा है कि जिस भांति कारु को (राजों) के बताये हुए घरों में सुन्दर शोभायुक्त द्वार होते हैं उसी प्रकार विदुषी धर्मपरायणा पतिव्रता कीर्तिवती और उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली होती है—

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥

हे सुन्दरियो ! उत्तम सन्तान के होने से ही संसार में सुखकी वृद्धि होती है इस लिये तुम्हारा परम धर्म है कि आप ब्रह्मचर्य्य के साथ विदुषी होके शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देती रहो—

जैसा य० अ० १४ मं० १४ में कहा है—

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

क्योंकि जो माता सूर्य्य के सदृश अपने सन्तानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है तो वे सन्तान उत्तम होते हैं ऋग्वेद अ० ३ । अ० ५ । व० २६ । मं० ४ । अ० २ । सू० १८ । मं० ५ । में कहा है—

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥

ऐसा ही य० अ० ११ मं० ६८ में भी कहा है ।

इसके उपरान्त गृहकार्यों को सदा करती रहो परन्तु गृहकार्यों को वही करसक्ती है जो पृथिवी के समान क्षमाको धारण करती है और क्रूरतादि दोषों को अपने पास नहीं आने देती जैसा य० अ० ३५ मं० २१ में कहा है–

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।

यच्छा नः शर्म सप्रथाः अपनः शोशुचदघम् ॥

इसलिये जिस भांति सूर्य्य का प्रकाश सब जगत् की वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचि युक्त करता है इसी प्रकार श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य्यों को कर प्रकाश करती है जैसा य० अ० १३ मं० ३२ में कहा है–

इस हेतु य० अ० १५ मं० ५ में लिखा है कि जो स्त्री गृह कार्य्यों में कुशल हो उस को योग्य है कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन कर उन की यथोचित उन्नति किया करे जैसा य० अ० ११ मं० ६२ में लिखा है–

य० अ० ३३ मं० ५९ में कहा है कि तुम सदा वैद्य के तुल्य सब की हितकारिणी हो औषधिवत् अन्न बनाओ यथा योग्य बोलो तो तुम निरन्तर सुख भोगने के योग्य होसक्ती हो ।

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।

अग्रंन्न यत्सुपद्यक्षराणामच्छारवं प्रथमा जानती गात् ॥५९॥

ऋग्वेद अ० ३ । अ० ८ । व० ३ । मं० ४ । अ० ५ । सू० ५२ । मं० ६ में कहा है कि जिस भांति प्रभात वेला अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती है उसी प्रकार विद्यायुक्त स्त्रियां अपने उत्तम स्वभाव से दोषों को दूर कर अच्छे प्रकार भोजनादि से सब की भले प्रकार से रक्षा करे ।

आपप्रुषी विभावरि व्यावज्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥

य० अ० ८ मं० ४२ में कहा है कि विदुषी स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किये हुए पदार्थों को जैसा आप खावे वैसे ही अपने

पति को भी खिलावे कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की बढ़ती और धनादि पदार्थों की वृद्धि होती रहे जैसा-

इस हेतु पतिव्रता स्त्री का धर्म यही है कि घृतादि उत्तम वस्तु आप न खाकर और धन को व्यय न कर अपने पति के लिये रखकर उन सब से उन का यथा योग्य सत्कार करती रहें जैसा य० अ० २० मं० ५८ में कहा है-

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।
इडाभिरश्विनाविषᳬ समूर्जᳬ सᳬ रयिं दधुः ॥

और ऋग्वेद अ० ३ । अ० २ । व० ६ । मं० ३ । अ० ३ । सू० ३१ । मं० ६ । में कहा है-

जो स्त्री बिजुली के समान सब विद्याओं में व्याप्त अर्थात् जानने वाली और उद्योगवती कार्य्य करने में चतुरा, नम्रस्वभाव, वाणी की योग्यता को जानने वाली होती है वही वर्षा के समान सम्पूर्ण सुखों को देती है।

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छारवं प्रथमा जानती गात् ॥

बहुधा स्त्रियां अपने पति आदि से वस्त्र आभूषणों पर ऐसे २ कटुवचन बोलती हैं कि जिसका कुछ पारावार नहीं, इसके उपरान्त रोटी नहीं खातीं सम्पूर्ण गृह की स्त्रियों से प्रत्येक बात पर लड़ती हैं, पति से बात चीत भी नहीं करती भला यह कौनसी बुद्धिमानी की बात है, क्या पति आदि को अपनी मान बड़ाई प्रतिष्ठा बढ़ाना मंजूर नहीं है, क्या सास ससुर इत्यादि को अपनी बहू का पहरना ओढ़ना खाना पीना अच्छा नहीं लगता, सच पूछो तो वह बहू बेटे के अर्थ अपने प्राणों को भी देना भला समझते हैं परन्तु क्या किया जावे जब उन की बचत ही न हो, यदि होगी तो तुम को ही वह धन मिलेगा सन्तोष करना उचित है, सदा एक सा समय नहीं रहता कभी ऐसा समय होगा कि तुम्हारे पति आदि के पास जब धन होगा तो अवश्य ही तुम्हारे लिये उत्तम २ आभूषण और वस्त्र आदि बनवा देवेंगे।

इसलिये हे सुन्दरियो ! तुम पति के कठोर वचन को सुनकर अप्रसन्न न हो वरन उन को प्रसन्न करना ही तुम्हारा परमधर्म है, जिस गृह में स्त्री उत्तर देने वाली होती है वहां भी नाना भांति से हानि दृष्टि आती है तथा पति को तो मरना ही सूझता है, यथा—

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥

इस का यह अभिप्राय है कि दुष्टा नारी तथा मूढ़ मित्र अथवा नौकर उत्तर देनेवाला हो तो उस घर में हे सुशीलाओ ! मूढ़ मित्र वा उत्तर देनेवाले चाकर को दूर कर श्रेष्ठ मित्र वा चाकर कर सकते हैं कि जिससे सुख मिल सकता है परन्तु स्त्री के त्यागन करने से भी मृत्यु ही होती है ।

हे सौभाग्यवतियो ! तुम उपरोक्त कथन पर ध्यान देकर अपने आचरण को इसके अनुसार सुधार कर अपने पति अथवा अन्य सास ससुर देवर जिठानी आदि से यथायोग्य प्रिय मधुरवाणी से नम्रता पूर्वक सत्यसम्भाषण करो इसी से तुम को धन सम्पत्ति आदि अनेक सुख मिल सकते हैं, जब तुम सुलक्षणा होजाओगी तो पति आदि अड़ोसी पड़ोसी सब प्रसन्न होंगे तथा तुम्हारी भलाई तन मन से करने पर उद्यत होजावेंगे, प्रतिस्थान पर तुम्हारी बड़ाई होगी, सर्वजन तुम्हारा आदर सत्कार करेंगे गृह में भी आनन्द रहेगा मानो साक्षात् स्वर्ग के सुखों को भोगोगी, जो तुम निठुर, अप्रिय वा असत्यभाषण करोगी भोजन वस्त्र आभूषण आदि काम काज पर लड़ोगी तो कदापि आनन्द के स्वप्न में भी दर्शन न होंगे सदा चिन्तारूपी ज्वाला में जलकर एक दिन राख की ढेरी बन जाओगी, प्यारी स्त्रियो पति ही तुम्हारा स्वामी दुःखहर्ता इष्टदेव है अतः किञ्चित् जीवन में असन्तोष तथा क्रोध आदि मिथ्या सुखों में फंसकर अमृतरूपी सुखों को क्यों लात मारती हो कि जिससे तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ जाते हैं, अथोपरान्त शराब या कोई अन्य नशे का पीना, कुमार्गिणी स्त्री वा पुरुषकी सङ्गत, पति से जुदाई, वृथा इधर उधर घूमना, बे समय सोना, दूसरे के गृह में

निवास करना, इन छः दूषणों को भी अपने निकट न आने दो जैसा कि धर्मशास्त्र में लिखा है-

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्यां च विरहोटनम् ।
स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥

क्योंकि इनके कारण स्त्री का आदर नहीं होता तथा नाना भांति के दोष उत्पन्न होजाते हैं इस कारण इन उपरोक्त दोषों को त्यागना उचित है यदि इस विषय को अधिक देखना हो तो नीत्युक्त और स्मृत्युक्त-स्त्रीधर्म को मगा कर देख लीजिये ।

अथोपरान्त निम्न लिखित शिक्षाओं पर भी ध्यान देना योग्य है-

(१) माता, पिता, पति, श्वशुर, भाई, मामा इनके ही दिये वस्त्र आभूषणों को प्रसन्नता पूर्वक धारण करे ।

(२) मन-वाणी-कर्म से शुद्ध रहै तथा पति की आज्ञा में सदा तत्पर रहै ।

(३) पाकविद्या के अनुकूल सदा भोजन बनाकर बड़े आदरभाव से गृह के स्त्री पुरुषों को जिमावे ।

(४) इस विषय में नवीन २ युक्तियों के निकालने का ध्यान बनाये रहै ।

(५) बासी भोजन किसी को न दे और न आप खावे ।

(६) सब से प्रथम प्रातःकाल उठे और सब के पश्चात् रात को सोवे ।

(७) दिन में कभी न सोवे रात्रि को ६ व ८ घण्टे शयन करे ।

(८) प्रातः उठ कर शौच से निवृत्त होकर बड़ों को नमस्ते करे ।

~~(९) कभी नङ्गी~~ स्नान न करे और न धोती आदि ऐसे वस्त्र पहिने जिस में शरीर के अवयव दृष्टि आवें ।

(१०) प्रमत्त न हो निष्काम तथा जितेन्द्रिय हो कर गृहकार्य्यों आदि को करो ।

(११) ऊंची वा कठोर वाणी न बोलो मिथ्याभषण भी न करो वरन सदा सत्यप्रिय भाषण करो ।

(१२) पति से ऐसी बातें कभी और किसी दशा में न करो जो उन को प्रिय न हो ।

(१३) यदि पति से सम्मति करनी अथवा कुछ निवेदन करना हो तो यथायोग्य समय को देख कर–शील स्वभाव से वार्त्ता करे

(१४) लड़ाई किसी के साथ न करे धर्म और अर्थ का विरोध भी न करे।

(१५) असावधानी–उन्माद–क्रोध–ईर्षा–ठगई-अत्यन्तमान-चुगलपन–हिंसा–वैर–बड़ा अहङ्कार–धूर्त्तपन–नास्तिकपन–चोरी, और दम्भ इन सब को छोड़ दें।

(१६) सदा प्रसन्नचित्त रहै–घर के कार्य्य बुद्धिमानी से करे–घर तथा वर्तन वस्त्र आदि सब वस्तुओं को पवित्र बनाये रहै।

(१७) व्यय करने में कभी उदार न हो।

(१८) गृह का मासिक हिसाब यथायोग्य लिख कर मास के अन्त में पति को दिखा कर यदि कुछ उस में संशोधन कराना हो तो उन की सम्मत्यनुसार करै।

(१९) कोई उत्तम वस्तु अपने सास श्वसुर पति के विना भोजन कराये आप न खावे।

(२०) आभूषणों और वस्त्रों आदि पर कभी झगड़ा-टण्टा न करे।

(२१) द्वार वा खिड़की के पास खड़ी न हो।

(२२) जब पति परदेश को गये हों तो शृङ्गार न करे और न अन्य घरों में जावे।

(२३) गृह में जब कोई उत्सव हो तो सास आदि की सम्मति से खर्च के व्योरे को लिखकर पति को सुना यथायोग्य व्यय करे अर्थात् घर की प्राप्ति और गृहकार्यों को देख कर काम करे–मिथ्या प्रशंसा पर न मरे।

(२४) जब पति गृह में आवे उठ कर नमस्ते कर उन के बैठने को आसन दे–पङ्खा आदि करे–पान–इलायची आदि समयानुसार आदर सत्कार करे।

(२५) कभी और किसी दशा में पति की बुराई न करे वरन अपने सब प्रकार के दुःखों को देश–काल को देखकर निवेदन करती रहै।

(२६) परमेश्वर की उपासना को कभी न भूले—और आनन्दोत्सवों पर सब मिल कर पारिवारिक उपासना करे।

(२७) कभी अन्य पुरुष से एकान्त में बैठ कर बातें न करो।

(२८) फकीरों और बावाजियों के यहां न जाओ न अपने घर बुलाओ और तुम उन को भिक्षा देने न जाओ।

(२९) नौकरों और दासियों के कार्य्यों की जांच करती रहो और उन को प्रसन्न बनाये रहो।

(३०) यह समझ कर कि यही मेरा पति सूर्य्य—चन्द्रमा से भी अधिक प्रकाशमान् सब से बुद्धिमान् शूर वीर—धनवान्—रूपवान् तथा कुलवान् है सेवा में लगी रहे—चाहे अन्य पुरुष कैसा ही बुद्धिमान्—धनवान्—कुलीन क्यों न हो स्वप्न में भी ध्यान न करो।

(३१) गृहकार्य्यों को करने के समय नियत कर यथायोग्य उन्हीं समयों पर कर शेष आराम के समय में सत्यार्थप्रकाश आदि उत्तम २ पुस्तकें समाचारपत्र पढ़ा करो और अपनी सहेलियों आदि को सुनाया करो।

(३२) प्राचीन पतिव्रता स्त्रियों के इतिहास अवलोकन कर उन से सार को ग्रहण करने की टेव डाल कार्य्य करो।

(३३) पुत्रियों को पढ़ाती रहो—सीना पुरोना भी अच्छे प्रकार सिखलाओ क्योंकि सन्तान सुधार तुम्हारे ही हाथ है।

(३४) सदा ऐसे कार्य करो जिससे दोनों घरानों का यश और कीर्ति हो इसी में तुम्हारी भलाई और सर्वोपरि काम है।

(३५) लाज को कभी न त्यागो परन्तु मिथ्या लाज में फसकर प्राण भी न गमाओ—लाज के मुख्य अभिप्राय को जान कार्य्य करो।

लाज और परदा।

लाज ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक मनुष्य और स्त्री को करना चाहिये विशेष कर स्त्री का तो यथार्थ भूषण लाज ही है लाज से यह प्रयोजन

है कि अपने सास श्वशुर—पति आदि बड़े बूढ़ों के सामने कोई ऐसी बात न कहे जिस में उनका अपमान हो बुरे कामों से बचना ही लाज है।

प्यारी बहनों लाज इसको नहीं कहते कि बड़ासा घूंघट काढ़लिया या घरों के भीतर बैठ रहीं जब तक तुम्हारा चित्त सुशिक्षित व तुम्हारे पास विद्या न होगी तब तक इस वृथा लाज से कुछ नहीं हो सकता जब से इस देश में अन्य देशियों का राज हुआ तभी से इस देश में इस प्रकार का परदा चला जाता है क्योंकि यह लोग सुन्दर क्वारी कन्याओं को पकड़ कर विवाह करलेते थे तब से इस देश के विद्वानों ने इस परदा को चलाया जिससे मुसलमान लोग कन्याओं के धर्म को भ्रष्ट न करें।

इस वृथा परदे से स्त्रियों को निम्न लिखित हानियां होती हैं—

[१] उनको इस परदे के कारण उत्तम वायु और प्रकाश नहीं मिलता जिसके कारण वे नित्यप्रति बीमार बनी रहती हैं, मुंह मेंडक सा पीला पड़जाता है, जिसके कारण हजारों रुपया दवाओं में वैद्यों को देने के अनन्तर नाना प्रकार की लल्लो पत्तो करनी पड़ती है (२) किसी प्रकार की विद्या भी नहीं सीख सकतीं (३) बूढ़ी भी शीघ्र होजाती हैं (४) मरती भी शीघ्र हैं (५) चतुरा या फुरतीली तथा चटकीली भी नहीं होती हैं (६) बलवान भी नहीं होतीं (७) सोच विचार का स्वभाव भी नहीं पड़ता (८) उनकी सन्तान भी न्यूनबल होती है।

गांववाली अथवा मेमो को देखिये वह कैसी मोटी ताजी होती हैं, कभी बीमार नहीं पड़तीं, और चतुरा तथा बुद्धिमती होती हैं सच है कि जब तक इस देश से परदा की रीति न उठेगी तब तक स्त्री जाति की किसी प्रकार की उन्नति नहीं होसकती, इसके अतिरिक्त परदा केवल सास श्वशुर पति आदि भले आदमियों से किया जाता है परन्तु धोबी चमार धीमर आदि नीच कौम का परदा कभी नहीं करती चाहें वे खराब चलन हों बेधड़क घर में चले आते हैं क्या तब लाज नहीं रहती, जब सास श्वशुर आदि आते हैं तो बड़ा सा घूंघट काढ़ कर भीतर को भागती हैं।

बहुत सी स्त्रियां झनकदार आभूषण पहन कर मेला आदि में जाती हैं तो क्या दुर्जन लोग अपनी दुर्जनता को काम में न लाते होंगे ?

सोचने की बात है कि जब किसी के व्याह आदि उत्सव होते हैं तो सिर्फ एक कपड़े की ओट से बहू बेटी अपने बाप आदि के सामने बुरे भले गीत गाती हैं बतलाइये तो सही तब लाज उनकी कहां चली जाती है हाय क्या इसी का नाम लाज है, आजकल की लज्जावती स्त्रियों को निम्न लिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये-

(१) किसी मेला आदि नाच तमाशों में अकेला न जाना (२) बुरी पुस्तकें या बुरे उपदेश को न सुनें (३) किसी मनुष्य के पास अलग न बैठना चाहिये चाहे वह बाप भाई आदि क्यों नहों (४) कुलक्षणी स्त्री की संगति न करनी चाहिये-

बहुधा स्त्रियां व्याह आदि में जो वृथा अपशब्द युक्त गीत गाती हैं उनको बन्द करके यदि परमात्मा की प्रार्थना के भजनादि गावेंअथवा ऐसे गीत गायें जिनमें बुरे शब्द न हों तो अच्छा हो अथोपरान्त स्त्रियों को रासलीला तथा नाच में भी न जाना चाहिये क्योंकि ऐसी जगह भी उनकी लाज जाती रहती है, उनको ऐसे स्थान पर स्नान भी न करना चाहिये जहां बहुत से मनुष्य हों क्योंकि केवल मुंह ढकने हीसे लाज नहीं होती, शण्ड मुसण्डे वैरागियों के यहां किसी लालसा से न जाना चाहिये मुख्य प्रयोजन हमारे कथन का यह है कि स्त्रियों को विचार पूर्वक लाज करना चाहिये कि जिससे उपकार हो वृथा इस प्रकार की लाज से नाना दोष भारत सन्तान में फैलगये हैं ॥

पतिधर्म ।

मान्यवरो ! सृष्टिक्रम पर एक साधारण दृष्टि डालने से हमको प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस प्रकार आंख के लिये सूर्य, सूर्य के लिये आंख, बुद्धि के लिये ज्ञान और ज्ञान के लिये बुद्धि की परम आवश्यकता है इसी प्रकार स्त्री को पुरुष तथा पुरुष के लिये स्त्री का होना भी परम आवश्यक है, वरन जिस प्रकार सूर्य के न होने से आंख को तथा ज्ञान के न होने से बुद्धि को कुछ आनन्द नहीं होता, इसी प्रकार

पुरुष के विना स्त्री तथा स्त्री के विना पुरुष को भी इस गृहस्थी में कुछ आनन्द नहीं प्राप्त होसकता यही घर को सुधारने वाली हैं, यही हमको सब प्रकार के आनन्द देनेवाली हैं, यही हमारे अर्थ नाना प्रकार के कष्ट उठाती हैं।

हमारा गृह जो हरा भरा मालूम होता है वही विना इनके जङ्गल से अधिक दुःखदाई प्रतीत होता है, इन्हीं से धर्मात्मा, बुद्धिमान्, वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं कि जो इस संसार के भूषण माने जाते हैं नाना प्रकार के धर्म कार्य करते हैं, सांसारिक कार्य्यों को उत्तमता से चलाते हैं, यही सन्तान का पालन पोषण करती हैं जो मनुष्यों से असम्भव है, यह हमको नाना प्रकार से उत्तम भोजन बनाकर खिलाती हैं, हमारे मित्रों की सेवा सुश्रूषा करती रहती हैं, इन्हीं पर हमारी सन्तान का सुख दुःख वा सुधार निर्भर है, यही थोड़ा २ धन भी जमा करलेती हैं, यही गृहस्थी का ऐसा उत्तम प्रबन्ध करलेती हैं कि जिससे बड़े २ विद्वान् चकित रहजाते हैं, यही हमारे कारण अपने प्रिय माता पिता भाई बान्धवों को छोड़कर आती हैं, देखिये दमयन्ती ने नल के अर्थ सीता ने रामचन्द्र के साथ किस प्रकार के कष्ट उठाये।

सच तो यह है कि यह हमारे ही आराम को अपना सच्चा सुख तथा हमारे दुःख को ही अपना दुःख समझती हैं, फिर भला यह सम्भव होसकता है कि इनको दुःख देकर हम किसी प्रकार का आनन्द उठासकें, कदापि नहीं, वरन इनको प्रसन्न रखने ही से हमको सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होसकते हैं।

याज्ञवल्क्य जी ने लिखा है कि पिता बन्धु पति तथा जाति के लोग सास ससुर तथा सब प्रकार के बान्धवगण दुर्गुणों को त्याग कर वस्त्र, अन्न आभूषण प्रीतिपूर्वक कोमल वाणी से शक्ति के अनुसार स्त्रियों की पूजा अर्थात् आदर सत्कार करें, यथा—

भर्तृभ्रातृपितृज्ञाति श्वश्रूश्वशुरदेवरैः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः॥

मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ५७ में लिखा है कि स्त्रियों को सदा प्रसन्न रक्खे, क्योंकि ऐसा करने से कुल की वृद्धि होती है, जहां वह क्लेशित रहती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट होजाता है, यथा—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

उसी अध्यायके ५८ श्लोक में लिखा है कि जहां स्त्रियों का यथावत् मान्य नहीं होता वह कुल उनके शाप से तत्काल ही नाश होजाता है, अध्याय ३ श्लोक ५६ में लिखा है कि जहां स्त्रियों का आदर होता है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं, जहां उनका अनादर होता है वहां धर्म कार्य्य का फल प्राप्त नहीं होता, यथा—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

फिर नहीं जान पड़ता कि वर्त्तमान समय में हमारे भारतवासी बन्धु वर्ग इन पवित्र आज्ञाओं पर क्यों नहीं ध्यान देते ।

कोई २ जन अन्य स्त्री व बालकों से प्रीति करलेते हैं और अपनी स्त्री से बात तक नहीं करते घरका समस्त धन बाहर वालों को खिला देते हैं पर अपनी स्त्री को भोजन देना अत्यन्त कठिन होजाता है सैकड़ों रुपये के कपड़े वेश्याओं को बनवाते हैं पर इन बिचारियों को केवल अपनी दासी ही मान रक्खा है कि जो दिन भर गृहकार्य करती रहती हैं, तिस पर भी उनको किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता ।

सचमुच यही कारण है कि वर्त्तमान समय में जिधर हम दृष्टि उठाकर देखते हैं कोई गृह हरा भरा नहीं जान पड़ता, जिससे गृहस्थों को गृहस्थी के धर्म पूर्ण करने में अधिक कठिनाइयां जान पड़ती हैं, क्योंकि स्त्रियां न सास श्वशुर का कहना मानती न पति को कुछ समझती हैं केवल लड़ाई झगड़ों में सब दिन काटती हैं, फिर मनुष्यों को भी घर से बाहर रहने में आनन्द आता है कोई २ परदेश में जाकर साधू होजाते हैं, यहां स्त्रियां बैठीं हुईं नाना प्रकार के कौतुक रचती हैं कि जिससे उनके बाप दादों के नाम पर धब्बा आता है तथा वंश का भी नाश होजाता है या कोई २ उत्सव समयों पर ऐसा झगड़ा मचाती हैं कि रस नीरस होजाता है वह आनन्द दुःखरूप जान पड़ता है

पति कुछ कहता है परन्तु स्त्री अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाती है सर्वसाधारण घरके भेदों को जानते हैं, जिससे देश देशान्तर में नाना प्रकारकी हंसी होती है—कुल की निन्दा सब स्थानों पर होजाती है—प्यारे पुरुषो ! इन बातों में क्या धरा है—परमात्मा की आज्ञा पालन करो अर्थात् स्त्रीव्रत होकर स्त्री को प्रसन्न करो यही काम सब से अधिक उस की प्रसन्नता का है और जब तक जितेन्द्रिय नहीं होते तब तक किसी प्रकार के सुख नहीं मिलते अर्थात् जो मनुष्य प्रमत्त स्त्रियों में प्रमत्त को प्राप्त नहीं होते वे ही बली होते हैं।

ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। व० २६। मं० ४। अ० २। सू० १८। मं० ८ में कहा है—

ममंच्चन त्वां युवतिः परास ममंच्चन त्वां कुषवां जगार ।
ममंच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममंच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत्॥

इसके उपरान्त तुम्हारी भी तो प्रतिष्ठा नहीं रहती य० अ० २३ मं० २१ में परमात्मा राजा को आज्ञा देते हैं व्यभिचारी पुरुष और स्त्री को बांधकर ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करना चाहिये जैसा कि—

उत्सक्थ्या अवं गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥

धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हों उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हों तथा डाकू चोर—खोटे वचन बोलने वाले मिथ्यावादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उनको अग्नि से जलाने आदि भयङ्कर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करे य० अ० ११ मं० ७७ में कहा है ॥

याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाउत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते अग्नेऽपि दधाम्यास्ये ॥

मनु अ० ८ श्लोक ३७ में २ में कहा है कि व्यभिचारी पापी मनुष्य को जलते लोहे की चारपाई पर जलावे सब लोग उसपर लकड़ियां डालें उन में पाप करनेवाला जले।

यदि तुम कहो वह योग्यता नहीं है तो आप अपनी योग्यता से उनको शिक्षा कर योग्य बनाइये कि जिस से गृहस्थी में सुख और आनन्द मिले और आगे की सन्तानों के सुधार के लिये वेदानुकूल स्वयंवर में विवाह की प्रथा को प्रचलित करो फिर उस ब्रह्मचारिणी को जो मेघ के तुल्य गम्भीर शब्द संयुक्त थोड़ा बोलनेवाली पवित्र और विद्यायुक्त को प्रथम विवाह का आनन्द भोगो जैसा ऋग्वेदः अ० ३ अ० ८ । वं० १ मं० ४ । अ० ५ । सू० ५२ । मं० २ । में लिखा है ॥

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥

ऋग्वेदः अ० २ । अ० ७ । व० १५ । मं० २ । अ० ३ । सू० ३१ । मं० ७ में कहा है । वही पत्नी उत्तम होती है जो सर्वाङ्ग सुन्दरी—बहुत प्रजा उत्पन्न करनेवाली शुभगुण कर्म उत्तम स्वभाव युक्त हो उनमें से एक २ पुरुष को एक २ स्त्री के साथ विवाह कर प्रजा उत्पन्न करना योग्य है जैसा—

याः सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥

ऋग्वेदः अ० ३ । अ० ५ । व० १९ । मं० ४ । अ० २ । सू० १६ । मं० १० में आज्ञा है कि हे मनुष्यो ! आप निन्दित स्त्री का त्याग कर समान रूपवाली, दोषों के नाश करनेवाली को प्राप्त होकर दोनों मिलकर प्रीति से गृह में रहो—जैसा कि—

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥

और ऋग्वेद अ० ३ । अ० ५ । व० १ । मं० ४ । अ० १ । सू० ५ । में कहा है—

हे मनुष्यो ? जो स्त्री भाई के सदृश अनुकूल नहीं और जो अनुकूल हो तो शत्रु के सदृश विरोध करने वाली हो और पापी जन सब को पीड़ा देने वाले हों उनका दूरसे त्याग करो ऋग्वेद अ० ३ । अ० ५ । व० १ मं० ४ अ० १ । सू० ५ मं० ५ में कहा है—

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता

इसलिये आप स्त्रीव्रत होकर उनके खानपान का उत्तम प्रबन्ध कर उनको सर्व प्रकार के सुख दीजिये यही आप का सच्चा व्रत, तप, नियम है और उन को प्रेम के साथ भाषा पढ़ाकर उत्तम २ पुस्तकें पढ़ाइये और पढ़ी हुई विदुषी धर्मात्मा स्त्रियों का सत्सङ्ग कराइये फिर पञ्चकर्मादि उत्तम कर्म का उपदेश कीजिये और फिर मीठा बोल उन के मन को अपने वशकर आनन्द भोगिये यही आनन्द और शान्ति का मार्ग है अन्यथा और कोई सुख का साधन नहीं है क्योंकि जब तक गृह में सम्मत और शान्ति नहीं होती तब तक धन प्राप्ति के भी उपाय ठीक २ नहीं होते और विना धन के गृहस्थी जञ्जाल होती है इसलिये जितेन्द्रिय होकर धन उपार्जन के अर्थ व्यौपार आदि कीजिये—

व्यौपार ।

हे प्यारे सुजनो ! इस भूमण्डल में उदरपोषण शरीर पालन तथा धन उपार्जन के निमित्त बहुधा बातें हैं जिनकी गणना खेती चाकरी—वनज या भीक इन चारों नामों से करते हैं परन्तु जो जिससे होसक्ता है वह उसी से धन उत्पन्न करता है इस स्थान पर यह भी स्मर्ण रहे कि इन सब में खेती उत्तम है क्योंकि उसमें परिश्रम अधिक करना पड़ता है और स्वाधीन होकर प्रतिदिन बालबच्चों आदि में रहना होता है उत्तम २ वायु समय पर यथायोग्य भोजन मिलते हैं जिससे शरीर नीरोग और हट्टा कट्टा बना रहता है और कार्य्य भी अधिक होता है—वर्तमान समय में एतद्देशी खेती करने वाले पुरुष अधिक उत्पन्न होने की आशा पर विष्टा आदि की मलिन खाद डालते चले जाते हैं कि जिनके खानपान करने से भारत में रोगों की प्रबलता होती जाती है और बुद्धि प्रतिदिन घटती चली जाती है इस विषय में य० अ० १२ मं० ६९ में परमात्मा ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्यो ! खेती से अत्यन्त सुख प्राप्त होते हैं, खेतों में विष्टा कदापि मत डालो किन्तु बीज

सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोओ कि जिससे अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यों की बुद्धि को बढ़ावे, जैसा कि–

शुनꣳसुफाला वि कृषन्तु भूमिꣳशुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मै॥

यजुर्वेद अध्याय० २२ मन्त्र २३ में लिखा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरवी, आलू, कसेरू, रतालू, सकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यपन तथा दीर्घायु वाले होते हैं।

हे मान्यवरो! उन्हीं आज्ञाओं के अनुसार चलिये वरनः कुछ लाभ न होगा समस्त देश को बहुत सा धन इन वस्तुओं को खाकर बीमार होने पर वैद्यों को देना होगा, अपने कार्य्यों को पूर्ण रीति से न कर सकेंगे नाना प्रकार के कठिन रोग इस भारत में फैलेंगे जिस प्रकार आप वर्त्तमान समय में हैजा, महामारी, आदि बीमारियों का नाम सुनरहे हैं जो आन की आन में सैकड़ों को भक्षण करजाते हैं कि जिन का नाम तक हमारे पूर्वज न जानते थे, क्या इनका पाप आप के सिर पर न होगा अवश्य ही होगा।

(बनज व्योपार)

बनज में नाना प्रकार के लाभ हैं प्रथम धन की अधिक प्राप्ति, दूसरे देशाटन करने से मनुष्य बड़े चतुर गुणी तथा बुद्धिमान् होजाते हैं, तीसरे अन्य देशीय जनों से समागम या मेल होने से प्रीति का अङ्कुर जमजाता है कि जिस से अनेकान कार्य सिद्ध होते हैं नाना प्रकार की वस्तु यहां की वहां और वहां की यहां लाते तथा लेजाते हैं कि जिसके कारण कारीगरी अर्थात् शिल्प की उन्नति होती है तथा नाना प्रकार की नवीन अद्भुत तथा अनोखी वस्तु, कलें, यन्त्रादि बनने लगते हैं कि जिसके द्वारा मनुष्य धनी होजाते हैं तथा धन के द्वारा सर्व आनन्द भोगते हैं।

(चाकरी)

चाकरी से मनुष्य अपने परिवार को छोड़ अपनी जन्मभूमि को त्यागन कर हजारों कोश जाते हैं, नौकरी कैसी ही प्रतिष्ठित वा कैसी

ही बड़ी तनख्वाह की क्यों न हो विना मालिक की आज्ञा के कोई कार्य अपनी स्वतन्त्रता से नहीं कर सकता जो परमेश्वर ने उसको दी है, उसे अपनी स्वतन्त्रता, धर्म तथा इच्छा को रुपये के पलटे में वेंचना पड़ता है इस पर भी धन नाममात्र को मिलता है, चाकरी को समता कूकर से देते हैं, इस में सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते जिस प्रकार तुलसीदास जीने कहा है कि "पराधीन सपने सुख नाहीं" धर्मशास्त्र में लिखा है कि जो पराधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से त्यागन करे, इसी प्रकार जो २ स्वाधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से सेवन करे, यथा–

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशन्तुस्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥

ऐसा ही य० अ० १५ मं० ५ में उपदेश है ।

जितने पराधीन कर्म हैं वे सब दुःखस्वरूप हैं, जो स्वाधीन हैं वे सब सुखदायक हैं अर्थात् सङ्क्षेप से यह सुख और दुःख का लक्षण है जैसा कि मनुजी ने कहा है–

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्या समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

किसी चतुरा स्त्री ने कहा है–

नींद नारि भोजन परिहरौ । तौ तुम कन्थ चाकरी करौ ॥

इन पेशों की एक प्राचीन कहावत भी प्रसिद्ध है–

उत्तम खेती मध्यम वनज । निकृष्ट चाकरी भीक निदान ॥

(घूस)

बहुधा हमारे भाई नौकरी को व्यौपार से इसलिये उत्तम कहते हैं कि व्योपार में अधिक रुपये की अधिक आवश्यकता होती है तिस पर भी बहुत प्रकार की हानि का भय लगा रहता है तथा चाकरी में मासिक वेतन के उपरान्त चपरासी से लेकर बड़ी पदुवी तक यथायोग्य प्राप्ति होती है, उन सुजनो को विचार करना चाहिये, प्रथम तो घूस लेना ही महापाप है, दूसरे जो द्रव्य इस भांति से आती है वह हमारी

उन्नति को रोकती है क्योंकि परमेश्वर भले मनुष्यों की सहायता करता है न कि बुरों की, तीसरे जो धन जिस प्रकार आता उसी भांति जाता है, अतः चार दिन की चांदनी पर लोट पोट न होना चाहिये क्योंकि वह हमारे तुमारे सुख चैनरूपी पेड़ की जड़ काटती है, कहा है—

"चार दिन की चांदनी फिर अंधियारी रात"

किसी कवि ने और भी कहा है—

रहे न कौड़ी पाप की ज्यों आवे त्यों जाय ।
लाखन को धन पाय के मरे न कफन पाय ॥

और ऋग्वेद अ० १ । अ० ३ । व० २४ । मं० १ । अ० ८ । सूत्र ४२ । मं० ३ में कहा है कि चोर अनेक प्रकार के होते हैं कोई डाकू कोई कपट से हरता कोई मोहित करके दूसरों के पदार्थों को ग्रहण करता, कोई रात में सुरङ्ग लगाकर ग्रहण करते, कोई हाथ से छीन लेते, कोई नाना प्रकार की व्यावहारिक दूकानों में बैठ छलसे पदार्थों को हरते, कोई शुल्क अर्थात् रिशवत लेते, कोई भृत्यु होकर स्वामी के पदार्थों को हरते कोई छल कपट से औरों के राज्य को स्वीकार करते, कोई धर्म उपदेश से मनुष्यों को भ्रमाकर गुरुवन शिष्यों के पदार्थों को हरते, कोई वकील होकर मनुष्यों को विवाद में फसाकर पदार्थों को हरलेते, कोई न्यायशासन पर बैठ प्रजा से धन लेके अन्याय करने वाले इत्यादि यह सब चोर हैं इनको निकाल धर्म से राज्य का पालन करे जैसा:

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३

यह वार्ता तो स्पष्ट है कि घुसिया लोग हजारों की घूस लेनेपर भी कौड़ी २ को तङ्ग रहते हैं, क्योंकि उनका धन वेश्यागमन शराबखोरी आदि फजूल खर्ची में जाता है यदि इनसे बचगया तो चोरी आदि आकाशी आपत्तियों में पड़जाने से तमाम होजाता है, तथा जब कभी इनका भेद सर्कार में खुलजाता है तो बड़ी २ हानियां उठानी पड़ती हैं, अतः इस ओर कदापि ध्यान न देना चाहिये ।

(भीक)

यह बहुत ही बुरी है क्योंकि इससे घर २ जाना पड़ता तथा नाना भांति के कटुवचन सहने पड़ते हैं तिसपर भी पेट भर नहीं मिलता, फिर ऐसे मनुष्यों की प्रतिष्ठा नाम मात्र को भी नहीं होती अतः यह काम अन्धे, लूले, लंगड़े, आदि का है जो परिश्रम नहीं कर सकते ।

उपरोक्त कथन से व्योपार की बड़ाई प्रकट होती है, अथोपरान्त जिस देश वाले कारीगरी या व्योपार में लगे रहते हैं वह सदा धनवान, बने रहते हैं जिन देशों में चाकरी को मुख्य माना है वह सर्वदा कङ्गाल तथा निर्धन रहते हैं किसी प्रकार से उनमें चमत्कारी या रौनक नहीं आती इसके लिये आप भारत ही को देख लीजिये जहां व्योपार से चाकरी की पदुवी अधिक है, जिससे अपनी प्रतिष्ठा समझते तथा धन प्राप्ति होने का द्वार जानते हैं, परन्तु कुछ भी ध्यान नहीं करते कि इस देश में २५ करोड़ आदमी निवास करते हैं उन सब के लिये उच्चपद और निकृष्ट नौकरियां कहां से आसकती हैं, अधिक से अधिक बीस लाख ले लीजिये कि एक आनार व दस बीमार, से भी अधिक यह रोग फैल रहा है कि जिसके कारण और जो कुल माल मता था सब खागये तथा लाखों मनुष्य जो न शिल्पविद्या जानते न व्योपार करसकते हैं नौकरी की लकीर पर फकीर बने बैठे रहने से अन्नमात्र को भी तङ्ग होगये, यदि व्यौपारी होते तो यह कुदशा इस भारत की कभी न होती क्योंकि लिखा है कि "व्यौपारे वसते धनम्"।

उपरोक्त वार्ताओं को जान निकम्मे पेशे करने का कभी विचार न करो, जहां तक होसके विद्या पढ़ने के उपरान्त उत्तम २ पेशों को तन मन धन से करने की टेव डालो तथा सत्य को काममें लाओ कि जिससे उद्यमरूपी नाव संसाररूपी सागर में अच्छे प्रकार से चली जावे खेती व व्यौपार को नाना भांति से उन्नति दो, उनके अर्थ नवीन व प्राचीन दोनों रीतों को काम में लाओ कि जिससे सर्वप्रकार के सुख तथा आनन्द मिलने लगें ।

प्यारे भाइयो व्यापार से देश को यथार्थ लाभ होते तथा वह चमत्कारी देखने में आती है कि जिसका पारावार नहीं, देखो पूर्व समय में भारत की क्या दशा थी अब क्या होगई, श्रीमान् अंगरेज बहादुर इसी व्योपार की बदौलत बादशाह होगये, जब यह लोग मेज पर भोजनों के अर्थ बैठते हैं तो चीन के वर्त्तनों में बंगाल के चावल, अफ़गानिस्तान के मेवे, फ्रान्स की शराब अमरीका की मछली, आदि नाना पदार्थ चुने जाते हैं, यह केवल व्योपार ही का फल है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि व्यौपार की वृद्धि जब ही होती है जब देश में कारीगरी फैलाई जावे कि जिससे नाना भांति की वस्तु तथा अद्भुत कला यन्त्रादि भी मुल्क में बनने लगें जिस प्रकार इस समय इंगलैण्ड आदि देशों में होरहा है जहां से करोड़ों रुपये का माल भारत को आता है, यहां आते ही हुर्र होजाता है, देखिये किस प्रकार कपड़े कलों के बने हुए आते हैं, सूत बारीक तथा नाना भांति के कला यन्त्र हथियार अंगरेजी बूट जूते, छड़ी, सन्दूक, कागज, पिटारी, झाड़ फानूस इत्यादि हमारे गृहों में सब सामान उधर ही का दीख पड़ता है, यहां तक कि सुई तथा पेचक, दियासलाई मेज, कुर्सी आदि, फिर भला वह मुल्क क्योंकर मालामाल न हों।

वह लोग अमरिका, अस्ट्रेलिया, ऐसलेंड, स्कन्दरिया, हिन्दुस्तान आदि प्रत्येक स्थान पर बेधड़क आते जाते तथा लाभ उठाते हैं, अथोपरान्त देशान्तर की अपूर्व अनोखी वस्तु लाकर उनको अपने देश में बनवा कर उनका प्रचार कराते हैं, इन सबको भी रहने दीजिये प्रथम अपने शरीर ही पर दृष्टि डालिये, सिरसे पैर तक तो सिवाय विदेशी वस्तुओं के देशी एक भी न पाइयेगा।

प्यारे सुजनो इसका क्या कारण है क्या सदैव से इस देश की ऐसी ही दशा चली आती है कि हम लोग इंढमान के निवासियों की भांति कपड़ों तक परदेशियों के आधीन हैं? नहीं कदापि नहीं, स्वप्न में भी नहीं. यदि पहिले से भारतवर्ष की ऐसी दशा होती तो निश्चय जानिये कि आज तक भारतवर्ष का नाम ही नहीं रहता, दासत्व स्वीकार करने पर भी एक समय का भोजन न मिलता, निश्चय जानिये

कि हमारे देश में प्राचीन काल में ऐसी शिल्पविद्या की अधिकता थी कि कोई विलायत इसकी समानता नहीं करसकती थी, ढाका की मल २ अरब तक चमकती थी, बनारस की सारी सारे संसार को ढकती थी, गुजरात के मुशरू मिश्र तक भड़कते थे, फर्रुखाबाद के लिहाफ ईरान तक पहुंचते थे, ठाकुरद्वारे की छींटें चीनी छींटों को चुनौती देती थीं, चन्देरी की जरबफत भारत की जर का नमूना सभी देशों के अधिपतियों के चित्तों को लुभाती थी, नदिया की दरियाई ने तातार के मरुस्थल में मानो दरिया बहारक्खे थे, अभी थोड़ेही दिन की बात है कि यही अंगरेज यहां से हज़ारों रुपयों का माल जहाजों पर लाद अपने देश को लेजाते थे और लाखों का लाभ उठाते थे, चारसौ वर्ष भी नहीं बीते कि यूरुप निवासी आर्य्यावर्त्त में आने के अर्थ सीधा मार्ग ढूंढ़ने के अर्थ कैसे व्यग्र हुये थे, अरब आदि देशवासी भारत से बाणिज्य पदार्थ जो मिश्र देशों में होकर यूरुप को लेजाते थे, इनसे सौदागर लोग इतना लाभ उठाते थे कि जितना समस्त भूमण्डल के अन्य किसी में होना असम्भव था, यही कारण था कि अंगरेजों को यहां आने की हलवली मचरही थी उस समय कोई ऐसा देश न था जहां के लोग यहां के आने की अभिलाषा न करते हों अंगरेजों ने जो फर्रुखसियर से जमीदारी ली थी वह इस अर्थ के सिद्ध करने के लियेही थी कि यहां जुलाहे बसाकर उनसे कपड़ा खरीद कर सीधा लेजाया करें और घर २ न फिरना पड़े, क्या महिमा है उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कि हिन्दुस्तान के जुलाहे तो जुलाहे ही रहे, अंगरेज भारत से वस्त्रादि लेजाने के पलटे इंगलैंडादि से वस्त्रादि माल भारत में लाने लगे, यही कारण है कि वर्त्तमान समय में भारत के समस्त विभागों में इंगलैंड ही इंगलैंड होरहा ॥

वर्त्तमान समय इनकी विद्या साहस तथा एकता की तुलना कोई नहीं करसकता, जो आज यह अग्रसोची हैं अन्य कोई दृष्टि नहीं आता, शूर वीरता में पूरी योग्यता कि जिसके कारण पूरे सभ्य गिने जाते हैं शोक तो हमको अपने ही देश भाइयों पर है जो व्यौपार व कारीगरी की ओर दृष्टि भी नहीं उठाते, साहस का तो नामही मेट दिया,

एकता के स्थान पर फूट से काम लियाजाता है, शूर वीरता पर छार डालदी सच पूछो तो आलस्य में रहना इनको धनवान होने का अभिमान है, व्याज खाना गोया स्वर्ग पाना जानते हैं, क्योंकि घर वैठे ही वैठे माल आता है चुपचाप सूद की दर प्रतिदिन वढ़ाते चलेजाते हैं कि जिसके कारण सामान्यजन अधिक खिसे जाते हैं इससे हमारे देश की और भी हानि होरही है।

प्यारे सज्जनों इन वातों से कभी देश की उन्नति होसकती है? कदापि नहीं, इसके उपरान्त जो माल विलायत से आता है उसके पलटे यदि यहां से जाता है तो हम यही कहेंगे कि हमारे जीवन मूल या भोगविलासकी मूल वस्तु जैसे गेहूं, रुई, रेशम, सरसों आदि और जिनके वदले में वहां से वही मेम बाबा लोगों की तसवीरें कांच के भांति २ के गिलास लेप तथा, काठ के खिलौने बूट जूते, वारीक साफ तार आदि जिनको देख मनुष्य का मन फड़क जाता है, जेवर वेंचकर उन वस्तुओं से घर भर लेते हैं फिर अन्नादि के चले जाने से यहां दश सेर विकने लगा है कि जिसके कारण लाखों जानें मुफ्त चली जाती हैं, इनका मूल कारण भी यही है कि एतद्देश निवासी शिल्प या व्यापार की ओर ध्यान नहीं देते, यहां प्रति दिन लक्ष्मी आने का भी यही कारण है, यही कारण वहां सुख वैभव वढ़ने का है क्योंकि हमारे देश के कारीगर हाथ पर हाथ धरे रोते रहते हैं उनको शाम तक पेट भर रोटी नहीं मिलती लाखों मनुष्य भीख मांगते फिरते हैं यह केवल विलायती वस्तुओं का आदर करनेही का कारण है हमारे यहां की सौदागरी की यह दशा है कि जिसको फेरी कहना चाहिये क्योंकि कोई तो बनारस से लाहौर लेजाता है, कोई कलकत्ता से वम्बई मन्दराज, कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि हमारे सौदागर यहां का वहां तथा वहांका यहां लौट फेर करते हैं, क्या भला ऐसी सौदागरियों से हमारे देश का प्रकाश होसकता है कदापि नहीं क्योंकि एक भाई से लिया दूसरे को दिया फिर भला उन्नति की कौन सूरत, क्योंकि जिस ताल में से सैकड़ों मोरियों द्वारा पानी जाता हो पर आने का एक भी द्वार न हो तो वतलाइये कि वह ताल कवतक खाली न होगा

पस अब आप समझ लीजिये कि यह भारतरूपी तालाब है कि जिस में से इन्कम् टैक्स संग्राम का भार अंगरेज़ लोगों की तनख़्वाह और उनके पेन्शन के उपरान्त विलायती वस्तु के मूल्य आदि मोरियों से द्रव्यरूपी जल बड़े जोर शोर से चलाजाता और उसमें आने का कोई मार्ग नहीं, भला बताओ तो सही कि यह द्रव्यरूपी जल कब तक रह सकेगा ? देखो हमारे देखते ही देखते इस भारतकी क्या कुदशा होगई।

प्यारे भाइयो यह भी एक स्वाभाविक बात है कि जिस किसी वस्तु की अधिक उन्नति होजाती है जैसे प्रातःकाल, मध्याह्न काल, सायङ्काल, बाल्यावस्था तरुण अवस्था, वृद्धावस्था, इसी भांति सदा धन, पराक्रम, विद्या आदि में घटती बढ़ती होती रहती है जैसा कि एक समय भारत ही भारत था, जब इसके बुरे दिन आये तो मिश्र यूनान रूम ने आनन्द उड़ाया फिर समय के हेर फेर ने इन को भी लिया, अब वर्त्तमान समय में इङ्गलैण्ड की कला जगमगा रही है, चारों ओर उसी का डङ्का बज रहा है, पदार्थविद्या में तो यहां तक हाथ मारे हैं कि मनुष्य गण देखकर चकित रहजाते हैं, देखो तार में हजारों कोष के समाचार आन की आन में आते जाते हैं, समुद्र में जहाजों के आने जाने के मार्ग देखिये, चीन, जापान, एमरीका, आस्ट्रेलिया, इङ्गलैण्ड हिन्दुस्तान आदि से नाना प्रकार के पदार्थ लदे हुए चले आते हैं, कलों से कैसा कपड़ा बुना जाता है, तोप कैसा दूर गोला फेंकती है, घड़ी कैसा समय बताती है, नोट कैसा काम देते हैं, छापे को देखिये कि पुस्तकों को छापकर घर २ कर दिया, कौड़ियों में मिलने लगीं, अन्धों के पढ़ाने के अर्थ कैसे २ यत्न निकाले हैं, डाक्टरी के पूरे उस्ताद होगये हैं, ज्योतिष, खगोल, भूगोल, आदि में वह उन्नति की है कि जिसको देखकर मन उछलता है, जड़ी बूटियों के खोज में कैसा परिश्रम किया है, पहाड़ नदी आदि में कैसे २ काम किये हैं, सच बात तो यह है कि इस समय जो कुछ है वह सब इङ्गलैण्ड ही में है।

प्यारे सुजनो ! इङ्गलैण्ड जापान आदि देश में जाकर इन विद्याओं को सीख अपने देश में आकर प्रचार करो तो भारत की सुदशा होजावे नहीं तो चौपट हुआ जाता है क्योंकि अब विना विदेश गये भारतवा-

सियों का काम किसी प्रकार से नहीं चल सकता यदि भारतवासी आज राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने की इच्छा करें, तो भी हमें विदेश ही एकमात्र अवलम्ब देख पड़ता है, यदि हम विज्ञान आदि विविध विद्या सीखना चाहें तो भी विदेश ही में बाध्य हैं, यदि न जावें तो हमने अपने सुख को खोया, अपने देश की भलाई को असमर्थ हुए आप निकम्मे और निर्धन रहे, अतः जिस तरह देखो विदेश विना हमारी गति नहीं।

प्यारे सुजनो! विचार कर देखिये, आज कौन ऐसा देशहितैषी मनुष्य है, जो विदेश विना गये दीन भारतभूमि का किञ्चिन्मात्र भी उपकार करसके? क्या राजनैतिक, क्या विद्या विषय सभों के अवलोकनार्थ आन्दोलन करने, हानि लाभ उठाने का एकमात्र आज हमें विदेश ही होरहा है, अधिक क्या कहें आज विदेश विना हमारा छुटकारा नहीं, हमारी चुटिया विदेश के हाथ है, जब हम इस प्रकार से विदेश के आधीन होरहे हैं तो यदि विदेश जाने का उपाय न करें तो क्योंकर भलाई कर सकते हैं, इसलिये इस ओर ध्यान देना अभीष्ट है।

हे सुजनो! जैसे मलियागिरि पर चन्दन की, असभ्य देशों में ईश्वर वन्दन की, बागों में फूलों की, और वनों में मूल की चाह नहीं, ऐसे ही हमारे स्वदेशीय भाइयों को देशान्तर गमन करने को मन नहीं होता, घर की अन्धेरी कोठरी में जन्मभूमि की कुञ्जगलियों में घुट २ कर मरजाते हैं जन्मभूमि में लङ्घन करके मरना अङ्गीकार है परन्तु घर के बाहर जाने को सौगन्द वरन नगर छोड़ना महासङ्कट जानते हैं, जन्मभूमि की प्रीति ने उन्हें ऐसा मोहित कर रक्खा है कि उससे अलग होने को उनका जी ही नहीं चाहता, जैसे कोई विषयी किसी रूपवती वेश्या पर आशक्त होकर अपना धन प्रतिष्ठा गौरव और तन को अर्पण करके निर्लज्ज हो उसके द्वार का दास बनजाता है, वही दशा हमारी जन्मभूमि के स्नेह में बीत रही है।

हे प्यारे भाइयो! उत्तम पुरुषों की भांति उद्योग में लगजाइये चाहें प्रथम किसी प्रकार के विघ्न भी सहने पड़ें, क्योंकि बुद्धिमान् वही हैं जो जिस कार्य का आरम्भ करते हैं फिर उसे विना पूर्ण किये नहीं

छोड़ते, मध्यम पुरुष विघ्न होने पर उस कार्य को छोड़देते हैं, तथा निकृष्ट जन विघ्नों के भय से कार्य का आरम्भ ही नहीं करते यथा—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः ।
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः ॥
विघ्नैस्सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः ।
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

अथोपरान्त यह भी कहा है कि मनुष्य वही हैं जो साहस धीरज उपाय बल बुद्धि पराक्रम को सदा काम में लातेहैं, कबीरका वचनहै—

जिन ढूंढा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ ॥

सच तो यह है कि जिस किसी ने उद्योग किया उसने फल पाया, देखो प्राचीन काल में योरोप की क्या दशा थी, जिस समय खलीफा वलीद ने योरुप को विजय करने पर कमर बांधी हस्पानियां तक उसे कोई रोकने वाला न मिला, वे ही हास्पानियां वाले अर्थात् स्पेन तथा पोर्तगाल वाले ऐसे बढ़े कि अमरीका अर्थात् नयी दुनियां को दरियाफ़ किया, वही अङ्गरेज जो छः सौ वर्ष पहिले वन्य और असभ्य गिने जाते थे, सो अब सारे संसार के शिरोमणि गिने जाते हैं, जिन यूनानियों की शिक्षा से योरोप सभ्य बना वर्षों पराधीन रहे, और जिस रूस को मुसलमान लोग निर्धन तथा निर्लोभ जान छोड़कर चले आये थे वहां ही के रूसी धरती के छठेभाग के मालिक होगये, जिन पार्सियों ने खलीफा उमर के मारे ईरान छोड़कर भारतवास किया था वह अब कैसे होगये, बीसियों जहाज चले आते हैं, बीसियों दस २ भाषा लिख पढ़ सकते हैं, देश देशान्तर में करोड़ों रुपये के व्यापार करते हैं स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि वह फिरङ्गियों की समता करती हैं, अब आप को क्या २ गिनावें संसार में सब की घटती बढ़ती इसी उद्योग के आधीन है, जैसा कि कहा है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ॥

दैवं निलंघ्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोत्र दोषः ॥

अर्थात् उद्योगी पुरुषसिंह के पास लक्ष्मी जाती है, दैव देगा यह कायर कहते हैं, जो दैव को लांघकर अपनी शक्ति से पौरुष कर यत्न करने पर कार्य्य की सिद्धि न हो तो इसमें क्या दोष, और भी कहा है—

दैव दैव करि मूर्खजन, कुछ न करे व्यवसाय।
क्योंकर कर डोले विना, कवर पेट में जाय ॥
श्रम कीन्हे धन होत है, धनही सुखको मूल।
व्यवसाई अरु चतुर नर, उद्यम को मतभूल ॥

अतः किसी सज्जन का वचन है कि मणि की भी जब तक वह कान में रहता है कुछ प्रतिष्ठा नहीं होती, तलवार जबतक मयान में रहती है कुछ नहीं करसकती, यजुर्वेद में ईश्वर आज्ञा देता है—

आनो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥

और ऐसाही अ० २१ मं० ६ व ७ में भी आज्ञा है ॥

जिस प्रकार सांस ऊपर नीचे आती है ऐसेही शिल्पविद्या अर्थात् जहाज चलाने की विद्या को जानने वाले मनुष्य भ्रमण करते रहें अर्थात् जहाजों में घूमते रहें, जैसे कि सांस काम करती है उसीप्रकार हम लोग भी समुद्र में फिरें, ऐसे कर्म करनेवाले मनुष्योंको वह परमात्मा शुभकारी नामों से पुकारता है तथा अन्त में उपदेश करता है कि देश देश देशान्तरों में फिर कर एक दूसरे से व्योपार करो क्योंकि देश में धन की उन्नति व्योपार तथा कारीगरी से होती है जिसके विना किसी प्रकार के आनन्द के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते ऐसी य० अ० २१ मं० ६ व ७ में आज्ञा है और ऋग्वेद अ० ३। अ० ३। व० १९ मं० ३। अ० ४। सू० ५३। मं० ४ में कहा है कि—

मनुष्यों को चाहिये कि कार्य्यसिद्धि के लिये सर्वत्र भ्रमण करें—परन्तु सदा नहीं भ्रमण के पश्चात् गृह पर रहकर सम्पूर्ण भाई बन्धु से मेलकर फिर भी ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये एक देश से दूसरे देश में आवें जावें ॥

और ऋग्वेद अ० २ अ०२ । व० ७ मं० १ अ० २१ सूत्र१४० मं० १२ में कहा है विद्वानों को चाहिये कि जैसे मनुष्य घोड़े आदि पशु पैरों से चलते हैं वैसे चलनेवाली बड़ी नाव रचके और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्ध अथवा व्यवहार के लिये जाय आय करके एक ऐश्वर्य की उन्नति निरन्तर करें ॥ जैसा—

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनांश्च या पारयाच्छर्म या च॥

अब आप इन उपरोक्त वार्त्ताओं को जान पूर्व भारतवासियों की भांति उद्योग को धारणकर विलायत इंगलिस्तान आदि देशोंमें जाकर शिल्पविद्या आदि उपयोगी व लाभकारी बातें सीख फिर अपने देश में आकर उन बातों का प्रचार कीजिये. तथा व्योपार के अर्थ अन्य कौमों की भांति पर्यटन कीजिये तो फिर भारत की कुदशा न रहेगी जैसा कि वर्त्तमान समय में मद्रास, बम्बई, भड़ोंच, अहमदाबाद, इन्दौर, कानपुर, कलकत्ता आदि नगरों में कपड़े सूत आदि और लखनऊ में कागज कलों से बनता है परन्तु वह सब कलें इतना सूत तथा कपड़ा अथवा कागज नहीं बनातीं कि जितनी भारतवर्ष को आवश्यकता है, अभी तो इनकी दश बीसगुणी हों और उनमें भांति २ के वस्त्र तथा नाना भांति की आवश्यक वस्तु बनने लगें तो भारत के पेट में चैन पड़े, जिस प्रकार इलाहाबाद में देशी तिजारत के नाम से एक कम्पनी नियतहुई है उसपर ढाके की मलमल, मुरादाबाद के कपड़े नगीने के कलमदान, बरेली की दरी, अमृतसर के धुस्से लोई, बनारस की धोती, अहमदाबाद आदि भारत के प्रसिद्ध २ नगरों की प्रसिद्ध २ वस्तु बिकती हैं उसी प्रकार और भी दूकानें भारतके नगरों में होनी चाहियें कि जिससे हमारी देशी वस्तुओं को काम में लाने का प्रचार होजावे ॥

हमारे देशीय कारीगरों को उचित है कि वस्तु बनाने में परिश्रम करें कि जिससे उनको भी सुख चैन मिले तथा हमारे भारत से भी व्योपार की वस्तु बाहर जाने लगे तो यहां भी धनधान्य की बढ़ती होने की पूर्ण आशा होजावे ॥

हे हमारे देश के राजा महाराजाओ, सेठ साहूकारो आप इस ओर ध्यान देकर अपने २ नगर तथा राज्य में शिल्पविद्या के स्कूल नियत कराइये तथा कलों से काम होना प्रचलित करादीजिये जिससे समस्त वस्तुएँ हमारे देश में बनने लगें, तथा आप भी सब कृपाकर उनही देशीय वस्तुओं को काम में लाइये जैसे हमारे पुराने पुरुषा अपनी देशी वस्तुओं का आदर सत्कार करते थे कि जिससे इन देशीय वस्तुओं को काम में लाने का प्रचार समस्त भारत में होजावे।

अथोपरान्त जब भारत ही में सब वस्तु उत्तम व मनोहर बनने लगेंगी तब वह विलायत की वस्तुओं से सस्ती भी बिकेंगी तो समस्त देशवासी प्रसन्नतापूर्वक अपने ही देश की बनी वस्तुओं का आदर सत्कार करने लगेंगे तब ही आर्यावर्त्त देश की उन्नति होगी।

अथोपरान्त हमारे देश में कम्पनी बनाने की रीति न होने के कारण देशभर को हानि होरही है क्योंकि सर्वजनों के पास अधिक रुपया होना असम्भव है जो ऐसे २ कार्यों को अकेला ही करसके, यही कारण है कि यह देश बड़े २ कार्य नहीं निर्वाह कर सकता, दूसरा मुख्य कारण अविद्या है क्योंकि अविद्या के प्रताप से फूट फैल रही है अपने पेट पूर्ण करने के अतिरिक्त किसी की भलाई का किञ्चित् विचार नहीं, यदि इङ्गलैण्ड की भांति ऐक्यता होती तो क्या इङ्गलैण्ड तथा फ्रांस आदि के ही मनुष्य थोड़े २ रुपये डालकर आप अपने देश को लाभ पहुंचाते ? कदापि नहीं।

हे भारतवासियो ! तनिक तो विचार करो कि फूट से हमारी तुम्हारी क्या दशा होरही है इस कारण देश का लाभ जान कम्पनी बनाने की टेव डालो, कम्पनी को अङ्गरेज़ी में सौदागरों के समूह अर्थात् साझियों के झुण्ड को कहते हैं, देखो पहिले हिन्दुस्तान में अङ्गरेज़ों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ही आई थी, व्यौपार करते २ बादशाह होगई, आप लोग भी उठ बैठें और बड़े २ कार्यों को बहुत से मनुष्य पत्ती डालकर एक कम्पनी बनाकर करने लगें तो फिर सब बातें शीघ्र सुधर जावें।

प्यारे मित्रो ! पूर्ण पुरुषार्थी और विद्वान् न होने का कारण यही है कि हमारी सन्तानों के संस्कार यथावत् नहीं होते इसलिये प्रत्येक को इन संस्कारों को करना उचित है॥

संस्कार ॥

मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये १६ संस्कार गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त करना चाहिये जैसा मनुस्मृति अ० २ श्लो० १६ में लिखा है-

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।

वे सोलह संस्कार यह हैं- (१) गर्भाधान। (२) पुंसवन। (३) सीमन्तोन्नयन। (४) जातकर्म। (५) नामकरण। (६) निष्क्रमण। (७) अन्नप्राशन। (८) चूडाकर्म। (९) कर्णवेध। (१०) उपनयन। (११) वेदारम्भ। १२) समावर्त्तन। (१३) विवाह (१४) गृहस्थाश्रम। (१५) वानप्रस्थ। (१६) संन्यास ॥

व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १५ में भी इन्हीं संस्कारों को बतला कर १६ की गणना की है जैसा कि "संस्काराः षोडशस्मृताः" ॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के अ०१ में सुमन्त मुनिने इन्हीं सोलह संस्कारों के लिये उपदेश किया है क्योंकि जो निषेक आदि वैदिकसंस्कारों से पवित्र होते हैं वह अवश्य ही मुक्ति पाते हैं ॥

परन्तु किसी २ स्मृति में १७ और किसी में १५ संस्कार पाये जाते हैं इस न्यूनाधिक का मुख्य कारण यही है कि किसी ने दो संस्कारों को एक के अन्तर्गत कर दिया है किसी ने पृथक् २ माना है। अस्तु संस्कार १६ ही हैं इस में कुछ मतभेद नहीं पाया जाता। यद्यपि "दशकर्मपद्धति" पुस्तक बनाने वाले पण्डितों ने वर्त्तमान् समय की रीत्यनुसार दश ही संस्कार माने हैं तो भी १६ का खण्डन नहीं किया उस गणना से भी १६ संस्कार सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि उन्हों ने उपनयन वेदारम्भ, समावर्त्तन, इन तीनों संस्कारों को वर्त्तमान समय की रीत्यनुसार एक ही के अन्तर्गत कर दिया है और केशान्तसंस्कार को एक देशीय और संन्यास, वानप्रस्थ और अन्त्येष्टिकर्म प्रचार न होने के कारण नहीं माने इससे १६ संस्कार होजाते हैं इस लिये मैं दशकर्म पद्धति बनाने वाले पण्डितों से प्रार्थना करता हूं कि इस पुस्तक में

उक्त तीनों संस्कारों की विधि बढ़ादें जैसा स्मृतिकारों ने आज्ञा दी है जिससे संसार में संस्कारों की परिपाटी बनी रहे ॥

इसके अतिरिक्त इस समय भी जब कि भारत में धर्मपरिपाटी बहुत अधोगति पर है इनमें से आधे से अधिक संस्कार प्रत्येक ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य के यहां होते हैं यद्यपि उनकी वेदानुकूल रीतें जाती रहीं और नाम मात्रके पौराणिक पण्डितों ने मनमानी रीति प्रचलित करली है।

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय के बहुधा बड़े जन कि जिन्होंने ऋषि मुनियों के ग्रन्थों पर दृष्टि भी नहीं डाली, जो वेदविद्या और उसके सिद्धान्तों से बिलकुल अनजान हैं, या जिन्हों ने अपनी सम्पूर्ण आयु को दूसरे देशकी विद्या और उसके रहने वालों में रहकर उनके सिद्धान्तों को सीख कर उनकी ही पुस्तकों के पाठमें व्यय की है, जो उन्हीं के गिरोहोंमें रहतेहैं इनके मुख्य मर्मसे निपट अज्ञान रह गर्भाधानादि सोलह संस्कारों में नाना प्रकार की शङ्कायें उत्पन्न करते हैं और बहुधा नेचरिया विवाह आदि दो एक संस्कारों को तो मानते हैं परन्तु यज्ञोपवीतादि करने को वे वृथा ही समझते हैं इसका मुख्य कारण यही है कि वह नहीं जानते कि संस्कार का अर्थ क्या है और इसका फल कुछ होता है या नहीं ? देखिये "सम" पूर्वक कृञ् धातुसे संस्कार शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ अच्छे प्रकार सुधराव करना है ॥

यह दो प्रकार का होता है (१) शरीर सम्बन्धी । (२) आत्मा सम्बन्धी वा अन्तःकरण सम्बन्धी इन दोनों में आत्मा सम्बन्धी संस्कार अति उत्तम है इसी कारण यज्ञोपवीत और वेदारम्भ मुख्य समझे जाते हैं।

प्रियवरो ! जितनी वस्तुयें इस संसार में परब्रह्म परमेश्वर ने उत्पन्न की हैं मैं जानता हूं कि उन सबको सुधराव की आवश्यकता है यहां तक कि विना सुधराव किये हम उनसे अपना कार्य भी नहीं लेसकते और न वह उत्तम जान पड़ती हैं क्या आप नहीं देखते कि पत्थर जब तक वह अपनी स्वाभाविक दशा में होता है तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता परन्तु जब उसको कोई शिल्पकार दुरुस्त करता है तो वही पत्थर उत्तम जान पड़ता है प्रत्येक मनुष्य उसको देखकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार हीरा आदि रत्न भी विना सान दिये बेडौल रहते हैं

और सान देने पर उत्तम जान पड़ते हैं। यही सान देना एक प्रकार का संस्कार कहाता है इसी प्रकार बुरी से बुरी और छोटी से छोटी वस्तु भी अच्छी और बड़ी हो सकती है। पक्षी की भाषा और रङ्ग भी सुधराव से उत्तम होजाता है॥

परन्तु शोक है कि हम पशु पक्षियों और घास आदि के सुधार के लिये नाना उपाय (संस्कार) करें और मनुष्यमात्र के सुधराव के अर्थ संस्कार करना वृथा समझें। देखिये जो मनुष्य वेदारम्भसंस्कार कर विद्या पढ़लेते हैं वही सभ्य और जो विद्या नहीं पढ़ते हैं, वही असभ्य कहाते हैं इस लिये मान्यवरो! आप भी मनुमहाराज के लेखानुसार वेदानुकूल संस्कार कर २ आनन्द उठाइये जैसा कि मनु० अ० २ श्लो० २६ में कहा है॥

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके गर्भाधानादि संस्कार वेदमन्त्रों से होने चाहियें इससे शरीर और आत्माकी शुद्धि और इस लोक और परलोक में पापसे निवृत्ति होती है अर्थात् संस्कारों के करने से सन्तान शुद्ध निष्पाप और धर्मात्मा होते हैं॥

विशेष सूचना।

इन सब संस्कारों की वेदानुकूल विधि मन्त्रों सहित "संस्कार विधि" में श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वती जी महाराज ने लिखी है उसीके अनुसार कार्य कीजिये और आनन्द उठाइये जिस दिन कि कोई संस्कार करना हो उस दिनसे प्रथम सम्पूर्ण यज्ञपात्र सामग्री ठीक कर लेवे और प्रातःकाल ही अपने सम्बन्धी व मित्रादि बिरादरी के मनुष्यों को बुलाकर यथाविधि करावे तत्पश्चात् आये हुये मनुष्यों को सत्कार पूर्वक विदा करे॥

विवाहसंस्कार रात्रि के ८ बजे और शेष संस्कार प्रातःकाल ही होने चाहिये कार्यकर्त्ता विद्वान् होना चाहिये जो स्वर सहित वेदमन्त्रों को पढ़सके और धार्मिक भी हो प्रत्येक संस्कार के दिवस पुत्र या पुत्री को थोड़े जलसे स्नान कराकर स्वच्छ वस्त्र पहनावे॥

वेश्या के नाच संस्कारों में न हों क्योंकि इससे नाना भांति की हानियां होती हैं। अब मैं आपसे प्रत्येक संस्कार की वेदानुकूल क्रिया संक्षेप से वर्णन करता हूं:—

(१) गर्भाधान ॥

मान्यवरो ! इसी संस्कार पर हमारी शारीरिक और आत्मिक उन्नति निर्भर है इस लिये महाशयो! इस पर आपका भी पूरा ध्यान होना चाहिये इस विषय में आप गर्भाधान की रीतोंको जो पहले वर्णन कर चुका हूं पढ़कर कार्य कीजिये और आनन्द उठाइये ॥

(२) पुंसवन ॥

यह संस्कार गर्भस्थिति समय से दो या तीन मास पश्चात् होता है इससे गर्भ की स्थिरता होती है ॥

(३) जातकर्म ॥

यह संस्कार सन्तान की उत्पत्ति समय होता है जब बालक उत्पन्न हो उसी समय उसको सुवर्ण, मधु और गोका घृत तीनों मिलाकर चटावे क्योंकि यह तीनों वस्तु बुद्धि, आयु, आरोग्य और बलको बढ़ाने वाले हैं तत्पश्चात् नालच्छेदन का विधान करें ॥

(४) नामकरण ॥

पुत्र या पुत्री के जन्म समयसे १० दिन छोड़कर ११ वा १०१ वें दिन वा दूसरे वर्षके आरम्भ में यदि पुत्र हो तो दो वा चार अक्षर का घोष संज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो २ अक्षर छोड़ कर जिसमें हों तीसरा चौथा पांचवा और य, र, ल, व, यह चार वर्ण अवश्य आवें ऐसा नाम रक्खे। यदि पुत्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे जैसे यशोदा सुखदा इत्यादि इनके उपरान्त इस बातका भी ध्यान रहे कि नाम बहुत, लम्बा चौड़ा न हो सुनने में प्रिय सार्थक हो और किसी वृक्ष, पक्षी, पर्वत, नदी आदि पर न हो और ऐसा भी नाम न रक्खे जिसके सुनने से भय मालूम हो। यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा, क्षत्रिय हो तो वर्मा और वैश्य हो तो गुप्त नामके अन्तमें

लगावे जैसा—देवशर्मा । देववर्मा । देवगुप्त इत्यादि ॥ ऐसे नामोंके रखने का मुख्य तात्पर्य्य यह था कि प्रत्येक जान लेवें कि हम ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्य हैं इस लिये हमको सत्कर्मों में प्रवृत्त होना और बुरे कर्मों से घृणा करना चाहिये क्योंकि वर्त्तमान् समय में भी रायबहादुर सितारेहिन्द आदि नाम प्रतिष्ठित गिने जाते हैं और जिनको वह मिलते हैं उनको उतना ही अधिक ध्यान उत्पन्न कराते हैं और वह मानते हैं कि हमारा यह काम है, हम प्रतिष्ठित हैं, हमको यह काम करना योग्य है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर हमारे भाई बहन कुछ भी ध्यान नहीं देते और अंट के संट नाम रखते हैं।

(५) निष्क्रमण अर्थात् हवा खिलाना।

इसका समय जन्म से ४ मास तक है। संस्कार के पश्चात् बस्ती के बाहर जहां शुद्ध वायु धीरे२ चलता हो, शुद्ध पवित्र कपड़े पहनाकर लेजावे और उस दिन से नित्यप्रति सन्ध्या, प्रातःकाल भेजाकरे जिस से उसकी शारीरिक उन्नति हो। यदि बालक निर्बल या रोगी हो तो विद्वज्जन कोई और समय नियत करलें॥

(६) अन्नप्राशन अर्थात् चटना।

किसी २ ऋषि ने इसका समय छठे महीने लिखा है और किसी ने लिखा है कि यह संस्कार उस समय हो जब बालक की पाचनशक्ति होजावे क्योंकि इसका अभिप्राय यही है कि उस दिवस से बालक को अन्न दिया जावे। संस्कार पश्चात् बालक को भात में दही, घी और शहत मिलाकर खिलावे। तत्पश्चात् उत्तम विधि से बना हुआ नरम थोड़ा भोजन दे जैसा गर्भाधान विषय में लिखा है ताकि बालक को रोग न हो॥

चूडाकर्म अर्थात् मुण्डन और कर्णवेध अर्थात् कनछेदन।

इन का समय कम से कम ३ और ५ वर्ष है। चूड़ाकर्मसंस्कार के दिन चतुर नाई से बालक के बाल मुड़वावे। और कर्णवेध के दिन

चरक सुश्रुत वैद्यकग्रन्थों के जानने वाले के हाथ से कर्णवेध करावे जो नाड़ी को छोड़दे। तत्पश्चात् ऐसी औषधि उस पर लगावे जिससे कान न पकें और शीघ्र आराम होजावें ॥

(८) उपनयन अर्थात् जनेऊ ॥

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के लिये ८ वर्ष क्षत्रिय के लिये ११ वर्ष और वैश्य के लिये १२ वर्ष है। जैसा कि मनु० अ०२ श्लो० ३६ में लिखा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

और ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० १३।१४ व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १९ में भी लिखा है। ऐसा ही श्रीमद्भागवत, महाभारत, मार्कण्डेयपुराण, भविष्यपुराण और याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है ॥ और य० अ० १६ मं० १७ में आज्ञा है कि यज्ञोपवीत धारण करे (उपवीतिने)

इसके उपरान्त यह भी लिखा है कि यदि किसी कारण से उपरोक्त समय पर यज्ञोपवीत न होसके तो ब्राह्मण के १६ क्षत्रिय के २२ और वैश्य के बालक का २४ वर्ष से पूर्व २ यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये तत्पश्चात् गायत्री का अधिकार नहीं रहता। जैसा मनु अ० २ श्लोक ३८—

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रवन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥

इसी संस्कार के समय आचार्य बालक को गायत्री आदि वेदोक्त कर्मों के करने की शिक्षा करता है जिसको वह सदा करता रहे। इसी समय बालक ब्रह्मचारी होने का सर्वसाधारण के सामने प्रण करता है। परन्तु शोक है कि वर्तमान समय में बहुधा—क्षत्रिय और वैश्यों के यहां यह संस्कार नहीं होता। यदि उनसे पूछा जावे तो कहदेते हैं कि "हम से सध नहीं सकता" और पौराणिक पितृकर्म आदि में

पहरलेते हैं। बहुधा घरानों में जब घर का बूढ़ा मर जाता है तो उन के पुत्रों में जो सब से बड़ा होता है विना वेदोक्तसंस्कार किये जनेऊ धारण करलेता है जिसकी आज्ञा कहीं नहीं पाई जाती है। परन्तु शोक का स्थान है कि सभ्यजन इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते॥

इस विषय में बहुधा ऋषियों का कथन है कि जिन का यज्ञोपवीत संस्कार क्रियापूर्वक नहीं हुआ, मनुष्यमात्र उन से विवाह आदिक किसी प्रकार का सम्बन्ध आपत्काल में भी न रक्खें। न ऐसे मनुष्य गायत्री के अधिकारी रहते हैं जब तक प्रायश्चित्त न करावें। जैसा कि मनु० अ० २ श्लो० ३९ व ४० में लिखा है॥

अतऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह॥

व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २० शङ्खस्मृति अ० २ श्लो० ६ और मनु अ० २ श्लोक १७२ में लिखा है कि विना यज्ञोपवीतसंस्कार के मनुष्य वेदमन्त्र उच्चारण करने का अधिकारी नहीं है अर्थात् शूद्रसमान है:—

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते॥

फिर कैसे शोक की बात है कि यज्ञोपवीत न होने के पश्चात् भी द्विजाति होने का घमण्ड करें। इसके उपरान्त इस संस्कार के न होने से वेदारम्भ संस्कार की आवश्यकता ही नहीं रही फिर वेदों का प्रतिदिन पढ़ना क्योंकर होसक्ता है अर्थात् पञ्चकर्म करने की शास्त्र की आज्ञा है वह भी नहीं होसक्ती और न द्विज कहला सकते हैं। इसलिये विचार कर इस धर्म मर्य्यादा को प्रचलित कर संस्कार उद्धार कीजिये। और वर्त्तमान समय जो कण्ठ में कण्ठी बांधने की रीति अत्यन्त प्रचलित होगई है तिस के लिये कोई वेदोक्त आज्ञा नहीं है और न किसी सत्यशास्त्र में कोई आज्ञा पाई जाती है और उसको शूद्र भी पहिनते हैं मिथ्या जान, ब्राह्मण क्षत्री वैश्य को इस की प्रथा शीघ्र उठा देनी

चाहिये । इसके उपरान्त यह भी स्मरण रहे कि जब नवीन यज्ञोपवीत धारण करे तो इन मन्त्रों को पढ़कर पहने–

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥२॥

(९) वेदारम्भ ।

गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करने का नाम वेदारम्भ संस्कार कहाता है ॥

यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन वा एक साल के भीतर किसी दिन होता है । उस दिन से ब्रह्मचारी गुरुकुल में जाकर विद्याध्ययन करता है कि जिस से मनुष्य के आत्मिकसंस्कारों की उन्नति होना सम्भव है । क्योंकि विना वेदादि विद्या पढ़े कभी धर्म के मर्म को नहीं जान सकता । पूर्व समय में इसी संस्कार पर अधिक बल दिया जाता था क्योंकि विना सुधार इस संस्कार के कभी शरीर और विद्या की उन्नति नहीं होती । पूर्व ऋषियों ने इस विषय में बड़े २ ग्रन्थ लिखे हैं और हमारे प्राचीन पुरुष उन के लेखानुसार यज्ञोपवीत संस्कार कराकर अपने पुत्र पुत्रियों को गुरुकुल में भेज यथावत् विद्या उपार्जन कराते थे । और गुरुजन बड़े प्रेम और भक्ति से उन पुत्र पुत्रियों को अपनी निज सन्तान के समान उन का लालन पालन कर विद्या और ब्रह्मचर्य्य को पूरा कराने का यत्न करते थे । उसी समय भारत में सुपात्र धार्मिक गृहस्थ होते थे जो नियमानुकूल वेदों की आज्ञाओं को पालन कर आगे आने वाली सन्तानों के लिये उदाहरण होते थे । परन्तु अब महान् शोक का स्थान है कि माता पिता वेदविद्या से रहित होने के कारण अपनी सन्तानों का यथावत् उपकार नहीं कर सक्ते । जिस के कारण ब्राह्मण क्षत्री वैश्य से यह प्रथा उठ गई और विद्याहीन आचार्य्यों ने एक नया मिथ्या ढकोसला निकाल कर भारतसन्तान का जड़पेड़ से खोज मार दिया ॥

प्रियवरो ! वर्त्तमान समय में जब यज्ञोपवीत संस्कार होता है तो उसी समय वेदारम्भसंस्कार भी कराया जाता है और ब्रह्मचारी गायत्री का उपदेश लेकर विद्या पढ़ने के लिये काशी जहां किसी समय में बड़ा भारी गुरुकुल था जाने के लिये यह हितू और सम्बन्धियों से मार्ग-व्ययादि के लिये भिक्षा मांगकर धन इकट्ठा कर लेता है। परन्तु शोक है उन आचार्य आदि पर कि जो खड़े होकर यह विश्वास देकर कि हम तुम को यहीं विद्या पढ़ा देंगे रोक लेते हैं और फिर उस की कुछ भी सुध नहीं लेते और माता पितादि भी इस विषय में कुछ भी नहीं कहते। वह ब्रह्मचारी के रूप को बदल कर गृहस्थों की भांति गृहकार्यों में लग जाता है और फिर थोड़े ही दिनों में गृहस्थ भी बना दिया जाता है। बहुधा अब यह संस्कार विवाह समय में भी होने लगा है। सज्जन जन विचार करें इस का नाम हमारे ऋषि मुनियों ने ब्रह्मचर्य्याश्रम रक्खा था। क्या प्राचीन आचार्य इसी भांति वेदारम्भसंस्कार कराकर गुरुकुल के जाने से झूंठा विश्वास देकर रोक लेते थे ?। नहीं नहीं नहीं, यदि आप प्राचीन ग्रन्थों को देखेंगे तो स्पष्ट प्रकट होजावेगा कि इन आचार्यों ने प्राचीन ब्रह्मचर्य्य का सत्यानाश मार दिया। प्रियवरो ! यह रीति कौन से वेद या आचार्य्य की सनातन रीति है ? क्या आचार्य का यही परमधर्म है कि अपने शिष्य को झूंठा विश्वास देकर उसकी आत्मिक उन्नति का नाश मारदे ? क्या ऐसे आचार्य आत्मा के हनन करने वाले दोष के भागी नहीं होते ? अवश्य होते हैं। इसलिये अब माता पिता को योग्य है कि यथावत् समय पर यज्ञोपवीतसंस्कार कराकर गुरुकुल में भेजने की प्रथा को यथावत् प्रचलित करें और जब तक वह विद्या को यथावत् प्राप्त न करलें तब तक कदापि गुरुकुल से अपने घर पर न आवें जैसी कि वेदादि सत्य शास्त्रों में आज्ञा है। उसी समय देश का कल्याण होगा॥

(१०) समावर्त्तनसंस्कार।

जब ब्रह्मचारी एक, दो, तीन वा चारों वेदों को समाप्त करके विद्वान् होकर विद्यालय को छोड़कर अपने घर को आता है उसी का

नाम समावर्त्तनसंस्कार है। मान्यवरो! जब वेदारम्भ संस्कार ही नहीं रहा तो इस को कौन पूछता है ॥

(११) विवाहसंस्कार ।

इस विषय में पहले पृष्ठ १५४ में लिख आया हूं देख लीजिये ।

(१२) गृहस्थाश्रम ।

इस आश्रम में जिन २ बातों की आवश्यकता होती है उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। स्त्री और पुरुषों को योग्य है कि धर्मानुकूल इस आश्रम में रह कर धर्म अर्थ काम मोक्ष प्राप्त करें ।

(१३) वानप्रस्थसंस्कार ।

जब गृहस्थी में मनुष्य पूर्ण आनन्द उठा चुके और अपने पुत्र पुत्रियों का ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त होने पर विवाहादि कर चुके और पुत्र के भी पुत्र होजावें तब सम्पूर्ण धन दौलत, पुत्र को देकर अपनी स्त्री को साथ ले या बड़े पुत्र के आधीन करके वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे। इस को वानप्रस्थसंस्कार कहते हैं। इस का समय ५० वर्ष के उपरान्त ही है। जब घर को छोड़े तो अपने साथ अग्निहोत्र की सामग्री ले जावे और अपने समय को वेदादि पुस्तकों के पठन पाठन में वितावे। यदि स्त्री साथ हो तो भी प्रसङ्ग न करे। भीख मांगकर खावे। सब से मित्रभाव से वर्त्ते। मनुष्यों को यथायोग्य ज्ञानोपदेश दे। पञ्चयज्ञ करता रहे। भूमि पर सोवे ॥

(१४) संन्यास ॥

यह मनुष्यों के कर्त्तव्य का अन्तिम संस्कार है। यह तीन प्रकार का होता है। एक तो वह जो क्रम से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ को सेवन करके लेते हैं। यह सब से श्रेष्ठ है। दूसरा वह जो गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ले लेवे। तीसरा वह जो ब्रह्मचर्य्याश्रम से ही बिना गृहस्थ और वानप्रस्थ के ले लेते हैं। परन्तु यह अत्यन्त कठिन है। और यदि किसी का मन संसार के विषयानन्द से किसी युक्ति से ब्रह्मचर्य्याश्रम में ही हट गया हो तो अत्यन्त उत्तम है। परन्तु ब्रह्मचर्य्याश्रम से

प्रथम अर्थात् विना विद्या पढ़े संन्यास लेना बिलकुल वेदविरुद्ध है। मनुजी ने लिखा है कि ७० वर्ष की आयु में संन्यास लेवे ॥

संन्यासियों के कर्त्तव्य ॥

(१) अपने समय को वेदादि सत् विद्या के फैलाने और वेदविरुद्ध मतों के दूर करने के लिये सम्पूर्ण संसार में भ्रमण करे और मनुष्यों को सदुपदेश करता रहे। सत्य को ग्रहण करे, असत्य को छोड़ देवे ॥

(२) कहीं घर बनाकर न रहे, जल को छान कर पिये और अपने आचरणों को सुधारे रहे ॥

(३) सब शिरके बाल मुड़ाये रहे, रंगे वस्त्र पहने, जो मिले वह आनन्द प्रसन्न होकर खावे, मद्यादि मादक द्रव्य कभी न पीवे ॥

(४) किसी को पीड़ा न दे, क्रोध को त्याग दे ॥

(५) इन्द्रियों को अपने वशमें रक्खे और आठ प्रकार के मैथुनों को त्यागे ॥

(६) मृत्यु तक हो जावे परन्तु सत्य के कहने में न चूके ॥

(७) परमेश्वर के सिवाय अन्य की उपासना न करे और अपने जीवन को परोपकार में लगावे ॥

(८) सांसारिक पदार्थों में अपने दिल को लगाने की चाहना न करे ॥

(१५ *) मृतकसंस्कार ।

इसका कोई समय नियत नहीं है और न मनुष्यको यह संस्कार अपने आप करना पड़ता है वरन इसका करना मनुष्य के सम्बन्धियों का कर्म है इसलिये उनको योग्य है कि जब कोई मरजावे तब यदि स्त्री हो तो स्त्री और पुरुष हो तो पुरुष स्नान कराकर, चन्दनादि लेपन करके नवीन वस्त्र धारण करावे और जितना मनुष्य का शरीर हो उतना घृत यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक परन्तु आध मन से कम किसी तरह न हो चाहे मनुष्य कितनाही दरिद्री क्यों न हो

* यथार्थ में १६ संस्कार हैं परन्तु इस पुस्तक के सातवें अंक में १ चूड़ाकर्म २ कर्णवेध दोनों साथ वर्णित हैं अतः १६ ही होजाते हैं ॥

यदि उस मनुष्य के सम्बन्धी दरिद्री हों तो उस मुहल्ले के श्रीमानों को योग्य है कि इसका प्रबन्ध करादें इसके उपरान्त घी में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केशर और एक मन या आध मन घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और यथायोग्य चन्दन का चूरा भी डाले और शरीर के भार से दूनीलकड़ी स्मशानभूमि में लेजाकर और यथावत् रीति से वेदी बनाकर वेदमन्त्रों की विधि से मृतक का दाहकर्म करें। फिर सब मनुष्य वस्त्रों को धोकर स्नान कर नगर में आकर मृतक के घर पहुंचे। जो लीप पोत कर पहले से स्वच्छ होगया हो। वहां स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और ईश्वरोपासना कर उन्हीं मन्त्रों के द्वारा गृह में सुगन्धित द्रव्यों सहित हवन करें। कि जिससे गृह में से मृतक का दुर्गन्ध निकल जावे और उत्तम वायु गृह में प्रवेश करे कि जिससे सब मनुष्यों के चित्त प्रसन्न हों। इसके उपरान्त तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी अस्थि उठाकर एक स्थान पर रखदे। परन्तु वर्त्तमान समय में केवल लकड़ियों में ही रखकर जला देते हैं। देखिये इसी संस्कार के वेदरीत्यनुसार न होने से देश में अकाल मरी रोगों की बहुतायत होगई। पदार्थविद्या के न जानने के कारण इस देश की अधोगति होती जाती है। प्यारे बहन भाइयो! टुक तो विचारो कि जब आप शरीर को लकड़ियों के साथ जलाते हो तो वह मांसादि जल कर दुर्गन्धित वायु कर देता है उस को मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सूंघते हैं उनको नाना भांति से हानि होती है और उन्हीं परमाणुओं से कालान्तर में बादल बनते हैं फिर मेह बरसता है उससे अन्न, फल, फूल होते हैं जिसको प्रतिदिन खाते हैं। नदियों तालाबों कुओं में भी पानी बिगड़ जाता है उसको पीते हैं जिससे भारतवासियों की दिन पर दिन हीन दशा होती जाती है। उत्तम २ भोजन करने पर भी नाना रोग घेरे रहते हैं। इसलिये अब आप इस हानिकारक प्रथाको दूर कीजिये। देखिये अयोध्याकाण्ड सर्ग ६ श्लोक १६, १७, १८ में लिखा है कि जब श्रीमान् राजा दशरथ जी का देहान्त होगया तो सरजू तीर पर लेगये वहां सुन्दर चिता बनाकर चन्दन, अगर, सालू–काठ देवदारु आदि सुगन्धित पदार्थों से भस्म किया और ऋत्विज् लोग उचित

मन्त्र गाते जाते थे। इसी प्रकार आदिपर्व अ० १२५ में लिखा है कि राजा पाण्डु और माद्री का भी मृतकसंस्कार इसी प्रकार चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं से हुआ था। और स्त्रीपर्व अ० १६ में लिखा है कि महाभारत में जो बहुत से मनुष्य मरे थे उन सब का मृतकसंस्कार धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार विदुर जी महाराज ने घी चन्दनादि से कराया था॥

क्योंकि य० अ० ३९ मं० ३ में स्पष्ट लिखा है कि जो लोग सुगन्धित युक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें वे पुण्यसेवी होते हैं।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा।

और मं० १३ में लिखा है जो सृष्टि विद्या को जानकर अन्त्येष्टि कर्मविधि करते हैं वे सब के मङ्गल देने वाले होते हैं और सब काल में इस प्रकार मृतकशरीर को जलाकर सब के सुख की उन्नति करनी चाहिये—

प्यारे सुजनो! इस रीति के अनन्तर जो दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्डी, मासिक, वार्षिक, गया श्राद्धादि किया जाता है सो यह सब ठगई का जाल है क्योंकि वेदों में इन बातों का वर्णन लेशमात्र भी नहीं लिखा और उस जीव का सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यह जीव अपने कर्मों के अनुकूल यमालय को जाकर गर्भाशय में आता है जहां उस का सम्बन्ध होजाता है। वेद के अनुकूल शरीर छूटने पर वेदमन्त्र द्वारा उस का दाह होना लिखा है उस को उठाकर अपने पेट में धरने के लिये उक्त क्रिया को न कर पिण्ड आदि बनवा कर नाना लीला रचते हैं और अच्छे प्रकार गप्फा लगाते हैं। हमारे भाई गरुड़पुराण जो उन्हीं के पुरुषों ने बनाया है 'यम' की कथा सुना अपने सम्बन्धी के लिये डेरा, तम्बू, हाथी, घोड़ा, मुद्रा आदि 'कट्टहा' जी की भेंट चढ़वाते हैं कि जिन के आशीर्वाद से ही पापी, कामी, हत्यारे आदि जीव स्वर्ग को चले जाते हैं और उन विद्याहीनों को यही निश्चय होरहा है कि 'कट्टहा जी' के कहने से ही

अर्थात् सुफल बोलते ही हमारे माता पिता आदि 'यम' के कोप से बच कर स्वर्ग को चले जाते हैं। प्यारे भाई बहनों! टुक तो विचारो क्या ईश्वर भी अन्यायी है जो अच्छे कर्म करने वालों को बिना सुफल के नरक में भेज देता है और बुरे कर्म करने वालों को सुफल के कहते ही स्वर्ग के जाने का हुक्म होजाता है। जो 'कट्टहा जी' दश, पाच, सौ, दोसौ, हजार आदि मिलने पर कहते हैं कि क्या ईश्वर भी घुसिया है जो घूंस मिलते ही डिगरी की डिसमिस और डिसमिस की डिगरी कर देता है। देखिये क्या अच्छा नुसख़ा निकाला है कि जिस से जन्म भर के पाप 'कट्टहा' जी के प्रसन्न होतेही कट जाते हैं फिर क्यों हमारे पुरुषों ने विद्या पढ़ी आचरण सुधारे। आचार विचार किये जैसा कि जनक, दशरथ, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, व्यास, वाल्मीकि इत्यादि ने नाना प्रकार कष्ट सह कर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को मारा । क्या उनके लड़कों के पास इतने रुपये न थे? प्यारे भाइयो! जन्म भरके पाप यदि इन कर्मों से जाते तो फिर क्या था फिर तो पौ बारे थे, परन्तु आप तो कुछ भी विचार नहीं करते और ईश्वर की आज्ञा के प्रतिकूल चलने का अपराध आप के शिर पर चढ़ता है। दूसरे इन का उद्धार 'कट्टहा जी' करते हैं जो आप भी सब रङ्गों में रंगे रहते हैं। विद्या का नाम नहीं जानते, नाना भांति के कुकर्म करते हैं, उस धन को रंडी भडुओं भङ्ग चरस आदि में खोते हैं । क्या ऐसे महापापियों की ईश्वर बातें मानता है इन्हों ने तो ईसाइयों को भी मात कर दिया। प्यारे! इन गपोड़ों को त्यागो इस धोखे में अमृतरूपी काया को वृथा मत खोओ। हां, जो कुछ दान आदि माता पिता आदि से कराना हो जीते जी कराकर जैसा दान विषय में लिखा है वैसा दान कीजिये अर्थात् पाठशाल, यतीमख़ाने, भूखे नङ्गे अति उत्तम २ कार्यों में व्यय कीजिये। न कि इन निरक्षर महाचार्यों को जीव के अर्थ उस के मरने पर उस के मिलने की आशा पर थैली की थैली खोल देते हो। जिस से देश को कोई लाभ नहीं होता वरन 'कट्टहों' की एक क़ौम कि जिस में हज़ारों मनुष्य मरने की आशा पर ही आयु व्यतीत करते हैं—नियत होगई है। अर्थात् निकम्मे निठल्ले मिथ्या

बातों में समय खोते हैं। क्या यह पाप आप के शिर पर न होगा अवश्य ही होगा। इस के उपरान्त 'यम' की कथा जो इन मिथ्याचार्यों के गुरुओं ने बनाई है झूंठी है क्योंकि वेदानुकूल निम्नलिखित पदार्थों का नाम 'यम' है–

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १० सू० १६४ मं० १५ ॥ शकेम वाजिनो यमम् ॥ ऋ० मं० २ सू० ५ मं० १ ॥ यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ ॥ यमःसूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः। यजुर्वेद अ० ८ मं० ५७ ॥ वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं० ८ सू० २९ मं० २२ ॥ यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १ सू० १६ मं० ४६ ॥

(१) यहां ऋतुओं को यम, (२) यहां परमेश्वर, (३) यहां अग्नि को, (४) यहां वायु विद्युत् और सूर्य को, (५) यहां भी वायु को, (६) और यहां परमेश्वर का नाम यम है। इस कारण पुराणों की कथा मिथ्या ही जानना। और 'यम' रूपी परमेश्वर के प्रसन्न होने के अर्थ वेदादि सत्यशास्त्रों को श्रवण करो और समय के अनुकूल आचरण करो तब ही वह न्यायकारी परमेश्वर प्रसन्न होगा। उस समय हम आप नाना भांति के दुःखरूपी नरकों से बच सकते हैं, न कि 'कट्टहा' जी के सुफल बोलने पर। यह सब मिथ्या है धोखे की टट्टी में शिकार खेलते हैं, इसलिये आप सत्यशास्त्रों को विचारो और बुद्धि से भी काम लो नहीं तो यह 'कट्टहा' जी, जो प्रातःकाल उठ कर मरने का ही स्मरण करते हैं कि हमारे महीने में भाग्यवान् अर्थात् रुपये वाला मरे। धन्य ऐसे शुभचिन्तकों को दान देकर पुरुषों को स्वर्ग भेजने के भरोसे पर लाखों में पानी देदेते हो। क्या शोक की बात नहीं है? क्या इस से भी अधिक कोई अन्धेर होगा? ईसा से भी बढ़ कर परमेश्वर के पिता ही बन गये अर्थात् जो पोप जी कहेंगे वही परमेश्वर करेगा। इस के उपरान्त बहुधा जन मुर्दों को पापनिवृत्ति और स्वर्ग-

प्राप्ति तथा मुक्ति का साधन समझ गङ्गा आदि नदियों में डाल देते हैं कि जिस से जल विकारी होजाता है और जो कोई उस को पीते हैं उन को नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। जिस के पाप का बोझ भी पुत्रादि पर होता है इसलिये गरुड़पुराण के ऐसे लेखों पर घृणा भेजनी चाहिये। गङ्गादि में डालने से मुक्ति कभी हो सकती है? । (मुक्ति के साधन तीर्थविषय में सविस्तार वर्णन किये गये हैं)॥

इस के उपरान्त–धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती इन पांच नक्षत्रों में पञ्चकें होती हैं। यदि इन में मरण हो तो गङ्गादि नदियों पर जा कर फूंक कर उन में डाल देते हैं। यदि किसी कारण से गङ्गादि पर न पहुंच सके तो उन की चिता में गाड़ी के पहिये का कोई टुकड़ा वा सम्पूर्ण पहिया भी रख कर जला देते हैं और कहते हैं कि यह तो कभी न कभी गङ्गाजल में स्नान कर आया होगा। इस के रखने से पञ्चकों का दोष जाता रहता है। इस के अतिरिक्त अग्नि में जल कर मरने वा सांप के काटने, कुवे में गिरने वा दब कर मरने, नदी में डूब कर वा बिजुली के गिरने से, और औरतों को सोर में मरने आदि को अकालमृत्यु कहते हैं–जिस के दो भेद हैं। प्रथम में मृतक का शरीर उपस्थित हो, दूसरी में मृतक का शरीर न मिले। प्रथम दशा में 'नारायणबलि' करते हैं अर्थात् प्रेतयोनि से छुड़ाते हैं। दूसरी दशा में 'रामबलि' करते हैं अर्थात् जब मृतक का शरीर नहीं मिलता तो फिर नये सिरे से जौ के आटे का पुतला मृतक के शरीर के बराबर बनाते हैं। उस को मरा हुआ नहीं जानते वरन बीमार समझते हैं। फिर उसी समय जिस समय उस मनुष्य के मरने की ख़बर मिली थी, सब घर के स्त्री पुरुष रोते पीटते चिल्लाते हैं, अर्थात् उस समय उस को मरा जानते हैं फिर नये सिरे से मृतक की सम्पूर्ण क्रिया करते हैं॥

यह सब बातें पोप जी ने अपने पेट भरने ही के अर्थ लिखी हैं क्योंकि लोभ में मनुष्य माता पिता आदि को मार डालते हैं सो इन्होंने वेद के अर्थों को पलटकर धर्म को मार सर्व प्रकार से अपना ही पेट भरा। इस पर कल न पड़ी तो 'तेरही' के नाम से भी गप्फा लगाया,

मासिक वार्षिक पर भी हाथ मारा । मुख्य प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार होसका लूटने में किसी प्रकार कसर नहीं की । अब सत्य ग्रन्थों को श्रवण करो तो गरुणपुराण और नाशकेत और कर्मविकादि पाखण्डों से छूटो नहीं तो इन्हीं गपोड़ों में पड़कर भारत का भारत कर दिया । परन्तु शोक तो इसी बात का है कि सब कुछ जानने पर भी विचार नहीं करते । इसके उपरान्त जब कभी मृत्यु हो, अत्यन्त शोकातुर होकर रोना पीटना आदि कर्म न करना चाहिये । क्योंकि मरना जीना शरीर का धर्म है अर्थात् जो उत्पन्न होता है वह मरता है और जो मरता है वह उत्पन्न होता है, इसी को आवागमन कहते हैं–

आवागमन ॥

क्योंकि आवागमन का अर्थ आना और जाना है अर्थात् पाप पुण्य के अनुसार इस संसार में सुख दुःख भोगने के लिये बारम्बार उत्पन्न होना और मरना आवागमन कहाता है । जिसको फ़ारसी में " तनासुख " और अंगरेज़ी में "टिरेन्समिग्रेशन आफ़ सोल" कहते हैं।

मान्यवरो ! ऋषियों के जीवनचरित्र पाठ करने से जाना जाता है कि वह इन नियम में किस प्रकार लिप्त थे । सारे भारतवर्ष की धर्म परिपाटी की केवल यही जड़ है । यह वह मनुष्यों का सच्चा मित्र है जो सदा सच्चे ही मार्ग की ओर लेजाता है । यदि हम विचार दृष्टि से देखें तो हम को ज्ञात हो जावेगा कि भारतवासी जन अन्य देश वासियों से धर्मकार्य्यों में क्यों बढ़े हुए थे, क्यों वह कहते थे कि " अहिंसा परमो धर्मः " क्यों वह अपने समान सब को जानते थे, क्यों वह नम्रतापूर्वक सब जीवों से वर्ताव करते थे, किस कारण सांसारिक सुखों को हेच तृणवत् समझते थे ?

इस का कारण यही था कि उन के पास यह सच्चा हितैषी था जो प्रतिसमय शिक्षा देता था कि हे सांसारिक सुखों की गहरी नींद में सोने वाले मनुष्यो ! सचेत रहो । तुम केवल इस संसार में परीक्षा के लिये उत्पन्न किये गये हो और कुछ समय पश्चात् आप को न्यायकारी परमात्मा के पास जाना होगा जो न्यायपूर्वक धर्मतुला में तुम्हारे

कर्मों को तोलेगा यदि कुछ भी हलचल हुए तो फिर पता कहां ! फिर भी नाना लोकों में उत्पन्न होकर सुख और दुःख उठाते रहोगे। इसी कारण देखिये मनु० अ० १२ श्लोक २३ में लिखा है कि मनुष्य का आवागमन पाप और पुण्य के कारण होताहै इस कारण पुण्य की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये। जैसा कि–

एताद्दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥

और इसी अ० के ३९ श्लोक में लिखा है कि कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन में फंसा रहता है, और श्लोक ४० में कहा है कि सत्त्वगुणी देवरूप, रजोगुणी मनुष्यरूप और तमोगुणी पशुयोनि को प्राप्त होते हैं यही आवागमन है। श्लोक ७४ में लिखा है कि दुर्जन पुरुषों को निन्दित कर्म करने से निन्दित जन्म लेने पड़ते हैं। और विष्णुस्मृति अ० २० श्लोक २९ में लिखा है कि जिस का जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरेगा उसका अवश्य जन्म होगा। इस जन्म मरण के रोकने की सामर्थ्य किसी को नहीं। जैसा कि–

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
अर्थे दुष्परिहार्येऽस्मिन्नास्ति लोके सहायता ॥

इसी अ० के श्लोक ४३ में लिखा है कि कर्मों के अनुसार बार २ शरीर धारण करना पड़ता है और श्लोक ५० में लिखा है कि जैसे पुराने वस्त्र को त्याग कर नवीन वस्त्र को धारण करते हैं वैसे ही जीव पुराने शरीर को त्याग, अपने कर्मों के अनुसार नवीन शरीर को धारण करता है इनके अतिरिक्त ऋग्वेद अ० ४ अष्टक १ व० २३ मं० ६, व ७ में लिखा है कि–

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडयानः स्वस्ति॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्या३या स्वस्ति ॥

हे सुखदायक परमेश्वर ! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हम को उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियां दीजिये तथा प्राण अर्थात् मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार बल पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये । इसजन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भोगों को प्राप्त हों तथा आप की कृपा से सूर्य्य लोक, प्राण और आप को विज्ञान तथा प्रेमसे सदा देखते रहें । हे अनुमते ! सब जन्मों में हम लोगोंको सुखी रखिये जिस से हम लोगों का भला हो ॥

हे सर्वशक्तिमन् आप के अनुग्रह से हमारे लिये वारम्वार पृथिवी प्राण प्रकाश चक्षु और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें । दूसरे जन्म में सोम अर्थात् औषधियों का रस हम को उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा पुष्ट करने वाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सर्वदुःखनिवारण करने वाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवें । और य० अ० ४ मं० १५ में लिखा है कि हे परमेश्वर जब २ हम जन्म लेवें तब २ आप हमको उत्तम २ इन्द्रियां प्रदान कीजिये और हमारे शरीर का पालन कीजिये । निरुक्त अ० १३ खं० १९ में लिखा है कि मैंने अनेक वार जन्म धारण किया, हजारों गर्भाशयों का सेवन किया अनेक माताओं का दूध पिया । इस की पुष्टि योगशास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने की है । एमरीका का एमर्सन नामक प्रसिद्ध विद्वान् एक बालक की ओर इशारा कर बोलता है कि इस बालक के भोले भेष पर मत भूलो इस की अवस्था हजारों वर्ष की है । इन के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने कहा है कि जीव जैसा कर्म करेगा वैसा ही भविष्य में पावेगा । प्लाटो पूर्णरूप से पुनर्जन्म मानता था । इस के अतिरिक्त बालक जन्मभर की वस्तुओं को देख २ कर प्रसन्न होकर हाथ पैर फेंकते हैं और अम्मा २ शब्द शीघ्र कहने लगते हैं जिस से प्रकट होता है कि इन का कुछ २ ज्ञान उनको पूर्वजन्म से है। इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीव का बराबर आवागमन होता रहता है ॥

और गीता में लिखा है कि आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता, जल गला नहीं सकता, पवन सुखा नहीं सकता वह निराकार और मन से परे है । फिर भला बहुत दिनों तक शोक रखना नाना भांति से रोदन करना व्यर्थ ही है कि जिससे क्लेश के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता जैसा कि—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥

इसके अतिरिक्त मृत्यु का कोई समय नियत नहीं न जाने कब आजावे और मृत्यु के आने पर इसी प्रकार के उपायों से हम लाभ नहीं उठा सकते और हमारी कोई सहायता भी नहीं कर सकता केवल उस समय पर धर्म ही हमारी सहायता करता है ॥

धर्म ।

क्योंकि वेदादि शास्त्रों के अवलोकन करने और ऋषि और मुनियों के जीवनचरित्रों पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस संसार में सुखप्राप्ति करने और मरने के पश्चात् सुख से रहने का मुख्य कारण धर्मानुसार चलना ही है क्योंकि संसार के धनादि सब पदार्थ यहीं रह जाते हैं अर्थात् स्त्री, पुत्र, शरीर, सम्बन्धी, मित्र, धन, पशु, और पक्षी इत्यादि यह सब प्राणयात्रा के समय पृथक् हो जाते हैं और उस को ऐसे छोड़ देते हैं जैसे पक्षी फलहीन वृक्ष को फिर उसके कमाये हुए धन का कोई और ही स्वामी होजाता है और उसके शरीर की हड्डी, रुधिर, मांस को अग्नि भस्म करदेता है परन्तु जीवके साथ उस का धर्म ही जाता है जैसा मनुस्मृति अ० ४ श्लो० २३९ में लिखा है-

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥
अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

महाभारत में लिखा है-

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्म्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मोनित्यः सुखदुःखेत्वनित्ये जीवोनित्यो हेतुरस्यत वानित्यः ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोवधीत् ॥

चाणक्य ऋषि ने भी स्पष्ट आज्ञा दी है-लक्ष्मी, प्राण, शीशमहल एक दिन चले जाते हैं और अन्त को संसार भी स्थित नहीं रहता हां केवल एक धर्म ही पूरा साथ देता है। इस लिये वही उसका सच्चा मित्र कहाता है-जैसा-"धर्मोमित्रं मृतस्य च" ऐसा ही अनुशासनपर्व अ० ११८ में बृहस्पति जी और शुक्रनीति अ० ३ श्लोक ९ में और वाल्मीकीय रामायण (आर०काण्ड स० ९) में सीता महारानी ने रामचन्द्र महाराज से कहा है कि सुख का मूल धर्म ही है—महात्मा भीष्म का वचन है कि जिस प्रकार सूर्य्य अन्धकार का नाश करता है उसी भांति धर्म पापों को नष्ट करता है द्रोणाचार्य का वचन है और कृष्ण महाराज ने कहा है कि धर्म से जय होती है और हनूमान जी कहते हैं कि विना धर्म के सुख नहीं इसलिये परशुराम और युधिष्ठिर महाराज कहते हैं कि आपत्ति में भी धर्म को न छोड़ना चाहिये इसलिये जो जन अधर्म को छोड़ कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उन के लिये पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ मङ्गलकारी होते हैं-जैसा य० अ० ३५ मं० ९ में कहा है—

कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः। अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तान्ते दिशः सर्वाः ॥

इस हेतु प्राण आदि पदार्थों और सब साधनों सहित धर्म का आचरण करना चाहिये जैसा य० अ० २७ मं० २ में कहा है यही सब सुखों का दाता है जैसा मनु अ० ४ श्लोक १७१ में लिखा है ॥

न सीदन्नपि धर्म्मेण मनोऽधर्म्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशुपश्यन्विपर्य्ययम् ॥

बहुधा जन अधर्म से भी बढ़ती जानते हैं परन्तु प्यारे सुजनो! इस विषय में मनु जी महाराज का कथन है कि अधर्म करनेवाला शीघ्र बढ़ता और विजय पाता फिर अन्त को मूल सहित नष्ट होजाता है। जैसा कि मनु अ० ४ श्लोक ७९ ॥

अधर्म्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

ऐसाही य० अ० ६ मं० १२ में भी लिखा है । इसीलिये ऋषिगण धर्म का उपदेश करते हैं । श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० १९ में लिखा है कि मनुष्यों का श्रेष्ठ धन धर्महो है जैसा—"धर्म इष्टं धनं नृणाम्" इसी हेतु हमारे परमपूज्य नीतिज्ञ विदुरजी महाराज यह उपदेश करते हैं। कि मनुष्य को आयु भर वह कार्य्य करना चाहिये जिससे मरनेके पीछे सुख हो—

यावज्जीवेन तत्कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत् ॥

देखिये धर्म के सहारे ही सूर्य्य तप रहा है । पृथ्वी अपनी कील पर घूमती है । धर्म से ही बेड़ा पार होता है धर्मात्मा ही संसार के सुखों को भोगते हैं । धर्म से ही मनुष्य कहाता है । और इसी धर्म के बल से मनुष्य को ऋषि मुनि महात्मा देवता आदि की पदवी मिलती है । धर्म से ही विजय होती है । धर्म से ही शरीर आरोग्य और बुद्धि प्रबल होती है । धर्मात्मा ही के सत् सङ्कल्प पूर्ण होते हैं । धर्म से ही स्वर्ग के सुख और मोक्षपद पाता है अर्थात् धर्म से ही इस लोक और परलोक के महान् सुख मिल सकते हैं । धर्मात्मा भीष्म ने कहा है कि धर्म ही इस लोक और परलोक में सुख का कारण है । उसी से जय प्राप्त होती है और अधर्मी पुरुषों को सदा दुःख उठाना पड़ता है । बृहस्पति जी ने कहा है—जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाशक है उसी प्रकार धर्म पापों को नष्ट करता है । कुवेर जी ने कहा है कि जो अधर्म करता है वह नष्ट होजाता है । द्रोणाचार्य्य जी ने कहा है कि धर्म ही जय का कारण है सञ्जय ने कहा है कि मनुष्यमात्र धर्म को न त्यागे । परशुराम जी ने कहा है कि धर्म ही उत्तम पदार्थ है इसी कारण विद्वान् अर्थ को छोड़ और हानि उठा कर उस को करते रहते हैं । वाल्मीकि जी ने कहा है कि धर्म सम्पूर्ण वस्तुओं से बढ़कर है । युधिष्ठिर ने कहा है कि धर्म ही आपत्काल में सहायक होता है । मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है कि धर्म से पापों का नाश होता है और धर्मात्मा मित्रों सहित स्वर्ग को

जाता है। नागों ने कहा है कि अधर्म ही नाश का कारण है। हनुमान् जी ने कहा है कि विना धर्म के सुख कहां, विना इस के बृहस्पति के तुल्य जन भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि होती है जो मनुष्य धर्मात्माओं से अधर्मरूप से वर्त्तता है वह शीघ्र नष्ट होजाता है॥

अव पाठकगण शोचते होंगे कि जिस धर्म की इतनी प्रशंसा की गई वह क्या है? उस के क्या लक्षण और वह किस प्रकार से जाना जाता है? । जिस का मैं क्रम से वर्णन करूंगा। देखिये जैमिनि ने अपने मीमांसादर्शन के अ० १ पा० १ सू० २ में लिखा है कि जिस कर्म में सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की प्रेरणा हो वही धर्म है जैसा कि—

चोदनालक्षणो धर्म्मः॥

इस के अतिरिक्त कणाद ने वैशेषिकशास्त्र में लिखा है कि जिस से शारीरिक और पारमार्थिक सुखों की उन्नति हो उसे धर्म कहते हैं जैसा कि—

यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः॥

और लिङ्गपुराण पूर्वार्ध अ० १० में लिखा है कि उत्तम कर्म को धर्म और निकृष्ट को अधर्म कहते हैं अर्थात् जिस से इष्टफल की प्राप्ति हो उस का नाम धर्म और जिस से अनिष्ट फल मिले उस को अधर्म कहते हैं॥

हे सज्जनो! धर्म ईश्वर की आज्ञा पालन को कहते हैं जो हम को वेद द्वारा वतलाया गया है वा उन कर्मों के अनुसार चलने का नाम धर्म है कि जिन में परमानन्द और मोक्ष मिलती है वा वेदोक्त न्याय से युक्त होकर पक्षपात को छोड़ सत्य ही का सदा आचरण और असत्य का त्याग करना भी धर्म कहाता है वा जिस आचरण के करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति हो उस को धर्म कहते हैं, वा मन को पवित्र व वेद विद्यायुक्त करना ही धर्म कहाता है, वा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति सम्भव और अभाव इन आठ के द्वारा जो निश्चय होता है उस को धर्म कहते हैं। जैसा कि यजुर्वेद अ० १८ मं० ५८ में कहा है—

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा तद-
नुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

धर्म के लक्षण—

मान्यवरो ! इस उपरोक्त धर्मरूपी गृह के मनुजी महाराज ने धृति क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश खम्भे बतलाये हैं जैसा कि—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

और ऐसा ही याज्ञवल्क्य महाराज ने भी कहा है—

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्वउदाहृतः ॥

इसी प्रकार महाभारत में व्यास जी महाराज ने कथन किया है।

प्रियवरो ! यही धर्मरूपी गृह के दश खम्भे अन्य शास्त्रों में भी पायेजाते हैं आप जानते हैं कि जब तक खम्भे ठीक रहते हैं मकान उत्तम बना रहता है और रहने वाले सुख चैन से रहते हैं। और जब खम्भे ठीक नहीं होते मकान शीघ्र गिरकर चूर हो जाता है और रहने वालों को नाना प्रकार के क्लेश होते हैं। इस लिये यदि आप को सुख पूर्वक रहकर परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो इन खम्भों पर पूरा ध्यान रखिये क्योंकि ऐसे ही सज्जन पुरुषों को सुख और परमगति प्राप्त होती है जैसा कि मनु० अ० १० श्लो० ६३ में लिखा है—

दशलक्षाणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥

प्यारे सुजनो ! इन्हीं उपरोक्त दश लक्षणों पर यथावत् चलने की आज्ञा समस्त ऋषि और मुनियों ने दी है, इन्हीं को स्वर्ग का मार्ग बतलाया है मनुजी महाराज ने अ० ६ श्लो० ६ में स्पष्ट लिख दिया है—चाहो जिस आश्रम में रहे परन्तु इन दश लक्षणों का अच्छे प्रकार

सेवन करता रहे। अब मैं इन्हीं धर्म के दश लक्षणों अर्थात् खम्भों की व्याख्या वेदानुकूल प्राचीन ऋषि और मुनियों के अनुकूल करता हूं। विचार कीजिये और यदि परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा हो तो अवश्यमेव इन्हीं के अनुकूल अपने मनको निर्मल और शुद्ध कीजिये॥

(१ धृति, नाम धैर्य्य धारण करने का है अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों को चाहिये कि धैर्य्यका कदापि त्याग न करें क्योंकि धैर्य्य करने से ही सांसारिक और पारमार्थिक कार्य्य सुगमता से होते हैं॥

(२) क्षमा अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक दुःखों की प्राप्तिमें न क्रोध करना और न हिंसा करना। प्रिय सज्जन पुरुषो! इस से उत्तम संसार में कोई वस्तु नहीं इसी से लक्ष्मी की शोभा होती है और परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। जैसा श्रीमद्भागवत के नवें स्कन्ध के १५ अध्याय में लिखा है। और वनपर्व अध्याय २९ में युधिष्ठिर महाराज ने द्रौपदी से कहा है। क्षमा ही परमधर्म, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद, क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही जप, क्षमा ही पवित्र क्षमा ही से जगत् स्थिर है, क्षमा ही दया, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही तीर्थरूप है क्षमावान् ही स्वर्ग को जाते हैं, उन्हीं को मोक्ष और यश प्राप्त होता है। ऐसा ही वृद्धगौतमसंहिता में लिखा है जैसा—

क्षमाहिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः।
क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्य्यमुदाहृतम्॥
क्षमावान् प्राप्नुयात् स्वर्गं क्षमावान् प्राप्नुयाद्यशः।
क्षमावान् प्राप्नुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते॥

चाणक्य जी ने कहा है कि शान्ति से अधिक कोई तप नहीं "शान्तितुल्यं तपो नास्ति" व्यासस्मृति अ० २ श्लोक ४४ और आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लोक ५, ६ में लिखा है कि क्षमा करने वाले पुरुषों को इस लोक और परलोक में सुख मिलता है॥

(३) दमः, मन को विपरीत कर्मों से हटाकर सदा अच्छे कर्मों में लगाने को कहते हैं। मन अत्यन्त वेग से गमन करता है। यह बड़ा चञ्चल है कभी धन के उपार्जन में डूबता है, कभी लड़ाई झगड़े पर उद्यत

होता है, कभी सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं को छोड़ कर विरक्त बनता है, कभी स्त्रियों पर आसक्त होता है, कभी उन को माता के तुल्य मानता है। कभी जङ्गलों में रहना स्वीकार करता है, कभी संसार के आनन्दों को छोड़ कर ऋषि मुनि बनना चाहता है। इसी के कारण बड़े२ महात्मा, राजा, महाराजा और विद्वानों ने अपयश प्राप्त किया। इसी कारण वही ऋषि, मुनि, देव हैं जिन्हों ने इस मनको वश कर लिया है। मन का एकत्र करना ही सब से बड़ी तपस्या है। क्योंकि इस के जीतने से सब इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। और फिर कल्याणमार्ग दृष्टि आता है। और मनुस्मृति अध्याय २ के श्लोक २ में भी ऐसा ही लिखा है। और गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है बिना मन के संयम किये सब आचरण मिथ्या हैं। यह मनुष्य का शरीर रथ, मन रथवान् अर्थात् सारथि और इन्द्रिय घोड़े हैं। यदि यह रथवान् बुद्धिमान् है तो ही इन इन्द्रियरूपी घोड़ो को अपने आधीन रख सकता है अन्यथा नहीं। देखो य० अ० ३४ मंत्र ६ में—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिनइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

परमेश्वर उपदेश करता है कि मन की दो प्रकृति हैं। एक तो वह जब किसी वस्तु पर आसक्त होता है तो अपने इन्द्रियरूपी घोड़ों सहित उसकी तरफ़ दौड़ता हुआ चलाजाता है जिसके अनुसार मूर्ख कार्य्य करते हैं और कष्ट भोगते हैं। दूसरे वह है जो इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने २ विषय से हटाकर अपने वश में कर विद्वान् सुख भोगतेहैं।

(४) अस्तेय—नाम चोरी न करने का है वह—(१) कायिक—(२) वाचिक (३) मानसिक—तीन प्रकार की होती हैं। (१) कायिक अर्थात् किसी के धन स्त्री आदि पदार्थ को ले लेना कहलाता है (२) वाचिक अर्थात् वचन का चुराना यह दो प्रकार का होता है। एक तो सत्य को छिपाना दूसरे असत्य बोलना। सत्य का छिपाना उसे कहते हैं कि हम किसी वार्ता को अच्छे प्रकार जानते और जब हम से कोई मनुष्य पूछे कि आप इस विषय में क्या जानते हो तो हम किसी कारणसे उस से कहदें कि मैं इस विषय में कुछ नहीं

जानता। असत्य बोलना—अर्थात् जान बूझ कर उलटी बात कहें ३—तीसरी मानसिक चोरी अर्थात् मन के सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य्य करना। जैसे कोई मनुष्य परमेश्वर का ध्यान कर रहा हो और उस का मन अन्य विषयों के विचार में लग रहा हो। इस लिये इन तीनों प्रकार की चोरियों का त्यागना अभीष्ट है॥

शौच अर्थात् पवित्र रहना और पवित्रता दो प्रकार की होती हैं। (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य अर्थात्—वस्त्र, गृहादि को और शरीर को स्नान द्वारा पवित्र रखना जिसके लाभ आप को स्नान में बतलाये गये। दूसरी आभ्यन्तरिक जो ईश्वराराधन, विद्याध्ययन, विषयवासना और कामादि दोषों के त्याग ने से होती है। शुद्धि ही धर्म का मूल है और जो बाहर भीतर से शुद्ध हो वही धर्मात्मा हो सकता है। इस लिये महाशय! दोनों प्रकार की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रखिये॥

(६) इन्द्रियनिग्रह—इन्द्रियों को विपरीत व्यवहार में न लगने देना अर्थात् धर्मपूर्वक कामों में इन्द्रियों को प्रेरणा करना जैसा कहा है कि—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

जैसे विद्वान् सारथि घोड़े को नियम में रखता है वैसे ही मन और आत्मा को खोटे कामों में खेंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे। क्योंकि जीवात्मा इन्द्रियों के वश हो के निश्चय बड़े २ दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है जैसा कहा है कि—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥

इस विषय में गीता के १६ अध्याय के ३८ श्लोक में लिखा है कि विष खाने से तो प्राणी एक वेर में ही मरता है-परन्तु इन्द्रियों के विषयों के स्वाद भोगने से बारम्बार मरता ही चला जाता है जैसा कि—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतं ॥

इस के उपरान्त महात्मा अष्टावक्र जी ने कहा है कि हे प्यारे सुजनो! जो मुक्तिरूपी सुखों की इच्छा हो तो इन्द्रियों के विषयों को विषवत् त्यागदो। और य० अ० १७ मं० ६८ में लिखाहै कि योगीजन जितेन्द्रिय होकर नियमपूर्वक परमात्मा को पाकर आनन्दित होते हैं। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने वाले महात्मा ईश्वर के दर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने से बुद्धि बढ़ती है। शान्तिपर्व अ० १५९ में भीष्मपितामह ने कहा है कि चारों आश्रमों के बीच इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम धर्म है। इसलिये आओ! ज्ञान के द्वारा विषय वासना में विचरती हुई इन्द्रियों को अपने आधीन कर सुख की प्राप्ति करें॥

(७) धी, नाम बुद्धि का है अर्थात् जिस प्रकार से बुद्धि की उन्नति हो वह कार्य्य करना। मुख्य प्रयोजन यह हैं कि सदा विचारपूर्वक बुद्धि को अच्छे कर्मों में लगाना और उस की वृद्धि के लिये यत्न करना जिस की तीन रीतें हैं (१) वेद शास्त्रों का विचार करना (२) महात्मा और विद्वानों का सत्सङ्ग करना (३) उत्तम २ गुणों को सीखना॥

(८) विद्या—अर्थात् जिस से पदार्थों का सत्यरूप मालूम हो उसे विद्या कहते हैं जैसा कि—

पदार्थान् याथातथ्येन वेत्ति यया सा विद्या ॥

और इस के विपरीत दशा को अविद्या कहते हैं अर्थात् नित्य को अनित्य, अनित्य को नित्य—धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानमादि अविद्या है जैसा कि योग सूत्र में लिखा है:—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नि-
त्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥

और ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् में भी लिखा है। सचमुच विद्या से बढ़ कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़कर कोई शत्रु नहीं। विद्या ही के कारण मनुष्य इस संसार में सर्व प्रकार के आनन्द पाता है और

अन्त को मोक्ष प्राप्त करता है परन्तु अविद्या सब क्लेशों की जड़ है और भगवान् पतञ्जलि ने अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पांच क्लेश माने हैं जैसा कि—

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः"

अविद्या ही के कारण यह देश इस अधोगति को प्राप्त हुआ, अविद्या ही के कारण हम ने सज्जनों और विद्या को छोड़ कर मूर्खों की सङ्गति में पड़ कर नाना प्रकार की बुराइयां सीखी हैं, अविद्या ही के कारण इस देश में वेश्या का नाच होने लगा, अविद्या ही के कारण हम अपने जीते माता पिताओं को दुःख देकर गयादि तीर्थ उन के सुख पहुंचाने को करने लगे जिस से धर्म परिपाटी में अन्तर आगया।

अब इस समय में महाशय! आप विद्या और अविद्या को जान कर ही कार्य्य कीजिये जिस से सर्व प्रकार के सुख मिलें और देश की यह दशा न रहे। मुख्य कथन यह है कि वेदोक्त कर्मों के करने को विद्या और वेदविरुद्ध कर्मों के करने को अविद्या कहते हैं॥

(९) सत्य, अर्थात् मिथ्या व्यवहार कभी न करना। इसी से मनुष्य को सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं। यही मनुष्य को स्वर्ग में लेजाता है। इस के विना संसार का कोई कार्य्य नहीं चल सकता। सच तो यह है कि संसार के सम्पूर्ण कार्य्य इसी पर निर्भर हैं देखो चाणक्य ऋषि लिखते हैं।

सत्येन धार्य्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

सत्य ही से पृथ्वी स्थिर है, सूर्य्य प्रकाशमान, और वायु चलती है। और भी कहा है—

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥

सत्य से बढ़कर कोई धर्म और झूठ से बढ़कर कोई पा
और सत्य से बढ़ कर कोई भी ज्ञान नहीं है। इसलिये स

बोलना चाहिये ॥ इस के उपरान्त—हनूमान, व्याध, भीष्मपितामह, मार्कण्डेय, सनत्सुजातमुनि, नारद जी, शकुन्तला और भृगुजी इत्यादि ने कहा है कि द्विजातियों का परम धर्म सत्य है। सत्य से आयु क्षीण नहीं होती, सब गुणों में सत्य ही प्रधान है उसी में अमृत वसता है, वही सब व्रतों में श्रेष्ठ है, सत्य ही परमधर्म है यही सब की जड़ है, इसी के द्वारा स्वर्ग मिलता है, इसी से कल्याण और हित होता है। और यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ९४ में लिखा है कि जो मनुष्य शास्त्र के अभ्यास सत्य वचनादि से वाणी को पवित्र करते हैं वेही शुद्ध होते हैं परन्तु सत्य के ग्रहण करनेवालों को यजुर्वेद के ब्राह्मण परभी पूरा ध्यान रखना चाहिये अर्थात् सत्य को मन से धारण करना न कि मनुष्यों के दिखलाने के अर्थ क्योंकि जो मन में होता है वही वाणी में आता है और जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। जैसा कि—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते ॥

अर्थात् जो मनुष्य सत्य का अनुष्ठान करते हैं वही सच्चे धर्मात्मा कहाते हैं वह इसी के बल से भव सागर से पार होजाते हैं। सच मुच सत्य ऐसा ही पदार्थ है इस लिये सत्य को मन से ग्रहण करना चाहिये ॥

(१०) अक्रोध अर्थात् प्राणीमात्र पर क्रोध न करना। क्योंकि क्रोध सम्पूर्ण पापों की जड़ है, इसी क्रोध में आकर मनुष्यको विचार शक्ति नहीं रहती बहुत सी हानि व्यर्थ में कर बैठता है। प्रसिद्ध है कि एक क्रोधी ने केवल एक चूहे को कष्ट देने के अर्थ अपने गृह में आग लगा दी थी। क्रोध ही इस संसार में परम शत्रु है, क्रोधी मनुष्य की कहीं प्रतिष्ठा नहीं होती, जो मनुष्य क्रोध के वश में रहते हैं उनका शीघ्र नाश होजाता है, अक्रोधी ही को सब प्रकार के आनन्द मिलते वही अपने कार्य्य की सिद्धि कर प्रतिष्ठा पाता है, वही सब में श्रेष्ठ और विद्वान् गिना जाता है। हनुमान जी महाराजने सुन्दरकाण्ड में कहा है कि धन्य है उन पुरुषों को जो क्रोध को रोक शान्ति का प्रसाद देते हैं ऐसे ही मनुष्यों को महात्माओं की पदवी मिलती है। आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लो० ८ में लिखा है कि क्रोधी पुरुष के यज्ञादि उत्तम कर्मों का भी फल नष्ट होजाता है। इसलिये इन उपरोक्त धर्म के लक्षणों को यथावत् पालन करते हुए धर्ममार्ग पर चलने का यत्न करते रहिये ॥

धर्ममार्ग।

प्रत्येक मनुष्य सदा सीधे और सुगम मार्ग की चाह में रहते हैं। क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से मनुष्य को कष्ट नहीं होता और उस का प्रयोजन शीघ्र सिद्ध होजाता है जिससे चलने वालों को थकावट का कुछ भी ध्यान नहीं होता। और इसके अतिरिक्त टेढ़े अर्थात् कुमार्ग पर जाने से बहुधा कष्ट उठाने पड़ते हैं और बटोही अपने अभिप्राय को भी नहीं पाते। इस लिये सर्व प्राणीमात्र को धर्म के सीधे अर्थात् सत्य सनातन मार्ग को जानकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

प्रिय सज्जन पुरुषो! वर्त्तमान काल में सहस्रों मार्ग अर्थात् पन्थ प्रचलित होगये हैं। कोई इधर खेंचता कोई उधर पकड़ता है, कहीं वाममार्ग के लटके दिखलाये जाते हैं, कहीं फ्रीमेशन की प्रशंसा बतलाई जाती है, कहीं नानकपन्थ कबीर साहिब की साखी सुनाई जाती है, और वाह गुरु की विजय कान में फूंकी जाती हैं, कहीं शब्दज्ञान कराया जाता है, कहीं झूंठे भोजनों की महिमा सुनाई जाती हैं, कोई गङ्गा और एकादशी आदि व्रत और मन मानी सत्यनारायण की कथा सुनने को ही धर्ममार्ग बतलाते हैं। बहुधा जन तुलसी, शालिग्राम, महादेव, पार्वती इत्यादि की पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजन करने और उनके सम्मुख नाचने गाने को ही धर्ममार्ग कहते हैं। और कोई बरगद पीपल और केले आदि वृक्षों की पूजा से ही ईश्वरप्राप्ति कहते हैं, कोई २ नाना भांति के तिलक छापे और ठाकुर प्रसाद और तुलसी शालिग्राम के विवाह को ही धर्म कहते हैं। परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने और ही धर्म के मार्ग बतलाये हैं, जिन पर हमारे पुरुषाओं ने चल कर नाना प्रकार के सांसारिक सुखों के उपरान्त परमपद को भी प्राप्त किया है और उसी को सनातन धर्म कहते हैं जिस को मनु जी महाराज ने श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय, चार कर्मों को धर्ममार्ग ठहराया है। जैसा कि—

श्रुतिःस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अ० में भी श्रुति, सदाचार और अपने मन की प्रसन्नता को ही धर्ममार्ग माना है । ऐसा ही महाभारत शान्तिपर्व अ० २५८ और अनुशासनपर्व अ० १४८ में कहा है–

परन्तु लिङ्गपुराण अ० १० श्लो० ७ में यह लिखा है कि धर्म वही है जो श्रुति स्मृति के अनुकूल वर्णाश्रम धर्मों को जान कर करते हैं।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः ।
श्रौतस्मार्त्तस्य धर्म्मस्य ज्ञानं धर्म उच्यते ॥

ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० २४ और अत्रिस्मृति श्लो० ३४९ में भी लिखा है । और शिवपुराण विन्धेश्वर संहिता अ० १९ श्लो० ४४ में लिखा है कि जो वेद और स्मृति के कर्म को अनादर कर दूसरे कर्म को करता है उसका फल नहीं होता इस लिये वेदोक्त कर्म करने को ही धर्म मार्ग कहते हैं ॥

(१) वेद ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं जैसा कि मनु जी ने कहा है–

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः ॥

इस के उपरान्त मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक ९९ में लिखा है कि वेद सनातन विद्या है वही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है इसी कारण जीवों के लिये मैं उसी को सब से उत्तम उपाय सुख की प्राप्ति का निश्चय करता हूं–

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥

और २ अ० के ८ श्लोक में लिखा है कि विद्वान् को योग्य है कि विद्या से इस को समझे और वेदोक्त धर्म को स्वीकार करे, और श्लो० १३ में मनु जी ने स्पष्ट लिखा है कि धर्म जानने के लिये श्रुति ही परम प्रमाण है–

धर्म्मञ्जिज्ञासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः ।

इसी कारण नित्यकर्मों में प्रतिदिन वेद पाठ करने की आज्ञा दी है उपरान्त १२ अध्याय के ९७ श्लो० में लिखा है कि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, तीनों काल, सब वेद द्वारा जाने जाते हैं—

चातुर्वर्ण्यन्त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥

इसी लिये मनुजी ने इसी अध्याय के १०६ श्लो० में स्पष्ट लिख दिया है कि जो मनुष्य वेद के अर्थ को यथार्थ जानकर चलता है वह चाहे जिस आश्रम में रहे जीवनमुक्ति को पाता है—

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

श्रीमद्भागवत् में लिखा है धर्म वही है जो वेद में लिखा है उसके अतिरिक्त अधर्म है और वेद नारायण का रूप है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥
वेदोनारायणःसाक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुमः ॥

फिर इसी अध्याय में लिखा है कि जो वेद विरुद्ध कार्य करते हैं उनको नरक होता है और अध्याय ४ में ऋषभ देवजी ने अपने पुत्रों को श्रुति स्मृति धर्म को मुख्य मानकर उस की शिक्षा की है स्कन्ध ११ अध्याय ३ के श्लोक ४६ में स्पष्ट लिखा है कि वेदोक्त कर्म करने से मोक्ष होती है—

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभतेसिद्धिं रोचनार्थाफलश्रुतिः ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति अ० २ श्लोक ४० में मनुष्यमात्र को आज्ञा की है कि यज्ञ, तप और शुभकर्मों से द्विजों का सब से बड़ा उपकारक वेद को जानना चाहिये—

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥

क्योंकि सब कर्म वेद से ही जाने जाते हैं। लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध के ७८ अ० में स्पष्ट लिखा है कि जो मनुष्य वेदविरुद्ध व्रत आचार आदि करते हैं श्रुति स्मृति से विमुख हैं उन पाखण्डियों का उत्तम वर्ण स्पर्श न करे और सम्भाषण न करे—

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्त्तबहिष्कृताः।
पाषण्डिनइतिख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः॥

और विष्णुपुराण में द्वितीय अध्याय ६ में लिखा है कि जो वेद-विरुद्ध कार्य करते हैं उन को (सवन) नाम नरक होता है। ऐसा ही श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ५ अध्याय २६ श्लोक १५ में लिखा है कि जो वेदमार्ग को छोड़ पाखण्डमार्ग में चलते हैं [कालसूत्र] नाम नरक में जाते हैं—

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं
चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कश्या प्रहरन्ति॥

मनु जी ने अ० १२ श्लोक ८६ में लिखा है कि वेदोक्तकर्म करने से मनुष्य सुपात्र होता है। श्री रामचन्द्र जी ने वाल्मीकीय रामायण में कहा है कि जो मनुष्य वेदमर्य्यादा को त्यागते हैं वे पापी होते हैं। इस के उपरान्त उन्होंने चित्रकूट पर भाई भरत को सदा वेदोक्त कार्य करने के लिये शिक्षा की है—शान्तिपर्व अध्याय २०१ में बृहस्पति ने भी यही लिखा है श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि वेदविरुद्ध कार्य करने वालों को तत्वज्ञान नहीं मिलता इसी हेतु उन्हों ने उद्धव जी को उपदेश किया है कि वेद जानने वाले हों सत्पुरुष को गुरु करना इसी प्रकार कौशिक मुनि—नकुल—युधिष्ठिर—सनतसुजात—कपिल मुनि आदि ने कहा है और सम्पूर्ण स्मृतिकार यही पुकार २ कर कहते हैं और पुराणों के कर्त्ता भी यही उपदेश करते हैं कि वेद ही के अनुसार कार्य करना अभीष्ट है देखो य० अ० २८ मं० ३५ में कहा है जैसे आकाश में सूर्य्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे ही वेदों का अभ्यास करने से बुद्धि बढ़ती है जो इस जगत् में वेद द्वारा सब विद्याओं को जानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं—

दे॒वं ब॒र्हिर्व॑यो॒धसं॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् । गा॒य॒त्र्या छन्द॑सेन्द्रि॒यं चक्षु॒रिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ३५ ॥

वेदों के अनादि होने का प्रमाण ।

मान्यवरो ! यदि मुझ को कोई मनुष्य उत्पन्न होते ही एकगृह में बंद कर देता और वहीं भोजनादि देता और मेरे सम्मुख कोई बात चीत भी न करता तो आशा है कि मुझ को बात चीत करना भी न आता न किसी विद्या को जानता । मुख्य कथन यह है कि जो कुछमैंने इस संसार में सीखा पढ़ा लिखा यह सब माता पिता और विद्वानों की सङ्गति का ही गुण है । इसी प्रकार हमारे माता पिता ने सीखा और पढ़ा । परन्तु जिस समय संसार उत्पन्न हुआ उस समय कोई सिखाने वाला न था उस समय परमेश्वर ने अपनी कृपा और अनुग्रह से अपने वेदरूपी ज्ञान को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा महर्षियों के हृदय में प्रकाश किया जो उस समय से आज तक ऋग्, यजु, साम, अथर्व, नाम से प्रसिद्ध हैं । इस से प्रकट होता है कि वेद ही सनातन धर्मपुस्तक अर्थात् अनादि हैं ॥

प्रकट हो कि आर्यावर्त के विद्वानों और बुद्धिमानों ने सृष्टि की आयु को १४ मन्वन्तरों पर बांटा है इन में से ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके और सातवां अब बीत रहा है और एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं अर्थात् चारों युग ७१ बार बीतते हैं । प्रत्येक की आयु नीचे लिखी है—

१—सतयुग=१ ७ २ ८ ० ० ०
२—त्रेतायुग=१ २ ९ ६ ० ० ०
३—द्वापर= ८ ६ ४ ० ० ०
४—कलियुग=४ ३ २ ० ० ०

चारों का योग=४ ३ २ ००००

इस से प्रकट है कि हर चतुर्युगी की आयु ४३२०००० वर्ष की होती है और अगर इस को ७१ से गुणा किया जावे तो एक मन्वन्तर

हो जाता है जिस के ३०६७२०००० साल हुए इस प्रकार के १४ मन्वन्तर व्यतीत हों तो दुनियां की आयु सम्पूर्ण होगी। परन्तु अब १४ मन्वन्तर में से केवल ६ मन्वन्तर और २७ चतुर्युगी बीती हैं २८ वीं चतुर्युगी अब बीत रही है जिस में से तीन युग—सतयुग, त्रेता, द्वापर बीत चुके हैं और चौथा कलियुग अब बीत रहा है। और कलियुग में से सन् १९०२ ई० तक ५००१ वर्ष बीत चुके हैं इस लिये सृष्टि की उत्पत्ति का हिसाब इस प्रकार है—

एक चतुर्युगी	४३२००००
	७१
एक मन्वन्तर	३०६७२००००
	६
६ मन्वन्तर	१८४०३२००००
७ वें मन्वन्तर में से २७ चतुर्युगी बीत चुकीं	११६६४००००
अब २८ वी चतुर्युगी है जिस के ३ युग बीत चुके	३८८८०००
कलियुग में से जो वर्ष बीत चुकीं	५००१
सम्पूर्ण योग	१९६०८५३००१

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति को १९६०८५२९९६ वर्ष हो चुके हैं और अब संवत् १,९६०८५३००१ वीत रहे हैं॥

स्मृति ॥

द्वितीय धर्म का मार्ग स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र हैं इन की संख्या १८ हैं जिन को मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, दक्ष, गोतम, शातातप, वसिष्ठ ऋषियों ने लिखी हैं कि जिन में उन्हों ने वेद के गूढ़ मन्त्रों की व्याख्या पूर्णरूप से योग और नाना क्रियाओं से ज्ञान प्राप्त कर के की थी। संसार की दशा सदा एक सी नहीं रहती कभी वृद्धि को प्राप्त होती है और कभी हीनदशा हो जाती है। देखिये

यही सूर्य्य जो प्रातःकाल में प्रकाशित होकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है और सायङ्काल को जिस हीनदशा को प्राप्त होता है इसी प्रकार जब यह देश अविद्या को प्राप्त हुआ नाममात्र के विद्वान् भी अपने लाभ के लोभ में फंस गये और लोभ में धर्म का विचार नहीं रहता इस लिये उन्हों ने भी स्वार्थ सिद्धि के अर्थ अनेकान श्लोक बना कर मिला दिये इस कारण अब स्मृतियों और वेदों में भी बहुधा भेद होगया है परन्तु कुछ शोक नहीं क्योंकि हमारे ऋषि मुनि अपनी २ स्मृतियों में लिख गये हैं कि धर्म विषय में वेद ही का प्रमाण मानना चाहिये जैसा मैं ने ऊपर वर्णन किया और जो स्मृतियां वेदानुकूल हों उन को भी मानना अभीष्ट है परन्तु वेदविरुद्ध स्मृतियों के मानने की मनु आदि ऋषि आज्ञा नहीं देते । मानना कैसा! देखिये मनु जी महाराज ने अ० १२ श्लोक ९५ में लिखा है जो स्मृति वेद के विरुद्ध है उस से कुछ फल नहीं हो सकता, समझ लेना चाहिये कि वह तमोगुणी पाखण्डियों की बनाई हुई हैं—

या वेदवाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥

इस के उपरान्त जब स्मृतियों में भी आपस में अन्तर हो तो मनुस्मृति का लेख प्रमाण होगा क्योंकि सामवेद के छान्दोग्यउपनिषद् में लिखा है कि जो कुछ मनु जी ने कहा है वह मनुष्य के लिये ओषधि की ओषधि है जैसा—

"यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः"

बृहस्पतिस्मृति में लिखा है:—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् ।

मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते ।

कि उस स्मृति की प्रशंसा नहीं होती जिस का लेख मनुस्मृति से नहीं मिलता । प्रिय सज्जन पुरुषो! मनु जी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि मैं ने वेदानुकूल ही लिखा है और वेदानुकूल ही मेरी आज्ञा को मानना चाहिये अर्थात् मेरा लेख वही है जो वेद से मिलता हो । जैसा मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २ में लिखा है—

यः कश्चित् कस्य चिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥

फिर इसी अध्याय के ८ श्लोक में और भी पुष्टता की है। इस लिये मनु जी ने १२ अ० के ९५ श्लोक में स्पष्ट आज्ञा दी है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हों वह माननीय नहीं अर्थात् अठारह स्मृतियों में जिस २ स्थान पर वेदानुकूल न हो वह प्रमाण के योग्य नहीं। इस कारण जब किसी विषय में स्मृतियों में अन्तर हो अथवा समझ में न आता हो या पेटार्थू जन कुछ का कुछ कहें तो आप को योग्य है कि वेदों के प्रमाण से उस को प्रामाणिक अन्यथा अप्रामाणिक समझना चाहिये। और इसी प्रकार जब स्मृति और पुराणों में विरोध हो तो स्मृति के अनुसार कर्म करना चाहिये। तात्पर्य्य इस कथन का वही है जो मैंने ऊपर वर्णन किया अर्थात् धर्म विषय में श्रुति ही स्वतः प्रमाण है और स्मृति तथा पुराण परतःप्रमाण अर्थात् वेदानुकूल होने से प्रामाणिक हो सकते हैं अन्यथा नहीं। और ऐसा ही व्यास-स्मृति अ० १ श्लोक ४ में लिखा है जैसा कि—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥

सदाचार।

मान्यवरो! यह दोनों उपरोक्त धर्ममार्ग अत्यन्त कठिन हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य विद्या पढ़ कर विद्वान् न हो वह इन को पूर्ण प्रकार से नहीं जान सकता और विद्वान् होने के लिये बहुत समय की आवश्यकता होती है। परन्तु धर्म का अङ्कुर बाल्यावस्था ही से बालक के हृदय में लगता है इस लिये हमारे मुनियों ने तृतीय धर्म का मार्ग सदाचार माना है। यह शब्द सत् और आचार से संयुक्त है अर्थात् जो कुछ सत्य धर्म अपने प्राचीन पुरुषाओं को करते देखा वा सुना अथवा उनके लिखित पुस्तकों के द्वारा जाना गया हो उस को करना। इस बात को सुनकर हमारे बहुधा भाई यह कह देंगे कि

हम तो वर्त्तमान समय में वही कार्य्य करते हैं जो हमने अपने बाप दादे को करते हुए देखा है फिर आप उसको क्यों नहीं धर्म मानते और क्यों नाना प्रकार की शङ्कायें करते हैं। मान्यवरो ! इस का मुख्य कारण यही है कि प्राचीन काल में महाभारत के बड़े भारी सङ्ग्राम होने से लाखों विद्वान् मारे गये फिर आलस्यादि दोष उत्पन्न होकर विद्या रहित होने लगे। इसके अनन्तर बौद्ध, जैन मतों ने भारतवर्ष में लकलका जमाया, वेदादि रीति को उठाया। इस के पीछे मुसल्मानों ने राज्य किया कि जिस में हमारे धर्म पुस्तक जलाये गये, डुबाये गये, हमारी कुमारी लड़की छीनी गईं, और मुसलमान् बनाए गये, रात दिन लूटे मारे गये क्योंकि बारह मर्त्तबा महमूद ने लूट की फिर शहा-बुद्दीन ने ८ बार चढ़ाई की, लाखों मनुष्यों को पकड़ ले गया और उन के खून से गारा बनवाया, फिर चङ्गेज़खां ने दुन्द मचाया। तैमूर ने दिल्ली, तुलम्बा, भेटनेर आदि में हाहाकार मचाया। फिर नादिरशाह ने आकर दिल्ली में ५ दिन तक क़तल आम कराया और इस के पीछे अहमदशाह ने तीन चढ़ाइयां कर लूट मार की और सन् १६५१ ई० से १७०७ ई० तक औरङ्गजेब ने दिल्ली के तख़्त पर बैठ कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में भारतखण्डियों पर जुल्म किये। इस के बीच ही में नानक, कबीर, आदि ने अपने २ पन्थ नियत किये। मेरे कहने का मुख्य तात्पर्य्य यह है कि महाभारत के पश्चात् अंगरेजी राज्य के आने तक हमारे पुरुषों को जान बचाने के लाले पड़ रहे थे क्योंकि इन उपरोक्त दुन्दों के कारण यहां से वहां भागकर अपनी जानों को बचाते रहे फिर भला ऐसे समयों में इन वेदानुकूल रीतों को कौन पूछता है क्यों कि कहा भी है कि "आपत्काले मर्य्यादानास्ति" फिर उन पुरुषाओं का धर्म हमारे लिये क्योंकर माननीय हो सकता है। हां यदि हम उन मनुष्यों के धर्म पर चलें जो उस समय में रहते थे जब कि वेद विद्या का प्रचार था, बालक से लेकर वृद्ध तक उसी के अनुसार चलते थे, लोभ और कामादि के त्यागी थे धर्म पर जीवन को नोछावर कर धन पर धता भेज धर्म ही को मुख्य समझते थे। इस लिये आप अपने कुल की दश बीस पीढ़ियों की रीति पर न चलो वरन सृष्टि के आरम्भ

से आज पर्यन्त वेदानुसार सनातन रीति पर चलना योग्य है अर्थात् जिस मार्ग पर हमारे सत्पुरुष पिता पितामह चले हों उसी पर चलें और जो पिता पितामह ने अनुचित कर्म किये हों तो उनके मार्ग को कभी स्वीकार न करें जैसा मनुजी ने लिखा है-

येनास्य पितरो याताः येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

और ऐसा ही य० अ० ४ मं० २० में लिखा है-

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । सा देवी देवमच्छेहीन्द्रायसोमꣳ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥

और य० अ० २१ मं० ५० में लिखा है कि सन्तानों को योग्य है कि जो २ पितादि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे उस २ का सेवन करें और जो अधर्म युक्त हो उस २ को छोड़ देवें । श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जिस आचार पर श्रेष्ठ चलते हैं उसी पर इतर जन चलें-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्त्तते ॥

और ऐसी ही य० अ० १२ मं० १११ में भी आज्ञा है । फिर भला आप क्यों प्राचीन पुरुषाओं की धर्म मर्य्यादा को तोड़कर नवीन पुरुषाओं के अनाचार का प्रमाण देते हो । जब कि पुरुषाओं ने जितेन्द्रियता को भेंट, विद्या का पठन पाठन ही उठा दिया फिर आचार का क्या ठीक । देखिये मनुजी महाराज ने श्रेष्ठों के यह लक्षण लिखे हैं अर्थात्-

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणाज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥

शिष्ट उन ब्राह्मणों को समझना चाहिये जिन्हों ने विधिपूर्वक वेद को मीमांसासहित पढ़ा है । जो वेदोक्त वाक्य को प्रमाण से समझ सकते हैं इसी कारण विदुर महाराज ने धृतराष्ट्र महाराज से कहा है

१ मतवाल, २ नशे पीनेवाला, ३ वेहोश, ४ थकाहुआ, ५ क्रोधी, ६ भूखा, ७ शीघ्रता करनेवाला, ८ लोभी, ९ डरपोक, १० कामी यह दश मनुष्य धर्म को नहीं जानते। जैसा कि–

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र ! निवोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेपु सर्वेपु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥

इसी हेतु अब आप–व्यास, पराशर, मनु, राजा दशरथ, राजा जनक, अर्जुन, भीम, श्रीकृष्ण आदि सनातन पुरुषाओं की रीति पर चलिये क्योंकि अब वह समय नहीं है कि किसी की धर्मसम्बन्धी परिपाटी में बाधा डाली जावे। वरन सरकारी राज्य में शेर बकरी एक घाट पर वैर त्याग कर रहते हैं। इसलिये आप भी इन प्रचलित रीतों को वेद से मिलाइये। यदि उनके प्रमाण वेद में मिल जावें तो स्वीकार कीजिये अन्यथा वेदविरुद्ध कार्य्यों को कर पापभागी न बनिये चाहो सहस्र जन क्यों न कहें। और धर्म के निर्णय के लिये प्रत्येक नगर वा बड़े २ नगरों में सभा नियत कर उस की आज्ञानुसार कार्य्य कीजिये उसी को धर्मसभा वा आर्य्यसभा कहते हैं। प्राचीन काल में ऐसाही होता था। देखो य० अ० ३ मं० ४५ में ईश्वर उपदेश करते हैं कि चारों आश्रम वाले मनुष्यों को मन वाणी कर्मों से सत्य का आचरणकर पाप वा अधर्म को त्याग करके विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा का प्रचार करके प्रजा की उन्नति करना चाहिये, देखिये मनुजी महाराज ने लिखा है–

दशावरा वा परिषद्यन्धर्मम्परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तन्धर्मन्न विचालयेत् ॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।

त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवसेद्द्विजोत्तमः ।
सविज्ञेयः परो धर्मोनाज्ञानामुदितोऽयुतैः ।
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वन्न विद्यते ॥
ये वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥

जिस सभा में तीनों वेद मीमांसा न्याय निरुक्त और धर्मशास्त्रके जानने वाले ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ हों वह सभा दशावरा कहलाती है और जिस में सम्यक् तीनों वेदों के ज्ञाता तीन सदासद् हैं वह त्र्यवरा कहीजाती है । धर्मसंशय में इन्हीं के द्वारा निर्णय होना चाहिये अथवा एक भी वेदवित् आपत् में जिस धर्म की व्यवस्था करे वह माननीय है न सहस्रों मूर्खों का कल्पित धर्म । सत्य भाषणादि व्रत से रहित स्वाध्याय से भ्रष्ट केवल जाति के आश्रय से आजीविका करनेवाले सहस्रों मूर्खों के झुण्ड को सभा वा समाज नहीं कहसकते । ऐसे लोग धर्म के मर्म को नहीं जान सकते और न उनकी दी हुई व्यवस्था माननीय होसकती है ऐसाही याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ९ और अत्रिस्मृति श्लोक १४०, १४१ में लिखा है । और विदुरजी ने महाभारत में कहा है कि वह सभा नहीं जहां वृद्ध न हों और वह वृद्ध नहीं जो धर्म को न कहे वह धर्म नहीं जो सत्य न हो और वह सत्य नहीं जिस में छल हो । जैसा कि–

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, न ते वृद्धा येन वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में मनुष्य जानकर इस बातपर कुछ ध्यान नहीं देते और शास्त्र के लेखानुसार विद्वान् धर्मात्माओं से धर्म की परीक्षा नहीं कराते और आप और अपनी आगे आनेवाली

सन्तानों का सत्यानाश करते चलेजाते हैं। प्रियवरो ! थोड़े थोड़े धन के निर्णय करने के लिये बड़े २ वकीलों को सोने की परीक्षा के लिये चतुर सुनार को बुलाते हो । क्या यह धर्मपरीक्षा मूर्ख, अविद्वान्, लोभी करसकते हैं ? कदापि नहीं । कदापि नहीं । कदापि नहीं। इस लिये इस कार्य्य को महत्कार्य्य जान उत्तम पुरुषों से परीक्षा कराकर स्वीकार कीजिये जिससे भारत सन्तान को सुख प्राप्त हो ॥

प्रियमात्मनः ।

जब शास्त्रों में धर्म मर्यादा के अनुसार किसी विषय में दो भिन्न २ आज्ञाएँ पाई जावें तो उनमें से किसी एक के अनुसार जो अपने मन बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल हो कार्य्य करना आत्मप्रिय कहलाता है। प्रियवरो ! इसी धर्म पर हमारे अनेकान जन्मों का सुधार निर्भर है इसलिये लल्लोपत्तो में डालकर समय को वृथा न खोइये, वरन अच्छे प्रकार तर्क कर धर्म को निश्चय कीजिये । देखिये मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा देरहे हैं–

आर्षन्धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥

इसलिये आप निर्भय हो शान्तिपूर्वक धर्म का निर्णय कर सत्यासत्य को विचार सनातन धर्म के अनुकूल पञ्चकर्मों को श्रद्धा और भक्ति से यथा विधि से यथावत् कीजिये ॥

नित्यकर्म ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो ! कर्म दो प्रकार के होते हैं एक नित्यकर्म जो प्रतिदिन किये जाते हैं दूसरे नैमित्तिककर्म जो किसी नियत समय पर होते हैं । इस स्थान पर हम उन नित्यकर्मों अर्थात् पञ्चयज्ञों की व्याख्या करते हैं जिन की आज्ञा सत्यशास्त्रों में पाई जाती है और प्राचीन पुरुषों ने इन यज्ञों को प्रतिदिन कर महान् सुख उठाया था । परन्तु शोक वर्त्तमान काल में बहुधा जन इन यज्ञों के नाम तक भी नहीं जानते फिर करना कैसा । प्यारे भ्रातृगणो इन पञ्चयज्ञों के करने से

आत्मिक ज्ञान की उन्नति होती है वरन यों कहा जावे यह सब कर्म परमात्मा के पूर्णज्ञान होने के साधन हैं इस लिये प्रतिदिन इन के करने की आज्ञा है। देखिये विदुर जी महाराज ने विदुरनीति में लिखा है—पञ्चयज्ञों को प्रतिदिन यत्नपूर्वक करना उचित है—

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्य्याः प्रयत्नतः।

यही पाराशरस्मृति के १२ अध्याय ५ श्लोक में आज्ञा है॥

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतातिथिपूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने॥

शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक २ और पराशरस्मृति अ० २ श्लोक १५ में लिखा है कि जो पञ्चयज्ञों का त्याग करता है वह पञ्चहिंसाओं का प्रतिदिन भागी होता है संवर्त्तस्मृति के प्रथम अध्याय के श्लोक ३५ में भी यही उपदेश है—

अतः पञ्चमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः। न हापयेत्० ॥

चाणक्यनीति में लिखा है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं हि सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्म्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतः सेवितव्यं क्षीणे मूले नैव शाखा न पत्रम्॥

कि विचारवान् पुरुष उस वृक्ष की नाईं हैं जिस की मूल सन्ध्या और शाखा वेद है उस में धर्म कर्म रूप पत्ते लगे हुए हैं अतएव मूल अर्थात् सन्ध्या का सेवन यत्न से करना चाहिये क्योंकि मूल के नष्ट होने से अर्थात् सन्ध्या का अभ्यास त्याग देने से न तो वेदरूपी शाखा और न धर्म कर्मरूपी पत्र ही स्थित रह सकते हैं अर्थात् सब नष्ट हो जाते हैं। भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध के ७० अ० में लिखा है कि जो मनुष्य विना पञ्चयज्ञ किये भोजन करते हैं वह मानो रुधिर पीते हैं। श्रीमद्भागवतस्कन्ध ५ अ० ६ श्लोक १८ में लिखा है कि ऐसे मनुष्य कौओं के समान हैं और मर कर ऐसे स्थान पर जन्म लेते हैं जहां कृमि भोजन को मिलते हैं। लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध के २६ अ० में यही आज्ञा है कि जो इन पञ्चयज्ञों के किये विना भोजन करता है वह शूकर की योनि में जाता है—

अकृत्वा च मुनिः पञ्चमहायज्ञान् द्विजोत्तमः ।
भुक्त्वा च शूकराणान्तु योनौ व जायते नरः ॥

श्रीमद्भागवतस्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० ८४ में जब बलदेव जी महाराज संन्यास धारण करने को उद्यत हुए तब श्रीकृष्ण महाराज ने उन से कहा कि जो पुरुष गृहस्थ होकर देव, ऋषि, पितर ऋण उद्धार किये विना पञ्चकर्मों को त्यागता है वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। ऐसा ही तुलाधार ने जाजलि मुनि को उपदेश दिया है और राजा पाण्डु का भी यही कथन है। इस लिये प्यारे सुजनो! प्रेम उत्साह के साथ इस सनातन आज्ञा के अनुकूल पञ्चयज्ञ करने का प्रचार करो और वह पञ्चयज्ञ यह हैं जैसा कि मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ७० में लिखा है–

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञो तिथिपूजनम् ॥

(१)–वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासन अर्थात् ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना, करना आदि को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं–

(२)–अग्नि में पुष्टिकारक, सुगन्धित, रोगनाशक, मिष्ट इन चार प्रकार के पदार्थों को मन्त्र सहित डालने को देवयज्ञ कहते हैं–

(३)–माता, पिता, गुरु, आचार्य्य के श्रद्धापूर्वक तृप्त करने का नाम तर्पण है–

(४)–भोजनों के समय मिष्टान्न को मन्त्रसहित अग्नि में चढ़ाना फिर सब पदार्थों में से छः ग्रास निकाल कर कङ्गाल रोगी आदि को देने का नाम बलिवैश्वदेव है–

(५)–पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्योपदेशक, शान्ति-चित्त, निर्भय इत्यादि गुणयुक्त, संन्यासी भ्रमण करता हुवा गृहस्थ के यहां आकर निवास करे, तो उस का अच्छे प्रकार सत्कार कर के तृप्त करने को अतिथियज्ञ कहते हैं ॥

ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ श्लोक ५० में लिखा है कि वेदाध्ययन से ब्रह्म को, श्रद्धा से स्वधा कर के पितरों को, होम

कर के देवताओं को, वलिवैश्वदेव कर भूतों को, अन्न और जल से मनुष्यों को, तृप्त करना परम आवश्यक है ॥

वेदाध्यायः स्वाधास्वाहावल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥

इसी प्रकार याज्ञवल्क्यस्मृति के स्नानप्रकरण के प्रथम श्लोक में लिखा है—

वलिकर्म स्वधा होमः स्वाध्यायातिथिसत्क्रयः ।
भूतपितृपरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥

यही उपदेश शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक ३, ४ और कात्यायनस्मृति खण्ड १३ श्लोक २ में पाया जाता है ॥

ब्रह्मयज्ञ ।

सन्ध्या ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो! सन्ध्या काल में ईश्वर की उपासन वेदमन्त्रों से करने की आज्ञा है उस में भी गायत्रीमन्त्र के जपने का उपदेश किया है। और बहुधा हमारे प्राचीन ऋषि मुनि और प्राचीन पुरुष इसी मन्त्र के द्वारा परमेश्वर की उपासना करते थे। स्मृतिकारों ने इसी मन्त्र को वेदमाता कहा है। और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी इस की बड़ी महिमा दिखलाई है। देखिये हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ४ में लिखा है "गायत्री वेदमातरं" और व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २१ में भी गायत्री को वेदमाता माना है। शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक ११ में लिखा है कि गायत्री वेदों की माता है यह पापों का नाश करती है और अभीष्ट फल को देती है जैसा कि—

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।
गायत्रीवेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥

और १२ श्लोक में लिखा है कि गायत्री से परे पवित्र करने वाला कोई मन्त्र नहीं नरकरूपी समुद्र में पड़ने वाले मनुष्यों को हाथ पकड़ कर निकालने वाली गायत्री है और श्लोक १६, १७ में इस के जप से

स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति का माहात्म्य बतलाया है संवर्त्तस्मृति के २१७ श्लोक में लिखा है कि सब पापों की शुद्धि के लिये वेदों की माता गायत्री का वन में नदी के तट पर जाप करे जैसा कि—

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥

और श्लोक २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२४, में गायत्री और दक्षस्मृति के २ अ० के ४२ श्लोक में लिखा है कि "गायत्रीजप उच्यते" मनुस्मृति अ० ३ के श्लोक ८३ में लिखा है कि सर्वोपरि गायत्री मन्त्र है जैसा कि "सावित्र्यास्तु परं नास्ति" फिर इसी के जप की आज्ञा ७९, ७७ श्लोक में की है और श्लोक ७८ में लिखा है कि इस के जप से मनुष्य बड़े पापों से छूट जाता है। और ८२ श्लोक में लिखा है परम पदको पाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लोक २२, २३ और शिवपुराण विन्ध्येश्वर संहिता अ० २३ श्लोक १८ में गायत्री के जपकी आज्ञा है । हारीतस्मृति अ० ४ श्लोक ४९ में कहा है कि गायत्री के प्रतिदिन जप करने से पापों का नाश होजाता है जैसा "गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते' मनुजी महाराज ने प्रायश्चित्त विषय में लिखा है कि जहां तक होसके गायत्री का जप करे "सावित्रीं च जपेन्नित्यं" और पाराशरस्मृति में "गायत्री परमोत्तमा" अर्थात् गायत्री सब मन्त्रों से उत्तम है। संवर्त्तस्मृति श्लोक २२१ पापियों के पाप का शोधक गायत्री से परे कोई मन्त्र नहीं इसी लिये ओंकार महाव्याहृति समेत गायत्री का जप करें। गरुडपुराण अ० ८ में लिखा है कि प्रेतयोनि से छूटना चाहे वह नग्न होकर गायत्री का जप करे । लिङ्गपुराण अ० १५ में गायत्री के जप की आज्ञा है और २३ अ० में बड़ी महिमा दिखलाई है। भविष्यपुराण अ० ३ में कहा है कि जो गायत्री का जप करता है बड़े पद को पाता है। गीता अ० १० श्लोक ३५ में श्रीकृष्ण महाराज का वचन है कि सब मन्त्रों में गायत्री श्रेष्ठ है। शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक १ में गायत्री को श्रेष्ठ मन्त्र माना है " सावित्री विशिष्यते "। इस के उपरान्त हमारे प्राचीन पुरुषा भी इसी मन्त्र से उपासना करते थे

देखो अयोध्याकाण्ड सर्ग ६ श्लोक ५ से प्रत्यक्ष प्रकट है कि श्रीरामचन्द्र महाराज सन्ध्या कर गायत्री का जप करते थे और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण महाराज का गायत्री मन्त्र से परमात्मा की उपासना करना प्रकट है। इसके उपरान्त इसी पुस्तक से प्रकट होता है कि जड़ के पिता ने गायत्री का उपदेश किया था॥

प्रिय मान्यवरो! जब सम्पूर्ण ऋषि मुनि हमको गायत्री का उपदेश करते हैं और प्राचीन पुरुषाओं ने इस के जप से महान् सुखोंको प्राप्त किया फिर हम नहीं जानते सर्वमान्य मन्त्र को त्याग कल्पित और आधुनिक मन्त्रों का क्यों जाप करते हैं जिनकी किसी स्मृति के कर्त्ता ने आज्ञा नहीं दी और हमारे परमपूज्य श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्ण इत्यादि ने उन मन्त्रों का मान्यभी नहीं किया अर्थात् आप भी इसका जपनहीं किया वरन उसी परम पवित्र वेदोक्त मन्त्रहीका जपकर संसारके लिये उपदेश भी किया। वर्त्तमान समयमें ऐसे मन्त्रों की संख्या अनगणित होगई थी जिनके जप के बड़े माहात्म्य भी स्वार्थीजनों ने बनालियेहैं मिथ्या जान शीघ्र त्यागकर गायत्री मन्त्र से ही परमेश्वर की उपासना करो, क्योंकि अत्रि ऋषि महाराज ने अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में लिखा है कि जो मनुष्य सायङ्काल और प्रातःकाल प्रमाद से सन्ध्या का त्याग करते हैं वह एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होते हैं मनुस्मृति अ० २ श्लोक ८० में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य गायत्री का जप नहीं करता और अपने धर्म्मों को नहीं करता तो उसको साधुजन निन्दा करते हैं। और इसी अध्याय के १०२ श्लोक में लिखा है जो द्विज प्रातः सायङ्काल में सन्ध्या के समय गायत्री का जप नहीं करता वह शूद्र के समान है अतः द्विजों के समान कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता जैसा कि—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

इसलिये (ओं नमोनारायण) और (ओं नमोभगवते वासुदेवाय) इत्यादि मन्त्रों को त्याग—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जिनको द्विज कहते हैं

एक ही गायत्री से परमात्मा की उपासना कीजिये क्योंकि तीनों वर्णों को द्विज कहा है तीनों को वेद के पढ़ने का अधिकार है और यह मन्त्र भी य० वेद के ३६ वें अध्याय का तीसरा मन्त्र है फिर इसके भिन्न होने का क्या कारण ? श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र आदि ने भी गायत्री के कहीं भेद नहीं लिखे मनु जी महाराज ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड में तो भेद लिख दिया परन्तु तीनों वर्णों की तीन गायत्री होने वा जप करनेका उपदेश नहीं किया वरन मनुस्मृति अ० २ श्लोक ७७ में स्पष्ट लिखा है (ओं भूः, भुवः, स्वः) और गायत्री के तीनों पाद जो तीनों वेदों से निकाले हैं। तीनों वर्णों को गांव के बाहर इसी के जप करने की आज्ञा अ० २ श्लोक ७९ में की है जैसा कि—

सहस्त्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाऽहिर्विमुच्यते ॥

फिर भेद कैसा ? इसके उपरान्त तीनों वर्ण के यहां १६ संस्कार होते हैं उनके यहां यही—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे० इत्यादि ॥
शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये शंयोरभिश्रवन्तु नः ।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाविश्ववेदाः०इत्यादि
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्० ॥

इत्यादि वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं और शनैश्चर बृहस्पति की प्रसन्नता और अकाल मृत्यु से बचने के लिये पुरोहित जी अपने यजमानों से इन्हीं का जप कराते हैं। इसके उपरान्त सम्पूर्ण सत्यशास्त्रों में वेदारम्भ संस्कार के समय प्रथम गायत्री मन्त्र के उपदेश की आज्ञा है इसी कारण गुरुमुख से सुने जाने के कारण गुरुमन्त्र कहते हैं किसी और मन्त्र के उपदेश के सुनाने की आज्ञा किसी स्मृतिकार ने नहीं दी। और न उपदेश किया कि ब्राह्मण को ब्रह्म और क्षत्री को क्षत्री और वैश्य को वैश्य गायत्री सुनाना, यह इसके अतिरिक्त ब्रह्म गायत्री के

तो यही अर्थ हैं कि ऐसा छन्द जो ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराता है जिसकी सबको आवश्यकता है परन्तु क्षत्रीगायत्री और वैश्य गायत्री के क्या वही अर्थ हैं जो उस समय के लिये आवश्यक हैं? कदापि नहीं। इसके उपरान्त पुराणों में भी तीनों वर्णों के लिये ब्रह्म गायत्री के जप करने की आज्ञा है। देखो लिङ्गपुराण के उत्तरार्द्ध के अध्याय १० और २२ में स्पष्ट लिखा है और भविष्यपुराण अ० ३ में यही लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य उस गायत्री का जप करे जिस को ब्रह्मा ने तीनों वेदों से निकाला है जप करना चाहिये इसके अतिरिक्त शङ्खस्मृति में स्पष्टरूप से गायत्री का पता भी बतला दिया है देखो शङ्खस्मृति अ० १२ श्लोक १ में लिखा है कि प्रथम मन्त्र के देवता, ऋषि, छन्द को देख ले अर्थात् उस गायत्री का सूर्य्यदेवता, विश्वामित्र ऋषि और गायत्री छन्द हो उसका ही जप करना चाहिये ऐसा ही दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४३ में लिखा है यही गायत्री सब से श्रेष्ठ है। जैसा कि—

सविता देवता यस्या मुखमग्निस्त्रिपात् स्थिता।
विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते॥

यहे सब बातें इसी गायत्री मन्त्र में हैं। इस के अनन्तर वेदों में अनेक स्थानों पर एक विचार और सब आशय और पुरुषार्थ सब समान और अभिन्न हों। जैसा कि—ऋ० अ० ८ व० ४९ मं० ३

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

प्यारे! इसी भिन्नताने तो भारत का चौपट कर दिया अब विचारपूर्वक विचार कर एक ही गायत्री मन्त्र से दोनों काल परमात्मा की उपासना कीजिये देखिये य० अ० २१ मं० ५० में लिखा है—

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्यऽउषाभ्या दधरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥

अर्थात् जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य्य चन्द्रमा अर्थात् सायङ्काल प्रातः काल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम २ यत्न करते हैं तथा

इन्हीं दोनों वेलाओं में सोने और आलस्य प्रमाद को छोड़ कर ईश्वर का ध्यान करते हैं बहुत धन अर्थात् उत्तम सुखों को पाते हैं। अथ० का० १९० अनु० ७ नं० ३,४ में लिखा है कि हम लोग प्रातः सायङ्काल उपासना करते हुए सौ वर्ष तक ऋद्धि सिद्धि और पुष्टि को प्राप्त हों।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधिवयं त्वेन्धानास्तन्नं पुषेम ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥

और कठोपनिषद् में भी लिखा है कि जो प्रातः सायङ्काल परमेश्वर में ध्यान लगाता है वह कभी व्याकुल नहीं होता। मनु अ० २ श्लोक १०१, १०२, १०३ याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ब्रह्मचर्य्य प्रकरण श्लो० २४ व २५ महाभारत वनपर्व अ० १९९ श्लोक ८१ भविष्यपुराण अ० ३ और श्लोक ७१७ में मार्कण्डेयपुराण अ० ३४ में मन्दालसा ने कहा है शिवपुराण विन्ध्येश्वरसंहिता अ० ९ श्लो० ३७ वाल्मीकीय रामायण बा० स० ३५ श्लो० ३० और अयोध्या का० स० ४५ श्लो० १३ और स० ७४ श्लो० ४३ से सन्ध्या करने के दो ही काल पाये जाते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७ अ० ११ श्लो० १ युधिष्ठिर को नारद जी ने प्रातः सायङ्काल ही परमेश्वर की उपासना करने का उपदेश किया है—

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान्।
उभे सन्ध्ये च यतवाग्जपन् ब्रह्म सनातनम् ॥

अत्रिस्मृति श्लो० ६३ में "सायं प्रातस्तु यः सन्ध्यां" विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक १८, २३ से भी दो काल—

सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदासूर्योदयना-
त्पुरा—१८ सायं सन्ध्यामुपासीत ।

अ० २ के श्लोक ३१, ३७ से और हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ७, ८ और अ० ४ श्लोक १४ संवर्त्तस्मृति श्लोक ८ और बृहस्पतिस्मृति के ७४ में कात्यायनस्मृति प्रपाठक २ के श्लो० ११ में दो काल ही शास्त्र की

आज्ञा है जैसे "संध्याद्वये" शङ्खस्मृति अ० १० में भी द्विजातियों को दोनों काल की संध्या करने की विधि बताई है इस से भी दो ही काल सिद्ध होते हैं—

एष एव विधिः प्रोक्तः सन्ध्यायाश्च द्विजातिषु ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंतिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥

दक्षस्मृति अ० २ में भी दो ही सन्ध्या काल बतलाये हैं बुद्धि से विचार करने से भी जाना जाता है कि यही दोनों समय सन्ध्या करने के उत्तम हैं क्योंकि विद्या प्राप्त करने और सांसारी कार्य्यों के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है, यदि प्रातःकाल से सायङ्काल तक सन्ध्या किया करे तो हल जोतना, अन्न का व्यापार करना, विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाना और आचार्य्य को पढ़ाना राजकर्म चारियों को प्रजा की रक्षा करना क्यों कर सम्भव है, फिर भला सिवाय प्रातःकाल और सायङ्कालके दिनभर मन एकाग्र नहीं रहसक्ता और विना एकाग्रता मन के वेगार टालने के अनुसार सन्ध्या करना न करना एक सा है, दूसरे वह समय जो सांसारी कार्यों के करने में व्यय होता था ऐसी सन्ध्या करने में वृथा जाता है और कुछ प्राप्त नहीं होता । इस के उपरान्त सन्ध्या शब्द इस बात की प्रत्यक्ष गवाही देरहा है कि दोनों समय मिलने के अतिरिक्त और कोई समय सन्ध्या का नहीं है, सन्ध्या शब्द के अर्थ मिलने के हैं, जैसे दिन रात या रात दिन प्रातःकाल सायंकाल के समय आपस में मिलते हैं ऐसे ही समय पर जीव और परमात्मा भी आपस में मिलें, और इन्हीं दोनों समय पर एक विशेष गुण यह भी है कि स्वाभाविक रीति से मनुष्य को इन दोनों समयों पर प्रसन्नता होती है और मन एकाग्र होता है और पेट भी ख़ाली होता है कि जिस के कारण अच्छे प्रकार मन लगा कर परमेश्वर का ध्यान होता है जो और किसी समय पर किसी प्रकार से नहीं होसकता । शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाइयों ने अन्य देशीय लोगों की देखा देखी मध्याह्न काल में भी सन्ध्या करने का समय नियत कर दिया, यदि मध्याह्न काल के समय दोनों पहर मिलते हैं तो प्रत्येक घण्टे और

प्रत्येक मिनट और सेकेंड और पल पर दो मिनट दो सेकेंड और दो पल भी मिलते हैं यदि इन का मिलना भी सन्ध्या शब्द के अर्थ में समझा जाय तो फिर यही योग्य है कि प्रत्येक समय सन्ध्या के उपरान्त कोई सांसारिक कार्य्य न करनाचाहिये फिर विचारिये कि सांसारिक कार्य्य क्योंकर होंगे। इसी कारण हारीतस्मृति अ० ४ में लिखा है कि जो द्विज प्रातः सायङ्काल सन्ध्या को त्यागता है वह नरक में जाता है।

तस्मान्नलङ्घयेत्सन्ध्यांसायंप्रातःसमाहिताः ।
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥

अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक ६३ में लिखा है कि जो प्रमाद से प्रातः सायङ्काल की सन्ध्या का त्याग करे वह स्नानकर एक हजार गायत्री के जप से शुद्ध होता है और मनुस्मृति अ० २ श्लोक १०१ में लिखा है कि जो द्विज दोनों कालकी सन्ध्या न करे उसको शूद्र समझना चाहिये और श्रीमहाराज भरत ने भी जब कौशल्या से शपथ की है वहां यही कहा है यदि श्रीरामचन्द्र महाराज मेरी सम्मति से वन को गये हों तो मुझ को वह पाप लगे जो दो काल सन्ध्या न करने वालों को होता है-इस के अतिरिक्त प्रातः सन्ध्या पूर्वाभिमुख और सायंसन्ध्या पश्चिमाभिमुख करने की आज्ञा है-परन्तु जिन पुराणों में तीन काल सन्ध्या करने की आज्ञा की है उन में मध्याह्न काल में किसी दिशा का कोई विधान नहीं किया-इस के उपरान्त प्रातः सन्ध्या तारे रहते समय आरम्भ करने की आज्ञा है और सायं सन्ध्या उस समय प्रारम्भ करे जब कि सूर्य्य छिपने पर हो परन्तु मध्याह्न सन्ध्या का कोई नियम नियत नहीं किया।

इस लिये सन्ध्या दो ही समय करना योग्य है, हां यह बात ठीक है कि परमेश्वर को सर्वव्यापक जान कर किसी समय और किसी स्थान पर उस की याद मन से दूर न करे, परन्तु यह उसी समय हो सकता है कि जब हम परमेश्वर के गुणों से जानकार हो उसी के अनुसार अपने आचरण को सुधारें, जैसे परमेश्वर सत्यरूप है वैसे ही मनुष्य को योग्य है कि किसी काम में सत्य को हाथ से न जाने दे अर्थात्

सत्य ही बोले, सत्य ही कहे, सत्य ही माने—यही परमेश्वर का प्रत्येक समय का जप है।

प्यारे सज्जन पुरुषो! इस का नाम जप नहीं है कि हाथ में गज़भर की माला और जिह्वा से प्रत्येक समय राम २ कृष्ण २ ओं २ शिव २ आदि की रट लग रही है और मन में नाना भांति के रागद्वेष भरे हुए हैं, इस जप से कुछ भी लाभ नहीं होगा जब तक उस के गुणों को जानकर उन को काम में न लाया जावे, जैसा कि मिश्री २ कहने से कुछ लाभ नहीं होसकता या इस बात के जान लेने से कि मिश्री मीठी होती है, जब तक कि मिश्री खाई न जाय। वा मिश्री का नाम लेकर संखिया खा लिया जावे तो उस से मुंह मीठा न होगा वरन उलटा कड़ुआ हो जायगा जिस का अन्तिम फल मरण होगा, अर्थात् जब तक राम शिव ओं आदि शब्दों के अर्थ मालूम न हों और उन पर वर्ताव न हो तब तक कुछ लाभ नहीं हो सकता जैसा कि कहा है—

माला तेरी काठ की, धागा दई पिरोय।
मन में गांठी पाप की, राम जपे क्या होय॥

ऐसा ही य० अ० ६ मं० ६ में लिखा है कि धर्म का मूल आचार ही है जैसा कि—

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा॥

जब तक मनुष्य श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता और जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं करता तब तक उस का पूरा २ आत्मबल नहीं होता और विना आत्मबल के पूर्ण सुख नहीं मिल सकता और वशिष्ठस्मृति में लिखा है—

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडंगा अखिलाः सपक्षाः
के प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः॥

जैसे अन्धे मनुष्य को रूपवती स्त्री से सुख नहीं होता वैसा ही जिन के आचार अच्छे नहीं उन को वेद उन के अङ्ग पढ़ने और यज्ञ करने से कुछ फल नहीं मिलता। इस के अतिरिक्त और भी कहा है कि-

आचारः परमोधर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥

अर्थात् आचार ही परमधर्म है और पाराशर दक्ष ने कहा है-

चतुर्णामपि वर्णानामाचरो धर्मपालनम् ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

चारों वर्णों को आचार से रहना धर्म है और जो भ्रष्ट होते हैं वह धर्म नहीं जानते। मनु जी ने कहा है-

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोल्पायुरेवच ॥

जिसके कर्म अच्छे नहीं होते उसकी निन्दा होती है वही सदा दुःखी रहता है रोगादि उसका पीछा नहीं छोड़ते उसकी आयु क्षीण होजाती है। और भी कहा है—

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

जिसका मन विषय भोग में लगा हुआ है उसको दान यज्ञ नियम तप किसी का फल नहीं मिलता मुख्य कथन यह है कि विना शुद्ध आचरण के कुछ लाभ नहीं इसीलिये य० अ० ९ मन्त्र २ में आज्ञा दी है इसलिये गायत्री का जप करते हुए उसकेही अनुकूल आचरण सुधारते हुये उपासना करने से लाभ होता है अन्यथा नहीं इसलिये वेद के पढ़ने और उपकार के करने और पञ्चयज्ञों के करनेमें सदा तत्पर रहना चाहिये जैसा मनु जीने लिखा है॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैवहि ॥

परन्तु आज कल के पण्डित सूतक पातक के ढकोसलों की टट्टी की आड़ में नित्यकर्म करने में पाप बतलाते हैं यह अत्यन्त अज्ञानता

की बात है क्योंकि श्वास प्रश्वास प्रतिदिन चलते रहते हैं खाना पीना प्रतिदिन होता है फिर क्या कारण है कि अच्छे कर्म सूतक पातक के मिथ्या प्रपञ्चों के कारण छोड़ दिये जावें देखिये अत्रिस्मृति श्लोक १०२ जहां सूतक का वर्णन है वहां लिखा है कि वेद और स्मृतियों में कहे हुए नित्य कर्म (सन्ध्या आदि) नैमित्तिक कर्म काम्य यज्ञादि जो स्वर्ग के साधन (दानादि) हैं उन्हें सदा करता रहे—

तस्मात्कर्म सदा कुर्यात् श्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥

देखो झूठ बोलने से सदा पाप होता है उसी प्रकार सत्य बोलने से पुण्य होता है तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सकता है? कदापि नहीं। दक्षस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है कि स्नान, आचमन, जप, दान और होम विना किये जो भोजन करते हैं उन सब को जीवन पर्य्यन्त अशौच रहता है जैसा कि—

न स्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्वा हुत्वा च भुञ्जतः ।
एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥

तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप होसक्ता है, कदापि नहीं कदापि नहीं ॥

कहानी ।

एक योग्य पुरुष बहुत दिनों से बीमार थे जिसके कारण उन से चलना फिरना न होता था रात्रि दिन चारपाई पर पड़े रहते थे परन्तु स्थिर स्वभाव और समय के बन्धानू थे । प्रति दिन प्रातःकाल और सायङ्काल चारपाई ही पर पड़े २ ईश्वर का ध्यान किया करते थे, एक दिन प्रातःकाल एक तरुण मित्र उन से मिलने को गये तो देखा कि आप भजन में मग्न होरहे हैं इसलिये चुपचाप बैठगये, जब वह सज्जन पुरुष निश्चिन्त हुये तब उस मित्र ने उनसे कहा कि अजी साहिब ! चारपाई पर पड़े २ अशुद्ध दशा में भजन करना योग्य नहीं ऐसे भजन से न करना भला है। तब उस सज्जन ने पूछा कि हे मित्र ! किस

दशा में ईश्वर को भूलना चाहिये ? तो उसने उत्तर दिया कि जब ऐसी दशा हो जैसी आपकी । ऐसी बातके सुनतेही सज्जन पुरुष की आंख से आंसू निकल पड़े और चिल्ला उठा कि यदि इस अशुद्ध दशा में ईश्वर मुझे भूल जाता तो मेरी क्या दशा होती ॥

नाम के पण्डितो ! हे कृतघ्नो ! तुम किस मुंह से कहते हो कि आज हम सूतक पातक के कारण भजन नहीं कर सकते, जब ईश्वर सब दशाओं में तुम्हारी सुध लेता है तो तुम्हें कब योग्य है कि उस के धन्यवाद करने से बन्द रहो । इस के उपरान्त शरीर भी अनित्य पदार्थ है इस लिये धर्म करने में कभी किसी दशा में न रुकना चाहिये, क्या ऐसी दशा में परमेश्वर की प्रजा नहीं रहती जो उसकी आज्ञा को उन दिनों में नहीं मानती, क्या पवन पानी को ग्रहण नहीं करते, क्या अन्न का भोग नहीं लगाते, फिर बड़े शोक की बात है कि शरीर का नित्यकर्म किसी दशा में बन्द न हो और आत्मिक पञ्चयज्ञ बन्द कर दिये जावें, यह अज्ञान नहीं है तो क्या है ? इस लिये किसी दशा में शुभ कर्मों को न त्यागना चाहिये । ऐसा ही यजुर्वेद अ० ४० नं० २ में लिखा है कि संसार में कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवन हो तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे क्योंकि सांसारिक फल भोग की इच्छा से पृथक् होकर काम करतेहुए मनुष्य में वैदिक कर्म नहीं लिप्त होते । जैसा कि—

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

नित्य और नैमित्तिक कर्मों को जो लोग त्यागन कर, नगर को छोड़ जङ्गल चले जाते हैं वा नगर में रहते हैं और कहते हैं कि हम निष्काम होगये अर्थात् कर्मों के बन्धन से छूट गये उन को यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक स्थूल शरीर विद्यमान् है तब तक कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता ।

ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है और मनु जी महाराज भी यही कहते हैं, गीता में भी इस की साक्षी मिलती है

फिर भला कर्मों से कोई पृथक् हो सकता है ? जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वह पुरुषार्थी नहीं, आलसी हैं, और ईश्वरीय नियमों से या तो वह विलकुल अज्ञान हैं या अपने घमण्ड के कारण उस सच्चे नियम अर्थात् गायत्री मन्त्र पर दृष्टि नहीं डालते वह यह है—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥

अर्थ—(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिस में सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसा ही ओंकार के साथ परमात्मा का है इस से सब नामों का बोध होता हैं जैसे अकार से 'विराट्' जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है, 'अग्नि' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त होरहा है, 'विश्व' जिस में सब जगत् प्रवेश कर रहा है जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ अकार से जानना।

'हिरण्यगर्भः' जिस के गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं और जो सूर्यादि लोकों के प्रकाश करने वाला है इस से ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं ज्योति के अर्थ हिरण्य अमृत और कीर्ति हैं, वायु जो अनन्त वल वाला और सब जगत् का धारण करने वाला, 'तैजस' जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार से जानना चाहिये।

'ईश्वर' जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी, "आदित्य" जो नाश रहित है, 'प्राज्ञः' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना चाहिये।

यह सङ्क्षेप से ओंकार का अर्थ किया अब महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं—(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीवन का हेतु और प्राण से भी प्रिय है इस से परमेश्वर का नाम 'भूः' है, (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखोंसे अलग करके सर्वदा सुखमें रखता है इसलिये परमेश्वर

का नाम 'भुवः' है, (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता है और सब को ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इस से परमेश्वर का नाम 'स्वः' है यह व्याहृतियों का सङ्क्षेप से अर्थ लिखा गया।

अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं-(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का देनेवाला (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करने वाला सब सुखों का दाता (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है (तत्) उस को (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके बुरे कर्मों से पृथक् करके सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करें।

इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि सच्चित् आनन्द स्वरूप नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्याय कारी, सर्वव्यापक, कृपालु संसार का धारण करनेवाले परमेश्वर की यथाविधि सदाचार युक्त उपासना करें तो फिर किसी प्रकार के पाप नहीं लगते अर्थात् ऐसे पुरुष किसी प्रकार के पाप कर्म का मन से भी विचार नहीं करते॥

वेदपाठ।

प्यारे सुजनो! सन्ध्या करने के पश्चात् प्रतिदिन वेदपाठ करने की आज्ञा है देखो व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ९, १०, ११ दक्षस्मृति अ० २ श्लोक० २८ विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३ और मनु जी महाराज आज्ञा देते हैं कि जिस कार्य्य के करने से वेदपाठ करनें में विघ्न हो और धन भी मिलता हो तो भी उस वेदपाठ को न छोड़े क्योंकि वेद के पढ़ने से सब कार्य्य सिद्ध होते हैं॥

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।
यथा तथाध्यापयंस्तु साह्यस्य कृतकृत्यता॥

और अ० ४ श्लोक १९ में भी वेद पढ़ने की आज्ञा है श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि जो द्विज प्रतिदिन वेद पढ़ता है वह बड़े फल को पाता है संवर्त्तस्मृति के ९ श्लोक में लिखा है कि गायत्री जप के पीछे वेद पढ़ने का आरम्भ करे। प्यारे पाठकगणो! बहुधा आज्ञायें पाई जाती हैं कि सन्ध्या करने के पीछे वेदपाठ करना अभीष्ट है यथार्थ में इस से अनेकान्त लाभ हैं प्रथम तो वेद उपस्थित रहते थे द्वितीय कोई धोका नहीं देसकता था-तृतीय वेदानुकूल कर्म होते थे किसी प्रकार की भूल नहीं होती थी-चौथे सन्तानों के लिये दृष्टान्त होजाता था पांचवें वेदों की पुस्तकें घरों में रहती थीं जिस से उन के पठन पाठन की प्रथा प्रचलित रहती थी कि जिस के कारण ही देश में आनन्द ही आनन्द दृष्टि आता था, अब यह प्रथा उठ गई अर्थात् गायत्री मन्त्र के स्थान पर अनेकान्त मन्त्र हो गये गायत्री भी तीन और चौवीस हो गईं उसी प्रकार पूजन करने के पीछे भी सूर्य्यमाहात्म्य, गङ्गालहरी, विष्णुसहस्रनाम, पञ्चरत्न इत्यादि का पाठ करते हैं। इस लिये मान्यवर! वेदानुकूल गायत्री मन्त्र से दोनों समय शुद्ध आचरण करते हुए वेदादि सत्यशास्त्रों के पाठ का नियम प्रतिदिन करोगे तब ही हमारा और आप का कल्याण होगा।

देवयज्ञ-

प्रकट हो कि वेदादि सत्यशास्त्रों में दोनों काल हवन करने की आज्ञा है इसी को देवयज्ञ कहते हैं देखिये य० अ० ३६ मं० १२ में कहा है कि जो मनुष्य यज्ञादि से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं उन पर सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है जैसा-

शन्नो देवी रभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभि स्त्रवन्तुनः॥

और य० अ० १८ मं० ४२ में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं अर्थात् आप सुखी होकर औरों को भी सुख देते हैं जैसा कि-

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातुतस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥

और संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ८ में लिखा है। अग्निकार्यं च कुर्वीत। और व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २४ में आज्ञा है कि "मन्त्रहुतिक्रिया" कात्यायनस्मृति खण्ड-३१७ में भी दोनों काल अग्निहोत्र की आज्ञा है। दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २३, ३८ में भी यही उपदेश है "सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते" विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३, ३७ हारीतस्मृति अ० १ श्लोक २८—कृतहोमस्तु भुंजीत सायंप्रातरुदारधीः। और अ० ४ श्लोक २० शङ्खस्मृति अ० ५ श्लोक १५ "सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि" याज्ञवल्क्यस्मृति अ० २ श्लोक २५ अग्निकार्यं ततः कुर्यात्। गीता अध्याय ३ श्लोक १४ में उपदेश है कि सकल प्राणियों का जीवन अन्न से होता है और अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है इसलिये—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

ऐसा ही विष्णुपुराण अ० १ और य० अ० ३ मं० ४९ में लिखा है चाणक्यनीति में लिखा है, "अग्निहोत्रफलो वेदः" अर्थात् वेद पढ़ने का फल उसी समय होता है जब मनुष्य अग्निहोत्र करता है इसी प्रकार विदुरनीति में आज्ञा है और ऐसा ही नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा है शान्तिपर्व में नकुल महाराज का वचन है कि यज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। देवस्थानी महर्षि का वचन है कि यज्ञ करने से मनुष्य की सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती हैं—यम ने गोतम से कहा है कि अश्वमेधयज्ञ करने से उत्तम लोक मिलता है राजा ययाति का वचन है कि यज्ञ करने से दीर्घ आयु होती है। विदुर महाराज कहते हैं यज्ञ करना धर्म का एक लक्षण है। भीष्म जी कहते हैं कि अग्निहोत्र करने से ब्रह्मलोक मिलता है। और मयूररश्मिक ऋषि का कथन है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है। इसी पर्व के अ० ५३ से प्रकट है कि श्रीकृष्ण महाराज प्रतिदिन हवन किया करते थे और ऐसा ही श्रीमद्भागवतस्कन्ध

१० उत्तरार्द्ध अ० १ श्लोक २४, २५ में लिखा है। वाल्मीकीय रामायण से प्रकट है कि राजा दशरथ जी के सन्तान उत्पन्न नहीं होती थी उस समय महात्मा विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियों ने अग्निष्टोम यज्ञ कराया था। श्रीरामचन्द्र महाराज जब वन को गये थे तो उन्हों ने विपत्ति की दशा में भी अग्निहोत्र का परित्याग नहीं किया और आप ने भरत जी से भी अग्निहोत्र और यज्ञ करने के विषय में चित्रकूट पर पूछा था और रावण को मार कर राजसूय और राजा युधिष्ठिर ने गद्दी पर बैठ कर राजसूय यज्ञ किया था। राजा बलि ने सिद्धाश्रम पर एक बड़ा भारी यज्ञ किया था। आर्य्यावर्त्त देश में राजा सगर ने और राजा जनक ने मिथला देश में बड़ा भारी यज्ञ किया था—विश्वामित्र महाराज श्रीरामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा के अर्थ लेगये थे इस के उपरान्त प्राकृत नियमों के देखने से ज्ञात होता है कि वायु शुद्धि के दो ही मुख्य उपाय हैं प्रथम आंधियों का चलना द्वितीय वायु में सुगन्धित पदार्थ मिलाना, और आंधी आने का मूल कारण अग्नि है सूर्य्य की गर्मी का हवा पर बहुत असर होता है इस से वायु और आंधी चलती है, अर्थात् सूर्य्य की उष्ण किरणें वायु के परमाणुओं को स्थूल से सूक्ष्म कर देती हैं जिस से एक स्थान की हवा हलकी होकर दूसरे स्थान में जाती है और उस के स्थान पर दूसरी हवा आती है और इस परस्पर की टक्कर से हवा बहने लगती है, और अग्नि का यह स्वाभाविक गुण है कि जिस पर बल करती है उस के परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देता है इस के प्रभाव से हवा का परिचाल होता है और अधिक टक्कर से आंधियां आती हैं कि जिन से बहुत दिन का बसा हुआ दुर्गन्धित वायु प्रचण्ड वेग के कारण सब बाहर निकल जाता है और स्वच्छ वायु आजाता है इस के उपरान्त वृक्षों से भी सदा सुगन्धित वायु जिस को प्राणप्रद वायु कहते हैं निकला करता है, मानो परमेश्वर जगत् रक्षक स्वयं वायु की शुद्धि के लिये सूर्य्य के अग्नि और वृक्षों के साकल्य द्वारा हवन कर रहा है और जीवों को उपदेश करता है कि तुम लोग भी इसी भांति करो, पस इस शिक्षा और लाभदायक कार्य के अर्थ सुगन्धित रोगनाशक पुष्टिकारक पदार्थ जलाये जाते हैं,

क्योंकि वायु की दुर्गन्ध दूर करने से आरोग्यता मिलती है। यह तो सब मनुष्य जानते हैं कि पवन पानी के बिगड़ने से रोग की बहुधा उत्पत्ति होती है और इसी के अधिक बिगड़ने से विशूचिका आदि बड़े २ रोगों की उत्पत्ति होजाती है कि जिस से सहस्रों जीवों की हानियां होजाती हैं। डाक्टर वर्मेन ने कपूर अर्क को बना कर हज़ारों हैज़े के रोगियों को अच्छा किया है, लाखों शीशियां उन की प्रतिवर्ष बिकती हैं, वही कपूर हवन में पड़ता है। इसी भांति और पदार्थों के गुणों को जानो जो हवन में पड़ते हैं, यदि उन पदार्थों के अलग २ गुणों की व्याख्या की जाय तो एक पुस्तक बन जायगी इसलिये प्रत्येक के गुण नहीं लिखे। अग्नि में जो वस्तु पड़ती है उस के परमाणु भिन्न २ होकर वायुमण्डल में मिल जाते हैं क्योंकि प्राकृतिक नियम है कि हलकी वस्तु ऊपर को जाती है और भारी नीचे को आती है जैसे तैल पानी से हलका होने के कारण ऊपर रहता है और घी वा बर्फ़ आंच पर रख कर देखिये कि पिंघल कर पतला हो जाता है और भाफ उठने लगती है, थोड़ी देर पीछे देखिये तो कुछ नहीं रहता क्या वह नष्ट होगया? नहीं वह सूक्ष्म होकर हवा में मिल गया, यह पदार्थविद्या के जानने वाले भली भांति जानते हैं, यह बात भी प्रकट है कि किसी वस्तु का सर्वनाश नहीं होता केवल दशा बदल जाती है, वह जो उन से भाप बनती है हवा में मिल जाती है और भाप वायु में सर्वदा कुछ न कुछ मिली रहती है, अतएव यह शुद्ध वायु जहां २ स्पर्श करेगा वहां का दुर्गन्ध दूर होजायगा और इस भाफ से जो बादल बनेंगे उनसे शुद्ध वृष्टि होगी और शुद्ध वृष्टि से जल अन्न और वनस्पति आदि सकल पदार्थ शुद्ध होंगे जो सम्पूर्ण जीवों को आरोग्य-दायक और पुष्टिकारक होंगे। वर्त्तमान समय में जो लोग यह कहते हैं कि अन्न पूर्व समय का सा उत्पन्न नहीं होता और ओषधियों के गुण ग्रन्थों के लेखानुसार नहीं देख पड़ते, मनुष्य रोगी बलहीन अल्पायु होते जाते हैं और वृष्टि बहुत कम होती है सो यह सब बुराइयां हवन के न होने के ही कारण होरही हैं, हा! क्या शोक का स्थान है कि मनुष्यों ने हवन को यहांतक छोड़ दिया है कि मुर्दा जलाने में भी

जहां अतीव दुर्गन्ध फैलता है कोई प्रकार का सुगन्धित पदार्थ नहीं डालते केवल माशे भर घी चन्दन से उनकी खोपड़ी का मांस बघार देते हैं। बहुधा विदेशी जन कहते हैं कि भारतखण्ड में मुरदा जलाने की रीति बहुत अयोग्य है। सचमुच अब तो ऐसाही होगया है इस लिये मुर्दा जलाने के समय अवश्यही सुगन्धित द्रव्य डालने चाहियें ताकि यह दोष जो अज्ञान के कारण होरहा है जाता रहे॥

इसलिये प्रत्येक मनुष्यको प्रातःकाल और सायङ्काल हवन नैत्यिक धर्म जानकर करना योग्य है और पूर्व भरतखण्डीय ऐसा ही करते थे, जैसा कि हमने पहले वर्णन किया यदि सम्पूर्ण देश इस उत्तम कार्य्य को करने लगे और छः मासे घी और उसी के अनुसार कपूर आदि सामग्री डालें तो लाखों मन हवन सहज में ही होसकता है, इसलिये मन्त्रों सहित नित्यप्रति हवन करना योग्य है क्योंकि मन्त्रों में हवन करने के लाभों का वर्णन है और विना मन्त्र के कार्य्य करना ऐसा है जैसे किसी औषधि का विना गुण जानने के व्यवहार की कोई आज्ञा देदेवे तो क्या कोई उस दवा को किसी काम में लावेगा? कदापि नहीं, क्योंकि विना गुण के कोई कार्य्य शुद्धता से नहीं होता। अब इस समय संस्कृत विद्या के प्रचार कम होजाने से उन मन्त्रों के अर्थों को भी भूल गये इसी कारण तो हवन की प्रथा हमारे भारत से लुप्त होगई। अब जिस किसी के कोई शुभ कार्य्य होता है तो हवन क्या पुरानी लीकमात्र पीट दीजाती है, इसी एक छोटी बात से समझ लीजिये कि जहां मालिन फूल पत्ते लाती है उसीके साथ अपनी छोटी टोकरी में ५, ७ सिरकी सी पतली समिधें धर लाती है, शोक का स्थान है, कि यज्ञ का काष्ठ मालिन की टोकरी में! भला सरोवर सिमट कर कैसे घड़े में समा सकता है? प्राचीन इतिहास पुकार २ कर कहते हैं कि उन दिनों न केवल घर २ में वरन वनोपवन में तपोधन ऋषि मुनि अपनी २ कुटियों में बैठे सायङ्काल प्रातःकाल हवन करते थे कि जिन के स्वाहा शब्द की प्रतिध्वनि नभमण्डल में व्याप्त होरही थी, धर्मशील सम्पन्न सत्यव्रती अग्निहोत्री महात्माओं के शुद्ध तप यज्ञों से मलिनता ने भयभीत होकर ध्रुवों में शरण ली थी और पुराणों में जहां कहीं कुशल

प्रश्न किया है वहां राजाओं ने ऋषियों से प्रथम यही पूछा है कि हे भगवन्! आप कुशल से हैं ? और आप शान्तिपूर्वक निरन्तर यज्ञ किये जाते हैं ? वस्तुतः ऋषि मुनियों के आश्रमों की यही पहिचान थी उनके समीप वृक्ष यज्ञ धूम्र से धुमैले दृष्टि आते थे। देखो नित्य कृत्य के अतिरिक्त होली, दिवाली, श्रावणी, आदि पर्वों पर विशेष हवन होता था, क्योंकि इन दिनों में रोग अधिक उत्पन्न होते थे, उनके निवारणार्थ बड़ेहवन होते थे, जिस भांति शत्रु लोग विपक्षी का युद्ध सम्बन्धी पूरा सामान देखकर बारूदके धुयें की महक आतेही भयभीत हो भागते हैं इसी भांति विषूचिका बुख़ार आदि शत्रु हवनके धुएँकी गन्ध और स्वाहा की ललकार के मारे पलायित होजाते हैं। इसी कारण होली, दिवाली, श्रावणी आदि पर्व बड़े अवसर से नियत किये हैं, पर समय के एर फेर से दिवाली और श्रावणी पर हवन का नाम मात्र ही रह गया है, होली में अब भी काष्ठ जलता है परन्तु घी और सुगन्धादिक द्रव्यों का नाम भी नहीं लिया जाता॥

प्यारे भाइयो! बहिनो! प्रत्येक उत्सव पर जो घर में पदार्थ बनते हैं उनका यही अभिप्राय है कि प्रथम उन द्रव्यों से हवन कर तत्पश्चात् सम्पूर्ण घर के तथा अन्य जनों को भोग लगाना चाहिये परन्तु अब विना जगदीश्वर के भोग लगाने के आप भोग लगा जाते हैं यही बहुत अनुचित बात है, कदापि न करना चाहिये। यहां अपने परमेश्वर की आज्ञानुसार प्रत्येक उत्सव पर अच्छे प्रकार हवन कर देश का उपकार करना योग्य है। इस समय में बड़े मेलों में उखड़ते समय हैजा फैलता है उसका मुख्य कारण यही है कि हवन नहीं होता केवल भोजन बनाने आदि में जो आग जलता है उसकी गर्मी से दुर्गन्धित वायु हटता है परन्तु मेला उखड़तेही आग भी ठण्ढी होजाती है, इसी से पुनः दुष्ट वायु आक्रमण करलेता है साथही हैज़ा फैल जाता है और हज़ारो का भक्षण करजाता है॥

हे प्यारे सुजनो! जब तक प्राचीन रीत्यनुसार प्रति दिन और प्रत्येक होली आदि पर्वों और हर उत्सव पर हवन होने की रीति प्रचलित न होगी तब तक इस भारत में रोग ही रोग बना रहेगा

क्योंकि हज़ारों ओषधियों की ओषधि, लाखों स्वच्छता की एक स्वच्छता होम है, बिना इस के रोगों की शान्ति होना अतिकठिनहै जैसा कि भारतवर्ष में इस समय होरहा है, यदि भला चाहो तो अपनी प्राचीन रीति के अनुकूल जैसा ऋषि मुनि महात्माओं ने नित्य होम करने की आज्ञा दी है करना योग्य है, क्योंकि हुतद्रव्यों से वायु शुद्ध आरोग्यता देता है और वृष्टि शुद्ध होती है और अन्न वनस्पति स्वच्छ और रोगनाशक और पुष्टिकारक आदि गुणयुक्त होते हैं और शुद्ध खान पान से बुद्धि निर्मल होती है और बल बढ़ता है, और बुद्धि से सब पदार्थ सिद्ध होते हैं जिनसे शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति होती है। इसकारण हवन करना सर्वथा और सर्वदा श्रेष्ठ और उत्तम है-इसीकारण उसको महापुण्य कहा है-इसलिये जो इन आज्ञाओं का उल्लङ्घन कर अग्निहोत्र का त्यागन करते हैं वह पातकी होते हैं देखो मनु अ० ११ श्लोक ६५ में लिखा है ॥

अनाहिताग्निता स्तेय मृणानामनपक्रिया ।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य चा क्रिया ॥

यज्ञ न करना-चोरी करना-देवऋषि व पितृऋण से उरिण न होना निन्दित पुस्तकों का पढ़ना नाच इत्यादि सीखना पातक में गिनेजाते हैं और अ० ११ श्लोक ५९ में कहा है कि गौ को वध करना—अनधिकारियों से यज्ञ करना—व्यभिचार करना अपने आप को वेचना-गुरु माता—पिता और पुत्र का त्याग करना नैत्तिक वेदपाठ व अग्नि होत्र का त्याग करना पाप का मूल है इस के उपरान्त जो अग्निहोत्र का त्यागन करते हैं उन को शूर वीर की हत्या करने का पाप होता है जैसा कि आपस्तम्बस्मृति के अ० १० श्लो० १४ में लिखा है-"अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत्"—शान्तिपर्व अ० १०२ और चाणक्य राजनीति में लिखा है कि जिस घर में हवन नहीं होता देवता लोग श्मशान के समान उस को छोड़ देते हैं । भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध के ५ अ० में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र को त्यागन करते हैं उनको सुरापान के तुल्य पाप लगता है । इसी भांति भीष्मपितामह

जे शान्तिपर्व अ० ९६५ में कहा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र को छोड़ते हैं वह पतित होजाते हैं। इसी कारण ऋषि जनों ने इस को नित्यकर्म में लिखा और आज्ञा दी कि दोनों काल अग्निहोत्र करे यही कारण है कि यज्ञोपवीत होने पर गुरु जनों को मनुजी महाराज ने आज्ञा दी कि वह शिष्य को जनेऊ कराकर पवित्रता आचार अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन की रीतें सिखलावें जैसा कि—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च॥

कैसे शोक का स्थान है कि गुरुजनों ने ही इस आज्ञा को मेट दिया फिर शिष्य को कौन उपदेश करे। प्यारे भाइयो! यह कर्म सोलह संस्कारों में किया जाता है मुख्य कथन यह है कि जगत् के सुखी रहने का मुख्य उपाय यह भी है इसी कारण यजुर्वेद अ० १७ मं० ५७ में इस की अच्छे प्रकार व्याख्या की है वहां यह भी लिखा है कि उस में चार प्रकार के पदार्थ प्रथम सुगन्धित जैसे—केसर, जावित्री, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल कपूर, कस्तूरी, गूगल। द्वितीय पुष्टिकारक—घी, दूध, पक्कफल, जैसे—बेल, अंवरा, अमरूद, आम, नासपाती, अंगूर, सेव, केलादि। कन्द जैसे—सकरकन्द, सुथनी, सेनरमुसरा कसेरू इत्यादि। अन्न जैसे—चावल चना, मूंग, गेहूं, वरद जौ आदि। तृतीय मिष्टान्न जैसे—शक्कर, शहत, छोहारा, मुनक्का, किशमिश आदि। चतुर्थ रोगनाशक ओषध्यादि जैसे—सोमलता अर्थात् गुरच शतावर, मूसली सफेद, बीजबन्द, तालमखाने के बीज इत्यादि नाना प्रकार मोहनभोग, मीठा भात, खीर, लड्डू, खस्ते की पूरी, मालपुआ इत्यादि प्रत्येक वस्तु बहुत स्वच्छ और उत्तम हो परन्तु निमक, खटाई, कडुई वस्तु, तेल आदि कि जो जल वायु के बिगाड़ने वाली हों न डाले इस के उपरान्त प्रत्येक ऋतु का भी ध्यान रहे अर्थात् उपरोक्त पदार्थों में गर्मी, शरदी, वर्षात के अनुकूल न्यूनाधिक भी करना उचित है जैसा कि य० अ० १८ मं० ६ में आज्ञा पाई जाती है। परन्तु दुर्गन्ध युक्त पदार्थ कभी न डाले जैसा य० अ० २५ मं० ३३ में कहा है।

पितृयज्ञ ।

हे पुत्र पुत्रियो ! इस संसार में परमेश्वर के उपरान्त हमारे माता पिता आदि कर्ता और रक्षक हैं, जब हम बेसुध और अज्ञान वरन हाथ पैर चलाने और हिलाने और रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते वही हमारे शरीर की सर्व प्रकार से सुध लेते हैं, फिर भला उन से अधिकतर कौन हमारा उपकारी हितैषी हो सकता है । कदापि नहीं कदापि नहीं । इस लिये हम सब को भी ईश्वर के अतिरिक्त अपने माता पिता सुख कर्त्ता, दुःख हर्त्ता, परमरक्षक, परमदयालु, की मन वाणी शरीर से सेवा टहल करनी चाहिये कि जिन के प्रसन्न रहने ही से हम सब को संसार में सुख और अप्रसन्न रहने से दुःख मिलते हैं सच मुच इन की सेवा करने से मेवा मिलती है क्योंकि संसार के नाना मत और मतान्तर और सर्व प्रकार के ग्रन्थ और उत्तम पुरुष यही उपदेश करते हैं कि माता पिता आचार्य्य की सेवा करना परमधर्म है इस विषय में मनुजी महाराज ने लिखा है—

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तिष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥ १ ॥
तएव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः ।
तएव हि त्रयोवेदास्तएवोक्तास्त्रयोग्नयः ॥ २ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याऽफलाःक्रियाः ॥ ३ ॥

अर्थात्–माता, पिता, आचार्य्य इन तीनों का प्रिय नित्य ही करना इन तीनों के सन्तुष्ट होने से सब तपस्या समाप्त होती है ॥ १ ॥

तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि यही तीनों माता पिता आचार्य्य हैं ॥ २ ॥

जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उसकी सब क्रिया निष्फल हैं ॥ ३ ॥

इस के उपरान्त तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव।

अर्थात्-माता, पिता, आचार्य, अतिथि यह सब देवतारूप पूज्य हैं। और य० अ० १२ मं० ३९ में ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे पुत्रो! तुम अपने माता पिताओं की सदा सेवा करके उन को सब प्रकार का आनन्द दो और उन के साथ कभी विरोध न करो॥

प्यारे बालक बालिकाओ! देखो तो हम तुम को कैसे २ दुःखों और क्लेशों से पाला, हमारे तुम्हारे खान पान वस्त्रादि के अर्थ अपने प्राण देने को भी उद्यत रहे और आप सदा भूखे नङ्गे रहे परन्तु हम तुम को उत्तम २ भोजन मनोहर वस्त्र पहनाये कि जिन को देख २ कर और भी प्रसन्न होते रहें, अपने दुःख को हमारे आनन्द विलास पर कुछ भी न जाना, जहां हमारे मुखड़े के प्रकाश की छवि में कुछ अन्तर आया, जरा भी अनमने हुए, माता, पिता, को चैन न हुआ, घरबार वरन व्यापार को भी तुच्छ जाना हमारे तुम्हारे अर्थ इधर उधर दौड़ धूप करने में रात दिन का भी ज्ञान न किया; वैद्यों, हकीमों आदि के दर्वाज़ों की खाक को छान डाला, परमेश्वर की प्रार्थना करने से भी अचेत न रहे, मुख्य तो यह है कि माता पिता ने विना हमारे आराम चैन के अपना सुख नहीं जाना। मान्यवरो! उपरोक्त उपकार से उद्धार होने के अर्थ पितृयज्ञ नियत किया है देखिये य० अ० २१ मं० ११ में लिखा है कि अपने माता पिताओं की सेवा करके मनुष्य पितृऋण से उद्धार होवें जिस प्रकार माता पिताओं ने सुख दिया है उसी प्रकार वह भी माता पिताओं को आनन्द दें जैसा कि-

यदा पिपर्ष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्। एतदग्ने अनृणो भवाम्यहं तौ पितरो मया स्थ मद्रेण पृङ्क्त विपृन्त्स्थ विमा पाप्मना पृङ्क्त॥

अनुशासनपर्व अ० ८ में लिखा है—जिस ने माता पिता गुरु को प्रसन्न कर लिया मानो उस ने सर्व धर्मों को सन्तुष्ट कर दिया। मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में लिखा है कि उत्पत्ति के समय जो क्लेश माता पिता सहते हैं उस से मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सकता। परन्तु माता इन सब से बड़ी है जैसा कि-

यन्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

वाल्मीकिरामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ३० के ३४,३६ श्लोकों में भी यही लिखा है कि जो माता, पिता, गुरु की यथार्थ सेवा करते हैं उन को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं। हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ११ में भी यही उपदेश है कि इन तीनों की सेवा करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं ! शङ्खस्मृति अ० २ श्लोक ४ में लिखा है कि माता पिता और गुरु की सदा पूजा करे जो इन तीनों का आदर सत्कार नहीं करता उस की सब क्रिया निष्फल जाती हैं जैसा कि—

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयस्सदा नृणाम् ।
क्रियास्तस्याऽफलाः सर्वा यस्यैतेनादृतास्त्रयः ॥

वनपर्व अ० २१४ में धर्मव्याध ने एक उत्तम ब्राह्मण को उपदेश किया है कि मैं माता, पिता को परम देवता समझता हूं और इन्द्र के समान मैं इन का सम्मान करता हूं गृहस्थ का परमधर्म यही है कि इन की सेवा टहल करता रहे—यही शान्तिपर्व अ० ११९ में गोतम ऋषि ने यम से और अ०२१२ में इन्द्र से प्रह्लाद ने, कुन्ती ने कर्ण से और श्रीरामचन्द्र से कौशिल्या ने कहा है कि माता पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है। श्रीकृष्ण महाराज ने श्रीमद्भागवतस्कन्ध १२ अ० ४५ में कहा है कि माता, पिता—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, देने वाले शरीर को उत्पन्न करते हैं इस लिये सौ वर्ष तक सेवा करने पर भी उद्धार नहीं होता—जो पुत्र समर्थ होने पर शरीर अथवा धन से माता पिता की सेवा नहीं करते उन को परलोक में यमदूत उन का मांस काट २ उसी को भोजन कराते हैं।

प्रियवरो ! इस पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति या क्रिया श्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उस को श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय उस का नाम श्राद्ध है और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्" जिस कर्म से तृप्त अर्थात्

विद्यमान् माता पितादि पितर तृप्त हों उस को तर्पण कहते हैं सच तो यह है कि जो बाल और बालिकायें अपने माता पिता की सेवा और आज्ञा पालन कर पितृ ऋण से उद्धार पाते हैं उन को सर्व प्रकार के आनन्द और सुख मिलते हैं, अन्यथा प्रतिदिन क्लेशों ही में फंसे रहते हैं। हे प्यारे बालको! माता पिता कैसे ही क्यों न हों परन्तु तुम को उन की सेवा टहल यथायोग्य करना तुम्हारा परम धर्म है क्योंकि तुम्हारे माता पिता ही ने तुम को सर्वगुणालंकृत किया है, उन्हों ने तुम्हारे अर्थ अपना तन मन धन लगा कर तुम को इस पद पर पहुंचाया है फिर तुम उन को विद्या आदि गुणहीन होने से तुच्छदृष्टि से देखते हो, धिक्कार तुम्हारे विद्यादि गुणों पर क्योंकि यदि वह अपना आत्मा तुम को न जानते और न मानते तो तुम आज क्या इस पद पर होते? नहीं, नहीं, नहीं, सच पूछो तो यह सब उन्हीं का प्रभाव है, इसलिये तुम उन की सेवा टहल सदा नम्रतापूर्वक करते रहो और धर्मसम्बन्धी आज्ञाओं में अपने जगत्पिता परमात्मा की आज्ञाओं को मानो देखो प्राचीन समय में श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने अपनी सोतेली माता की आज्ञा मान, धन सम्पत्ति राज्य त्यागन कर बारह वर्ष जङ्गल में व्यतीत किये जहां उन को नाना भांति के क्लेश और दुःख उठाने पड़े परन्तु अपनी माता की आज्ञा को यथार्थ पालन किया। सचमुच वीरता, भाग्यशालिता के यही लक्षण हैं जिन के कारण श्रीमान् का नाम इस जगत् में सदा ही बना रहेगा। परमेश्वर वर्त्तमान समय के पुत्र पुत्रियों में भी ऐसे ही शुभ गुण दे॥

वर्त्तमान समय को देखिये कि जहां पुत्र को होश आया और बाहर भीतर आने जाने लगे और प्राणप्यारी के दर्शन हुए फिर तो हरदम तिउरी चढ़ी हुई बात सीधी करना कठिन होगया माता पिता प्रेम के कारण अपने प्राण तक न्यौछावर किये हुए फूले नहीं समाते, परन्तु उन को बात करना ही बुरा जान पड़ता है प्रथम तो मुखारविन्द से बात करते ही नहीं यदि कुछ कहा भी तो उस समय इस प्रकार से वार्त्तालाप करते हैं मानो किसी सेवक को शिक्षा कर रहे हैं। धन्य आप की विद्या और बुद्धि को! क्या आप को वह समय स्मरण

नहीं रहा जब माता अपने ही दूध से तुम्हारे प्राणों की रक्षा करती थी, प्रत्येक समय छाती से लगाये रहती थी, सोने उठने बैठने खाने पीने का समय सदा स्मरण कर तुम्हारा पालन करती थी, हाय शोक कि उसी माता की बात तक आप को नहीं सुहाती धिक्कार है !

जब माता पिता की यह कुदशा है फिर गुरु और पाठक के ऊपर कृपादृष्टि का क्या कहना, आप तो सदा प्राणप्यारी के साथ वा किसी मित्र के सङ्ग प्रतिदिन प्रसन्नता से हलुवा पूरी उड़ाते, पान चवाते, स्वच्छ वस्त्रों पर शयन करते, गर्मियों में ख़श की टट्टियां लगाते, नौकर चाकर सेवकाई में उपस्थित रहते, परन्तु माता पिता दो २ दानों को तरसते हैं कोई यह भी नहीं पूछता कि तुम कौन हो! सचमुच उन्होंने ऐसा ही अपराध किया है! उन की सेवा टहल की क्या आवश्यकता है! आप तो गर्मियों में शरवत पीते हैं परन्तु माता पिता को शीरा तक नहीं मिलता, प्रतिदिन स्वच्छ वस्त्र धारण किये इतर फुलेल लगाये हुए अपने मित्रों के साथ बाज़ारों में फिरते हैं। परन्तु माता पिता मैले कुचैले कपड़े पहिने लज्जा के कारण घर ही में छिपे हुए बैठे रहते हैं और बाहर आने में लज्जित होते हैं कि कोई हमारी यह कुदशा देख कर हमारे पुत्र की निन्दा न करे। देखिये और विचारिये कि माता पिता इस दशा में भी प्रेम के वशीभूत हो पुत्र की निन्दा कराना भला नहीं जानते चाहों आप मर तक जायें। धन्य है धन्य है। मुख्य यह है कि वर्त्तमान समय में रण्डी लौंडे के ऊपर हज़ारों फूंक देते हैं परन्तु माता पिता को फूटी कौड़ी देना मानो हलाहल पीना है। परमेश्वर जगत्कर्त्ता हमारे प्यारों को इस पाप से बचावे ॥

हे मेरे प्यारे भाइयो! मेरे इस कथन से आप को अत्यन्त क्लेश हुआ होगा और मेरे अर्थ भी मन में कटु वचन उच्चारण करते होगे परन्तु यदि ध्यान लगाकर विचार करोगे तो मैं आप को सच्चा हितैषी जान पड़ूंगा क्योंकि मित्र वही है जो अपने मित्र के गुण दोषों को जान उन का यथार्थ प्रकाश कर शुभगुणों के धारण करने के अर्थ प्रयत्न करे। और वैरी वह है जो उस के अवगुणों का प्रकाश न करे। इस लिये अब विचारपूर्वक माता पिता गुरु इत्यादि की तन मन धन से

सेवा टहल करो कि जिस से संसार में यश और सुख, परलोक में आनन्द प्राप्त हो, नहीं तो इसी पाप में आप को नाना भांति के क्लेश उठाने पड़ेंगे, संसार में अपयश होगा। परलोक में भी घोर नरक के दर्शन करने पड़ेंगे ॥

इस के उपरान्त कनागतों में कैसा पानी देते हो और ब्राह्मणों को नाना भांति के भोजनों से परिपूर्ण कर देते हो अर्थात् उत्तम से उत्तम वस्तु हलुवा, पूरी, ख़स्ताकचौड़ी, दुधलपसी, मोहनभोग, लड्डू, पेड़े, भांति २ की तरकारियां, अचार मुरब्बे, सोंठ पापड़ इत्यादि खिलाते हो और कहते जाते हो कि महाराज जी दो पूरी और खा-लीजिये एक कटोरा दूध पी लीजिये तो बहुत ही अच्छा हो, अब आप से मेरी यह प्रार्थना है कि अपने विद्यमान माता पिता की भी इस प्रकार सेवा और टहल की थी या कि मरने पर ही आप को प्रेम अधिक आगया, यदि आप उन के रहते इस भांति आदर सत्कार करते तो क्यों भारत का भारत हो जाता ॥

इस के उपरान्त वर्षी चौवर्षी इत्यादि में कैसे पदार्थ ब्राह्मणों को देते हो आगे चल कर गया जी का सामान करते हो सौ दो सौ रुपये वहां इस प्रयोजन के अर्थ देते हो कि हमारे पिता इत्यादि बैकुण्ठ चले जावें और प्रेतयोनि से छूट जावें, हाय कैसे शोक का स्थान है कि इन मिथ्या कामों के लिये तो आप तन मन धन सब अर्पण कर दो परन्तु जीते माता पिता के नाम एक कौड़ी देना भी कठिन हो जाता है जैसा किसी ने कहा है—

जियत न देहौं कौरा, मरे ढुलैहौं चौरा।
जियत पिता से जंगी जंगा, मरे पिता पहुंचाये गङ्गा।
जियत पिता की पूछ न बात, मरे पिता को दाल औ भात ॥

इसलिये जीते माता पिता आदि की यथावत् सेवा टहल करना योग्य है देखो गीता के अनुसार जीव एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धर लेता है जैसा हम ने पूर्व वर्णन किया। फिर भला तुम जो नाना लीला रच कर हज़ारों रूपयों पर पानी फेर देते हो कहीं

यह भी सुना है कि हमारे पिता जी अमुक स्थान पर बैठे हैं, आप तो कभी रुपये की रसीद भी नहीं चाहते, वैसे तो एक रुपये क लिये अच्छे प्रकार लिखा पढ़ी करा लेते हो परन्तु यहां टस्स से मस्स भी नहीं करते ॥

प्यारे भाइयो ! जीते माता पिता की सेवा टहल का ही नाम श्राद्ध तर्पण है, फिर भला ब्राह्मणों को भोजनादि का कराना और नाना भांति से द्रव्य भेट करना आदि श्राद्ध कहां से जाना, यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो विचारिये कि जब वह विद्यमान थे उस समय में वे राति दिन में दो तीन बार भोजन करते और चार पांच दफ़े पानी भी पीते थे और अब मरने के पीछे उन को साल में एक बार भोजन करने और कनागतों में पन्द्रह दिन पानी पीने की आवश्यकता होती है और साल भर तक विना भोजनों और पानी के व्यतीत कर देते हैं भूख प्यास नहीं लग सकती, भला यह आप ने कैसे ठीक जान लिया और एक दिन के भोजन पर एक वर्ष भूख न लगना कैसे जान लिया, इस के उपरान्त जब आवागमन ठीक है तो फिर मरे हुओं का श्राद्ध और तर्पण कैसा? वह तो दूसरी जगह तुरन्त ही चले जाते हैं इस के अतिरिक्त पितृ, के अर्थ संस्कृत में पालन करने वाले के हैं और आप पितृ से मरे हुए बाप दादे को समझते हैं, भला यह तो बतलाइये कि मरे हुए आप का किस प्रकार से पालन कर सकते हैं, कैसे शोक का स्थान है कि जीते माता पिता जो हमारा सब प्रकार से पालन करते हैं उन को पितृ न समझ कर नाना भांति के क्लेश देते हैं, और मरने के पीछे पितृयज्ञ की आशा पर कठिन २ कार्य करते हैं और कुछ भी विचार नहीं करते, अब तो आप समझ गये होंगे कि पितृ जीते ही माता पिता को कहते हैं और श्राद्ध तर्पण भी जीते माता पिता का सम्भव है और मरे हुओं का असम्भव और बुद्धि के विपरीत है, अब मेरे प्यारे भाइयो सुन लीजिये कि पिण्ड देना और एकादशाह करना महाब्राह्मण को माल असबाब इत्यादि देना इसी भांति वर्षी चौवर्षी करना गया जाना इत्यादि सब मिथ्या और धोखे की टट्टी है, जैसे कि मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण है, और पिण्ड देना शब्द के अर्थ शरीर

के हैं और शरीर बनाना माता पिता का काम है किसी और का नहीं और वह भी रीत्यनुसार, तो फिर ज़ब माता पिता का काम पिण्ड देना है तो बड़े शोक की बात है कि लड़का बाप और मा के पिण्ड देता है और उस को अपने लिये योग्य समझता है और जानता है कि मैं उन के हक़ से अदा होगया क्या इसी का नाम बुद्धि है ? टुक तो विचार कीजिये कि आप अपने माता पिता के कौन ठहरे अपने ही जीमें समझ जाइये मुझे कहते लाज आती है यदि कोई आप से ऐसी बात कहे तो आशा है कि आप बहुत अप्रसन्न होवें परन्तु पिण्ड देने के समय बुद्धि से कुछ काम नहीं लेते इस के उपरान्त जब जीव दूसरे शरीर में चला गया तो फिर आप के पिण्ड देने की क्या आवश्यकता है वह तो बिदून आप के पिण्ड दिये पिण्ड पाता है, अब वर्षी चौवर्षी पर दृष्टि डालिये यह सब झूठी बातें हैं क्योंकि जो जीव तुरन्त दूसरे शरीर में चला जाता है और एक पल मात्र भी नहीं ठहरता वह किस प्रकार से एक वर्ष तक ठहर सकता है कि जिस के लिये आप वर्षी चौवर्षी करते हैं, अब गया जाने के विषय में विचार कीजिये तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वेदादि सत्य शास्त्रों में लिखा है कि जीव अपने कर्मानुकूल शरीर धारण करता है और अन्यत्र भी ऐसा ही लिखा है जैसा कि " कर्म प्रधान विश्व कार राखा, जो जस कीन तैस फल चाखा"

अब बतलाइये कि गया जाने से आप के माता पिता आदि क्या अपने कर्मों के फलों से पृथक् हो सकते हैं ? कदापि नहीं, हां एकाद-शाह इत्यादि छोटे २ ठगों की ठगई है और यह बड़े २ उस्तादों के हाथ। यदि गया जाने का फल ठीक है तो वेद और शास्त्रों में आवागमन झूठ है फिर मनुष्य के अच्छे कर्मों की क्या आवश्यकता है यह तो बहुत ही सहल गुटका हाथ आगया कि सौ दो सौ रुपये में पाप से छूट जाता है, भाई टुक तो विचारो क्या आप यहां बुद्धि से भी काम नहीं लेते, और कामों में तो आप सब प्रमाणों की छान बीन करते हैं परन्तु यहां कुछ भी नहीं, इस के उपरान्त गया के पण्डे जो धन आप का लेते हैं वह सब मिथ्या कामों में व्यय करते हैं और पाप भागी बनते हैं यह सब पाप आप के सिर पर है देखिये इन कर्मों के

करने से आप का धन व्यर्थ जाता है और परिश्रम भी होता है, और पापभागी भी बनना पड़ता है, फिर बुद्धिमान् ऐसे कार्यों को क्योंकर करें जिस में अन्त को कुछ लाभ न हो, इसी भांति 'कट्टहा' के देने में पाप होता है क्योंकि यह कर्म वेदविरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं तिस पर प्रसन्न होकर हाथ जोड़ अपने मरे हुओं को वैकुण्ठ जाने की आशा करते हैं, मानो वैकुण्ठ का ठेका महाब्राह्मणों के हाथ में समझ लिया और यह भी विचार न किया कि नरक स्वर्ग किस का नाम और उस का दाता कौन है ॥

सुनिये संसार में वेदानुकूल चल मोक्ष प्राप्त करने ही का नाम वैकुण्ठ और उस के विरुद्ध ही नरक और दुःख। दुःख सुख के देने वाले मनुष्य के कर्म हैं। अब बतलाइये कि 'कट्टहा' जी किस प्रकार से वैकुण्ठ को भेज सकते हैं कि जिस के लिये नाना भांति से भेंट चढ़ाते हो। और जहां उसने प्रसन्न चित्त होकर आप की पीठ पर हाथ फेर दिया और सुफल बोली उसी समय आप फूले नहीं समाते मानो स्वर्ग में भेज ही दिया क्या ही सोच की बात है ॥

इसलिये हे मेरे प्यारे भाइयो! झूंठी और मिथ्या बातों को छोड़ कर जितना रुपया मरे पितरों के श्राद्ध और तर्पण में व्यय करते हो वह विद्यमान पितरों के आदर सत्कार में व्यय कीजिये और दोनों लोकों में यश लीजिये ॥

बहुधा जन ऐसा कहते हैं कि राजा कर्ण जो बड़ा दानी था जब मरा तो मुक्त होकर स्वर्ग में पहुंचा उसने रुपया और जवाहर बहुतायत से पुण्य किया था परन्तु अन्न बहुत कम, इसलिये उस के आगे स्वर्ग में सोने और जवाहर के ढेर लग गये परन्तु भोजनों का कुछ नहीं तब राजा साहिब ने इस का वृत्तान्त पूंछा तो जान पड़ा कि तुमने अन्न बहुत कम पुण्य किया है तब राजा साहिब ने पन्द्रह दिन की और भी आज्ञा मांगी कि मैं वहां जाकर अच्छे प्रकार दान करलूं यह प्रार्थना उस की स्वीकृत हुई और उस ने आकर पन्द्रह दिन तक अच्छे प्रकार से भोजन कराये यहां तक कि उस को इतना छुटकारा न मिला कि बाल बनवाता और वस्त्र धुलवाता, देखना चाहिये कि मोक्ष सर्व

दुःखों के छूटने को कहते हैं अर्थात् सदा परमानन्द में रहने का नाम मोक्ष है फिर जब वह मुक्त होगये फिर भी खाने का दुःख ही बना रहा और स्वर्ग के अर्थ भी सुख के हैं। इसलिये यही जान पड़ता है कि मोक्ष और स्वर्ग के अर्थ ही नहीं समझे। इस के अतिरिक्त और भी विचार करो कि जब उस की यह प्रार्थना स्वीकृत हुई तो बतलाइये राजा ऊपर से किस प्रकार से आया अर्थात् गर्भाधान की रीति से या ऊपर से गिर पड़ा और आते समय उस की अवस्था क्या थी लड़कपन वा तरुणाई वा बुढ़ापा। यदि कहो गर्भाधान के द्वारा उत्पन्न हुआ तो राज्याधिकारी होना कठिन है और इस कार्य के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है क्योंकि नौ महीने गर्भ में रहना फिर उत्पन्न होकर बड़ा होगा तब ब्राह्मण खिलाने के योग्य होगा। और उस को आज्ञा पन्द्रह दिन तक रहने ही की थी, यदि कहो कि ऊपर से गिर पड़ा तो यह वार्त्ता सृष्टिक्रम के अन्यथा है न कभी ऐसा हुआ न होगा दूसरे यह कि जीव तो मुक्त होकर स्वर्ग को गया था और शरीर यहां जला दिया गया था तो क्या वह जीव दूसरा शरीर धारण करके ऊपर से आया था, नहीं तो बिना शरीर के पहचानना अत्यन्त कठिन है। इस के उपरान्त कर्ण कलियुग के आदि में हुए हैं इस से ज्ञात होता है कि सतयुग, द्वापर, त्रेता युगों में यह कार्य प्रचलित न था। यदि कोई कहे कि दान देना तो उचित है वह किसी प्रकार से दिया जाय, तो हम कहते हैं कि दान देना अत्यन्त ही योग्य है परन्तु जब लोग गपोड़े मार कर माता पिता आदि के नाम से धोका देकर ठगई का बाज़ार गर्म करके लूटते चले जावें तो यह पुण्य नहीं कहावेगा इस लिये इस प्रकार कदापि पुण्य न करना चाहिये। इस के उपरान्त इन दिनों में वर्षा के अन्त होने से वायु भी बिगड़ जाता है और भोजनों में पूरी, कचौड़ी, धुइयां इत्यादि बराबर पन्द्रह दिन तक समय और कुसमय पर खाने में आती हैं इसलिये विशेष कर हैज़ा आदि रोग उत्पन्न कर नाना भांति से दुःख देते हैं और अनेकान यमपुर को भी चले जाते हैं तो बतलाइये कि इस का अपराध यजमानों के सिर पर है या ब्राह्मणों या पुरुषाओं या राजा कर्ण के? ॥

हे प्यारे सुजनो! यह सब बातें मिथ्या हैं और स्वार्थियों ने अपने पेट भरने के लिये राजा कर्ण का नाम लेकर अपना प्रयोजन निकाला है यदि राजा कर्ण की मोक्ष होगई तो वहां उन को किसी बात की भी कमी नहीं, यदि मुक्ति नहीं हुई तो नहीं मालूम कि उन्हों ने किस प्रकार किस योनि में जन्म लिया यहां आवागमन चला आता है जो पन्द्रह दिन में यह सब होना असम्भव है इसलिये राजा कर्ण से पहिले जैसे हमारे और आप के पुरुषे जिस रीति पर चलते थे उसी रीति अर्थात् वेदानुकूल ही चलना चाहिये, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २० मं० ३४ में लिखा है—

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परि
स्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं, जैसा कि उन्हों ने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम को पाला है, वैसे ही हन लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं, जिस से हम लोगों के बीच से विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥

इस के उपरान्त गरुड़पुराण में लिखा है कि जीव एक अंगूठे के समान या प्रेत होकर भ्रमता रहता है और इसी लिये दस दिन तक एक २ पिण्ड आटे का इस को खिलाते हैं, दसवें दिन जब वह पिण्ड खाकर मोटा ताज़ा हो जाता है तब ग्यारहवें दिन एक बड़ा भारी पिण्ड जिस को सपिण्डी कहते हैं बनाते हैं फिर मन्त्रों के बल से उस में प्रेत को बुलाते हैं फिर एक कुश के तिनके से महाब्राह्मण सपिण्डी के तीन बराबर भाग करता है और प्रत्येक भाग को ऊपर के पितरों में मिला देता है अर्थात् एक भाग को बाप में, दूसरे को दादा में और तीसरे को परदादा में, इसी भांति स्त्रियों को । मानो एक प्रेत को काट २ कर तीन स्थानों में मिलाते हैं तब वह प्रेत से पितर होजाते

हैं, इस सब के उपरान्त यह भी जानना चाहिये कि गरुड़पुराण में जो गरुड़ एक प्रकार का पक्षी है इस के और परमात्मा के प्रश्नोत्तर हैं और उस परब्रह्म ने गरुड़ से सब वृत्तान्त कहा है अब आप टुक तो विचार कीजिये यदि ईश्वर को वर्णन करना ही आवश्यक था तो क्या कोई मनुष्य इस योग्य न मिला कि जिस से यह सब वृत्तान्त कहते, दूसरे गरुड़ से मनुष्य के मृतकसंस्कार का हाल कहने से क्या लाभ ? यदि गरुड़ को हाल बताना ही था तो सांपों को बताना था कि अमुक स्थान पर सांप हैं और अमुक समय पर तुम को मिल सकते हैं तो आशा है कि गरुड़ अपना भक्षण पाकर प्रसन्न होता । यह मिथ्या और बुद्धि के विरुद्ध बातें हैं-केवल प्रत्येक प्रकार से अपना ही प्रयोजन निकाला है। मान्यवरो ! यदि आप मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण मानेंगे तो बहुतसी शङ्कायें इस विषय में ऐसी उत्पन्न होंगी कि जिन का समाधान होना बिलकुल असम्भव हो जायगा प्रथम तनिक ध्यान दीजिये कि श्राद्ध क्यों किया जाता है तो ज्ञात होता है कि अपने २ पुरुषाओं को आराम देने के अर्थ। क्या महाशय ! आप किसी प्रकार अपने मरे हुये पुरुषाओं को आराम पहुंचा सकते हैं ? । कभी नहीं क्योंकि वेदादि सत्यशास्त्र पुकार २ कह रहे हैं कि मनुष्यों को अपने ही किये हुए कर्मों का फल मिलता है मरने पर माता पिता पुत्रादि कुछ नहीं कर सकते देखिये य० अ० २ मं० २८ में लिखा है:—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकम् ।
तन्मेराधीदमहं य एवास्मि सोस्मि ॥

जैसा प्राणिमात्र कर्म करता है वैसे ही फल को पाता है प्राणी अपने कर्मविरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इस लिये सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कार्यों को करे जिस से कभी दुःख न हो और मनु० अ० ४ श्लोक २३८ में भी ऐसा ही लिखा है जैसा कि-

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

प्रत्यक्ष भी जान पड़ता है कि जो मनुष्य भोजन करता है उसी की भूख जाती है और जो औषधि पान करता है उसी का रोग नाश होता है इस के अतिरिक्त कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ फिर भला आप के कर्म आपके पुरुषाओं को क्योंकर आराम पहुंचा सकते हैं तुलसीदास ने भी कहा है ॥

"कर्मप्रधान विश्व कर राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा"

क्या कोई कार्य्य संसार में ईश्वरीय नियम के विरुद्ध भी होसकता है कदापि नहीं गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है धर्मयुक्त कार्य्य करने से किसी की दुर्गति नहीं होती। महाभारत में लिखा है एकही मनुष्य पाप करता है वही भोगता है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अ० २४ पूर्वार्द्ध श्लोक १४ में लिखा है कि कर्म का फल कर्त्ताही को मिलता है अन्य को नहीं। स्कन्ध ११ अ० ४६ में अक्रूरजी महाराज ने धृतराष्ट्र जी से कहा है कि जीव अकेलाही जन्म लेता है अकेलाही पाप पुण्य को भोगता है जैसा कि-

एकः प्रसूयते जन्तुरेकएव प्रलीयते।
एकोनुभुङ्क्तेसुकृतमेकएव च दुष्कृतम् ॥

इस से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म का सञ्चय किया उसको अवश्य ही सुख मिलेगा वरन मरने पर अन्य संबन्धी किसी कार्य्य को कर उसको सुख नहीं पहुंचा सकते। इसके उपरान्त पौराणिक मतानुसार मा बाप के मरने के पश्चात् गया को जाते हैं और वहां श्राद्ध करते हैं तत्पश्चात् फिर श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है इस से श्राद्ध नित्यकर्म नहीं होसकता परन्तु वेदादि सत् शास्त्रों में नित्य श्राद्ध करने की आज्ञा पाई जाती है। इसके उपरान्त जहां वस्तु और सुख का भोक्ता होता है वहीं सुख होता है अन्यथा नहीं। जहां जल और प्यासा होता है वहीं प्यास शान्त होती है। जहां दीपक होता है वहां उजाला होता। फिर भला यदि आप ने अपने पुरुषाओं के सुख पहुंचाने के लिये ब्राह्मणों को भोजन भी कराये तो क्या उनको सुख मिल सकता है कदापि नहीं क्या मैं खाकर

आपकी तृप्ति करसकता हूं यदि होसकता है तो अतिही सुन्दर। इस से हमारे परदेश में रहनेवालों को भोजनादि बनाने और खाने पीने का भी कष्ट दूर होना सम्भव था। परन्तु ऐसा नहीं होता, यदि मरों ही का श्राद्ध करना सनातन समझा जावे तो महाशय बतलाइये कि सृष्टि की आदि में जो ब्रह्मादि उत्पन्न हुये थे उन्हों ने किसका श्राद्ध किया होगा। यदि इन असम्भव बातों को मान भी लें तो बतलाइये जो मरते हैं कहां जाते हैं यदि पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तो श्राद्ध में बुलाते समय कैसे पहुंचते हैं यदि जीव ही श्राद्ध में जाता है तो जब तक वह वहां रहे उसका शरीर मरजाना चाहिये परन्तु यह हमको दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि यह प्राणी अन्यही लोकों में उत्पन्न होते हैं तो पृथ्वी पर यह नये आत्मा कहां से आते हैं यदि जीव आत्मा असंख्य माने जावें तो भी इस दशा में उनका अन्त होना सम्भव हुआ क्योंकि जिस मनुष्य के पास बहुत धन हो और आमदनी कुछ भी न हो वरन व्यय ही होता रहे तो कभी न कभी उसके धन का अन्त अवश्यही होगा

यदि जीव आत्मा नया उत्पन्न होता है तो उसका शरीर के तुल्य मरना भी सम्भव होगा फिर कर्मों का भोगनेवाला कौन रहा कि जिसको वेदादि शास्त्र पुकार २ कर कहरहे हैं क्या यह सब झूंठे हैं?। और धर्म अधर्म क्यों माना ? क्या यह झूंठ है नहीं नहीं नहीं। यदि जीवात्मा नया ही शरीर के साथ उत्पन्न हुआ तो उसको विशेष दुःख सुख क्यों हुआ क्योंकि वह पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था और बुरा भला कर्म भी नहीं किया यदि ऐसा माना जावेगा तो मनु आदि ऋषियों के वाक्य झूठे होजावेंगे कि सत्वगुणी लोग देवता होते हैं रजोगुणी मनुष्य और तमोगुणी पशु आदि योनियों में होते हैं जैसा कि-

देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥

इन उपरोक्त बातों से सिद्ध हुआ कि मरों का श्राद्ध करना बिलकुल असम्भव है इसलिये इसका मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि पहले समय में मनुष्य विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण और अपने पुरषाओं

को भोजनादि से तृप्त करते थे परन्तु जब ब्राह्मणों ने अपने कर्म धर्मों को त्याग दिया और अविद्यारूपी अन्धकार छागया तो उन्होंने जाना कि अब हमारा श्राद्ध न होगा इसलिये उन्हो ने यह परिपाटी चलाई होगी कि जो तुम हमको खिलाओगे तो तुम्हारे बाप दादे को मिलेगा क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने लिये मांगना बहुत बुरा मानता है इसके अतिरिक्त जब वह जीते थे तब नाना प्रकार की कमाई करके हमको खिलाकर प्रसन्न होते थे और शेष हमारे लिये जमा करते थे। आप तीन बार भोजन करते थे कई बार जल पीते थे अब मरे पश्चात् ब्राह्मणों के खिलाने में प्रसन्न होते हैं और केवल एक साल में एकही दिन भोजन खाने लगे—यह सब असंभव बातें हैं॥

प्यारे भाइयो! इन सब बातों से सिद्ध होता है कि जीते माता पिता की सेवा टहल ही का नाम श्राद्ध तर्पण है फिर भला ब्राह्मणों को खिलाने, गयादि जाने और महाब्राह्मण (कट्टहा) के देने से क्या लाभ हो सकता है वरन पाप ही होता है क्योंकि उपरोक्त जन इस प्रकार के पाए हुए धन को बुरे कर्मों में व्यय करते हैं नाना प्रकार के पाप कर्म करते हैं जिन का पाप भी दाता ही के सिर होता है इस के अतिरिक्त इन कर्मों के करने से सत्यग्रन्थों की आज्ञायें भङ्ग होती हैं देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ श्लोक ३९, ४० में लिखा है जिस समय शरीर का अन्त होता है उस समय जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार परवश हो दूसरे देह को प्राप्त हो पूर्व देह को त्यागता है जैसे चलते समय मनुष्य अगले पांव को धर लेता है तब पिछले पांव को उठाता है और जोंक भी इसी भांति अगले तृण को पकड़ कर पिछले को छोड़ती है उसी भांति जीवात्मा कर्मों के वस और देह को प्रथम ग्रहण कर इस पूर्व देह का त्याग करता है जैसा—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥
व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः॥

फिर आप की वर्षी चौवर्षी और कनागतों में धनादि व्यय करने से क्या लाभ ? पाठकगणो ! कैसे अन्याय की बात है कि आप केवल अपने मा बाप दादा दादी के अर्थ तो कनागतों में ब्राह्मणों को नाना प्रकार के उत्तम २ भोजन खिलाते हो और उन के बाप दादों आदि का ध्यान भी नहीं करते क्या वह आप के पूज्य नहीं थे ? क्या आप उन के वंश में नहीं हैं ? क्या यह आप के बाप दादों को प्रिय हो सकता है ? जब कि उन के माता पिता उन के सम्मुख भूखे बैठे रहें जिन को वह भोजन करा कर आप भोजन करते थे मान्यवरो ! क्या यह बातें आप के धर्मशास्त्रों पर धब्बा नहीं लगातीं अवश्य ही । यह विषय वेदादि ग्रन्थों में नहीं है हां वेदों का वचन है कि मनुष्य को अपने पिता माता दादा दादी परदादा परदादी की धन्यवाद पूर्वक आयुपर्य्यन्त नित्यप्रति सेवा करनी चाहिये क्योंकि इस असार संसार में सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य अपने दादे के पिता की भी सेवा कर सके इसलिये विद्यमान माता पिता आदि का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक करना योग्य है क्योंकि शिष्टाचार मनुष्यों के सत्स्वभाव का दर्पणस्वरूप निर्मल और प्रदेशान्त नदी के तट वृक्ष लतादिकों का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार परिलक्षित होता है तिसी प्रकार बोल चाल आचार व्यवहार के देखने से मनुष्यों के भीतरी भाव का अनुभव होता है चाहे कोई किसी अवस्था में क्यों न हों शिष्टाचार के द्वारा अवश्य वे प्रशंसा लाभ कर सकते हैं क्योंकि मधुर वचन के बोलने से सम्पूर्ण जीव सन्तुष्ट होते हैं जैसा कि कहा है—

मधुर वचन से जात मिट उत्तम जन अभिमान ।
तनक शीत जल सौं मिटै जैसे दूध उफान ॥

इस कारण जो कोई इस को त्यागन करता है मानों वह अपनी जड़ आप काटता है, क्योंकि यह ऐसा मन्त्र है कि जिस के धारण करने से सब जीव वश में होजाते हैं देखिये जो कोई शिष्टाचार सहित प्रिय वचन बोलते हैं वह बड़ी २ आपदाओं को सुगमता से टाल देते हैं, और जिन पुरुषों में यह शक्ति होती है वही देश का नाना भांति

से उपकार कर सकते हैं क्योंकि शीतलता से कार्य सिद्ध होते हैं, इसी के द्वारा सहस्रों जनों को अपना बना राज्य कर लेते हैं, यह वह पदार्थ है कि जिस से सिंह से घातक जीव आधीन हो जाते हैं शत्रु के मन में भी शीतलता से दया आजाती, है सच पूछो तो वशीकरण मन्त्र यही है जैसा कि कहा है-

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजत चहुं ओर ।
वशीकरण यह मन्त्र है तजदेउ वचन कठोर ॥

प्यारे भाइयो ! जो संसार में सुख की इच्छा हो तो कदापि कटु वचन और व्यङ्ग शब्द न उच्चारण करो यह विदेश में भी अपमान कराता है और विदुर जी ने भी कहा है कि सुन्दर वाणी के बोलने से संसार में अनेकान सुख मिलते हैं देखो श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मधुर और शीतल वचनों से परशुराम के क्रोध को ऐसा शान्त किया कि वह मारने के पलटे आशीर्वाद देकर वन को चले गये ॥

सत्य तो यह है कि जिन मनुष्यों में यह शक्ति है वही यथार्थ मनुष्य हैं वह अपने सेवकों और टहलुओं से भी ऐसा काम लेसकते हैं कि अन्य की सामर्थ्य नहीं हो सकती, इस के अतिरिक्त राजाओं में प्रतिष्ठा मिलती है सामान्य जन उन का सत्कार करते हैं ॥

इस लिये सर्व शास्त्र और बुद्धिमानों की यही शिक्षा है कि अपने बड़ों का शिष्टाचार नम्रता पूर्वक प्रिय वाक्यों से करे क्योंकि इसी से सर्वजीवों को आनन्द प्राप्त होता है जैसा चाणक्य ऋषि ने कहा है-

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

इसलिये माता पिता के उपरान्त मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विज् और गुरु को जो अपनी अवस्था से छोटे भी हों तो भी उनको नमस्ते करना योग्य है ॥

नमस्ते-

परन्तु शोक है कि वर्तमान समय में संस्कृत विद्या के प्रचार न होने के कारण देश भाषा के शब्द प्रतिदिन छूटते जाते हैं और दूसरी

भाषा के शब्द प्रसन्नचित्त होकर बोलते और अनेकान पुरुष कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं कि जिस के कारण बहुधा हानि होरही है जैसा 'नमस्ते' शब्द की दुर्दशा करदी है ॥

प्यारे सुजनो ! 'नमस्ते' यह शब्द यौगिक है 'नमः+ते' 'नमः' का अर्थ झुकना, नवना, मान करना, सत्कार करना । 'ते' युष्मद् शब्द की चौथी विभक्ति है जिस के अर्थ तुम को, तुम्हारे लिये । जब यह दोनों शब्द मिलते हैं तो व्याकरण की रीति से 'नमः' के विसर्ग का 'स्' हो जाने से 'नमस्ते' वाक्य बन जाता है जिस का यह अर्थ है कि आपके सम्मुख झुकता हूं, नवता हूं, आप का मान करता हूं, बड़ा समझता हूं इत्यादि । मुख्य अभिप्राय छोटों को बड़ों का शिष्टाचार करने का है और शिष्टाचार के अर्थ सत्कार के हैं जैसा कि बड़ों के आने पर उठ कर खड़ा होना, शिर झुकाना वा शिर नवाना अर्थात् 'नमस्ते' करना, ऊंचे स्थानपर बिठाना, प्रियभाषण करना आदि शिष्टाचार कहलाता है जैसा वर्त्तमान समयमें प्रचलित है अर्थात् जब कोई मनुष्य छोटे के स्थान पर जाता है वा अन्य स्थान पर मिलता है तो नवता है और नाना भांति से आदर सत्कार करता है । आज कल जो 'नमस्ते' कहना अच्छा नहीं जानते परन्तु उसके अर्थों पर प्रति दिन चलते हैं उस का कारण अविद्या ही है ॥

स्वार्थीजनों ने 'नमस्ते' के अर्थ इस प्रकार सुना दिये हैं कि 'मस्ते' माथे अर्थात् मस्तक को कहते हैं 'न' निषेध का चिह्न है अर्थात् नमस्ते के अर्थ बेशिर के हैं। हा शोक ! हा शोक !!

प्यारे सुजनो ! यह संस्कृत विद्या के त्यागने ही का कारण है यदि हम व्याकरण जानते तो पण्डित जी के ऐसे अनगढ़ बेजोड़ अर्थ को न सुनते, परन्तु सत्य छुपाये से भी तो नहीं छुपता । यदि आप कुछ भी बुद्धि से विचारें तो स्पष्ट सिद्ध होजावेगा कि नमस्ते के अर्थ बेशिर के नहीं हैं क्योंकि बहुधा ग्रन्थों में नमस्ते पद आया है जिन पुस्तकों का प्रायः नित्यप्रति पाठ करते वा उन की कथा सुना करते हैं तिस पर भी यह अन्धेर ! देखिये ।

विष्णुसहस्रनाम में लिखा है:—

ओं नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तुते ॥

पार्थिवपूजन में लिखा है—

नमस्ते भगवन् रुद्र देवाय रसानां पतये नमः।
सर्वोपासितरूपाय सुरासुरपतये नमः ॥

श्रीमद्भागवत में "नमः" नमो, नमस्ते, पद आया है। और पाण्डवगीता में लिखा है कि "गोविन्द गोविन्द नमोनमस्ते"।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥

देवीभागवत में लिखा है—

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके चित्स्वरूपे।
नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते जगत् तारिणी त्राहि दुर्गे नमस्ते ॥

सारस्वत में लिखा है—

नमस्ते भगवन्भूयो देहि मे मोक्षमव्ययम्।

सत्यनारायण में लिखा है—

नमस्ते वाङ्मनोतीतरूपायानन्तशक्तये।
आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥

दुर्गापाठ के ५ अ० के श्लो० १३ से लेकर ७९ तक अनेक स्थानों पर नमस्ते शब्द आया है इसी भांति और २ पुस्तकों में भी यह शब्द पाया जाता है ॥

अब तो स्पष्ट प्रकट होगया कि नमस्ते के अर्थ बेसिर के नहीं हैं और भी सुनिये कि आज कल के पण्डित और अनपढ़ ब्राह्मण जब आपस में मिलते हैं तो नमस्कार करते हैं जो इसी 'नमस्ते' शब्द से

बना है क्या उस के भी बेसिर वाले के अर्थ हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं। हां इतना अन्तर अवश्य है कि 'नमस्कार' ब्राह्मणों ने इस समय अपने लिये बना लिया है और अन्य वर्णों के लिये 'राम राम' बतादी है इसी कारण 'नमस्ते' के अर्थ ऐसे उलटे समझाते हैं धन्य पण्डित जी! आप ने तो वेदमन्त्रों के 'नमस्ते' पद का अर्थ पलट दिया क्यों न हो पण्डिताई तो इसी का नाम है, देखिये वेद में लिखा है-

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।

नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥

(य० अ० ३६ मं० २१)

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इति । य० अ० १६ मं० १

नमस्ते आयुधायानाततायेति । य० अ० १६ मं० १४

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय चेति । य० अ० १६ मं० २९

भ्रातृगणो! वैद्यकग्रन्थ के कर्त्ता वाग्भट जी ने इस विद्या के पूर्व आचार्यों को नमस्ते किया है देखो सूत्रस्थान श्लोक २-"नमोऽस्तु"-

क्या यहां भी (नमस्ते) के अर्थ बेसिर के हैं कदापि नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं ॥

प्रिय सज्जन पुरुषो! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट हो गया कि अनादि काल से नमस्ते पद चला आता है यही कारण है कि प्राचीन पुरुष मिलने के समय नमः, नमस्ते-करते थे देखो-श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय ४९ श्लोक १३ में कुन्ती ने श्रीकृष्ण महाराज को (नमः) अर्थात् नमस्ते किया-

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परात्मने ॥

ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् अध्याय ६ श्लोक ८ में पिप्पलादादि ऋषियों को सुकेशादि ऋषियों ने (नमः) ही पद उच्चारण किया है-श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय ५२ में श्रीकृष्ण महाराज ने उत्तम ब्राह्मणों को (नमस्ते) किया है-

विप्रान् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।

निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३॥

देखो बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि राजा जनक ने आसन से उठ कर याज्ञवल्क्य जी को नमस्ते कर कहा है कि हे भगवन्! मेरे को पढ़ाओ-

जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्ते

याज्ञवल्क्यानुमाशाधीति ॥ बृ० अ० ६ ब्रा० २

गीता अध्याय ११ श्लोक ३९ से स्पष्ट प्रकट होता है कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण महाराज को नमस्ते किया था-

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वम् प्रपितामहश्च ॥

नमोनमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्ते ।३८

वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड सर्ग ५० श्लोक १७ में लिखा है—

सर्वथा च महाप्राज्ञ पूजोर्हणसुपुजितः ।

नमस्तेस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्ष स्वचक्षुषा ॥

अर्थात् विश्वामित्र जी वशिष्ठ जी से बोले कि हे महाप्राज्ञ! आप मेरे पूजनीय हैं मेरा जैसा आदर होना चाहिये वैसा आपने किया अब मैं आप को (नमस्ते) अभिवादन कर के जाता हूं मुझ पर कृपा दृष्टि रखियेगा-

प्यारे सज्जनो! जब हमारे प्राचीन पुरुष नमस्ते करते थे फिर हम को क्या सन्देह? क्योंकि इतरजनों को वही कर्म करने चाहियें जिन को श्रेष्ठ पुरुषों ने किया हो-यही सत्य शास्त्रों की आज्ञा है इस के उपरान्त सीता महाराणी ने (विराध) नाम राक्षस से कहा कि हे राक्षसों में उत्तम! मैं तुम को नमस्ते करती हूं मुझे इस वन में शार्दूल और रीछ आदि खा जांयगे तू मुझ को हर ले और राम लक्ष्मण को छोड़ दे देखो वाल्मीकिरामायण आरण्यकाण्ड सर्ग ४ श्लोक ३-

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।

मांहरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम ! ॥

और अथर्व वेद १० । १० । १ में भी स्त्री के प्रति नमः पद आया जैसा (नमस्ते जाय मानाय जातायै उतते नमः) और अथर्व वेद

६ । ५६ । २ में पुत्र के प्रति नमः शब्द आया है अर्थात् पिता पुत्र के लिये नमः शब्द का प्रयोग करे जैसा—

नमस्त्वासिताय नमस्ति राश्व राजये ।
स्वजाय वभ्रवे नमो नमो देव जनेभ्यः ॥

इसके उपरान्त य०अ० १६ मं० २६ में वरही—कुम्हार खड्ग वंदूक और तोप आदि के बनाने वाले—निषाद वनादि पर्वत के रहने वाले कुत्तोंकी शिक्षा देनेवालोंको नमः करने की आज्ञा है तो फिर हम सब को आपस में नमस्ते करना क्या अनुचित है और हम राम राम कहने को बुरा नहीं समझते क्योंकि जो सब में रमा हो उस को राम कहते हैं और इस कारण से राम नाम परमेश्वर का है इसका स्मरण रखना अच्छा ही है परन्तु शिष्टाचार के समय राम राम कहने से आदर सत्कार का कोई अर्थ नहीं निकलता इसलिये प्रत्येक शब्द के अर्थ को समयानुकूल बोलना सभ्यता का काम है अन्यथा यह लक्षण मूर्खों का ही है । इसके उपरान्त जब हम किसी ब्राह्मण वा पण्डित से मिलें तो कहते हैं कि महाराज पालागें अर्थात् मैं पैर छूता हूं वा पायं पड़ता हूं तब वह उत्तर देते हैं कि प्रसन्न रहो, आनन्द रहो, और जब वह आपस में मिलें तो एक दूसरे से कहते हैं " नमस्कार " कैसे शोक की बात है कि जब हम आपस में अपने बड़ों से मिलें तो उनका शिष्टाचार न करें और परमेश्वर का स्मरण करें, यह हमारे पूज्य ब्राह्मण जब आपस में मिलें तो एक दूसरे का शिष्टाचार करें क्या अपने लिये राम राम उत्तम पद का स्मरण करना उत्तम नहीं समझते ? इसी स्वार्थ ने तो देश को साफ़ करदिया । इसलिये मान्यवरो ! अब इन उपरोक्त बातों को स्मरण कर शिष्टाचार के समय प्रत्येक स्त्री पुरुषों को नमस्ते शब्द का प्रचार करना अभीष्ट है क्योंकि परमात्मा वेद में हम को आज्ञा देते हैं ॥

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ३२ में लिखा है कि जब परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब (नमस्ते) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़ों छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि

ब्राह्मणादिकों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें जैसा कि—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगलभाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

नमः । ज्येष्ठाय । च कनिष्ठाय । च । नमः पूर्वजायेति पूर्वऽजाय । च । अपरजायेत्यपरऽजाय । च । नमः । मध्यमाय । च । अपगलभायेत्यपऽगलभाय । च । नमः । जघन्याय । च । बुध्न्याय । च ॥

इनके उपरान्त मौसी, सास, फूफी भी गुरु की स्त्री के समान हैं इसलिये उनकी भी सेवा टहल गुरु की स्त्री की भांति करना चाहिये और फूफी और बड़ी मौसी को माता के तुल्य समझना उचित है। शिष्टाचार करने के समय और अन्य स्थानों परभी शीलको न त्यागना चाहिये देखिये मनु जी ने लिखा है कि जो मनुष्य सदा नम्रतायुक्त शील सहित प्रतिदिन विद्वान् और वृद्धों को अभिवादन और उन की सेवा करते हैं उनकी आयु, विद्या, कीर्त्ति और बल यह चार पदार्थ बढ़ते हैं जैसा कि—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारितस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

फिर भला जब ऐसी सेवा से उपरोक्त फल मिलते हैं कि जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण भी है तो कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि किसी प्रकार के घमण्ड में आकर शिष्टाचार को त्याग अप्रिय कठोर और असत्य वचन बोलकर चारों पदार्थों को खोदें ॥

इन बातों के उपरान्त यह भी स्मरण रखना योग्य है कि जिस आसन पर बड़े मनुष्य बैठे हों उसपर आप न बैठे यदि आप आसन पर बैठा हो तो उठकर आसन छोड़कर उनको प्रणाम करे और स्थान दे और कभी ऐसे परोपकारी सज्जन पुरुषों के सम्मुख पैर फैलाकर अथवा सहारा देकर न बैठे और न प्रश्न के अतिरिक्त अधिक उत्तर दे और उनके पीछे गमन भाषणादि की नकल न करे ॥

बलिवैश्वदेव ।

यह चतुर्थ नित्यकर्म है देखो मनुस्मृति अ० ३ श्लो० ८४ में स्पष्ट आज्ञा है कि यथावत् प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिये ॥

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

और गीता अ० ४ श्लो० ३१ में लिखा है कि जो यज्ञ करने के पीछे अमृतरूपी अन्न को भोजन करते हैं वह सनातन ब्रह्म को पाते हैं और जो इन यज्ञों को नहीं करते उन को इस लोक और परलोक में सुख नहीं मिलता और अ० ३ श्लो० १३ में भी इसकार्य्य की बहुत प्रशंसा की है जैसा–

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ४।३१।
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुंजते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ ३ । १३ ।

ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ में भी लिखा है । इन के अतिरिक्त व्यासस्मृति अ० २ श्लोक २८ । विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३५ । हारीतस्मृति अ० १ श्लो० २६ में भी प्रतिदिन वैश्वदेव करने की आज्ञा है । कात्यायनस्मृति खंड १२ श्लो० १० में लिखा हैं जो दोनों काल बलिवैश्वदेव नहीं करता वह पापभागी होता है । पराशरस्मृति श्लोक ५६ में लिखा है कि जो द्विजाति विना बलिवैश्वदेव किये भोजन करते हैं वे कौवे की योनि में जाते हैं ॥

अतिथिसेवा–

मान्यवरो ! गृहस्थ पुरुषों के उद्धार के अर्थ अतिथि ही देवता स्वरूप है जैसा कि तैत्तरीयोपनिषद् में लिखा है कि "अतिथिदेवोभव" और यथार्थ में यही साक्षात् मूर्त्तिपूजा है–क्योंकि अतिथि यथावत् सेवा करने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है अर्थात् इन्हीं के सत्सङ्ग से मनुष्य दोनों लोकों से आनन्द उठाता है प्रियवरो ! इस असार संसार

के पार करने के लिये अतिथि ही नावरूप है इसी कारण प्रतिदिन अतिथिसेवा करने की आज्ञा वेदादि सत्यशास्त्रों में पाई जाती है। देखिये यजु० अ० ३ मं० ४२ में लिखा है कि जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उन की सेवा गृहस्थों को निरन्तर करना चाहिये औरों की नहीं। जैसा कि—

येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ॥
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ९४ में मनु जी ने स्पष्ट आज्ञा दी है बलिवैश्वदेव के पश्चात् अतिथि को भोजन कराये और विधिपूर्वक संन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा दे-

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥

और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ३९, ४० और विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३८, ३९ हरीतस्मृति अ० ४ के श्लोक ५७ और शङ्खस्मृति अ० ५ के श्लोक १३ और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ श्लोक १०७ में भी लिखा है जैसा कि—

पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्चितः ।
त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥
कालायतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः ।
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥४०॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ।३८।
तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ।
कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ।
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः । ५७ ।
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ।

गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥१३॥
अतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः ।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपिवाग्भूतृणोदकैः ॥१०७॥

इन सब श्लोकों का तात्पर्य्य यह है कि जब गृह पर अतिथि पधारे सब उठ कर नम्रतापूर्वक उस को आसन दे, पैर धोवे, उत्तम भोजन करावे फिर विद्या का विचार करे यही अतिथियज्ञ स्वर्ग की प्राप्ति का द्वारा है इसी से गृहस्थ की उन्नति होती है और कात्यायनस्मृति खं० १२ में लिखा है कि अतिथिपूजन को ही मनुष्ययज्ञ कहते हैं—लिङ्ग-पुराण अध्याय २९ श्लोक ४८ में भी लिखा है कि अतिथि का अपमान न करे क्योंकि अतिथि साक्षात् शिव स्वरूप है इसलिये अपने शरीर को अर्पण करने में कुछ सन्देह न करे अर्थात् अच्छे प्रकार सेवा करे जैसाकि—

त्वया वै नावमन्तव्या गृहे ह्यतिथयः सदा ।
शर्व्वएव स्वयं साक्षादतिथिर्यत् पिनाधृक् ।
तस्मादतिथये दत्वा आत्मानमपि पूजयेत् ॥

विदुर जी ने कहा है कि जो अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करताहै उस का इस संसार में यश होता है। वनपर्व अ० २ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि अतिथिसेवा करना परमधर्म है और अध्याय १९४ में महात्मा (वक) ने इन्द्र को उपदेश किया है अतिथि के आदर सत्कार से गौ दान के समान फल होता है शान्तिपर्व अ० २२१ में भी भीष्मपिता-मह ने कहा है कि जो मनुष्य अतिथियों को प्रतिदिन भोजन कराते हैं उन को (अमृताशी) कहते हैं और अ० २४२ में लिखा है कि अतिथि की यथावत् सेवा करने से चन्द्रलोक मिलता है अनुशासनपर्व के अ० २ में गृहस्थ का परम श्रेष्ठ धर्म अतिथिसत्कार कहा है अरण्य-काण्ड में अगस्त्य मुनि का वचन है कि हे रामचन्द्र ! जो तपस्वी होकर अतिथियों का सत्कार नहीं करता वह झूठी साक्षी देने वालों के समान परलोक में जाकर अपना मांस आप भोजन करता है प्रिय-वरो ! जब तपस्वियों की यह दशा होगी तो फिर गृहस्थों की दुर्दशा

का क्या ठीक ! मनु जी ने कहा है कि जो गृहस्थ अतिथि से प्रथम आप भोजन करता है उस को दूसरे जन्म में कुत्ते और गिद्ध खाते हैं श्रीमद्भागवत स्कन्ध ९ अ० २६ श्लोक ३५ में लिखा है जो गृहस्थ अतिथि को बारम्बार क्रोध की दृष्टि से देखते हैं उन की आंखें गीध, कौआ, बटेर इत्यादि मरने पर निकालते हैं। पराशरस्मृति श्लोक ४६ में लिखा है कि जो अतिथि का सत्कार नहीं करता उस को हजारों घड़े घृत के होम से कुछ लाभ नहीं होता और श्लोक ५८ में लिखा है कि जो बलि-वैश्वदेव और अतिथि का सत्कार नहीं करते नरक वा कौवे की योनि में जाते हैं॥

भ्रातृगणो! वैदिक समय में बहुधा संन्यासियों और वानप्रस्थों की अतिथियों में गणना की गई थी जो अपनी आयु के दो वा तीन भाग सांसारिक आनन्दों में व्यतीत करके सब प्रकार से सन्तुष्ट हो जाते थे जिस से उनका मन फिर सांसारिक वस्तुओं की ओर कभी स्वप्न में भी न झुकता था। संसार के सम्पूर्ण भेदों को जानकर नियमपूर्वक संन्यासी होते थे जिन की कहीं भी नियत कुटी नहीं होती थी जो प्रत्येक नगरों में जाकर भय रहित होकर वेदरूपी सत्धर्म का उपदेश करते थे। इसी कारण उन की सब प्रकार से सेवा करना हमारा परम धर्म था हम उन की सेवा के अर्थ तन मन धन से उद्यत रहते थे। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी का कहीं पता भी नहीं चलता जिधर दृष्टि उठाकर देखते हैं एक झुण्ड अनपढ़ नाममात्र के संन्यासियों का दीख पड़ता है जिन की शारीरिकदशा का कुछ वर्णन नहीं हो सकता कोई भुस खाता है। कोई बड़े २ लकड़ी के गट्ठों की माला पहने होते हैं। बड़े २ बाल बढ़ाये हुये हैं। कोई हाथी आदि उत्तम सवारियों पर चलते हैं। कोई दिन और रात चरस की दम लगाया करते हैं। सच मुच यह भी सांसारिक मनुष्यों की भांति नाना प्रकार के सुखों के अभिलाषी होते हैं। जैसे हमारी आप की स्त्रियां होती हैं इन के साथ भी स्त्रियां होती हैं कि जिन को माईजी कहते हैं। जिस प्रकार हम अपनी सन्तान को लड़के वाले कहते हैं यह अपनी सन्तान को चेला चाटी कहते हैं। हम अपने

निवासस्थान को गृह कहते हैं और इन का निवासस्थान कुटी कहलाता है जिस में सर्व प्रकार की वस्तु जिन की गृहस्थी में आवश्यकता होती है भरी हुई पाई जाती हैं। सच मुच यह गृहस्थ हैं परन्तु जीविका के अर्थ यह वेष धारण करलेते हैं और नाना प्रकार से धन उत्पन्न कर कुकर्मों में व्यय करते हैं किसी के साथ एक झुण्ड आठ २ दस २ वर्ष के बालकों का (जो इस संसार के तृणमात्र से भी निपट अज्ञान होते हैं) होता है यह सब संन्यासियों के वेष में रहते हैं। मान्यवरो ! यह कदापि संन्यासी नहीं कहे जा सक्ते देखिये शातातप जी कहते हैं कि संन्यासी वही है जिस की सब सांसारिक पदार्थों में अप्रीति हो जैसा कि–

यदा सर्वपदार्थेषु वैराग्यं यस्य जायते ।
अधिकारी सविज्ञेयइति शातातपोऽब्रवीत् ॥

इन का तो केवल यही उद्देश्य है कि प्रातःकाल होते ही नगर की ओर जाते हैं घर पर जाकर घण्टों खड़े होकर मांगते फिरते हैं जिस की निन्दा बहुत प्रकार से की गई है देखिये–

आहारमात्रेपि नातिस्पृहा कार्यासन्यासिनेति भिक्षाप्रकरणवाक्यात् प्रतीयते ॥

नेक्षयेद्द्वाररन्ध्रेण भिक्षालिप्सुः क्वचिद्यतिः ।
न कुर्याद्वै क्वचिद्घोषं न द्वारं ताडयेत् क्वचित् ॥
देहि देहीति यो ब्रूयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् ।
गोमांसतुल्यं तद्भैक्ष्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

अर्थ–संन्यासियों को आहारमात्र में भी बहुत इच्छा न करनी चाहिये यहां तक कि भिक्षा की इच्छा करता हुआ द्वार में न देखे न मांगे न दरवाज़े को खटखटावे। लाओ २ ऐसा शब्द कहता लवण या व्यञ्जनादि भोजन मांगता है वह गोमांसतुल्य होता है उस को खाकर चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है । फिर कहिये कि यह संन्यासी कैसे ? यह तो केवल अपनी स्त्री माता पिता आदि से लड़

झगड़ कर वा सांसारिक आनन्दों से निराश होकर देश देशान्तरों में भ्रमण कर देश की रेड़ मार रहे हैं-इस लिये आप भी जान बूझ कर कार्य्य कीजिये। देखिये लिखा है कि वेदविरुद्ध कार्य्य करने वाले, झूठ बकने वाले, तथा वगुला और विलाव की वृत्ति रखने वाले दुष्टों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करना चाहिये॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

इस लिये मान्यवरो! केवल उन्हीं पुरुषों का सत्कार कीजिये जो अपने २ वर्णों के धर्मों को पूर्ण रूप से करने में उद्यत हैं अन्यथा कुछ लाभ नहीं वरन जितने पाप कर्म ऐसे जन आप का धन पाकर करते हैं उन के पाप के भी आप भागी होते हैं। इस के उपरान्त यह जन आप ही की लड़ैती सन्तान को स्वप्नवत् सुख दिखलाकर रंगे स्यार बना कर लेजाते हैं कि जिन के दुःखों में आप प्राण गवाने तक उद्यत हो जाते हैं इस लिये शास्त्रानुसार अतिथियों की परीक्षा कर के वेदानुकूल अतिथिसेवा का प्रचार कीजिये देखिये य० अ० २१ मं० १४ में लिखा है कि धर्मात्मा और विद्वान् अतिथियों की सेवा करे। सचमुच ऐसी ही आज्ञाओं पर चलने से इस अभागे भारत की सुदशा हो सकती है॥

अब मैं इस स्थान पर वर्तमान समय के अठारह पुराणों की सङ्क्षेपरूप से कुछ व्याख्या करताहूं उसको विचारिये और फिर दृष्टि डालिये कि यह पुस्तकें वेदों के सम्मुख किस प्रतिष्ठा के योग्य हैं इस के उपरान्त इन के अन्तर्गत मूर्त्तिपूजा, त्योहार, ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र, व्रत, तपस्या, तीर्थयात्रा, मोक्ष के विषय में क्या क्या लिख मारा है और इन विषयों में ऋषिगणों का क्या सिद्धान्त है॥

पुराणपरीक्षा।

पुराण जिन का वर्तमान समय में अधिक प्रचार हो रहा है और अनेकाम जन तो इन्हीं को धर्मपुस्तक मानते हैं-मान्यवरो! यह धर्मपुस्तक कदापि नहीं हो सकते क्योंकि पुराणों के कर्त्ता वेद ही वेद पुकारते हैं और उसी के अनुकूल चलने की आज्ञा देते हैं द्वितीय उन

के पाठ करने से प्रकट होता है कि वह ऐसे मनुष्यों के निर्मित किये हैं जो वेदमत के विरुद्ध थे परन्तु शोक का स्थान है वर्तमान समय में निडर होकर यह कहते हैं कि-"अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः" अर्थात् इन अठारह पुराणों को व्यास जी ने बनाया है-मान्यवरो! इस विषयके जाननेके लिये यहभी जानना आवश्यक है कि व्यास जी महाराज कब उत्पन्न हुए और वह किस धर्म के मानने वाले थे-फिर इन पुराणों में जो कुछ लिखा है वह उन के धर्म के अनुकूल है या प्रतिकूल?

(१) इस के उपरान्त यह भी देखना चाहिये जो विषय इस में एक स्थान पर वर्णन किया है उस के विरुद्ध तो किसी स्थान पर नहीं लिखा? जिन सज्जनों ने महाभारत को अवलोकन किया होगा वह जानते होंगे कि व्यास जी महाराज महर्षि पराशर के पुत्र थे उन के बहुधा अमूल्य वचन भिन्न २ स्थानों पर पाये जाते हैं उसी समय से कलियुग का आरम्भ होता है जिस को अब तक ४९९६ वर्ष हुए अर्थात् व्यास को हुए ४९९६ वर्ष व्यतीत हुए अब ध्यान देना चाहिये यदि व्यास जी इन पुराणों के कर्त्ता हैं तो वह उसी समय बने होंगे परन्तु ऐसा नहीं जान पड़ता क्योंकि पुराणोंके विषय अपने २ समयको पृथक् २ बतला रहे हैं-श्रीमद्भागवत के एक स्थान पर लिखा है एक समय श्री नारद जी महाराज व्याकुल हो कर विष्णु के पास गये जो कि बदरिकाश्रम पर तपस्या कर रहे थे विष्णु ने नारद जी को व्याकुल देख कर पूछा कि आप कैसे आये? नारद जी महाराज कहने लगे कि म्लेच्छों ने महादेव का मन्दिर तोड़ डाला और महादेव जी कुए में गिर कर डूब गये। इतिहास के जानने वाले इस विषय को खूब जानते होंगे यह वृत्तान्त औरङ्गज़ेब के समय में हुआ था जिस ने १६५७ ई० से १७०७ ई० तक राज्य किया इस से ज्ञात होता है कि भागवत को बनेहुए केवल १८७ वर्ष हुए जिसकी पुष्टि देवीभगवत का टीकाकारकरता है।

(२) बहुधा पुराणों में बुद्ध को अवतार माना है और इतिहासों से ज्ञात होता है कि बुद्ध विक्रमी संवत् से ६१४ वर्ष पूर्व हुए थे और ८० वर्ष की आयु में मर गये जिस को आज तक केवल २५६७ वर्ष हुए फिर व्यास जी ने पुराणों को क्यों कर बनाया?

(३) ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि इस घोर कलियुग में जो तम्बाकू पीता है वह नरक को जाता है और पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तम्बाकू पीनेवाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और ब्राह्मण गांव के सुअर का जन्म लेता है ॥

सम्पूर्ण इतिहास ज्ञाता इस विषय को एक सम्मत होकर कह रहे हैं कि तम्बाकू एमरीका से अकबर के समय में भारतवर्ष में आया। इस से ज्ञात होता है कि ब्रह्माण्ड और पद्मपुराण अकबर के समयमें या उसके पश्चात् बनाये गये ॥

(४) राधावल्लभी सम्प्रदाय सं० १६४१ में प्रचलित हुआ है और संस्कृत के किसी प्राचीन पुस्तक में राधा का नाम नहीं पाया जाता परन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में उसका बहुत कुछ माहात्म्य वर्णन किया है जिस से प्रकट है कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण सं० १६४१ के पश्चात् बना है। इसके अतिरिक्त जो महाशय जगन्नाथ जी को गये होंगे उन को ज्ञात होगा कि उस मन्दिर पर विक्रमी सं० १२३१ पड़ा है और स्कन्दपुराण में इसका बहुत माहात्म्य वर्णन किया है इस से ज्ञात होता है कि वह पुराण १२३१ वि० के पश्चात् बनाया गया इसी प्रकार अन्य पुराण अपने २ विषय से अपने २ समय को बतला रहे हैं हम विस्तार भय से नहीं लिखते ॥

(५) व्यास जी महाराज ने अनेकान स्थानोंपर उपदेश किया है कि जो महाभारत से प्रकट है उस से उनकी विद्या और वेदोक्तधर्म का प्रकाश होता है इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदान्त सूत्र और मीमांसाकी व्याख्या और योगभाष्य निर्मित किया है जिनमें बड़े २ वेदोक्त विषय भरे हुये हैं जिस के समझने वाले इस समय बहुत कम हैं जो सब प्रकार से बुद्धि और सृष्टिक्रम के अनुसार हैं जिनपर चलने से मोक्ष प्राप्त होती है। और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी श्रीमान्को त्रिकालदर्शी माना है परन्तु शोक का विषय है कि इन्हीं पुराणों में उनके नाम से ऐसी २ लीला भरी हैं जिनको मूर्ख भी ठीक नहीं कह सकता। देखिये श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अ० १ श्लोक २१ में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने इस जगत् में ११ अरब वर्ष तक राज्य किया ॥

(६) एक महापापी अजामिल नामक ब्राह्मण ने कि जिस ने अपनी सम्पूर्ण आयु केवल कुकर्मों के करने में व्यय की थी अन्त को अपने दासीपुत्र नारायण का नाम लेने से स्वर्ग पाया ॥

(७) शुकदेव जी महाराज दो अरणी की लकड़ियों में से बिना गर्भाशय के व्यास जी का वीर्य्य गिरने से उत्पन्न हुये ॥

(८) एक समय श्री वेदव्यास जी महाराज ने जो त्रिकालदर्शी थे मनुष्यों की कुगति देखकर एक वेद के चार वेद किये और शूद्रों के लिये महाभारत बनाया ॥

(नोट) मान्यवरो ! चारों वेद सृष्टि के आदि से ही चले आते हैं जिस को हमारे मुनि व्यास जी महाराज भी मानते थे फिर यह कब सत्य हो सकता है ।

(९) श्रीकृष्ण और उन के दासों की सेवा से मनुष्य पापों से छूटता है वैसा तप, ब्रह्मचर्य्य, शम, दम, दान, सत्य शौच, यम, नियम आदि से नहीं ॥

(१०) और वाल्मीकिरामायण में लिखा है कि जब महादेव जी के वीर्य्य को अग्नि और पार्वती की बहिन गङ्गा अत्यन्त उष्णता के कारण न झेल सकी तो अशक्त होकर छोड़ दिया उस के भूमि पर पात होने से उस वीर्य्य से सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा आदि नाना प्रकार की धातु उत्पन्न हुईं ॥

(११) एक समय दिति नामक राक्षसी ने तीनों लोकों के जीतने वाला पुत्र उत्पन्न करने के अर्थ तपस्या की एक दिन दुपहर को वह नींद के कारण बहुत अशक्त होकर तपस्या के नियम के विरुद्ध दिन में सो रही पस इन्द्र ने उस स्थान से जिस का लिखना सभ्यता के विपरीत है दिति के गर्भ में प्रवेश किया भीतर जाकर वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिये परन्तु अब तक उस बेचारी को कुछ ख़बर न हुई । रोने पीटने का शब्द सुन कर दिति जाग उठी और मत मारो मत मारो ऐसा कहा इसी प्रकार तुलसीदास जी भी कहते हैं ॥

सुधा वृष्टि भई दोउ दल माहीं ।
जिये भालुकपि निश्चर नाहीं ॥

मान्यवरो ! क्या यह वातें सत्य और व्यास जी वा वाल्मीकि जी की कही होसकती हैं कदापि नहीं कदापि नहीं । यह तो बिलकुल सृष्टिक्रम, शास्त्र और बुद्धि के विरुद्ध हैं इसीकारण अत्रि जी महाराज ने कहा है कि—

वेदैर्विहीनाः पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥

वेद से हीन लोग शास्त्र पढ़ते हैं, शास्त्र से हीन पुराण बांचते हैं, पुराणों से हीन हल जोतते हैं और सब से पतित भागवतपुराण बांचते हैं । फिर भला ! आप को मुक्ति इनके द्वारा क्योंकर मिलसकती है । बहुधा हमारे भाई शङ्का करते हैं कि वाल्मीकिरामायण, महात्मा वाल्मीकि ने रामचन्द्र की उत्पत्ति से कई हज़ार वर्ष पहले लिखी थी परन्तु यह बात भी उसी रामायण के बालकाण्ड के आदि के दूसरे श्लोक में नारद ने वाल्मीकि से पूंछा कि इस लोक में अब इस समय कौन गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, दृढव्रत और सत्यवादी राजा है जैसा कि-

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥

इस के उत्तर में वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी का नाम लिया है इस पर आगे कथा चली है जिस को बहुधा लोग दश हजार वर्ष पहले रामचन्द्र जी से रामायण बनाई हुई बताते हैं यह कैसे सोच की बात है । इस के अतिरिक्त इन पुराणों का कथन एक दूसरे के भी विरुद्ध है देखिये पद्मपुराण में लिखा है—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमास्तां-
तामेवहि देवतां परत्रिकां जल्पन्ति कल्पावधि ।
सिद्धान्ते पुनरेकएव भगवान् विष्णुस्समस्तागम-
व्यपारेषु विवेचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ॥

इस का तात्पर्य्य यह है कि सब पुराण मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं और उन में अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय

नहीं होता केवल एक भगवान् विष्णु ही पूजने योग्य हैं। अब देखिये शिवपुराण में शिव को परमेश्वर मान कर विष्णु, ब्रह्मा, गणेशादि को उन का सेवक ठहराया है और विष्णुपुराण में विष्णु को परमात्मा मान शिवादि को उन का दास और देवीभागवत में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को आदि शक्ति श्री नाम की स्त्री से उत्पन्न हुए और वह उन की माता इन पर मोहित होगई और तीनों से भोग करने को कहा कि जिस में महादेव ने भोग किया और मार्कण्डेयपुराण के दुर्गापाठ में लिखा है कि विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए जैसा कि—

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा से शिव उत्पन्न हुए यथा—

ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्।

नारदीयपुराण में लिखा है कि नारायण के दाहिनी ओर से ब्रह्मा बांई ओर से विष्णु और मध्यम भाग से शिव भी उत्पन्न हुए और मार्कण्डेयपुराण में लिखा है कि महालक्ष्मी से विष्णु महाकाली से महादेव और महासरस्वती से ब्रह्मा पैदा हुए और अनुशासनपर्व में लिखा है कि महादेव जी श्रीकृष्ण के शिर से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा महादेव जी के पेट से उत्पन्न हुए हैं और उसी अनुशासनपर्व अ० १४ में लिखा है कि विष्णु को महादेव जी ने उत्पन्न किया इस से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा और विष्णु के जन्मदाता महादेव जी हैं॥

इस के अतिरिक्त पाण्डव लोग जब विराट् नगर में प्रवेश करने लगे हैं तब महाराज युधिष्ठिर ने जो देवी की स्तुति की है उस के पढ़ने से मालूम होता है कि देवी ने विष्णु आदि को बनाया अब बतलाइये कि हम किस का कथन ठीक जाने और किस को व्यास जी मानते थे ?।

प्यारो! इन पुराणों के मानने से ही फूट का बाज़ार गर्म हो गया है देखिये जब चार पुराणों के श्रोता इकट्ठे होते हैं वहां सब अपनी २ सुनी कथा कहते हैं एक कहता है कि विष्णु बड़े दूसरा कहता नहीं ब्रह्मा, तीसरा कहता महादेव चौथा कहता कि तुम सब भूलते

ही आदि शक्ति माया बड़ी है, इन बातों के प्रामाणिक होने के अर्थ इन्हीं पुराणों के प्रमाण भी देते हैं उस समय कुछ भी निर्णय नहीं होता सब भ्रम में पड़ चुप होजाते हैं हां जो भक्तिपक्ष में रंगे हुये हैं वे कहते हैं कि यह तीनों ब्रह्मा विष्णु महेश एक ही हैं इन में भेद न मानना चाहिये परन्तु पुराण इन के भोलेपन का खण्डन करते हैं शिव के मन्दिर में भी लगा के जाने का निषेध है देखिये भागवत में लिखा है—

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ताभजन्ति ह्यनसूयवः ॥

अर्थ—शिव जी की सेवा करें और उस के मत पर चलने वालों की बात मानें अर्थात् शैव मत पर चलें वे सत्य शास्त्र के शत्रु और पाखण्डी हैं, मुमुक्षुओं को भयानक भूतपति को छोड़ शान्तरूप नारायण को भजना चाहिये, और पद्मपुराण को सुनिये—

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥
ब्राह्मणः कुलजोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवी मद्योच्छिष्टं घटं यथा ।

जो तिलक (वैष्णवीमार्क) धारण नहीं करता उसका मुख श्मशान के तुल्य है इसलिये देखने योग्य नहीं कदाचित् देख पड़े तो इसका प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य्य का दर्शन कर लेवे ब्राह्मण कुल में जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उसको शराब के जूठे बासन की नाईं त्याग देवे ,अब शिवपुराण को देखिये—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।
नहि शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थ—विभूति (भस्म) जिस के माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नहीं पहिने मुंह से शिव २ ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है ॥

ऐसी ही गरुड़पुराण में नाना प्रकार से पोपलीला गाई हैं जैसा कि 'यमराज' जिन के मन्त्री चित्रगुप्त जी हैं उन के गण जिन के शरीर पहाड़ के तुल्य होते हैं, जीव को पकड़ लेजाते हैं, और पाप पुण्य के अनुकूल नरक स्वर्ग पाते हैं इस के लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण गोदानादि वैतरणी उतारने के अर्थ लिखी है यह सब मिथ्या है क्योंकि "यमेन वायुना सत्यराजन्" यम नाम वायु का है शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और पक्षपात से रहित न्यायकारी परमेश्वर "धर्मराज" है वही न्यायकर्त्ता है और मरने के पीछे जीव को कुछ नहीं मिलता ॥

(१) इस के अतिरिक्त वेदों में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य को जनेऊ धारण करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में कण्ठी कण्ठ में बांधने का बड़ा माहात्म्य लिखा है और शूद्रों के भी बांधी जाती है ॥

(२) वेदों में न्यून से न्यून २५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् विवाह की आज्ञा है परन्तु अब पुराणों की रीति पर आठ वर्ष की कन्या का विवाह होता है ॥

(३) वेदों में स्त्रीशिक्षा की आज्ञा पाई जाती है परन्तु पुराणों में इस का निषेध है ॥

(४) वेदों में प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में इस के अतिरिक्त नाना प्रकार के कपोलकल्पित मन्त्रों के जप और अनेक प्रकार की पूजा के बड़े २ विधान और माहात्म्य दिखलाये हैं ।

(५) वेदों में केवल एक ईश्वर की उपासना करने की आज्ञा है परन्तु पुराणों में नाना देव और वृक्षादि पशुओं के पूजने की आज्ञा है ।

(६) वेदों में ज्ञान प्राप्त करना मुक्ति का साधन बतलाया है परन्तु पुराणों में (राम) आदि के बारम्बार कहने से मुक्ति पाना बतलाया है ।

(७) वेदानुकूल धर्म ही मरने पर सहायक होता है पुराणों में गयादि का जाना मरने पर कहहा आदि का देना भी सहायक होना बतलाया है।

(८) वेदों में स्त्रियों को सर्वोपरि पतिसेवा ही धर्म बतलाया है परन्तु पुराणों के अनुकूल नित्य प्रति उपवास और पेड़ आदि की पूजा करने की आज्ञा और मुक्ति के साधन और हैं॥

(९) वेदों में मांस और नशों के पीने का निषेध किया है परन्तु पुराणों में उस के खान पान की आज्ञायें मिलती हैं॥

(१०) वेदानुकूल मनुष्य की आयु ४०० वर्ष की मानी गई है पुराणों में ११ अरब तक आयु लिखी है॥

(११) वेदों में सत्यादि यम नियम पालन करने का नाम व्रत कहा है पुराणों में भूखे रहने अथवा विना अन्न जल के दिन रात्रि व्यतीत करने को व्रत बतलाया है॥

(१२) वेदों में ईश्वर अजन्मा वर्णन किया है और सर्वसामर्थ्य कहा है परन्तु पुराणों के कर्त्ताओं ने सर्वसामर्थ्य पर धब्बा लगाया है क्योंकि अवश्य कार्य्य करने को पृथ्वी पर जन्म लेना प्रकट किया है अर्थात् बहुत प्रकार के अवतार बतलाये हैं जिन में कच्छ, मच्छ, वराह भी अवतार माने गये हैं॥

(१३) वेदों में ईश्वर निराकार सर्वव्यापक माना गया है। पुराणों में ईश्वर को साकार माना है और अनेक प्रकार की मूर्त्ति मानते इसी प्रकार मूर्त्तिपूजा का बड़ा माहात्म्य लिखा है और वह मूर्त्ति धातु आदि की बनाना लिखा है। वेदों में योग के द्वारा सर्वोपरि उपासना मानी गई है और ज्ञानी जन इसी रीति से परमधाम को जाते हैं। इसी कारण हम यह कहते हैं—

ब्रह्मपुराण। पद्मपुराण। ब्रह्माण्डपुराण। अग्निपुराण। गरुडपुराण। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण। शिवपुराण। लिङ्गपुराण। नारदपुराण। स्कन्दपुराण। मार्कण्डेयपुराण। भविष्यपुराण। मत्स्यपुराण। कूर्मपुराण वाराहपुराण। वामनपुराण। भागवतपुराण। विष्णुपुराण। वायुपुराण। देवीभागवत। मानसपुराण। इत्यादि पुराण प्राचीन पुराण

नहीं हैं इन पुराणों की संख्या के अनुसार १ नृसिंहपुराण २ वृहन्नारदीयपुराण ३ शिवपुराण ४ दुर्वासःपुराण ५ कपिलपुराण ६ मानवपुराण ७ औशनसपुराण ८ वरुणपुराण ९ कालिकापुराण १० शाम्बपुराण ११ नन्दीपुराण १२ सौरपुराण १३ पाराशरपुराण १४ आदित्यपुराण १५ महेशपुराण १६ भार्गवपुराण १७ वशिष्ठपुराण १८ भविष्यपुराण १९ ब्रह्माण्डपुराण और कूर्मपुराण सब उपपुराण २१ होते हैं यद्यपि अग्नि और वह्निका एक ही अर्थ है परन्तु अग्निपुराण और वह्निपुराण दो जुदे २ ग्रन्थ हैं ब्रह्मवैवर्त्त यद्यपि एक ही पुराण प्रसिद्ध है परन्तु आज कल उस के दो प्रकार के पुस्तक पाये जाते हैं इस कारण एक नाम ब्र० वै० और दूसरे का नाम प्राचीन ब्रह्मवैवर्त्तपुराण रक्खा गया है स्कन्दपुराण का आज कल कोई स्वतन्त्र पुस्तक प्रचलित नहीं परन्तु उस के कई भाग काशीखण्ड, रेवाखण्ड, उत्कलखण्ड, कुमारिखण्ड, और भीमखण्ड आदि स्वतन्त्र पुस्तक रूप से प्रचलित हैं ॥

अनुमान होता है कि अठारह पुराण बन जाने के पश्चात् किसी तीर्थविशेष वा देवताविशेष का माहात्म्य की प्रसिद्धि कर के टका कमाने की इच्छा से लोगों ने अन्यथा पुराणों को प्रकाशित कर दिया जब स्कन्दपुराण का पुस्तक विलुप्त होगया तब बनारसी गुरुओं को काशीखण्ड बना के स्कन्दपुराण के नाम से प्रचलित करने में कौन रोक सकता था। स्कन्दपुराण के नाम से केवल खण्ड नामक आधुनिक पुस्तक ही प्रचलित नहीं हुए हैं वरन व्यास के नाम को कलङ्कित करने वाले कितने ही माहात्म्य भी लोगों ने स्वार्थसिद्धि के वास्ते प्रचरित कर दिये जैसे पद्मपुराण के अन्तर्गत अन्नीश्वरमाहात्म्य, अनन्तशयनमाहात्म्य, तुङ्गभद्रमाहात्म्य, अग्निपुराण के अन्तर्गत अर्जुनपुरमाहात्म्य, और कावेरीमाहात्म्य स्कन्दपुराण का भाग इन्द्रावतार, क्षेत्रमाहात्म्य, कदम्बवनमाहात्म्य, कमलालयमाहात्म्य, कान्तेश्वरमाहात्म्य, कार्त्तिकमाहात्म्य, कुमारक्षेत्रमाहात्म्य, कृष्णमाहात्म्य, गोकर्णमाहात्म्य, चिदम्बरमाहात्म्य, ब्रह्मवैवर्त्त के अन्तर्गत गरुडाचलमाहात्म्य, घटकाचलमाहात्म्य इत्यादि अनेक माहात्म्य तथा सत्यनारायण आदि नवीन पुस्तकें बनगईं मान्यवरो! यह वह ग्रन्थ नहीं है जिन को "पुराण

नाम से" पाणिनि आदि ने अपने २ ग्रन्थों में लिखा है जो व्यास जी से बहुत पूर्व हुए हैं जैसे:—

इतिहासमधीतेऽसौ—ऐतिहासिकः ।
तथा पुराणमधीतेऽसौ पौराणिकः ॥

इतिहास के पढ़ने वाले ऐतिहासिक और पुराण के पढ़नेवाले पौराणिक कहाते हैं क्या कोई पण्डित वा साधारण भी यह कह सकता है कि जब तक व्यास जीने पुराण नहीं बनाये तबतक ऐतिहासिक पौराणिक शब्द ही नहीं थे यदि थे तो किन पुराणों के पढ़नेवाले पौराणिक कहाते थे इस से यह सिद्ध हुआ कि जो पुराण पहले से वर्णाश्रम धर्म के वेदानुकूल प्रतिपादन करनेवाले थे उन्हींको वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक कहा है क्योंकि इस समय प्रवृत्तपुराणाभास के तो बनानेवाले कोई नहीं जन्मे थे तो प्रामाणिक किस को कहते औरभी देखिये महर्षियों का सिद्धान्त है कि—

दशमेहि किञ्चित् पुराणमाचक्षीत ।

अश्वमेध यज्ञ में दशवें दिन थोड़ी कथा कहे आप लोगों के विचारानुसार अश्वमेधयज्ञ जब कलियुग में वर्जित है और पुराण कलियुग के आरम्भ में बने यह वचन सर्वथा व्यर्थ हुआ क्योंकि जब अश्वमेध होते थे तब तो पुराण ही न थे कथा किसकी कहते । और जब से पुराण बनाये गये तब से अश्वमेध करना ही रोक दिया और करने के सामर्थ्य वाले चक्रवर्त्ती राजा भी न रहे इसलिये यह जो आज्ञा है कि अश्वमेध में दशवें दिन थोड़ी पुराण की कथा कहे यह जबही ठीक होगा जब कि व्यास जी से पहलेभी पुराण माने जावें । यह बात अनेक प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध है कि पुराण बहुत प्राचीन काल से चलेआते हैं ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुधा इतिहास पुराण के नाम से आये हैं । और ब्राह्मणों को अपौरुषेय वेद मानते हो तो कहिये कि व्यास जी जब नहीं थे तब कौन से ग्रन्थ पुराण शब्द से लिये जाते थे वा जब तक आपके पुराण नहीं बने तब तक ब्राह्मण ग्रन्थों का यह लेख है कि इतिहास पुराण वेदों में पांचवां वेद है व्यर्थही रहा । और जैसे रघुवंशी आदि अनेक

राजाओं ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये तब व्यास जी कृत पुराण न होने से किस की कथा सुनते थे इस वास्ते आवश्यकता हुई कि इतिहास पुराण वही माने जावें जिनको वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक माना है। हम यह नहीं कहते कि पुराणों के मानने की आज्ञा सद्ग्रन्थों में नहीं है अवश्य ही है परन्तु भागवतादि नवीन ग्रन्थों का नाम पुराण ही नहीं है वरन पुराण नाम ब्राह्मण ग्रन्थों का है। इस बातको केवल हमहीं नहीं कहते वरन भागवत आदि को जिन लोगों ने बनाया है वह भी इस बात को अपने ग्रन्थों में लिख गये हैं। परन्तु आश्चर्य्य का विषय है कि आजकल के हिन्दू अपने ग्रन्थों को श्रद्धा और विचार के साथ नहीं पढ़ते देखिये पद्मपुराण में लिखा है कि—

ब्रह्मणा सर्वशास्त्राणां पुराणं प्रथमं स्मृतम्।

इसी के अनुकूल वायुपुराण में भी लिखा है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

अ० १ श्लो० ५८

ब्रह्मा ने पहले पुराण को बनाया पश्चात् उस के मुख से वेद निकले। ऐसा ही मत्स्यपुराण में भी लिखा है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।
मीमांसा न्यायविद्या च प्रमाणाष्टकसंयुता॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मवैवर्त्त के बनाने वाले भी ब्राह्मण ग्रन्थों ही को पुराण मानते थे क्योंकि यदि ब्रह्मवैवर्त्त को वह लोग पुराण मानते तो ब्रह्मा के मुख में उन की उत्पत्ति न लिखते। पुराण नामधारी नवीन ग्रन्थों को ब्रह्मा का बनाया हुआ कोई नहीं मानता इस कारण ब्राह्मण ही पुराणशब्दवाच्य है ऋग्वेद के उपोद्घात में हिन्दुओं के परममान्य सायणाचार्य्य भी लिख गये हैं—

"देवासुरा संयत्ता आसन्नित्यादयइतिहासाः । इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिजगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्"

जिन शङ्कराचार्य्य को हिन्दू लोग महादेव का अवतार मानते हैं उन्हीं ने ही बृहदारण्यकोपनिषद् (चतुर्थ ब्राह्मण) के भाष्य में लिखा है।

इतिहासइत्युर्वशीपुरुरवसोः संवादादिरुर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणम् ॥

अर्थात् ब्राह्मणग्रन्थ में उर्वशी और पुरुरवा का संवादरूप इतिहास है इस कारण ब्राह्मण ही पुराण हैं ॥

पुराण नामधारी नवीन पुस्तकों में पुराणों के पांच लक्षण लिखे हैं वे भी ब्राह्मणग्रन्थों में ही घटते हैं भागवत आदि में नहीं पाए जाते वह पांच लक्षण ये हैं ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंशो का चरित्र इन पांचों का जिन में वर्णन हो उसे पुराण कहते हैं ब्राह्मणग्रन्थों में सृष्टि का वर्णन तो स्पष्ट ही लिखा है देखिये तैत्तिरीयब्राह्मण के प्रथम अष्टक प्रथम अ० तृतीय अनुवाक में लिखा है ॥

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तेन प्रजापतिरश्राम्यत् । कथमिदꣳस्यादिति । सोपश्यत् पुष्करपर्णन्तिष्ठत् सोमन्यत । अस्ति वै तावत् । यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति । स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथ्वीमध आर्च्छत् । तस्याउपहत्योदमज्जत । तत्पुष्करपर्णे प्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवीत्वम् ॥

इस ब्राह्मण वाक्य में जो सृष्टिक्रम का वर्णन है वह तैत्तिरीयसंहिता के एक मन्त्र का अर्थ है इस से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद भी नहीं हैं वरन

वेदों की व्याख्या और पुराणशब्दवाच्य है, गाथा वा वंशानुचरित ब्राह्मणग्रन्थों में स्पष्ट ही लिखे हुए हैं देखिये ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है-

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेन दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्मन्तिमभिषिषेच तस्माद्भरतो दौष्मन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परियाय ॥

अर्थात् ममता का पुत्र-दीर्घतमा ऋषि ने इस ऐन्द्र अभिषेक द्वारा महाराज दुष्मन्त के पुत्र भरत का अभिषेक किया था इसी कारण दुष्मन्तनन्दन भरत ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीत के भ्रमण किया था इस के अतिरिक्त शतपथब्राह्मण (१३ । ५ । ४ । १) में लिखा है ॥

"एतेन हैन्द्रैतो दैवा यः शौनकः जनमेजयं पारिक्षितं याजयांचकार तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्यां सर्वां ब्रह्महत्यामपजघान"

शतपथादि ब्राह्मणों में मिथिलाधिपति महाराज जनक तथा महाराज दुष्मन्त और अनेक ऋषियों की कथा लिखी हुई है इस कारण वेदार्थों के जानने वाले प्राचीन महर्षियों के बनाये ब्राह्मणग्रन्थों की पुराणसंज्ञा है-यह सब को स्वीकार करना उचित है इस लिये प्यारे भाइयो ! भागवतादि नवीन अठारह पुराणों को जो व्यास जी के नाम से स्वार्थियों ने बनाये हैं कि जिन में बहुत हानिकारक बातें भरी हुई हैं उन को त्यागकर वेदोक्त ही कार्य्य कीजिये क्योंकि वेद ही सनातन ईश्वर रचित पुस्तक है पुराणादि कदापि नहीं होसकते ॥

ईश्वरकृत वेदों का होना ।

मान्यवरो ! ईश्वरकृत वही पुस्तकें हो सकती हैं जिस में निम्न लिखित बातें पाई जावें ॥

(१) यह कि वह किसी देश की भाषा न हो, क्योंकि अगर अरबी होगी तो अरब वालों को, फ़ारसी होगी तो फ़ारिस वालों को, अंगरेजी होगी तो इङ्गलिस्तान वालों को, हिन्दी होगी तो हिन्दवालों को सुगम होगी, पस ऐसी विद्या सिवाय संस्कृत के कोई नहीं है क्योंकि वह किसी देश की भाषा नहीं है इस में सम्पूर्ण देशनिवासियों को

एक सा परिश्रम करना पड़ता है यदि किसी देश की भाषा होती तो उस से परमेश्वर में पक्षपात अर्थात् विकार पाया जाता और वह निर्विकार है इसलिये ऐसी भाषा में वेदों को प्रकट किया कि वह किसी देश की भाषा नहीं है।

(२) किसी क़ौम की तरफ़दारी न हो।

(३) सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही प्रकट हुई हो, न कि थोड़ा या बहुत समय व्यतीत होने पर।

(४) उस की आज्ञा सब जगह एकसी ही हो ऐसा न हो कि एक आज्ञा उस की दूसरी आज्ञा को काट सके।

(५) सृष्टिनियम जो उसी का रचा हुआ है उस के विपरीत न हो।

(६) न्याय और खगोल भी उस को झूठा न कर सके।

(७) किसी ख़ास मनुष्य पर ईमान लाने की आज्ञा न हो, वरन उस में केवल एक ईश्वर ही माननीय पूजनीय हो।

(८) मनुष्यों की बुद्धि को उन्नति करने वाली हो।

(९) उस में क़िस्सा कहानियां न हों।

(१०) जितनी विद्या दुनियां में प्रचलित हैं उन सब का कोष हो, इन गुणों से परिपूर्ण जो कोई पुस्तक इस संसार में हो वह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकती है॥

मूर्त्तिपूजाविचार॥

सब से प्रथम यह जानना चाहिये कि "मूर्त्ति" किस को कहते हैं देखिये बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है—

द्वे वा ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च। अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चेत्यादि॥

ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक मूर्त्ति, दूसरे अमूर्त्त इन में आकाश वायु से भिन्न सब मूर्त्त और आकाश वायु अमूर्त्त हैं अर्थात् पञ्चभूतों में पहले दो सूक्ष्म और अन्त में तीन स्थूल हैं और इन तीन भूतों के विकार भूत सभी पदार्थ स्थूल (मूर्त्त) हैं और इसी को आकृति कहते हैं अर्थात् जो नेत्रद्वारा प्रत्यक्ष हो उसी को मूर्त्त वा मूर्त्ति कहते हैं और कोष के अनुसार मूर्त्ति शब्द के दो अर्थ हैं—

"मूर्त्तिःकाठिन्यकाययोः"

अर्थात् कठिनाई और शरीर का नाम मूर्त्ति है और इसी से मूर्त्तिमान् शब्द भी बनता है, इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि पाषाणादि से बनी हुई मूर्त्तियों ही का नाम मूर्त्ति नहीं है जो हिन्दू मन्दिरों और ठाकुरद्वारों में ताले के भीतर बन्द रखते हैं।

अब यह विचार करना चाहिये कि मूर्त्ति शब्द के साथ जो पूजा शब्द लगा है उस का क्या अर्थ है तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि सत्कार करने का नाम पूजा है, किसी प्रकार के कोष वा व्याकरण के प्रमाण से पूजा शब्द का अर्थ धूप दीप नैवेद्य वा चन्दनादि पदार्थ जड़ वस्तु पर चढ़ाने का प्रसिद्ध नहीं है, हां पूजा शब्द का अर्थ चेतन वस्तुओं के प्रसङ्ग में आता है अमरकोष में जहां पूजा शब्द आया है उस प्रकरण को देखने से निश्चय होता है कि इस पूजा शब्द का अर्थ चेतनों ही से सम्बन्ध रखता है, देखो अमरकोष के द्वितीयकाण्ड के सप्तम ब्रह्मवर्ग में पूजा शब्द आया है वहां उस से पहिले अतिथि और पाहुन का प्रसङ्ग है इसलिये ठीक सिद्ध है कि पूजाशब्द चेतनसम्बन्धी है और सर्व चेतनों के बीच में मनुष्य ही बुद्धिमान् हैं इसलिये इस की ही पूजा करना योग्य है जैसा कि मनु जी महाराज ने कहा है—

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्त्तिरात्मनः॥

आचार्य गुरु ब्रह्म की मूर्त्ति है अर्थात् जिस भावना से आचार्य की पूर्ण सेवा करेगा वही अभीष्ट सिद्ध होगा, ब्रह्म नाम वेद वा परमेश्वर का यथावत् ज्ञान गुरु की पूजा के आधीन है जब गुरु सन्तुष्ट होगा तो उस को सुगमतापूर्वक वेद वा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करादेगा ईश्वर और शब्दार्थ सम्बन्ध रूप वेद दोनों अमूर्त्त हैं परन्तु आचार्य के अन्तःकरण में स्थित हैं इस कारण आचार्य को ब्रह्म की मूर्त्ति कहा जिसको ब्रह्म की पूजा करना अभीष्ट हो वह आचार्य की पूजा करे, क्योंकि धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि ब्रह्मकी मूर्त्ति आचार्य है और ऐसा किसी ने नहीं कहा कि "पाषाणो ब्रह्मणो मूर्त्तिः" क्योंकि "ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः"

अर्थात् ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और पाषाणादि जड़ पदार्थ ज्ञान होने में सहायता नहीं दे सकते क्योंकि वह स्वय ज्ञानरहित हैं इसलिये आचार्य गुरु की ठीक ठीक सेवा किये विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, और पिता सृष्टिकर्त्ता की मूर्त्ति है उसी से शरीररूप पुत्र होता है अर्थात् पिता उस पुत्ररूप शरीर का बनाने वाला है इसलिये जहां सृष्टिकर्त्ता की मूर्त्ति पूजना हो वहां साक्षात् पिता की मूर्त्ति को पूजे जिस से ऋण का उद्धार हो जावे माता पृथ्वी की मूर्त्ति है, क्योंकि "इयं भूमिर्हिभूतानां शाश्वतीयोनिरुच्यते" अन्नादि की उत्पत्ति के समान प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान भूमिस्थानी माना है जिस ने सब प्रकार के क्लेश सह के उत्पन्न कर पालन पोषण कर बड़ा किया है उस की साक्षात् मूर्त्ति पूजनी चाहिये और सहोदर भाई अपनी मूर्त्ति है अर्थात् एक स्थान और एक पिता से उत्पन्न होने के कारण सब भ्राता एक ही मूर्त्ति हैं इसलिये जितनी सेवा भ्राता की करे वह जानो अपनी मूर्त्ति की पूजा है जैसा कि—

आचार्यश्चपिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

आचार्य माता पिता और ज्येष्ठ भाई ये यदि किसी प्रकार का दुःख भी दें तथापि इन का अपमान कदापि न करें यह उपदेश सब वर्णों के लिये है परन्तु ब्राह्मण के लिये विशेष है क्योंकि वह धर्म की मर्यादा को अधिक जानता है ।

प्यारो ! इसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा प्राचीन काल से आर्यों में चली आई है और इसी प्रकार की पूजा का आर्य ग्रन्थों में बहुत उपदेश है जैसा इन तीनों की सेवा से तप की समाप्ति मनुस्मृति में लिखी है वैसे पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजने से तप का पूर्ण होना किसी ऋषिकृत ग्रन्थ में नहीं लिखा अब बहुधा लोग मूर्त्ति पूजन को ईश्वर की उपासना के सम्बन्ध में लगाते हैं कि ईश्वर के अवतारों की प्रतिमा बना कर पूजने से ईश्वर में भक्ति और उस को ज्ञान होगा, उस को विचार करना चाहिये कि जब न्यायादि शास्त्र के अनुसार रूपादि

गुण जीवात्मा के भी नहीं मानते अर्थात् जड़स्वरूप पञ्चभूतों के गुण रूपादि हैं किन्तु चेतन में रूपादि का अभाव होने से उसको इन्द्रियगोचर नहीं कह सकते तो उस परमात्मा की प्रतिमा कैसे बनी? यद्यपि अवतार शब्द और उस के वाच्यार्थ का विचार करना इस प्रसङ्ग में अभीष्ट नहीं है तथापि जो २ लोग श्रीरामचन्द्रादि को ईश्वर का अवतार मानते हैं उन से केवल इतना ही निवेदन है कि आप यदि चिदात्मवाद को लेकर रामचन्द्र जी आदि को ईश्वर मानें तो चेतन वस्तु उन के शरीरों में भी रूपादि गुण रहित ही था, कोई कदापि त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकता कि अमुक चेतन की मूर्त्ति में नीरूपत्वादि गुणयुक्त देखी तो अवतारों के शरीरों की (कि जो पृथ्वी का विकार है) ही प्रतिमा बन सकती है किन्तु उन के शरीरों में जो आत्मा है उस की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है और यदि देहात्मवाद को मानते हो अर्थात् भौतिक शरीर को आत्मा मानते हो तो अविद्या का फल है क्योंकि योगशास्त्र में कहा है कि अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धि करना अविद्या का लक्षण है और किसी शास्त्र का सिद्धान्त नहीं है कि शरीर को आत्मा माना जावे, इसलिये परमेश्वर की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है, और यदि मनुष्यों की स्वाभाविक वृत्ति पर ध्यान दिया जावे कि वे अपना उपास्य देव कैसा मानना चाहते हैं तो यही सिद्ध होगा कि हमारा उपास्य देव वही होना चाहिये जिस से ऊपर कोई न हो, यदि हमारे उपास्य देव के ऊपर उस को दबानेवाला कोई अन्य भी हुआ तो हमारा उपास्य देव छोटा होजायगा फिर हम यथावत् उसकी भक्ति न कर सकेंगे और यही चित्त में आवेगा कि हम अपना उपास्य उसी को मानें जो सर्वोपरि है, तात्पर्य्य यह है कि जब हम किसी पुरुष विशेष पर दृष्टि देवें तो शास्त्रों के अनुसार उन २ पुरुषों के ऊपर भी ऐश्वर्य्यवान् प्रतीत होते हैं, क्योंकि जिन लोगों ने अवतार माने हैं उनका यही सिद्धान्त है कि नित्य शुद्ध बुद्धमुक्तस्वभाव ब्रह्म का अवतार नहीं होता तो उसकी प्रतिमा कैसे बन सकेगी रहे ब्रह्मादि सो सर्वतन्त्रसिद्धान्त से संसारान्तर्गत हैं क्योंकि ब्रह्मा से लेकर स्थावरान्त जगत् कहाता है, जब संसार में है

तो विशेषविभूति वाले होकर भी कर्मानुसार शुभाशुभ कर्मफल के भागी होते हैं जैसा हमारा राजा विशेषविभूति और ऐश्वर्यवान् है पर भोग उस को भी कर्मानुसार मिले है तो जिन को ईश्वर मान कर उन की प्रतिमा बनाना चाहते हैं और वे साक्षात् परमेश्वर नहीं तो उन प्रतिमाओं से परमेश्वर की पूजा क्योंकर कही जावेगी, यदि अस्मदादि की अपेक्षा विशेष ऐश्वर्यवान् होने से वे ईश्वर माने जावें तो आज कल राजा लोग क्यों नहीं माने जाते, और राजादि का ईश्वर नाम केवल ऐश्वर्य ही के कारण है किन्तु उपास्य देव की दृष्टि से नहीं है, तो जिन का अवतार होना मानते हैं वे उपास्य प्रकरण में ईश्वर ही नहीं फिर उन की प्रतिकृति (तस्वीरों) के बनाने और पूजने से किस प्रकार अभीष्ट सिद्ध हो सकता है, और अवतार मानने वालों से यह भी निवेदन है कि जब चौबीस अवतार हुए मानते हो तो सब अवतारों की प्रतिमा क्यों नहीं बनाई गई और पांच ही प्रकार की मूर्त्तियां क्यों बनाईं यदि शूकर देव वा कच्छपादि की मूर्त्ति बना कर पूजी जाती तो क्या लोग प्रसन्न होते कि बहुत अच्छे अवतार की प्रतिमा है, कदाचित् शूकरादि की प्रतिमा इसी लज्जा से पूजा में न लीगई हो । सो यदि लज्जा है तो क्या ऐसे अवतार मानने में लज्जित न होना चाहिये, हां श्रीमान् राजा रामचन्द्रादि की प्रतिकृति किसी ने प्रचरित की तो बहुत अच्छे विचार से की होगी किन्तु ईश्वर का अवतार समझ कर नहीं की यदि अवतारों की ही प्रतिमा बनने का कोई नियम किया चाहे सो ठीक नहीं क्योंकि महादेवादि कई की प्रतिमा बनती हैं और वे अवतारों में नहीं गिने जाते तो यह कहना भी नहीं बनता कि जिन २ ने मनुष्यादि योनि में शरीर धारण किया उन्हीं की प्रतिमा पूजनार्थ बनाई गई और यह भी विचारणीय है कि जैसे महादेव जी शरीरधारी नहीं थे तो उन के लिङ्ग की प्रतिमा कैसे बनी, यदि साकार मानो तो उन के लिङ्ग की प्रतिमा जैसे बन गई वैसे ही विष्णु भी साकार हो सकते हैं और उन की बिना शरीर धारण किये भी प्रतिमा बन सकती है फिर शरीरधारण अर्थात् विष्णु का अवतार लेना व्यर्थ है क्योंकि जब पहिले ही साकार थे तो शरीरधारी के तुल्य दैत्यवध आदि काम कर सकते थे ॥

अब इस के तत्त्व पर दृष्टि डालिये कि प्रतिमा पूजन की जड़ क्या है तो यह प्रतीत होता है कि प्रतिकृति (तस्वीर वा फ़ोटो) के बनाने की परिपाटी तो सदा से है और होनी भी चाहिये क्योंकि इस से अनेक प्रयोजनों की सिद्धि समझी गई है, जब किसी की किसी के साथ अधिक प्रीति होती है तो देशान्तर होने के समय वा शरीरान्त होने के पश्चात् उस की प्रतिकृति सामने रहने से उस के गुणों का स्मरण करते और उस से चित्त को सन्तोष पहुंचता है तथा अनेक भद्र पुरुषों की तस्वीर देख के उन के सुने गुण कर्मों का स्मरण होता है, इस से मनुष्य को गुणवान् होने में सहायता मिलती है और यह भी विचार होता है कि जब ऐसे २ गुणी लोग संसार में न रहे तो क्या हम रह सकते हैं हम को भी कभी न कभी यह सब छोड़ना ही है इस से विषयासक्ति कम होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं जिन के लिये तो प्रतिकृति का प्रचार बहुत ही उत्तम है परन्तु मुख्य प्रयोजन जो उन से निकलते हैं उन से यथावत् काम लेना विद्वानों का काम है, जब समय के हेर फेर से विद्या और शिक्षा प्रणाली आर्यावर्त्त में घटती गई तो सामर्थ्य हीन होने से उन प्रतिमाओं को ईश्वर की प्रतिमा मानने लगे, क्योंकि जिन दिनों श्रीरामचन्द्र जी आदि की प्रतिकृति प्रचरित थीं उन के गुण कर्म सुने तो बहुत अधिक थे अपने सामने ऐसे गुणी पराक्रमी कोई हुए नहीं तो उन्हीं को ईश्वर मानने लगे, सो यह सब अविद्या देवी का प्रताप है, क्योंकि जिस ने अच्छे विद्वानों की विद्वत्ता को नहीं जाना वह यदि लालबुझक्कड़ को बड़ा पण्डित कहे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, जैसा आज कल भी बहुत से ग्रामीण मनुष्य रेल के इञ्जन को काली देवी की साक्षात् मूर्त्ति मानकर घी गुड़ से पूजते हैं अर्थात् जिस ने विद्या शिक्षा वा सत्सङ्ग के यथावत् न होने से परमेश्वर के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् नहीं सुना वह विशेष ऐश्वर्य वाले शरीरधारियों के गुण कर्म सुन के उन को ईश्वर माने वा उन की प्रतिकृति को ईश्वर की प्रतिकृति समझे तो इस में कुछ आश्चर्य नहीं है, इस से यही प्रतीत होता है कि जो २ महात्मा सज्जन धार्मिक विद्वान् पराक्रमी हुए उन की प्रतिकृति

बनी तो देखने आदि के लिये थी पर अविद्या के प्रताप से उन का अभिप्राय लौट कर कुछ का कुछ होगया, और अब यह भी निश्चय नहीं कि जो २ प्रतिमा प्रचरित हैं वे २ उन २ महात्माओं की आकृति के अनुसार हैं, हम को कदापि प्रतीत नहीं होता कि राजा रामचन्द्र जी वा श्रीकृष्णचन्द्र जी की आकृति ऐसी ही हों कि जैसी भयानक प्रतिमा अक्खड़दासी वैरागियों ने त्रिवेणी आदि पर रक्खी हैं यदि उन महात्माओं की ठीक २ प्रतिमा जैसी उन की आकृति थी मिले और कोई अनेक प्रकारों से निश्चय करादेवें कि अमुक महात्मा ऐसे ही थे तो अभी प्रायः लोग ऐसी प्रतिकृतियों को अपने पास रखने की अवश्य चेष्टा करेंगे और उन की प्रतिकृतियों को देख २ आर्यों को बड़ा सन्तोष होगा, जब लोगों ने मनमानी आकृति बनाली तो प्रतिकृति से जो लाभ होना सम्भव था सो भी होना कठिन होगया और प्रतिमा बनाने का प्रचार प्रायः ऐसा है कि शरीर के अन्य अवयवों की प्रतिमा नहीं बनाते अर्थात् कटिभाग से ऊपर की तसवीर प्रायः बनाई जाती है यदि कोई सर्वाङ्ग भी बनावे तो उस का अभिप्राय भी ऊपर के भाग पर ही अधिक होता है और यही होना भी चाहिये क्योंकि मुख का नाम उत्तमाङ्ग है मुख की पहिचान ही मुख्य समझी जाती है, यदि किसी का शिर न हो तो उसे सदृश से पहिचान लेना भी कठिन है, और विषयासक्त लोगों की विषयों में रुचि बढ़ने के लिये उन २ अवयवों की स्पष्ट और शृङ्गारादि सहित भी शिल्पी लोग प्रतिमा बनाते हैं परन्तु केवल लिङ्ग की कोई तस्वीर नहीं बनाता क्योंकि यह तो मूत्र का मार्ग है उस की तस्वीर से क्या प्रयोजन होगा अब यदि कोई प्रश्न करे कि महादेव जी कि जिन को योगिराज मानते हैं उन के लिङ्ग की प्रतिमा क्यों बनाई गई क्या उन के मुख नहीं था, जब जटाजूट में गङ्गा फिरती रही और उस को पार नहीं मिला तो हज़ारों कोस वन के समान केश होंगे उस में शिर भी बड़ा भारी होगा, तीन नेत्र के कहने से भी शिर का होना सिद्ध होता है, कण्ठ में विष पी लिया था इस से भी कण्ठ और शिर का होना सिद्ध होता है तो सब शरीर वा उत्तमाङ्ग की तस्वीर क्यों नहीं बनाई गई, क्या कारण है जो

महादेव जी के लिङ्ग की तस्वीर बनाई गई ? अवश्य इस में कोई विशेष कारण है जिस को अपना पूज्य वा बड़ा मानते हैं उस के पग पूजा करते हैं यही शिष्टों का व्यवहार है, महादेव जी को ऐसा पूज्य मान कर उन के लिङ्ग की पूजा चलाई गई इस में यही कारण प्रतीत होता है कि विषयी लोगों ने वाममार्ग चलाने के लिये यही जड़ रक्खी है, यदि विरक्त से तात्पर्य था तो पद्मासनस्थ विभूति रमाये समाधिस्थ महादेव जी की प्रतिमा बनाते जिस से सज्जनों को हर्ष होता॥

ऐसे प्रश्न सब के अन्तःकरण में नहीं उठते अनेक लोग तो यह भी नहीं जानते कि महादेव जी के लिङ्ग की यह आकृति है किन्तु जो पूजना उन को बताया गया है सो करते जाना उन का काम है, इस में उन का क्या दोष है। जो लोग आग्रही वा पक्षपाती हैं उन से ऐसा प्रश्न किया जाय तो वे नास्तिकादि कहकर गालियां प्रदान के विना अन्य कुछ भी उत्तर नहीं देते इसलिये वेदानुकूल माता पिता आचार्य आदि मूर्त्तिमान् देवों का सदा आदर सत्कार करना अभीष्ट है।

अनेक लोग यह कहते हैं कि यह पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन मूर्खों के लिये है क्योंकि वे ईश्वर की भक्ति वेद वा मन्त्रादि द्वारा नहीं कर सकते और जब उन के चित्त में प्रेम बढ़ते २ ज्ञान होजायगा तो आप ही उस को छोड़ देंगे। जैसे छोटी २ लड़कियां पहिले गुड़ियों के द्वारा खेला करती हैं और जब उन को सच्चे पति का ज्ञान हो जाता है तब वह इस खेल को आप ही छोड़ देती हैं, उसी भांति मूर्ख लोग ज्ञान होने पर इस को त्याग कर देते हैं। यदि ऐसा ही हो तो अभी तक ऐसा देखने में नहीं आया कि किसी मूर्खमण्डली को पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा करते २ ईश्वर का ज्ञान हुआ हो और उन्हों ने मूर्त्ति पूजन छोड़ दिया हो। हां यह तो देखने में आया है कि सहस्रों मूर्ख जन्म जन्मान्तरों तक मूर्त्तिपूजन करते २ मरजाते हैं परन्तु किसी को ज्ञान नहीं होता, इस का कारण यही है कि वहां उन मूर्त्तियों में स्वयमेव ज्ञान का लेशमात्र भी नहीं होता तो भला फिर सेवकों को कहां से आजावेगा क्योंकि जो पदार्थ जिस के पास होता है वही दूसरों को देसकता है हां जैसा मूर्त्तिपूजन वेदादि शास्त्रानुकूल है अर्थात्

चेतन मूर्त्तियों की यथावत् सेवा करना उस से अवश्य ज्ञान हो सकता है इस के उपरान्त यह भी विचार करना योग्य है कि यदि मूर्खों के लिये पाषाणादि पूजन है तो किन मूर्खों के लिये? अर्थात् एक तो जन्म से बाल्यावस्था से सभी मूर्ख होते हैं तथा एक मूर्ख वे हैं कि जिन को बड़ी अवस्था में भी किसी प्रकार की विद्या वा सत्सङ्ग से ज्ञान हुआ। यदि बालकों के लिये है तो उन को सन्ध्योपासनादि का विधान जैसा ब्रह्मचर्य्य आश्रम से ही धर्मशास्त्रों में किया गया है वैसा धर्मशास्त्र का उपदेश क्यों नहीं किया गया और उन बालकों को सन्ध्योपासनादि वा विद्याभ्यास से जब ज्ञान हुआ तो उन के लिये पाषाणपूजन का उपदेश निरर्थक है। दूसरे प्रकार के मूर्खों को इस मूर्त्तिपूजा से ज्ञान होना ही असम्भव है, कदाचित् मान भी लिया जावे कि मूर्खों के लिये है, तो फिर विद्वान् लोग क्यों करते हैं, यदि कोई कहे यह सब पूजन शूद्रों के लिये है तो भी उन को कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, हां विद्वान् महात्माओं की सेवा उन शूद्रों और मूर्खों से कराई जावे कि जिससे उन को भी सत्सङ्गरूपी गन्ध पहुंच कर उन के अन्तःकरण की धीरे २ शुद्धि होने लगे, शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करना बतलाया गया है, बहुधा जन यह भी कहते हैं कि प्रतिमा में मन लग जाता है परन्तु उपासना प्रकरण में वेद वा किसी सत्यशास्त्रकार ने प्रतिमा में मन को ठहरा कर उपासना करना नहीं लिखा, फिर किस प्रकार से माना जावे, देखिये अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज से कहा है कि मन बड़ा चञ्चल है इस का रोकना अत्यन्त कठिन है जैसा कि-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

इस पर श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने उत्तर दिया सच मुच मन ऐसा ही चञ्चल है उस का ठहरना बहुत कठिन है तथापि अभ्यास और वैराग्य से ठहराया जाता है ऐसा ही योग सूत्र में भी लिखा है-

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"

अर्थात् चित्त का निरोध अभ्यास और वैराग्य से करना चाहिये,

मन को स्थिर करने के लिये प्रतिदिन अभ्यास और जिन वस्तुओं के लिये मन अधिक चलता है उनसे वैराग्य करके रोकना चाहिये क्योंकि जिस की उपासना करना चाहते हैं उस आत्मा में चित्त को स्थित करने के लिये बार २ यत्न करने को अभ्यास कहते हैं तथा संसारी वा परमार्थसम्बन्धी सुखों के भोग की तृष्णा को छोड़ना वैराग्य कहाता है। और ऐसे ही भगवद्गीता में लिखा है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

स्थिरतारहित चञ्चल मन जिधर को निकले उधर से बार २ रोक कर अन्तःकरण में वशीभूत करे इत्यादि प्रकार से मन को अर्थ अनेक उपाय शास्त्रकारों ने लिखे हैं, पर यह किसी ने नहीं लिखा कि ईश्वर की प्रतिमा पाषाणादि की बना कर उसमें चित्त को ठहरावे, तो किस प्रकार मान लिया जावे कि चित्त को स्थिर करने के लिये प्रतिमा होनी चाहिये, और यह बात युक्ति से भी सिद्ध नहीं कि जो विषय भौतिक इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करें उसी को हम जान सकें, यदि ऐसा हो तो भूख प्यास सुख दुःख हानि लाभ आदि अनेक विषय हैं जिन को हम कभी इन्द्रियों के द्वारा न प्रत्यक्ष किया और न कर सकेंगे कि भूख इतनी लम्बी चौड़ी मोटी पतली काली पीली आदि है, परन्तु जानते अवश्य हैं कि यह भूख प्यास आदि है किन्तु उन भूख प्यास आदि निराकार जानने के लिये किसी पाषाणादि की प्रतिमा बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और मूर्ख पण्डित सभी उसको जानते हैं तो निराकार ईश्वर को जानने के लिये पाषाणादिनिर्मित प्रतिमा की क्या आवश्यकता देखिये है॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके,
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित्,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

जो धातु आदि में आत्मबुद्धि करते हैं और नदी नाले पहाड़ स्थान आदि में तीर्थ बुद्धि और स्त्री पुत्रादि में ममता रखते हैं वे मनुष्यों के बीच में गधे वा बैल हैं। महाभारत में लिखा है।

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाणमृण्मये।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढचेतसः॥

तीर्थ और पशुओं के यज्ञ, काष्ठ, पाषाण, मिट्टी की प्रतिमा अर्थात् तसवीरों में जिन का मन है वह मनुष्य मूर्ख हैं, और भी कहा है—

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते॥

जो जीव सर्वव्यापक परमात्मा न्यायकारी की धातु पत्थर लोहा पीतल चांदी सोना आदि किसी भांति की मूर्त्ति बनाते हैं वे अज्ञानी हैं, और गीता में लिखा है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्यक्तमनुत्तमम्॥

अविवेकी विचार रहित, मुझ निराकार को मूर्त्तिमान् मानते हैं मेरे परम भाव अर्थात् मुख्य प्रयोजन को नहीं जानते। यजुर्वेद अ० ४० मं० ९ में लिखा है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूयइव ते तमो य उ संभूत्याᳬरताः॥

अर्थात् जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं, और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिर के महाक्लेश भोगते हैं। इस के उपरान्त य० अ० ४० मं० ८ में लिखा है—

सपर्यगगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा
श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

उक्त मन्त्र में अकाय, अव्रण, अस्नाविर, जो ईश्वर के विशेषण दिये हैं इनसे स्पष्ट जाना जाता है कि ईश्वर निराकार है क्योंकि 'काय' नाम शरीर का है जिसके 'काय' शरीर नहीं वह अकाय कहाता है. तथा वेदों में और भी बहुत मन्त्र हैं जिन में ईश्वर को निराकार कहा है, तथा उपनिषदों में भी लिखा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥

अर्थात् वह ईश्वर हाथ पैरों से रहित है पर वेगवान् और ग्रहण करने वाला है, वह नेत्रवान् नहीं पर देखता है, वह कानों से रहित है पर सुनता है, वह सब को जानता है परन्तु उस का जानने वाला कोई नहीं, उस को अग्रय पुरुष पुराण परमात्मा कहते हैं ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥
दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः।
अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात् परतः परः ॥

इत्यादि वाक्यों में जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप तथा अनादि, अनन्त, अमूर्त्त और नित्य आदि विशेषण ईश्वर के लिये दिये हैं इस से निश्चय है तथा वेदों में अन्य भी अनेक मन्त्र हैं जो ईश्वर को निराकार प्रतिपादन करते हैं, और युक्ति से भी ईश्वर निराकार है क्योंकि जो पदार्थ साकार है वह एक देश में रह सकता है सर्वव्यापक कभी नहीं हो सकता, ईश्वर सर्वव्यापक है तो फिर वह साकार कैसे हो सकता है? हां अन्तर्यामी सर्वोपरि विराजमान सनातन आदि गुण सहित परमेश्वर की उपासना करने को सगुण और 'अकाय' अर्थात् काया से रहित, पापाचरण कभी नहीं करता, सुख दुःख कभी नहीं होता

इत्यादि गुणों से पृथक् मान कर जो उपासना करते हैं वह निर्गुण उपासना कहलाती है। देखिये य० अ० १.० मं० २५ में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवनादि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं होसकता। जैसाकि—

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहूर्गस्यूर्जम्मयि धेहि। इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि॥

और ऐसा ही इसी अ० के २४ वें में भी लिखा है इसलिये प्यारे सांसारिक भाइयो आओ! हम सब मिलकर उस परमेश्वर को वेद द्वारा जानकर नाना प्रकार से उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना सदा करें और कभी किसी समय में भी उस परमपिता अन्तर्यामी को क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करें क्योंकि वही हमारे आत्मिक रोगों का नाश करनेवाला डाक्टर है वही हमारा पालन करनेवाला हमें ज्ञान देने वाला और हमको दुःखों से छुटाकर सुख प्रदानकरनेवाला है उस के उपरान्त कोई दूसरा नहीं॥

त्योहार।

इस समय भारतखण्ड में 'त्योहारों की भी धूम धाम है, कोई महीना ऐसा न होगा कि जिस में कोई त्योहार न होता हो, वरन दो २ चार २ त्योहार एक २ महीने में आन पड़ते हैं जिन के नियत करने के कारण भी पृथक् २ हैं परन्तु अब कुछ के कुछ समझे जाते हैं और प्राचीन समय में इतने त्योहार न थे। हां जब से भारत में विद्या का प्रकाश कम हुआ और अविद्या ने अपना राज्य किया तब से स्वार्थियों ने नाना लीला रचकर अपने २ मतलब गांठने के अर्थ अनेकान त्योहार नियत कर लिये जिन का यदि ब्योरेवार वर्णन किया जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे। इस कारण हम श्रावणी, दशहरा दिवाली, डयोथान, वसन्त, होली जो सब से प्राचीन त्योहार हैं उन का सङ्क्षेप से वृत्तान्त और मुख्य प्रयोजन लिखते हैं कि जिस कारण

यह त्योहार नियत किये गये हैं। और अब जैसा गड़बड़ कर लिया है उस को भी सज्जनों के सम्मुख प्रकाश करता हूं। अब निष्पक्ष हो विचार पूर्वक प्रत्येक त्योहार के मुख्य कारण को जान यथार्थ व्यवहार करना उचित है और इन सम्पूर्ण त्योहारों में जो २ मिथ्या वार्त्ता हैं उन का त्यागना अभीष्ट है कि जिस से आगे को सुख हो॥

ऋषितर्पण वा श्रावणी।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमात्।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं व्यथा॥

इस श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है कि इसी ऋषितर्पण त्योहार पर कि जिस का अशुद्ध नाम 'सलोना' प्रसिद्ध है, अब हम इस के तात्पर्य को प्रकाश करते हैं कि मुख्य प्रयोजन इस का क्या है और हम को क्या करना चाहिये।

प्यारे सुजनो! यह बात स्पष्टरूप से प्रकट है कि संसार में विद्वानों और महात्माओं की प्रतिष्ठा करना ही सुख का हेतु और भलाइयों का मूल है और जिस स्थान पर ऐसे गुणी और सत्पुरुषों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार नहीं होता वहीं नाना प्रकार के उपद्रव मचते हैं जैसा कि उपरोक्त श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है। जहां अपूज्य अर्थात् मूर्खों की पूजा और ज्ञानी महात्माओं का असत्कार होता है वहां तीन बातें होती हैं। अकाल, मरी, व्यथा। जो अधर्म के फैलने से प्रकट होती हैं। हमारे प्राचीन सत्यशास्त्रों में भी तीन प्रकार के क्लेश लिखे हैं—पहिला 'आध्यात्मिक' जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है। दूसरा 'आधिभौतिक' जो प्राणियों से होता है। तीसरा 'आधिदैविक' जो मन और इन्द्रियों के विकार अशुद्धि और अज्ञता से क्लेश होता है। यदि ध्यान लगाकर देखा जावे तो यह तीनों दुःख विद्वान् और महात्माओं के निरादर करने से उत्पन्न होते हैं क्योंकि 'आध्यात्मिक' जो अन्तःकरण के दोषों से होता है और उस की शुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि सत्योपदेश से होती है। सत्योपदेश विद्वानों का (जो ऋषि मुनि वा देवता के नाम से पुकारे

जाते हैं) काम है इस के उदाहरण उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से पाये जाते हैं कि मन की शान्ति के लिये बड़े २ विद्वान् भी सत्योपदेश सुनने को आत्मतत्त्वज्ञानियों के निकट जाया करते थे। 'आधिभौतिक' शारीरिक रोगों वा घातक जन्तुओं से होता है जिस से आराम पाना वैद्यक विद्या के आधीन है जो पूर्ण विद्वानों के सत्सङ्ग से जाते हैं। तीसरा 'आधिदैविक' जो सर्दी गर्मी वर्षा के न्यूनाधिकत्व से होता है उस का उपाय और दूर होना भी महात्माओं के हाथ है क्योंकि यह सज्जन सदा हर एक ऋतु और मौसम के अनुकूल योग्य पदार्थों से हवन यज्ञ करते थे जिस के प्रभाव से साफ़ वायु शुद्ध होकर समय २ पर यथावत् वर्षा होती थी, और कभी मरी वबा और हैज़ा का नाम न सुना जाता था। और जो दुःख चोर डांकू और घातक जन्तुओं से होते हैं उन का प्रबन्ध राजक्षत्रि करते थे। इस उपरोक्त व्याख्यान से स्पष्ट प्रकट होगया कि सब प्रकार के दुःख विद्वानों और महात्माओं के परिश्रम से दूर हो सकते हैं, जहां उन की प्रतिष्ठा नहीं वहां उन का मिलना दुर्लभ है। ऐसा ही वेदों में भी पाया जाता है जैसा कि अथर्ववेद के प्रपाठक ३५ काण्ड १९ अनुवाक १ सं० १४ में लिखा है—

शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः।

अर्थ—सम्पूर्ण देवता (विद्वान् लोग) प्रत्येक प्रकार के दुःख दूर कर के शान्ति करने वाले हों।

इसी प्रकार और भी अथर्ववेद में लिखा है कि जो विद्वानों में श्रेष्ठ यज्ञ कराने वाले हैं और जो यज्ञ में सत्कार करने योग्य हैं जिन के लिये 'हव्य' अर्थात् उत्तम सामग्री के भाग किये जाते हैं और वह सर्व विद्वान् (देवता) अपनी स्त्रियों के साथ आकर इस यज्ञ को उत्तम बुद्धि से पूर्ण करें—

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञियायेभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्यवावन्तोदेवा तमिषा माऽदयन्ताम्॥

अ० प्र० १२ कां० ५७ अनु० ५९ सं० १०

इन मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट है कि हमारे सम्पूर्ण कार्य विद्वान् महात्मा ऋषिओं के द्वारा ही हो सकते हैं यही कारण था कि प्राचीन राजा महाराजा विद्वानों और ज्ञानियों का आदर सत्कार तन मन धन से करते थे, देखिये महाराजा दशरथ ने श्रीविश्वामित्र जी महाराज जो वन के रहने वाले एक ऋषि थे, जब महाराजा के निकट आये तब उन्हों ने उन का यहां तक मान और सत्कार किया कि अपने प्यारे कुलभूषण श्रीरामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा और उन की सेवा सहायता के अर्थ साथ कर दिया, इसी प्रकार राजा और प्रजा अपनी शक्ति के अनुकूल इन सत्पुरुषों की सहायता और सेवा करते रहे हैं परन्तु वर्षा के इन चार महीनों में विशेष कर सेवा और सत्कार का अधिक प्रचार था क्योंकि इन्हीं दिनों में वर्षा की अधिकता के कारण व्यापार कम होता था व्यापारी जन अपने घरों पर निवास करते थे और ऋषि महात्मा विद्वान् लोग जङ्गल पहाड़ों से आकर नगरों में निवास करते थे, इसलिये यह समय सत्सङ्ग के लिये अत्यन्त उचित और योग्य था, घर से मनुष्य उन के पास जाकर उन के सत्सङ्ग से नाना लाभ उठाते थे, आषाढ़ और सावन दो महीने के सत्सङ्ग से गृहस्थी और राजपुरुष लोग विचारते थे कि अमुक ऋषि वा महात्मा इस सत्कार वा सन्मान के योग्य हैं, वैसा ही इस पूर्णमासी के दिन जो श्रावण महीने का अन्त दिवस है, प्रत्येक ऋषि महात्मा विद्वान् को साथ यथायोग्य वित्तसमान दान देते थे, और जो मनुष्य यज्ञोपवीत से भ्रष्ट होते थे उन को यज्ञोपवीत दिया जाता था, और जो कुसङ्ग के कारण पतित हो जाते थे उन को भी इस समय पर शुद्ध किया जाता था वह सम्पूर्ण महात्मा इन गृहस्थी और राजपुरुषों से सम्मान पाकर धर्मोपदेश किया करते थे और राजा प्रजा को हवन यज्ञ की ओर रुचि दिलाते, अपने हाथों से भी करते कराते थे, यज्ञ के लाभ अनेक हैं कि जिन का वर्णन पञ्चयज्ञों में किया है ॥

इस ऋतु में अधिक यज्ञ करने की प्रेरणा इस कारण है कि इन दिनों में स्थान २ पर पानी रुक जाता है कि जिस से वायु बिगड़ जाता है कि जिस से नाना रोगों के उत्पन्न होने का भय होता है

इस कारण प्राचीन समय के ऋषि मुनियों ने इन सब बुराइयों के मेटने का उपाय एक यज्ञ करना ही विचारा था और वह आप इन परोपकारी यज्ञों में वेद मन्त्रों की उच्चारण करते थे कि जिन में यज्ञ की रीति और फल, परमात्मा की उपासना और प्रार्थना होती है करते कराते थे। कैसा२ शुभ समय वह होता होगा क्योंकि प्रथम तो वर्षा ऋतु के कारण हरे२ पौदों की हरियाली आंखों को आनन्द देती होंगी, दूसरे 'यज्ञ' के होने से उस की सुगन्धों की लपटें सब स्थानों और शरीर को सुगन्धित कर देती होंगी, तीसरे ऋषि और महात्माओं के सत्योपदेश से अन्तःकरण के मल दूर होते होंगे, तदनन्तर वह सर्व जन उन सत्पुरुषों और ऋषि मुनि महात्माओं को आदर सत्कार कर विदा करते थे, उसी समय वे महात्मा जन उन को आशीर्वाद देते थे, जिस को ऋषितर्पण कहते हैं, आर्यों में जो देवयज्ञ करने की शिक्षा है वे विशेष कर उन्हीं महीनों में पूर्ण होते थे, राखी वा कलावा हाथ में बांधने की रीति जो अब तक प्रचलित है, यह उन यज्ञों में जाने का चिह्न था, जो मनुष्य इन दिनों में महात्माओं के सत्सङ्ग और उपदेश से लाभ उठाते, उन के हाथ में यह शुभ चिह्न बांधा जाता था॥

दशहरा ॥

यह हमारे देश का प्रसिद्ध त्योहार है जो श्रीरामचन्द्र धर्मात्मा परोपकारी के स्मरण का दिनहै कि जिनके नामका स्मरण प्रत्येक की जिह्वा पर है। जिन को मरे हुए लाखों वर्ष होगये परन्तु उन के गुणों की प्रशंसा प्रत्येक जन करता है। ये महात्मा उस समय के मनुष्यों में सर्वोपरि थे जिनके समान इस समय तक पृथ्वी पर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के सिवाय और कोई नहीं हुआ देखिये अपने पिता की आज्ञा को मान राज्य के सुखों को त्याग कर चौदह वर्ष वन में रहना स्वीकृत किया और वहां सेना के न होने पर भी वनवासियों के दुःखों को दूर किया। चौदह वर्ष की आयु में विश्वामित्र ऋषि की सेवा टहल कर अनेक दुष्टों को मारा और सदा सत्य को ही सम्पूर्ण कार्यों में प्रधान समझ कर उस को कभी त्याग न किया। इसी कारण सम्पूर्ण प्रजा जन उनको अधिक चाहते थे। आप

ही ने राजा जनक का प्रण पूरा कर जानकी के साथ विवाह किया था यह आप ही की सामर्थ्य थी कि वन के बीच में होने पर भी दुष्ट राक्षसों को मारकर वनवासियों को आराम दिया । क्या कोई नहीं जानता कि इन्हीं प्रतापी महात्मा ने लङ्का के राजा रावण को मारा था । यह राजा भी महाबली और बलवान् था जिस दिन इस दुष्टको मारा था वह दिन कुआर सुदी १० थी जिसको विजयदशमी कहते हैं । जो श्री महाराजा के स्मरणार्थ आज तक उसी दिन पर त्योहार मनाया जाता है । दूसरे वर्षा के दिनों में सम्पूर्ण असबाब राजाओं का पड़ा रहता है क्योंकि वर्षा के दिनों में चढ़ाई आदि बहुत कम होती है और हथियारों पर भी मैल जम जाता है इसलिये वर्षा के अन्त पर एक दिन नियत किया गया कि उस तारीख़ को सम्पूर्ण माल असबाब ठीक हो जावे और बड़ी धूमधाम की जावे और वर्ष भर का हिसाब किया जावे, इत्यादि बातों के लिये यह त्योहार कियाजाता है ॥

परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वर्त्तमान समय में मुख्य अभिप्राय को छोड़ कर ऐसा आश्चर्य्य युक्त रङ्ग रचा है जो बुद्धि के अत्यन्त विरुद्ध है क्योंकि ऐसे सच्चे परोपकारी धर्मात्मा के स्थानपर ऐसे२ मूर्ख लड़कों के स्वांग बनाकर दिखलाते हैं जिन को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं तिस पर, उनके चालचलन ऐसे ख़राब कि जिसके कथनमात्र से लाज आती है । लुच्चों की गोद में सोते हैं उन्हीं का नाम राम लक्ष्मण इत्यादि होता है और नक़ल बनाना बहुत बुरा है जैसा मनु जी ने लिखा है—

दशशूनासमश्चक्रं दशचक्रसमोध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥

अर्थात् किसी की नक़ल बनाने में मनु जी ने १०००) गोहत्या का पाप लिखा है भाट भंडेले बहुरूपिये आदि तो इस पाप कर्म से सदा अपना जीवन ही करते हैं परन्तु स्वांग बनाने वाले तथा रामलीला कृष्णलीला बनाने वाले अपना धन व्यय करके नक़ल बना कर इस पाप में क्यों पड़ते हैं ॥

दिवाली ॥

इसके विषयमें पुराणों के वचन सुनाते हैं देखिये कार्तिकमाहात्म्य में लिखा है कि प्राचीन समय में एक ब्राह्मण था जो धन की लालसा में विष्णु महाराज जी की सेवा करने लगा थोड़े दिनों में जब विष्णु महाराज उसके तप से प्रसन्न हुए तो उसके निकट पहुंचे और पूंछा कि तुम क्या चाहते हो उसने धन (लक्ष्मी) के मिलने की प्रार्थना की उन्होंने कहा कि तुम अपने स्थान पर जाकर राजा से यह मांगो कि मिती कार्तिक वदी अमावस की रात्रि को कोई नगर में दिया न जलाने पावे जब यह प्रार्थना अङ्गीकृत होजावे तो तू अपने घर में अच्छे प्रकार से दियों को जलाना उस दिन लक्ष्मी उस नगर में आवेगी और सब नगर में अन्धेरा होने के कारण घवड़ा कर तेरे घर में घुस पड़ेगी इस वरदान को पाकर घर आ, विष्णु की आज्ञानुसार राजा से प्रार्थना की जो तुरन्त स्वीकार हुई उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया, जब आधी रात का समय हुआ और लक्ष्मी जी आईं जो चारों ओर नगर भर में अन्धेरा फैला हुआ देख कर उस ब्राह्मण के घर में कि जो नानाभांति से सजा हुआ प्रकाशित होरहा था घुस गईं, तब ब्राह्मण डण्डा लेकर पीछे पड़ा कि तू निकल मेरे घर से तू बड़ी चञ्चल विष्णु की स्त्री है, तू कहीं नहीं ठहरती मेरे घर में भी नहीं ठहरेगी, इसलिये मैं तुझ को अपने घर में रक्षा न करूंगा, लक्ष्मी ने निहायत खुशामद की और प्रण किया कि मैं तेरे घर से कभी न जाऊंगी वह ब्राह्मण लक्ष्मी के कारण धनाढ्य होगया, लोगों ने उसे धनवान् देखकर लक्ष्मी की चाहना में उसी के अनुसार उस दिन सब घरों को स्वच्छ और सुथरा कर दीपमालिका की। उसी दिन से यह रीति चली आती है जिस से इस के कार्य कर्त्ता धन दौलत से भरे पुरे रहते हैं ॥

अब इस उपरोक्त लेख पर दृष्टि डालने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि ब्राह्मण ने दुःखी होकर धन (दौलत) की प्रार्थना की थी न कि विष्णु महाराज की स्त्री की, फिर श्रीविष्णु जी ने लक्ष्मी प्राप्ति का यह अनोखा उपाय ब्राह्मण को क्यों बतलाया ऐसे विष्णु को आप क्या

कहेंगे कि जिस ने अपनी स्त्री के मिलने का उपाय दूसरे को बताया और आप ने सदा के लिये अपनी स्त्री की जुदाई स्वीकार की यदि उस शहर वा नगर में राजा के हुक्म से अन्धेरा था तो और आस पास के नगर गांव में तो आधीरात थी वहां क्यों न चली गई, तिस पर भी उस ब्राह्मण के कटु वचन सुनकर उस के गृह में सदा के लिये रहना स्वीकार किया पर यही नहीं लिखा कि वह क्योंकर लक्ष्मी की बदौलत धनवान् होगया क्योंकि वह अपने साथ कुछ लाई न थी, उपाय क्या किया कि जिस से वह ब्राह्मण द्रव्यवान् होगया ? ॥

अब देखिये कि इसके विरुद्ध शिवपुराण में दिवाली के विषय में इस प्रकार लिखा है—

श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजा! प्राचीन समय विष्णु महाराज ने ' वामन ' अवतार राजा बलि के फुसलाने के अर्थ लिया और इन्द्र को राज्य दिलाकर बलि को पाताल में नियत किया, और केवल एक दिन इस पृथ्वी पर राजा बलि के राज्य के अर्थ नियत किया इसलिये कार्तिक बदी अमावस को पृथ्वी पर दैत्यों का राज्य होता है और वह अपने स्वभाव के अनुकूल कार्य करते हैं इसी से उस दिन जुआ खेलने की आज्ञा है ॥

प्यारे सुजनो ! अब विचारिये कि एक 'दिवाली' कि जिस के अर्थ दो रायें, वह भी एक दूसरे के विरुद्ध, तो बताइये किस को सच कहें और किस को झूठ यदि उस दिन दैत्यों का राज्य मानते हो तो दैत्यों के कार्य में शामिल होना और त्योहार मान कर खुशी करना भी वृथा और अनुचित है ॥

अब हम आप को ठीक २ वृत्तान्त इस त्योहार का सुनाते हैं उस को विचारिये और सच को मानिये—

यह त्योहार वर्षा के समाप्त होने पर होता है, अत्यन्त वर्षा होने के कारण सम्पूर्ण मकानों की शकल सूरत बुरी और भोंडी हो जाती है, हमारे बड़े २ ऋषि, महात्मा, जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते थे और शौच को धर्म का एक लक्षण मानते थे यह एक दिन इसी लिये नियत किया था कि उसी दिन तक प्रजा के सब मकानों की सफ़ाई ठीक २

होजावे कि जिस से उन की सुन्दरता में अन्तर न होजावे और वायु अशुद्ध न होने पावे इस कारण इस कार्य को आवश्यक समझ कर इस दिन त्योहार मान लिया कि जिस से सम्पूर्ण स्थानों में वह कार्य होजावे ॥

अब रहा दीपमालिका का होना यह भी प्रयोजन से पृथक् नहीं है क्योंकि बुद्धि से ऐसा जाना जाता है कि श्रीरामचन्द्र जी विजय-दशमी को रावण को मारकर कार्त्तिक वदि अमावस को अयोध्या में पधारे थे क्योंकि राजा रामचन्द्रजी महाराज चौदह वर्ष पश्चात् वन से आये थे जो प्रजा के अत्यन्त प्यारे थे इस प्रसन्नता को प्रकट करने के लिये दीपमालिका की थी और नवीन अन्न इत्यादि का हवन परमेश्वर का धन्यवाद मानकर प्रसन्नता मनाई थी । यह यादगार अब तक चली जाती है और ऐसे ही चली जायगी ॥

देवोत्थान अर्थात् ड्योठान ॥

यह त्योहार मिती कार्त्तिक शुदि ११ को होता है पूर्वकाल में ऋषि, मुनि, देवता, विद्वान्, महात्मा जो कि वर्षा ऋतु में शहरों में आजाते थे इस तिथि से फिर अपना दौरा आरम्भ करते थे । इस समय तक ज्वार बाजरा आदि अन्न और गन्ना भी तय्यार हो जाता था । इस लिये इस दिन सम्पूर्ण जन हवन करके प्रकार २ के पदार्थ विद्वानों को अर्पण करके प्रार्थना करते थे कि हे विद्वानो ! आप संसार के भिन्न २ भागों में जाकर अपने सदुपदेश से मनुष्यों को धर्मात्मा बनाइये । बहुधा मनुष्य ऋतु की नई २ वस्तुयें भी इस कारण से इस तिथि तक नहीं खाते थे क्योंकि वे अपक्क रहती हैं इस लिये आज हवन करके विद्वानों को खिलाकर गन्ना आदि खाते थे वर्त्तमान समय में भी स्त्रियां एक पले के नीचे दिये और ऋतु के पदार्थ रखकर सम्पूर्ण गृह स्त्री पुरुष कहते हैं कि उठो देव बैठो देव पामरिया चटिकाओ देव आदि। इस से भी वही अभिप्राय पाया जाता है जो ऊपर वर्णन हुआ । इस से ज्ञात होता है कि मनुष्यमात्र मुख्य अभिप्राय को भूल गये मगर लीक पीटते चले जाते हैं ॥

हिमेष्टि अर्थात् वसन्त ॥

यह त्योहार मिती माघ शुदि ५ को होता है क्योंकि इस ऋतु में नई २ कोंपलें और हरे २ पत्ते दरख़्तों से निकलते हैं पुष्प भी खिलते हैं और वसन्त ऋतु आरम्भ हो जाता है और फ़स्लरवी भी फूलने फलने लगती है जिस से प्रजा का पालन होता है इसलिये सब मनुष्य मिल कर यज्ञ करके परमात्मा से धन्यवाद पूर्वक प्रार्थना करते थे, कि यह फ़स्ल अच्छे प्रकार से निर्विघ्न समाप्त हो, परन्तु अब तो केवल गेहूं जौ की बाल और सरसों राई आम के फूलों को ब्राह्मण लोग लाते हैं और धनिक लोगों को प्रसन्न करने के अर्थ देकर कुछ प्राप्त करते हैं।

होली।

यह त्योहार फसल रवी का उत्सव है इस वसन्त ऋतु में वह अन्न फल फूल उत्पन्न होते हैं कि जिन से मनुष्यों का जीवन आधार है। क्योंकि होली पर यह सब अन्न आधे पक जाते हैं इसलिये इस त्योहार का नाम होलिका रक्खा है। क्योंकि संस्कृत में "अर्द्धपक्वमन्नम् होलिका" अर्थात् आधे पके अन्न को होलिका कहते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रकट है कि चनों के बूटा जो बहुधा गांव के लोग भून लेते हैं उन को होले कहते हैं जो कुछ पक्के और कच्चे होते हैं। इन से जाना जाता है कि होलिका अर्थात् आधे पके नाज का पूजन, इन के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि उस को आग में भूने वा पकाया जाय क्योंकि पूजा शब्द का यही अर्थ है कि जो पदार्थ जैसा है उस के साथ उसी प्रकार वर्त्ताव किया जावे। इसलिये होली का जलाना अर्थात् नाज का भूनना उस की पूजा है परन्तु बड़े शोक की बात है कि जिस को हम देवी मान कर त्योहार मनायें फिर उसी को जला कर राख की ढेरी बनाकर प्रसन्न हों।

हमारे देश में होली के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि प्रह्लाद परमेश्वर का भक्त था, उस का बाप हिरण्यकशिपु नास्तिक था और प्रह्लाद को ईश्वराराधन करने को मना करता था परन्तु वह इस को नहीं मानता था। इस से उस को नाना भांति से कष्ट देता था। यहां

तक कि उस को आग में डाल दिया। यह भी प्रसिद्ध है कि हिरण्य-कशिपु की बहन कि जिस को यह आशीर्वाद था कि वह आग में न जलेगी, उस के साथ बिठाई गई परन्तु वह तो जलगई और प्रह्लाद को परमेश्वर की कृपा से आंच भी न आई और इस पर जो हरिभक्त थे उन्हों ने अधिक प्रसन्नता की और कहा कि प्रह्लाद! तू बचगया और वह (होली) जलगई। निदान यह वही होली है इसी कारण इस का वही नाम पड़ गया है॥

प्यारे सुजनो! यह बात महा मिथ्या है क्योंकि आग में डालने से कोई बच नहीं सकता चाहो कैसा ही भक्त हो यह कभी हो नहीं सकता कि दो मनुष्य आग में बैठें एक उन में से मरजा और दूसरे को कुछ आंच न आये यदि परमेश्वर अपने भक्त को भक्ति करने के कारण जलने न दे तो वह न्यायकारी नहीं रहता अर्थात् जो नियम और सृष्टिक्रम रचा है वह जाता रहे सो यह असम्भव है। इसलिये परमेश्वर के प्रतिकूल कोई कार्य हो नहीं सकता, यदि ऐसा ही मानलिया जावे तो हरिभक्त के बचने की प्रसन्नता में जो आनन्द मनाया जावे उस में शराब भङ्ग पीना, माजून नशे खाना, खाक उड़ाना, कीच फेंकना, नाचना आदि मिथ्या प्रपञ्च क्यों रचे जायं ऐसे समयों पर तो परमेश्वर के गुणानुवाद गाना और हवन आदि यज्ञ करके जगदीश्वर का धन्यवाद गाना चाहिये कि जिस ने ऐसी कृपा की थी। भला बताओ तो सही यह कौन सी नीति और धर्म की बात है कि परमेश्वर तो ऐसी असम्भव कृपा करे और हम तुम उस के पलटे में और अशुभ कार्य करें। इस के उपरान्त इसी त्योहार के साथ एक त्योहार धुरहडी का भी है। यदि होली की व्युत्पत्ति यही मानी जाय तो धुरहडी की वजह क्या है? इस का सबब यों वर्णन करते हैं कि धुरहडी के दिन जो राख उड़ाई जाती है यह उसी आग की राख का चिह्न है। परन्तु हम नहीं जानते कि इस से क्या उत्तम बात प्राप्त होती है। यदि राख उड़ाते तो राक्षस उड़ाते कि जिन के अफ़सर की बेटी आग में जलगई थी। हरिभक्तों को ख़ाक उड़ाने से क्या प्रयोजन? इस के सिवाय प्रह्लाद रात्रि के समय आग में डाला गया था चुनाचे होली भी रात

को ही फूंकी जाती है इस से प्रकट है कि होली फूंकने की रात्रि से पहिले दिन खुशी करने का समय नहीं है वरन उस दिन रञ्ज करने का समय है क्योंकि उस दिन प्रह्लाद के जलजाने का सन्देह था फिर इस का क्या कारण है कि रञ्ज के दिन खुशी मनावें और उस के अगले दिन ख़ाक उड़ायें। योग्य तो यह था कि धुरहड़ी के दिन खुशी मनाई जाती और होली के दिन रञ्ज किया जाता, इस को भी जाने दीजिये। अब ज़रा विचार कीजिये कि जिस आग को जलाकर हम और आप पूजते हैं वह सचमुच राक्षसी की चिता है मानो आप होली की पूजा नहीं करते वरन राक्षसी की क़बर अर्थात् चिता पूजते हो। इसी प्रकार की और भी हज़ारों शङ्का उत्पन्न होती हैं कि जिन का उत्तर कुछ नहीं, इस से प्रत्यक्ष प्रकट है कि होली और धुरहड़ी की व्युत्पत्ति महामिथ्या है। और होली का मुख्य वही प्रयोजन है जो हम ने ऊपर वर्णन किया और धुरहड़ी की व्युत्पत्ति यह है कि यह त्योहार चैत वदि अमावस को होता था जैसा कि वर्त्तमान समय में दक्षिण में अब भी होता है। और उस के अगले दिन चैत्र शुदि प्रतिपदा को महाराजा विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने का दिन है। पस श्रीमहाराज के गद्दी पर विराजमान होने के पीछे होली के बाद यह दूसरा त्योहार बढ़ाया गया है॥

इन सब के सिवाय अबीर गुलाल उड़ाने, रङ्गपाशी करने की जो रीति प्रचलित है यदि पौराणिकों से उस का कारण पूछा जावे तो वह कुछ नहीं बताते सिवाय इस के कि कृष्णचन्द्र महाराज ने गोपियों के साथ रङ्ग खेला है कि जिस का किसी पुस्तक में प्रमाण नहीं इस से यह कहना मिथ्या जान पड़ता है। बुद्धि से विचार करने से जाना जाता है कि यह केसर कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुएँ हवन यज्ञ करते समय गुलाब आदि में पीस कर केवड़ा गुलाब की भांति गुलाबपाशी में भर कर जैसा कि विवाह आदि में छिड़के जाते हैं, छिड़के जाते होंगे॥

ज्योतिष॥

प्रकट हो कि ज्योतिष शास्त्र का नाम लेकर वर्त्तमान समय में नाम मात्र के पण्डित लोग जातकर्म नामकरण विवाह और व्यापा-

रादि में ग्रहों की दूकान खोल नाना भांति से धन हरण करते हैं यह केवल हमारे और आप के संस्कृत विद्या के न जानने ही का कारण है प्यारे भाइयो ! ज्योतिष शास्त्र छः शास्त्रों में से एक शास्त्र है उस में गणित मुख्य है शेष फलित अनुमान मात्र है परन्तु आज कल इस फलित के द्वारा लाखों के धन हरण करते चले जाते हैं जिस के महूर्त चिन्तामणि, लघुजातक, नीलकण्ठी, जातकाभरण आदि नवीन ग्रन्थ बनते चले जाते हैं शोक तो हम को अपने देशीय भाइयों पर है जो यह भी विचार नहीं करते कि भूत, भविष्यत, वर्त्तमान, इन तीनों कालों को जानने वाला सिवाय उस परमात्मा सर्वव्यापक के कोई नहीं होसकता सो इस समय में भाषा के जानने वाले ब्राह्मण जिन को पत्रापांड़े कहते हैं त्रिकालदर्शी का दम भरते हैं फिर नहीं मालूम कि हमारे पत्रापांड़े कैसे जानलेते हैं जैसा कि उत्पन्न होने के समय और अन्य २ समयों पर जन्मपत्री बना कर सुनाते हैं, कि इस लड़के को चौथे आठवें महीने बड़ी कठिनाई से व्यतीत होंगे इस के ग्रह ननसाल के लिये उत्तम हैं परन्तु माता के लिये उत्तम नहीं हैं धन स्थान में इस के ऐसा ग्रह पड़ा है जो बाप के धन कोभी सोखलेगा मृत्यु स्थान में सौम्यग्रह बैठा है इस लिये इस के जीवन में खटका है इत्यादि बातें महामिथ्या हैं कि जिन के सुनने से हानि के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता हां जन्मपत्री अवश्य बनाना चाहिये कि सरकार दर्बार विवाह आदि में अवस्था तिथि आदि की आवश्यकता पड़ती है इस में वार तिथि मास संवत् बाप दादे का नाम ही लिखना योग्य है।

इसीलिये हमारे पुरुषों ने इस को बनवाया था इस के उपरान्त ग्रह इत्यादि लिखे जाते हैं यह सब अनुमान मात्र है जिन से हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं जान पड़ता प्यारो ! ज्यों २ इन जन्मपत्रियों की दक्षिणा अधिक मिलती गई त्यों २ यह भी अपनी दशा पलटती गईं अर्थात् बहुत बड़ी नाना प्रकार के रङ्गों और चित्रों समेत बननेलगीं जिस में अष्टोत्तरी विंशोत्तरी जन्मकुण्डली चन्द्रकुण्डली आदि नवग्रहों तिथि वार लग्न इत्यादि के भाव लम्बे चौड़े लिख कर यजमान को देते हैं। बीमारी के समय तो यह अच्छे प्रकार हाथ मारते हैं

अर्थात् पत्रा और जन्मपत्री को खोल कुम्भ मीन मेष कह मुंह बिगाड़ अपने चेलों से यों कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र अरिष्ट पड़े हैं और इस वर्ष जन्म लग्न और वर्ष लग्न भी एक ही है इतनी बात के सुनते ही मुखड़े का प्रकाश फीका होगया अति गिड़गिड़ाय पण्डित जी के पैरों पर गिर पड़ते हैं और कहते हैं कि हे गुरु जी ! अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये और इस से छूटने का कोई उपाय बतलाइये सच तो यह है कि हमारे सीधे साधे भोले भाई उन पण्डितों को परमेश्वर ही मानते हैं और पण्डित जी भी परमेश्वरका भय न कर परमेश्वरीय नियमों को तोड़ यजमान से कहते हैं दशलक्ष दुर्गा जी का पाठ और सूर्य चन्द्र इत्यादि का दान करादो तो यह कष्ट दूर हो जावेगा और यदि बहुत बड़े साहूकार हुए तो उन को गौसठ तुलसी शालिग्राम का विवाह ब्रह्मभोज महामृत्युञ्जय आदि का जप बताकर हजारों रुपये चट कर जाते हैं हमारे प्यारे भाई बहनें पण्डित जी के भरोसे पर रहते हैं यहां तक कि जप होते ही होते दम निकल जाता है और मुख्य उपाय अर्थात् चिकित्सा कराने से बेसुध रहते हैं या उधर पूरा ध्यान नहीं देते और जब कोई पण्डित जी से कहता है कि यह जप आप ने कैसा किया तब अति क्रोधित होकर कहते हैं कि 'कर्म गति कौन जाने' हम क्या परमेश्वर से बड़े हैं जो मृत्यु से बचा सकें उस की मृत्यु ही बदी थी। पस सोचने का स्थान है जब उन के कहने के अनुसार मरने वाले को कोई नहीं बचा सकता फिर ग्रहों के नाम पर दान और उन के जप का क्या लाभ क्योंकि जिस का जीवन होगा वह अवश्य ही बच जावेगा इस लिये बीमारी के समय औषध करना योग्य है और यथायोग्य रीति पर दान करना उत्तम है न कि धोखे की टट्टी में शिकार मारना॥

इस के उपरान्त जब यह पत्रापाण्डे आप वा उन के घरों में कोई बीमार होता है तब वह क्यों वैद्य की चिकित्सा कराते हैं यह आप उस समय जप और ग्रहों के दान करा कर क्यों नहीं बीमारी को दूर कर लेते यह प्रत्यक्ष प्रकट है कुछ कहने की बात नहीं क्योंकि हमारे भाई प्रतिदिन देखते हैं कि पण्डित साहिब शीशी में मूत्र लिये वैद्यों

और अत्तारों के यहां मारे मारे फिरते हैं कैसे शोक का स्थान है कि यह ज्योतिषी हम को तो जप और ग्रहों के दान में फंसा कर सत्यानाश करा देवें और आप अपनी और अपने बच्चों की औषध कराकर जान बचालेवें, हाय क्या ही अचम्भे की बात है कि अपने घर के तरुण बच्चे को तो मरजानेदें और हमारे घर के लोगों को जप ग्रह दान से बचाने का उपाय रचें! हाय मूर्खता तेरा मुंह काला हो ॥

इसी प्रकार जब कोई मुक़द्दमा होता है तो एक पण्डित मुद्दई और दूसरा मुद्दायले को जाकर घेरता है और दो चार बातें इधर से कह सुनकर मुक़द्दमे की चर्चा छेड़ते हैं और उपदेश देते हैं कि यदि आप शिव जी इत्यादि किसी देवता का जप करा देवें तो आप की जय होजायगी और हमारी आप की एक बात है जो कुछ आप देदेंगे वह हम लेलेंगे क्योंकि आप हमारे यजमान हैं इस में बड़ी २ मिहनत करनी पड़ेगी रात्रि में जप जङ्गल में जा करना होगा, जिसकी दक्षिणा इतनी है परन्तु आप के मन में आवे सो देदेना क्योंकि आपके घर से हमको प्रतिवर्ष मिलताही रहता है लेकिन इतने रुपये की सामग्री आप आजही घर पर भेजदें और दो पण्डितों के भोजनों का आप प्रबन्ध किसी दूकान से करादें। अब विचार करने का स्थान है कि दोनों में एक की जीत तो अवश्य ही होगी पण्डित जी के ठहराये हुये रुपये वित्त होगये और उसके घर में और मित्रों में ज्योतिषी जी की प्रतिष्ठा सदा के लिये होगई, भाइयो! मुक़द्दमे का मन्त्र क़ानून सर्कारी सुबूत आदि हैं न कि ग्रहों का जप और दान, यदि आप को ग्रहों पर ही ऐसा विश्वास है तो वकील आदि की सम्मत्यनुसार सुबूत आदि न दीजिये फिर हम देखें कि ज्योतिषी का जप किस प्रकार डिगरी कराता है, और जब आप दोनों बातें करते हो मानों डिगरी हो भी गई तो आप को यह कैसे ज्ञात हुआ कि आप की जीत ग्रहों के दान से हुई या सुबूत आदि से॥

इसके उपरान्त ज्योतिषियों पर भी डिगरी होती है क्यों जप से डिसमिस नहीं करा देते, हाय अन्धेर! यही हाल प्रश्नों का है क्योंकि हमने और हमारे मित्रों ने बहुधा निश्चय किया तो प्रश्न का उत्तर

कभी ठीक नहीं आया हां वह प्रश्न कुछ २ ठीक होते हैं कि जिन के वृत्तान्त से वह कुछ जानकार होते हैं बहुधा देखा गया है कि जब बाहर के पण्डित किसी नगर में आते हैं तब वहां के पण्डित उन से मिलकर अनेक वृत्तान्त सेठ साहूकारों, नौकर, चाकरों का बता देते हैं वे ही पण्डित नगर में उनकी ज्योतिष की प्रशंसा अपने यजमानों से करते हैं और उनको लेजाकर उनका मान कराते हैं और भेंट दिलाते हैं और प्राप्ति में अपनी चौथ ठहरा लेते हैं अनेकों को पण्डित जी जप के बहाने से अपने पास लगा लेते हैं और यजमानों से मुद्रा दिलाते हैं और हमारे ज्योतिषी पण्डित प्रकट लक्षणों को देखकर जन्मपत्री का फल वर्णन करते हैं, जैसा कि किसी को दुबला पतला देखकर कहेंगे कि तुम को धातुकी कोई बीमारी है दूसरे वह बातें जो प्रत्येक को अच्छी जान पड़ती हैं जैसा कि तुम जिस किसी के साथ भलाई करते हो वह तुम्हारे साथ बुराई करता है तुम्हारी भलाई वृथा जाती जितना रुपया पैदा करते हो तुम्हारे हाथ में नहीं ठहरता, तुम्हारा मन किसी से लगा है वह किसी उपाय से मिल सकता है, इसपर तुर्रा यह वहां नगर के दो चार पण्डित भी होते ही हैं जो ज्योतिषीजी के मुंह से यह निकलते ही रजिस्टरी कर देते हैं चाहो यजमान के जी में कुछ ही हो, यथार्थ में हमारे ज्योतिषी जी का कहना बहुत ही ठीक है क्योंकि वह समय की दशा देखकर धातु की बीमारी बतलाते हैं जो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वर्त्तमान में न्यून अवस्था का विवाह प्रचलित है तिस पर गुदाभञ्जन, वेश्यागमन आदि की अधिक चर्चा है, इस कारण भारत में बहुत ही न्यून मनुष्य निकलेंगे जिनको धातुक्षीण की बीमारी न हो ॥

दूसरे हमारे देश में अविद्या के कारण लालच में आकर बहुधा मित्र बनजाते हैं और प्रयोजन निकलने पर बात भी नहीं करते फिर उपकार मानना किस को कहते हैं क्या पण्डित साहिब प्रतिदिन अपने प्रयोजन के लिये ऐसी बातें नहीं सिलाते ? तीसरे हमारे देश में रुपया उत्पन्न करने का उपाय केवल नौकरी रहगई है तिसपर विवाह, मरण आदि में मिथ्या व्यय, इसके उपरान्त नशा पीना, मांस खाना, लौंडे-

बाज़ी, रण्डीबाज़ी आदि नाना लीलाओं में धन व्यय होता है जिस को पण्डित साहिब आंखों से देखते हैं, यथार्थ में ज्योतिष इसी का नाम है ॥

वर्त्तमान समय में जैसी इश्क़ हुसन की चर्चा है, ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो इस बला से बचे हों बरन कोई किसी स्त्री पर मरता है कोई लौंडे पर, यह बात बताना भी तो ज्योतिषी जी का ही काम है उपाय ग्रहों के जप और दान के पण्डित जी जानते ही होंगे ॥

सच पूछो तो हमारे भाइयों को ग्रहों में इन पण्डितों ने ऐसा फांसा है कि बिना सायत पूछे आना जाना भी नहीं होता चाहो कैसा ही काम क्यों न बिगडे पर बिना मुहूर्त्त पूछे जाना कैसा ?

हमारे पण्डित जी कहते हैं कि नीचे लिखे के प्रतिकूल जो कहीं को यात्रा करेगा वह अवश्यही आपत्ति में पड़ेगा जैसा कि—

सोम शनिश्चर पूर्व काला, रवि शुकुर पश्चिम में वासा ।
मङ्गल बुध उत्तर में रहहीं, रहे बृहस्पति दक्षिण माहीं ॥

इसी भांति और २ बातों का भी विचार सुनाते हैं प्यारे भाइयो! हज़ारों मनुष्य शनैश्चर और सोमवार को रेल की गाड़ी में पूर्व को जाते हैं इसी भांति शुक्र और इतवार को पश्चिम जाते हैं जिन पर दिशा-शूल का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, इस के उपरान्त ईसाई और मुसलमान तो इन ग्रहों को मानते ही नहीं ये ग्रह उन पर अपना कुछ प्रभाव क्यों नहीं करते यदि कहो कि वह म्लेच्छ हैं इसलिये उन पर कुछ प्रभाव नहीं होता तो कैसे आश्चर्य की बात है कि उत्तमों को दण्ड मिले और दुष्ट चैन करें क्या इसी का नाम न्याय है? देखिये जब कोई धूप में खड़ा होता है तो सब को गर्मी एक सी जान पड़ती है यही दशा सर्दी की है, क्या यह ग्रह, आर्य जो अपने को हिन्दू बोलते हैं उन्हें दण्ड देते हैं? यह सब मिथ्या है, सच पूछो तो इन्हीं ग्रहों के पूजने वालों की कृपा से यहां के राज्य के और ही मनुष्य राजा होगये कौन नहीं जानता कि जब महमूद ग़ज़नवी ने मन्दिर सोमनाथ पर चढ़ाई की थी उस समय इन ग्रहों की दूकान राजा के समीप खुली

हुई थी और वह पण्डित लोग कहते थे कि लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि आप के फ़लां २ ग्रह बड़े अच्छे पड़े हैं और हम सब जप करते हैं तीसरे दिन शत्रु अपने आप आ के आप के चरणों में गिरेगा वा फिर कर चला जायगा, अन्त को ऐसा हुआ कि यह सब पण्डित अपने २ ग्रहों की शूरवीरता सुनाते ही रहे कि वह मन्दिर में घुसगया और मूर्त्ति को तोड़ दस करोड़ का माल लेकर चला गया, इस के उपरान्त जब ये लोग अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं तो सब प्रकार से विधि मिला लेते हैं परन्तु फिर भी इन्हीं लोगों में विधवा अधिक देखी जाती हैं यदि यह परापरीत ठीक होती तो पण्डितों अर्थात् ज्योतिषियों की पुत्रियां रांड न होतीं, इस पर भी तो आप को ज्ञात नहीं होता कि यह सब मिथ्या है इन का मुख्य प्रयोजन टका ही है बहुधा जन यह भी कहते हैं कि तुम ज्योतिषियों के फलित को ग़लत बताते हो देखो वह कितने दिन पहिले ग्रहण बता देते हैं कि फ़लां तिथि को ग्रहण होगा और वैसा ही होता है, प्यारे सुजनो ! हम प्रथम ही कह चुके हैं कि ज्योतिष में गणित बहुत ठीक है परन्तु फलित का फल प्रत्यक्ष ठीक नहीं मिलता और ग्रहण का बताना हिसाब का काम है देखो *गोलप्रकाश में दो सौ वर्ष तक के ग्रहण निकाल कर रख दिये हैं, हां यदि कोई ज्योतिषी यह कहे कि फ़लां ग्रहण के होने का यह फल होगा तो मैं कह सकता हूं कि फल अवश्यमेव ग़लत पड़ता है और पड़ेगा ॥

इन्हीं कारणों से हमारे पुराने पुरुषे फलादेश को मानते न थे, इस में किसी को सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में विद्या की बड़ी चर्चा थी और प्रत्येक विद्या के बड़े २ महात्मा, ऋषि, मुनि, विद्वान् विद्यमान थे परन्तु उस समय में किसी ने ग्रहों का जप दान करके किसी के दिल को नहीं फेर दिया वा आपस में क्यों नहीं मिला दिया वा एक को क्यों नहीं मारडाला वा अपने आधीन करलिया । यदि ऐसा होता तो अयोध्यापुरी के सुजन अवश्य कैकेयी के मन को फिरवा देते तो क्यों बनवास होता । इस के उपरान्त सीता हरजाने पर भी

* एक पुस्तक जिस को एक अंग्रेज़ ने लिखा है ॥

रामचन्द्र ने बहुत प्रकार के विचारांश किये और हनुमान् आदि को सुध लेने के लिये भेजा क्यों नहीं एकाध रुपया देकर ज्योतिषी ही से पूंछ लिया होता कि जिस से उन को ज्ञात होजाता कि रावण हर लेगया है। सुग्रीव ने अपने भाई बाली को जप कराकर क्यों नहीं प्रसन्न करलिया इसी प्रकार विभीषण को रावण ने क्यों नहीं मिलालिया कि जिस ने सम्पूर्ण वंश का खोज मार दिया। लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर श्रीमहाराज रामचन्द्र जी ने संजीवनी नाम बूटी को क्यों मंगवाया क्यों नहीं ग्रहों का जप कराकर आराम करालिया ॥

इस के उपरान्त युधिष्ठिर और दुर्योधन कि जिन की लड़ाई होने से भारत का भारत होगया क्यों नहीं ग्रहों के जप से सम्मति करादी? इस के अतिरिक्त श्रीकृष्णजी महाराज ने कंस को क्यों मारा क्या उस समय वर्त्तमान समय के ज्योतिषी उपस्थित न थे जो आप से काम कर देते?

वर्त्तमान समय में जब कोई कहीं को चला जाता है तो हमारे ज्योतिषी जी बताते हैं कि वह पूर्व को गया है और अभी इतना अन्तर है यदि यह वार्त्ता सच होती तो क्यों दमयन्ती नल के मिलने को नाना प्रकार के उपाय करती झट ज्योतिषियों से पूंछ कर ढूंढ लेती इत्यादि अनेक प्रकार की गप शप ज्ञात होती है ॥

रसायन मन्त्र और तन्त्र ॥

इस के उपरान्त रसायनियों के धोके में न आओ जो तुम्हारा माल मार अपनी रसायन बना लेते हैं उन को आती तो पहिले अपने भाई, बन्धु, लड़के आदि को करोड़ों रुपये बनाकर साहूकार करदेते, सो तो कुछ न हुआ वरन ऐसा गुण, और फिरें मारे २। यह सब मिथ्या है, वह भी एक प्रकार के ठग हैं सच पूंछो तो वह अपनी रसायन बना लेजाते हैं और तुम लालच में जो कुछ होता है देदेते हो, इसी धन को हर देश में जाकर दो तीन रुपये रोज़ खर्च करते हैं, रुपये को कुछ नहीं गिनते, हमारे भाई लोग उन को रसायनी जान उन की सेवा करते हैं किसी २ को वह हाथ की चालाकी से बनाकर दिखला देते हैं फिर उन ही के हाथ से बिकवाते हैं, वह बिचारे सीधे

साधें लोभी, अक्ल के दुश्मन झट स्त्री तक का माल उतार कर देदेते हैं, फिर बाबा जी के पते तक नहीं मिलते सिर पीटते रह जाते हैं, भला अब बताओ किस की रसायन बनी ?

इस के उपरान्त भूत, शाकिनी, डाकिनी आदि जो भ्रमजाल हैं, और नाना भांति के रोगों में आप ओषधि नहीं कराते और उन धूर्त्त, महामूर्ख, कुकर्मी, भङ्गी, चमार आदि के भरोसे पर जो अनेक प्रकार से छल, कपट, डोरा धागा बांध, धन हरण करते हैं, उन में मिथ्या धन व्यय न करो, और इन सब बातों के सत्य २ जानने के अर्थ सत्य ग्रन्थों को देखो तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जायगा कि यह सब ठगई के जाल हैं, क्योंकि जो उत्पन्न होकर वर्त्तमान समय में न रहे सो भूतस्थ होने से भूत कहाता है जैसा कि सृष्टि की आदि से लेकर आज तक लाखों करोड़ों मर गये और फिर कर्मानुसार जन्म लेते गये वह सब उन नामों से न रहने के कारण सब भूत हैं इसी भांति मृतक शरीर को प्रेत और दाह करने वाले को प्रेतहार कहते हैं और जैसा इस समय में गोलमाल हो रहा है यह सब महामिथ्या है, इस कारण इन मिथ्या विचारों को छोड़ कर सन्तानों को भी सत्योपदेश करते रहो, इस के अतिरिक्त मन्त्र यन्त्र इत्यादि प्रकट फैले हुए हैं कि जिस के कारण यह देश और भी अधोगति को पहुंच रहा है-(मन्त्र) शब्द का अर्थ गुप्त भाषण का है परन्तु वर्त्तमान काल में उस से यह प्रयोजन लेते हैं कि कोई मनुष्य मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के अर्थ जप करे इसी भांति (यन्त्र) शब्द के अर्थ युक्त क्रियाओं के करने के अर्थ कोई कोष्ठ बना कर उन में कुछ संख्या वा शब्द वा वाक्य लिखो इसी प्रकार (तन्त्र) शब्द के अर्थ यह लेते हैं कि ओषध्यादि के मेल से कुछ आश्चर्य जान कर क्रिया दिखलाना ॥

जिधर हम देखते हैं उधर ही पण्डित ब्रह्मचारी जती (यति) काज़ी, पीरज़ादे इत्यादि सभी मन्त्रादिक के सहारे से शिकार मारते दृष्टि आते हैं, विद्वान् से तो यह मनुष्य दृष्टि तक नहीं मिलाते, परन्तु मूर्ख पुरुषों की सभा वा इस देश की अनपढ़ी स्त्रियों में पांव फैलाते हैं, जब वहां से कुछ मिल जाता तब उस का पीछा छोड़ते हैं और

जो स्त्री पुरुष उन को कुछ नहीं देते तो यह कह के कि देखना हम तो जाते हैं परन्तु भगवती, हनुमान्, भैरव, वैताल, नरसिंह, पीर ने जब कुछ किया तो पछताओगी और फिर पैरों पड़ोगी, इसी प्रकार की बहुत बातें बनाते हैं कि जिन को वह भोले भाले मनुष्य सुन कर फिर कुछ दे दिला कर राज़ी करते हैं॥

मन्त्र, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू ब्रजभाषा, पञ्जाबी, महाराष्ट्री इत्यादि भाषाओं में हैं और प्रतिदिन नवीन बनतेजाते हैं। इस देश में यह बात प्रसिद्ध है कि कामरू देश में 'कामाक्षी'देवी और 'इस्माईल' योगी सिद्ध है, योगी के प्रताप से मन्त्र तत्काल सिद्ध होता है। और मूर्ख जन, ऐसा निश्चय रखते हैं कि अन्य देश का मनुष्य कामरू देश में जाय तो वहां की स्त्रियां उस को मन्त्रों से बांध सदैव रात्रि को पुरुष और दिन में हल आदि में जोतने के लिये बैल बनालिया करती हैं। लाखों मन्त्रों में–'कामरू देश कामाक्षी देवी जहां अस्मायल' (इस्माईल) योगी यही पाया जाता है! बड़े आश्चर्य की बात है कि कामरू प्रदेश में सहस्रों मनुष्य आते जाते हैं परन्तु तब भी हमारे भोले भाई वैसा ही निश्चय करे बैठे हैं॥

इन मन्त्र बनाने वालों और जप करने वालों ने एक बड़ी आड़ यह भी बना रक्खी है कि इन के देवता ३३ करोड़ हैं जब एक के नाम से काम नहीं होता तो दूसरे के आश्रय फिर तीसरे चौथे आदि के, मुख्य यह है कि सारी उमर जप करते २ मर जायं पर इनकी कभी हार नहीं होती हैं, धन्य है इन पुरुषों को!

वेदों में तेंतीस देवता व्यवहार प्रयोजन के अर्थ माने हैं जिन में से उपासना के अर्थ एक सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही है और वह तेंतीस देव यह हैं–आठ वसु, ११ रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र, एक प्रजापति, इन में से आठ वसु ये हैं–अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र इन का नाम वसु इसलिये है कि सब पदार्थ इन्हीं से बसते हैं और यही सब के निवास करने के स्थान हैं। ११ रुद्र यह कहाते हैं–जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, और ग्यारहवां जीवात्मा

क्योंकि मरण होने के समय जब यह शरीर से निकलते हैं तब उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं और वे निकलते हुए उनको रुलाते हैं इस से इन का नाम रुद्र है। इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं, क्योंकि वे सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं इसी से इन का नाम आदित्य है। ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख है और यज्ञ को प्रजापति इसलिये कहते हैं कि उस से वायु वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजापालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का कारण यह है कि उन से भी प्रजा का पालन होता है, सब मिलाकर अपने २ दिव्य गुणों से तेंतीस देव कहाते हैं॥

प्यारे सुजनो! यह सब व्यवहार के अर्थ हैं और उपासना के अर्थ केवल एक परमेश्वर ही है जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में लिखा है॥

योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवꣳस देवानाम्।

अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर को छोड़कर अन्य की उपासना करता है वह पशु के समान है॥

परन्तु अब तो लोगों को तेंतीस कोटि से भी तृप्ति न हुई तब मरे हुये गोर निवासी मुसलमान पीर, औलिया, मियां आदि को भी मानने लगे, हाय लज्जा भी नहीं आई इसी कारण इनके पूजनेवालों की कुगति होगई कि जिस से भारत के ऐश्वर्य को भी खोदिया॥

इसलिये हे गृहस्थो! इन मिथ्या बातों में न फंसो और कृपाकर वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो व सुनो और पूर्ण विद्वान् और सत्यवक्ताओं का सत्सङ्ग करो तो यह मिथ्या पोल खुल जावे॥

पाठकगणों के दिखलाने के अर्थ कुछ उदाहरण लिखता हूं—

[कृत्रिम सोना चांदी बनाने का मन्त्र]

ओं नमो हरिहराय रसायन सिद्धिं कुरु २ स्वाहा।

इस मन्त्र को २१ दिन तक १०८ बार जपने से सोना चांदी बनजाता है।

[चौकी मुट्ठी पीर की]

बिस्मिल्ला अर्रहमान अर्रहीम लोहचक्रकी बावड़ी

गल मोतियन का हार लङ्का सी कोट समुद्रसी खाई जहां फिरै मुहम्दा वीर की दुहाई कौन वीर आगे चले सुलेमान वीर चले दुर्रानी वीर चले नादरशाह वीर चले मुट्ठीचले नहीं चले तो हज़रत सुलेमान की सात दुहाई शब्द सांचाचलो मन्त्रों ईश्वरवाचा

इस मन्त्र को ४७ दिन तक १०७० मन्त्र जपे तो वीर हाज़िर हो कर काम करे ॥

[मार्ग में वाघ (सिंह) के प्रबन्ध का मन्त्र]

वघ बांधु वघायन बांधु वघ के सातों बच्चे बांधु राह बाट मैदान बांधु दुहाई वासुदेवकी दुहाई लोना चमारी की ॥

इस को सात वार सात मङ्गल को जपे तो सिंह पर फूंक दो वा सोते समय अपने ऊपर फूंक लो तो सिंह आधीन होजावेगा ॥

[बवासीर दूर करने का मन्त्र]

सुम्मुन बुक्मुन उमयुन फहुम लापर जठनी ॥

[यन्त्र]

५३	५९	२	७
६	३	५६	५३
५८	५३	८	१
४	५	५५	५७

इस यन्त्र के लिये लिखा है कि पीपल के पात में घरके पीछे लिखे तो दिन से रात दिखलाई देनेलगे ॥

तं	तं	तं	तं
पं	पं	पं	पं
दं	दं	दं	दं
लं	लं	लं	लं

इसके विषय में लिखा है कि सिरस के वृक्ष के नीचे बैठ के लिखे तो भूत प्रेत देवी यक्ष आदि सब प्रसन्न हों ॥

इसी प्रकार अनेक मन्त्र तन्त्र कपोल और मिथ्या फैल रहे हैं ॥

मैं पहिले लिख चुका हूं कि आधुनिक लोग औषधादिक के मेल से आश्चर्य्यजनक क्रिया कर दिखलाने को तन्त्र कहते हैं । अब मैं इस विषय में लिखता हूं—

हम स्वीकार करते हैं कि औषधादि ईश्वरकृत अनेक पदार्थ हैं उन को परस्पर मिलाने से बहुत आश्चर्य्यजनकक्रिया होसकती है । हम नित्य देखते हैं कि रोगों के निवारणार्थ सब लोग नाना प्रकार की औषधियों का सेवन करते हैं और उन के यथायोग्य सेवन से रोगों की निवृत्ति होती है । रेल तारादिक इन्हीं पदार्थों के सेवन से चलते हैं परन्तु इन को सदैव देखते हैं इस कारण से आश्चर्य्य नहीं होता । हां जो लोग प्रथम देखते हैं उन को आश्चर्य जानते हैं ॥

इस वर्णन से यह सिद्ध हुआ कि पदार्थों के मिलाने से उन के गुणानुसार चमत्कारक बातें होसकती हैं परन्तु वे भी ऐसी होती हैं कि जिन को बुद्धिमान लोग सम्भव जानते हैं । कुछ ऐसा ही नहीं है कि पदार्थों के नाम लिख कर उन के मेलनादि क्रियाओं से जो अण्ड बण्ड फल लिख दिये सो होजायं जैसा कि 'तन्त्रमहार्णव' नामक तन्त्र ग्रन्थ के वशीकरण प्रकरण में लिखा है—

तुलसीरसंगृहीत्वा धात्रीरससमन्वितं ।
तुलसीबीजसंयुक्तं हरतालमनःशिलम् ॥
देहान्ते तिलकं कृत्वायमदूतो वशीभवेत् ।
पापी चैव महापापी वैकुण्ठं गच्छते नरः ॥

अर्थ तुलसी और आंवले का रस बराबर लेकर उस में तुलसी के बीज हडताल और मैनसिल मिलाकर मरण समय में उस के तिलक करने से यम के दूत मृतक के वश में होजाते हैं इस कारण से पापी भी वैकुण्ठ को चला जाता है ॥

प्यारे सुजनो ! इन लेखों को ज्ञानदृष्टि से विचारो तो स्पष्ट प्रकट होगा कि इन मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि मिथ्या बातों ने ईश्वर की आज्ञा को भी तोड़ कर अपना दख़ल कर लिया भला यह आप की समझ में आता है कि परमेश्वर की आज्ञा को कोई भङ्ग करसके ? यह सब इन के मिथ्याप्रपञ्च हैं सच पूछो तो वर्तमान समय में नाना प्रकार ढंग ठगने के हैं । जैसा कि कोई २ इन मन्त्र यन्त्रादि के तावीज बना कर बाज़ारों में पैसे दो २ पैसे में बेचते हैं और भूत पलीत बीमारी

आदि खोते फिरते हैं। सो हे भारतवासियो! तुम कदापि इन मिथ्या प्रपञ्चों में न फंसो, सदा वेदादि में लिखे सत्यगुणों का अवलोकन करो तो आप को इन सब का भेद यथावत् प्रकाश हो जावेगा ॥

देखिये बीमारियों के अर्थ परमेश्वर ने वैद्यकविद्या को बनाया है यदि मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनादि मन्त्र वेद में पाये जावें तो सच हो सकते हैं सो इन का कहीं पता तक भी नहीं। इस के उपरान्त कुछ बुद्धि से विचारना भी योग्य है कि ऐसे मन्त्र वेदोक्त हैं या नहीं। यदि ऐसे मन्त्र वेद में हों कि जिन के पढ़ने आदि से मनुष्य मरजावें तो बताइये यह पाप परमेश्वर को होगा वा मारने वाले को? तो यही उत्तर होगा कि परमेश्वर को, तो इन मन्त्रादिक के मानने वालों ने परमेश्वर को भी पापी बना दिया! सो वह पापी नहीं होसकता। यथार्थ में पापी यही हैं क्योंकि कोई मन्त्र ऐसे नहीं कि जिन से मनुष्य मरजावें हां कई प्रकार की औषधि ऐसी हैं कि जिन के खिलाने से मनुष्य मरजाते हैं सो यहपापी उनके नौकर आदि को लालचदेकर खानेपीने आदि में ज़हर दिलवा देते हैं कि जिनसे मनुष्य मरजाते हैं फिर अपनी सिद्धि प्रकट करते हैं यदि उन को ऐसे ही मन्त्र आते हैं तो क्यों नहीं महमूद ग़ज़नवी, नादिरशाह, तैमूरलङ्ग आदि को मारडाला कि जिन्हों ने भारत के मनुष्यों को क़तल कराया। यदि ऐसा ही होता तो अङ्ग्रेज़ी राज्य न होता। यदि आप को इतने पर भी विश्वास न हो तो आप एक शीशी में कि जिस में वायु आती हो मक्खी बन्द कर के अपने पास रख लीजिये और उन से कहिये कि इस को मन्त्रों से मारिये यदि वह मर जावे तो सच, नहीं तो मिथ्या है ॥

प्यारे भाई बहनो! यदि इन को मारण आता होता तो स्वामी दयानन्दसरस्वती जी को कि जिन्हों ने भारत के मूर्ख पण्डित और वर्तमान धर्म की कलई खोलदी क्यों नहीं मारडाला, इस के अतिरिक्त समस्त आर्यों पर जो सम्पूर्ण देश में कोलाहल मचारहे हैं जिस से नाममात्र के पण्डितों की प्रतिष्ठा भङ्ग हो रही है क्यों मारण मन्त्र नहीं चलाते वा मोहन मन्त्र से मोहित और वशीकरण से वश में नहीं करलेते जो इन मिथ्या मन्त्रों की पोल खोल मन्त्रादिक के करनेवालों

की आमदनी का नाश मार रहे हैं—सो कुछ भी न हुआ फिर मैं नहीं जानता कि इन गपोड़ों में पड़कर क्यों अपने देश का सत्यानाश मारते चले जाते हो इसलिये अब विचार कर प्रत्येक कार्य्य का करना अभीष्ट है। प्यारे सुजनो! इन्हीं कार्य्यों के करने से हमारे देश का नाम आर्य्यवर्त्त से हिन्दुस्तान रख दिया आप विचार कीजिये ॥

—:※०※:—

आर्य्यशब्द ॥

देखिये (ऋ गतौ) धातु से ऋहलोर्ण्यत् इस सूत्र द्वारा (ण्यत्) प्रत्यय लगाने से आर्य्य शब्द बन जाता है इस के उपरान्त अमरकोश प्रथम काण्ड भूमिवर्गस्थ अष्टम पद्य में लिखा है (आर्य्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः) अर्थात् उस पवित्रभूमि को आर्य्यावर्त्त कहते हैं जो हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में है ऐसा ही मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में भी लिखा है और जैनकृत अमरकोश द्वितीय काण्ड के भीतर (ब्रह्मवर्गस्थ तृतीय श्लोक को देखिये—महाकुल, कुलीन, आर्य्य सभ्य, सज्जन, साधु ये छः नाम श्रेष्ठ पुरुष के हैं इस के उपरान्त वसिष्ठस्मृति में वसिष्ठ जी महाराज ने लिखा है जो कर्त्तव्य कर्मों का सेवन करता है और अकर्त्तव्य कर्मों का परित्याग करता है वह आर्य्य कहलाता है जैसा कि—

कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य्य इतिस्मृतः ॥

महाभारत उद्योगपर्व अ० ३१ श्लोक ११३ व ११४ में लिखा है कि जो शान्तचित्त रहते हैं वैर को नहीं बढ़ाते घमण्ड नहीं करते उद्योग से कार्य्यों को करते हैं जो गिरी दशा में भी चोरी आदि अकार्य्य नहीं करते और न अपने सुख में हर्ष और दूसरे के दुःख में आनन्दित नहीं होते वही आर्य्य हैं जैसा कि—

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥

ऐसा ही विदुर जी ने विदुरनीति में कहा है-इस के उपरान्त मनु जी ने अ० ४ श्लोक १७५ में अध्यापकों को उपदेश किया है कि आर्य पुरुषों की भांति सदाचार कर उसी प्रकार अपने शिष्यों को सिखलाओ-

सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥

इस के उपरान्त भीष्मपर्व अ० २५ और गीता अ० २ श्लोक २ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है आर्य्य पुरुषों को मोहवश होकर अनार्यों की भांति कर्म न करने चाहियें -

कुतास्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्
अनार्यजुष्टम स्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

हितोपदेश के सन्धिप्रकरण में राजा को शिक्षा की है कि यह विजय पाने के अर्थ अनार्य और आर्य से सन्धि करले जैसा-

सत्यार्योऽधार्मिकोऽनार्यो ॥

और य० अ० ३३ मं० ८२ में लिखा है कि राजा के सब आर्य्य राज्यरक्षक हैं और आज्ञापालक हैं वहां सब प्रकार के आनन्द होते हैं जैसा—

यस्यायं विश्व आर्यो दासः ॥

ऋ० मं० १ सू० ५१ मं० ८ में और अथर्व० कां ५ अ० २ व० ११ में मनुष्यमात्र की गणना आर्य और दास अर्थात् अनार्य नामों से की है-

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते । रन्धया शासदव्रतान् ॥
सत्यमहं गम्भीरः काव्येन सत्यजातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो न मे आर्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥

इस के अतिरिक्त वाल्मीकीयरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३ श्लोक २५ सर्ग ११ श्लोक ८४ स० ७५ श्लोक २० स० ६२ श्लोक २६ स० ६६ श्लोक ३० । आरण्यकाण्ड सर्ग ४३ श्लोक ४ । किष्किन्धाकाण्ड स० २९ श्लो० २८। सुन्दरकाण्ड स० २२ श्लोक १८ स० ३५ श्लो० ४४ और लङ्काकाण्ड सर्ग ७४ श्लो० १५ में श्रीराम, सीता, कौशिल्या, वालि और विभीषण आदि

के लिये आर्य और रावण के लिये अनार्य शब्द आया है। इसीभांति महाभारत आदिपर्व अ० १५४ व १५८ सभापर्व अ० ६४, ७३। वनपर्व अ० १७६ अ० २६७। शान्तिपर्व अ० ६३, ६४, ६५ १४०, २६२ इत्यादि स्थानों पर आर्य शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णुपुराण तृतीय अं० अध्याय ७ में यमराज ने विष्णुभक्तों के लक्षण वर्णन किये वहां पर लिखा है कि जो मनुष्य अशुभमति असत्कार्यों और अनार्यों के साथ निरन्तर लगा रहता है वह विष्णु का भक्त नहीं है अर्थात् विष्णुभक्त वही हैं जो प्रतिदिन आर्य पुरुषों का सत्सङ्ग कर शुभ कार्य्यों को करते हैं इस के अनन्तर नया गुटका जो मिडलक्लास में पढ़ाया जाता है जिस में (मुद्रा राक्षस) नाम नाटक जिस को कवि विशाखदत्त जो महाराजा पृथ्व का बेटा था बनाया है जिस का भाषा बाबू हरिश्चन्द्र जी ने बनाया है उस के सफ़े ६६, ७०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८४, ८६, ९०, ९१ में आर्य शब्द आया है और पण्डितगण भी प्रतिदिन सङ्कल्प के समय इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त पढ़कर अपने यजमानों को सुनाते हैं—

ओंविष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्येत्यादि परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलौ-युगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे आर्य्यावर्ते पुण्यक्षेत्रे वर्त्तमा-ननामसंवत्सरः प्रवर्त्तते तत्र अमुकायने अमुकऋतौ मासानांमासोत्तमे मासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायाम् अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकनामधर्मार्थमहं करिष्ये ॥

इसी कारण इस देश की भाषा का नाम आर्य्यभाषा प्रसिद्ध है और बहुधा पुस्तकरचना करने वाले धर्मसमाजी पण्डित जन इस शब्द का प्रयोग करते हैं और महात्मा हंसस्वरूप जी वर्त्तमान समय में धर्मसभा के बड़े उपदेशक हैं उन्हों ने त्रिकुटीविलास नाम पुस्तक के सफ़े १४, १५ में इस देशवासियों को आर्य्य नाम से सूचित किया है ॥

फिर हम नहीं जानते कि क्यों कर हिन्दू कहलाते चले जाते हैं जिस के अर्थ गुलाम, काफ़िर, चोर, लुटेरे के हैं जो (ग़यासुल्लुग़ात) के सफ़े ५०० में लिखे हैं हा शोक ! हा शोक !! हा शोक !!! कि क्या समय आया जो जान बूझ कर भी हम कुए में गिरते चले जाते हैं और प्रस-

न्नता प्रकट करते हैं। प्यारे भाइयो ! यह शब्द प्राचीन नहीं है यही कारण है कि हमारे किसी प्राचीन पुस्तक में नहीं लिखा हां मुसल्मानों ने इस देश को विजय किया तो पक्षपात के कारण इस देश का नाम हिन्दुस्थान रख दिया जो हिन्दु+स्तान से बना है जिस के अर्थ काफ़िर आदि की जगह के हैं क्योंकि फारसी में (स्तान) कलमाज़र्फ़ का अर्थात् स्थान का है जैसा गुलिस्तां, बोस्तां, अफ़ग़ानिस्तान। इसलिये प्यारे सुजनो ! एक सम्मत हो शीघ्र इस अपवित्र नाम को त्याग दो और वेदानुकूल प्राचीन पुरुषों की भांति आर्य्य शब्द का प्रचार करो–अब विद्या का प्रकाश होरहा है जिस से (हिन्दू) शब्द के अर्थ भी जानते हैं और फिर उसी क़ौम में जिस से हम प्रत्येक प्रकार से प्रधानता रखते हैं उन्हीं में बैठेहुये हिन्दू कहलाने पर प्रसन्न होते रहें ? प्यारे ! विचारो और इस कलङ्क को जहांतक होसके शीघ्र मेट आर्य्य शब्द और इसकी सनातन परिपाटी का प्रचार करो–जिससे तुम्हारा यश हो और सभ्य मण्डलियों में तुम्हारी सभ्यता का परिचय हो ॥

व्रत और तपस्या ।

मान्यवरो ! जब से इस देश से वेदरूप सूर्य्य छुप गया और ऋषि मुनि आदि ने धर्म्म की ध्वनि से अज्ञान में पड़े हुये मनुष्यों को चिताना त्याग दिया अधर्मरूप अन्धकार ने संसार को आ घेरा, पुराण रूप नाना सितारे अपने धुंधले प्रकाश से चमकने लगे काम लोभ अज्ञान रूप चोरों ने बरसाती मेंड़कों की भांति समय पाकर अपनी कमर बांधी और अधर्म की घोर निद्रा में सोते हुये मनुष्यों के गृह में घुसकर उनकी धर्मरूप माया को यहां तक लूटा कि उनके पास कुछ भी न रहा और जैसे धनादि के जाने से मनुष्य निर्बुद्धि होजाता है जिस से वह अंटसंट बकता है मार्ग अमार्ग को नहीं पहचानता इसी प्रकार धर्मरूप माया के जाने से मनुष्यमात्र अपने पुरुषों के उत्तम नियमों को यहां तक भूल गये कि उन के मुख्य अभिप्राय को भी नहीं जानते। एक परमदेव परमात्मा के स्थान पर तैंतीस करोड़ देवता मानने लगे जो कि भारतवासियों की मनुष्यगणना से भी अधिक हैं नाना मत मतान्तर रूप मार्गों को इस घोर अन्धकार में उत्तम समझ

स्वर्ग रूप फल पाने की आशा से चलने लगे। व्रत के अभिप्राय ही को भूल गये इतने व्रत बढ़ा दिये कि साल के दिनों से भी दोचन्द होगये देखिये आदित्य पुराण के अनुसार रविवार को, शिवपुराण के अनुसार सोमवार और तेरस चन्द्रखण्ड के अनुसार मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर को व्रत रहना आवश्यक है और यही सप्ताह में सात दिन होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण साल व्रती रहने की यही आज्ञा देरहे हैं। और भी सुनिये कि विष्णु की एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह की अनन्तचौदस, चन्द्रमा की पूर्णमासी, दिक्पाल की दशमी, दुर्गा की नवमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्तिक स्वामी की छठ, नाग की पञ्चमी, गणेश की चौथ, गौरी की तीज, अश्वनीकुमार की दोज। आद्या देवी की पड़वा, भैरव की अमावस, और २६ एकादशियों को भी व्रत रहे इसके अतिरिक्त प्रत्येक माह में भी दो चार ऐसे त्योहार माने हैं जिनमें स्त्री पुरुष दोनों वा केवल स्त्रियां ही वा केवल पुरुष ही व्रती रहते हैं जैसे—

चैत्र के कृष्णपक्ष में -शीतला की अष्टमी और वारुणी स्नान॥

चैत्र के शुक्लपक्ष में—पड़िवा से नवमी तक नवरात्रि का, अष्टमीको देवी का तीज को (गनगोर)॥

वैशाख के कृष्णपक्ष में—सप्तमी और अष्टमी॥

वैशाख के शुक्लपक्ष में—तीज (अक्षयतृतीया)॥

ज्येष्ठ में वरसायत (वटसावित्री) शीतला की अष्टमी, सप्तमी॥

आषाढ में—सप्तमी और दहवैठोनी अष्टमी॥

सावन—सलूनो॥

भादों कृष्णपक्ष चौथ (बहुला चौथ) छठ (हरछठ) अष्टमी कन्हैया अष्टमी

भादों शुक्लपक्ष—तीज (गौरी) चौथ (सिद्धिविनायक) पञ्चमी ऋषिपञ्चमी और बड़ा इतवार॥

कुआर शुक्लपक्ष—पड़िवा से नवमी तक नवरात्रि व्रत, दशहरा, चौदस (ढिढिया)

कार्तिक कृष्णपक्ष—चौथ (करवा चौथ) अष्टमी अहोई अष्टमी, दिवाली द्वादशी (बछवाछ)

कार्त्तिक शुक्लपक्ष–दोज (भाईदोज) विरयागौर नवमी से एकादशी तक दशमी से पूर्णमासी तक (भीष्मपञ्चक) ॥

अगहन शुक्लपक्ष–पञ्चमी, छठ और अष्टमी ॥

माघ कृष्णपक्ष–चौथ (गणेश चौथ) पञ्चमी, एकादशी ॥

फाल्गुन कृष्णपक्ष–अष्टमी, तेरस (शिवतेरस) ॥

फाल्गुन शुक्लपक्ष–होली आदि दिन भी व्रत के हैं ।

इन के अतिरिक्त और भी बहुत से व्रतों की आज्ञा धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धु में पाई जाती हैं । इन सब दिवसों में सम्पूर्ण दिन या किसी भाग तक सम्पूर्ण स्त्री पुरुष बालक भूखे रहते हैं और तत्पश्चात् अन्न को छोड़ कर घुइयां, सकरकन्दी, फाफला, सिंघाडे आदि वस्तुयें खाते हैं परन्तु इन सब में निर्जल रहना अर्थात् दिन और रात कुछ न खाना सब से उत्तम माना गया है क्योंकि अन्न में पाप एकादशी आदि को होता है । भूखे रहने से कहते हैं कि आत्मा को मारकर एकाग्र चित्त होकर परमेश्वर का भजन करते हैं । जब से इस देश में व्रतों का प्रचार हुआ, तभी से नाममात्र के पण्डितों ने बहुत सी कथायें भी लिख मारीं जो इन ही व्रतों के दिन सुनाई जाती हैं जिन में बहुधा उत्तम भी हैं और बहुतों में केवल गपोड़पन्थ ही भरा हुआ है और बतला दिया कि इन व्रतों के रहने से और इन कथाओं के सुनने से वही फल प्राप्त होता है जो सहस्र अश्वमेध, सहस्र वेददान, सौ कन्यादान और सहस्र उपकारादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है और ऐसे पुरुषों को संसार में धन धान्य सन्तानादि से सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं इन फलों को सुनकर वर्त्तमान समय में निर्धन धन के, बीमार आरोग्यता के, बे औलाद सन्तान के और स्त्रियां पतिव्रतधर्म पूर्ण करने के अर्थ भेड़चाल की भांति विना सोचे समझे व्रत रहती चली जाती हैं । बहुधा निमक और आग छोड़ देती हैं अर्थात् आग से बना हुआ भोजन नहीं करतीं और केवल ऋतु आदि के फलों पर निर्वाह करती हैं ॥

परन्तु जब हम धर्मशास्त्र पर दृष्टि डाल कर इन उपरोक्त व्रतों की जांच करते हैं तो कहीं विना अजीर्ण के भूखे रहने की आज्ञा नहीं

पाई जाती क्योंकि भूख के मारने से मन्दाग्नि होजाती है मनुष्य निर्बल होजाते हैं किसी की बात अच्छी नहीं लगती, अच्छी को बुरी समझती हैं सूरत भयावनी होजाती है बहुत लिखने की क्या आवश्यकता है आप नित्य प्रति देख सकते हैं कि जो स्त्रियां अन्नादि छोड़ देती हैं उन की क्या दशा हो जाती है जिस के कारण वह गृहस्थी के कार्यों को नहीं कर सकतीं गर्भाशय में अन्तर पड़ जाता है जिस से आने वाली सन्तानों में नाना प्रकार के दोष हो जाते हैं पुत्र पुत्री आदि को पूर्णरूप से लालन पालन नहीं कर सकतीं ॥

अब रहा चित्त की एकाग्रता और ईश्वर का भजन । यदि यह दोनों कार्य्य भूखे रहने से होते तो आज कल बहुधा जन विना अन्न के मारे फिरते हैं फिर उन का एकाग्र चित्त क्यों नहीं होता और वह ईश्वर के भजन में लिप्त क्यों नहीं रहते । आप जानते हैं कि एक दिन भोजन न मिलने से मनुष्य व्याकुल हो जाता है उस को दुनियां और दीन दोनों देख पड़ते हैं ? बुद्धि में अन्तर आता है कुछ का कुछ सुनता और समझता है दिल झटकता रहता है फिर ईश्वर का भजन कैसा । यही कारण है कि बहुधा जन व्रती रह कर नाना कथायें वर्षों तक सुनते रहते हैं परन्तु सौ में दो मनुष्य भी ऐसे न निकलेंगे जो उन कथाओं को आप को सुना सकें फिर उन कथाओं पर चलना कैसा !

यदि भूखे रहने से ही चित्त की एकाग्रता होती तो हमारे ऋषि मुनि क्यों इतना कष्ट उठाते, जङ्गलों में रहते, चौरासी आसन और नाना क्रियाओं को कर योग की शिक्षा करते । इन सब हानियों के अतिरिक्त एक बड़ी हानि इन व्रतों से यह हो रही है कि स्त्रियों ने इन को मुक्ति का द्वार समझ कर पतिसेवा का बिलकुल त्याग कर दिया, पति कुछ कहता है वह कुछ करती हैं जिस से गृहस्थाश्रम में प्रेम नहीं आता दिन और रात झगड़े पड़े रहते हैं हे प्यारी बहनो! तुम कदापि इन व्रतों के रहने से स्वर्ग नहीं पा सकतीं वरन नाना प्रकार के कष्ट उठाती हो तुम्हारा तो परमदेव पति है वही तुम्हारा तीर्थ है उसी की सेवा टहल से तुम आनन्द उठा सकती हो । जो फल यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है वह तुम को केवल पति

सेवा से ही मिल सकता है जैसा कि मनु अ० ५ श्लो० १५५ और शङ्ख-स्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है-

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥
न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ।
नारीस्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ शंख०

मार्कण्डेय जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि स्त्रियों को केवल पति सेवा ही से स्वर्ग मिलता है । परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इन उक्त वचनों पर कोई ध्यान नहीं और अधर्म में पड़कर अपने पति की आयु को हरती हैं और आप नरक को जाती हैं । जैसा कि विष्णुस्मृति अ० २५ श्लोक १६ और अत्रिस्मृति श्लोक १३४, १३५ में लिखा है—

पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतञ्चरेत् ।
आयुः सा हरते भर्तुर्नरकञ्चैव गच्छति ॥
जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

मान्यवरो ! जब यह अन्धकार बहुत बढ़ा और सब को अत्यन्त दुःखदाई हुआ तो बहुत सज्जनों ने धर्मात्मा कोतवालों की भांति संसार के हितार्थ उद्योगरूपी घोड़े पर चढ़ कर धर्मरूप तलवार अपने हाथ में लेकर जीवन के भय को छोड़ कर काम लोभ और अज्ञानरूपी शत्रुओं के मारने को सारे संसार में फिरते डोले और भिन्न २ स्थानों पर ज्ञानरूप दियासलाई से बन्द शास्त्ररूप मसाले फिर जला गए उन्हीं के प्रकाश का आज यह प्रताप है कि हम जानते जाते हैं कि पूर्व समय में यह व्रत प्रचलित न थे वरन और ही थे और उन से हम को नाना प्रकार के सुख मिलते थे जिन को मैं भी आप के हितार्थ वर्णन करता हूं देखिये व्रत के अर्थ नियम के हैं अर्थात् वेदादि सत्यविद्याओं का पालन करना जैसा कि य० अ० १६ मं० ३० में लिखा है-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ७ हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ५ में लिखा है कि जब वेद आरम्भ करे तो उस की सिद्धि के लिये गुरुकुल में वेदोक्त व्रतों को करे जैसा कि–

स्वीकरोति यदा वेदं चरद्वेदव्रतानि च । (दक्ष०)
तस्मात् वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥ हारीत०

और ऐसा ही शङ्खस्मृति अ० ३ श्लो० १५ में लिखा है विष्णुस्मृति अ० १ श्लो० २१ में लिखा है कि यज्ञोपवीतसंस्कार होने के पश्चात् गायत्री मन्त्र से लेकर वेद तक जिस २ ग्रन्थ को पढ़े उस २ का व्रत करे अर्थात् ब्रह्मचर्य्य रह कर वेद विद्या पढ़ने का नाम व्रत है। अनुशासन पर्व अ० १४३ में महेश्वर ने उमा से कहा है कि वेदव्रतों का धारण करना अति उत्तम है। सब से उत्तम और शारीरक व आत्मिक फल का देने वाला व्रत ब्रह्मचर्य ही है जिस की प्रशंसा प्रथम हो चुकी इसी को परमोत्तम व्रत वेदादि सत्शास्त्रों में माना है जैसा कि अथर्व० का० ११ प्रप० २४ व० १६ मन्त्र २६ ।

तानिकल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः ।
समुद्रसस्त्रोतोनभुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥

जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास करता है वह महातप को करता हुआ वेद पठन वीर्यनिग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर स्नानादि करके विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त होकर पृथ्वी में अनेक शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है और याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ३ श्लो० ५१ में लिखा है–

गुरवे तु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वाह्युभयमेव वा ॥

गुरु को दक्षिणा देकर उस की आज्ञा से वा वेद समाप्त या व्रत

को पूरा कर वा दोनों को पूर्ण कर समावर्त्तनसंस्कार करे। व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४० में लिखा है कि जो ब्रह्मचर्यव्रत को पूरा करता है वह स्वर्ग को जाता है ॥

यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतंचरेत् ।
स नैष्ठिकोब्रह्मचारी ब्रह्म सायुज्यमाप्नुयात् ॥

शान्तिपर्व अ० १६० में भीष्मपितामह का वचन है कि चारों आश्रमों के लिये इन्द्रियनिग्रह ही उत्तम व्रत है। महाभारत उद्योगपर्व अ० ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्यव्रत को पूर्णरूप से पालन करता है वह इस लोक में शास्त्रकार होता है और अन्त को मोक्ष पाता है। इन्हीं कारण से मनु जी ने अ० ११ श्लोक १२१ में लिखा है कि जो द्विज अपनी इच्छा से अपने ब्रह्मचर्य को गिरा देता है उस का व्रत नष्ट होजाता है जैसा कि—

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मंतेजोऽवकीर्णिनः ॥

और श्रीमद्भागवतस्कन्ध ११ अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरुकुल में रह कर विषय भोग से बच कर जब तक विद्या पूर्ण हो तब तक अखण्डित व्रत धारण करे जैसा कि—

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ।
विद्यासमाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥३०॥

मार्कण्डेयपुराण अ० ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य में स्थित रहकर चोरी, लोभ और हिंसा आदि का त्याग करे यह ब्रह्मचारी के व्रत हैं जैसा कि—

अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्चत्यागोऽलोभस्तथैव च ।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमाणि वै ॥

ऐसा ही लिङ्गपुराण अध्याय ८६ श्लो० २४ में लिखा है जैसा कि—

अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्यागएव च ।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमा त्विह ॥ २४ ॥

महाभारत उद्योगपर्व में सनत्सुजात मुनि का वचन है कि (१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना (२) सत्य बोलना (३) इन्द्रियों को वश में रखना (४) किसी की उन्नति देखकर न जलना (५) निन्दा न करना (६) यज्ञ (७) दान (८) अर्थसमेत वेद को पढ़ना (९) क्रोध को रोकना (१०) आपत्ति के समय में भी सत्य को न त्यागना यही व्रत है जो इन व्रतों को धारण करता है वह वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन कर सकता है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य रह कर विद्या को प्राप्त करता है और उपरोक्त गुणों को धारण करता है वह मनुष्य ऋषि देवता मुनि और महात्मा कहाता है और अकालमृत्यु को जीतता है यही मोक्ष का उपाय है॥

इस के अतिरिक्त शान्तिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने भीष्मपितामह से प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देहपीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं यही तपस्या है क्या! तब भीष्म ने उत्तर दिया कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्मविद्या की विघ्नस्वरूप तपस्या है। इस लिये यह व्रत अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीत हैं। हां जो गृहस्थ होकर ऋतुगामी होते और संन्यासव्रत को धारण करते हैं, अतिथि की सेवा करते हैं, प्राणीमात्र पर दया करते हैं वह सच्चे व्रती हैं जो रात दिन में एक बार भोजन करते हैं सदा उपवासी होते हैं और ऐसा ही शान्तिपर्व अ० ७८ में कहा है और अत्रिस्मृति में भी यही उपदेश मिलता है कि आश्रमों के धर्मों को यथावत् करना परमव्रत है॥

अनुशासनपर्व अ० १४३ में महेश्वर ने व्रत किया है। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अ० १८ में कश्यप जी ने दिति को पुंसवनव्रत बताया है उस में लिखा है— (१) अहिंसा। (२) दुर्जनों से वार्त्ता न करे। (३) झूंठ न बोले। (४) क्रोध न करे। (५) मांस न खाय। (६) सत्य और प्रिय भाषण करे। (७) दिन में न सोवे। (८) सदा पवित्र रहे। (९) पति का पूजन आदि नियम पालन की आज्ञा है। और १९ अ० में इस की विधि का विस्तार किया है यहां प्रतिदिन हवन करने की भी आज्ञा

दी है और यह भी लिखा है कि जो इन व्रतों को धारण नहीं करते उन के व्रत नष्ट होजाते हैं और धारण करने वालों को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं ॥

प्रियवर्गो! जैसी दुर्दशा वर्त्तमान समय में व्रतों की होरही है उस से अधिक तपस्या की है कोई एक पैर से वा हाथ उठा कर खड़े रहने को तपस्या कहते हैं। कोई झूलना में पड़े रहने को उग्र तप कहते हैं और कोई अन्न छोड़ने आदि को। परन्तु यह सब मिथ्या है देखिये श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि तपस्या तीन प्रकार की हैं शारीरिक वाचिक और मानसिक और जब यह तीनों प्रकार की तपस्या इकट्ठी हो जावें तब वह मनुष्य तपस्वी कहलाता है और इन तीनों की व्याख्या इस भांति की है– जो मनुष्य देव, ब्राह्मण, गुरु, तत्वज्ञानी इन की पूजा करे और वाहिर भीतर से पवित्र रहे और नम्रतापूर्वक रहे ब्रह्मचर्य्य का साधन करे और हिंसा न करे तो उस को शारीरिक तप कहते हैं जैसा कि–

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तपउच्यते ॥

ऐसा वचन कहे जो किसी को किसी प्रकार का भय न हो सत्य प्रिय हो जो अन्त के विषय हितकारक हो ऐसे वचन वेद शास्त्र के अभ्यास से होते हैं यही वाचिक तप है जैसा कि—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तपउच्यते ॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥

मन प्रसन्न और निर्मल रहे क्रूर न हो मन में ईश्वर के स्वरूप की भावन हो विषयन से निवृत्त होय और लोकव्यवहार कपट से रहित हो उसको मानस तप कहते हैं ॥

व्यासजी महाराज ने कहा है कि मन को एकाग्र कर के इन्द्रियों को वश में रखना यही तप कहाता है क्योंकि मन बड़ा चञ्चल है इस

को आधीन कर लेनाही परम तप है और वनपर्व अ० २०० में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा कि अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खाकर इन छः चञ्चल इन्द्रियों का रोकना कठिन है इसलिये इन्द्रियों का वश में रखना उग्र तप है। और मनु० अ० ११ श्लोक २३५ में ब्राह्मणका तप धर्मशास्त्र का पढ़ना, क्षत्री का तप प्रजा की रक्षा करना, वैश्य का तप नित्य व्यापार और शूद्र का तप नित्य सेवा करना। अर्थात् वर्णाश्रम-धर्मों को करना यथार्थ में तप है जैसा कि—

ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तप शूद्रस्य सेवनम्॥

और इसी अ० के २४६ श्लोक में नित्य वेद पढ़ना और यथाशक्ति यज्ञ करना और धैर्य्य रखना और श्लोक २४७ में वारंवार वेद पढ़ने को ही परम तप कहा है और याज्ञवल्क्य जी महाराज ने अ० ३ श्लो०१०९ में स्पष्ट कह दिया है कि सम्पूर्ण वातों को छोड़कर आत्मा में लिप्त रहने को तप कहते हैं। इसलिये मान्यवरो आप इन मिथ्या व्रत और तप को छोड़ वेदानुकूल उपरोक्त व्रतों को वेद द्वारा जान उनके पूर्ण करने के अर्थ सत्यप्रतिज्ञा कीजिये जबही आनन्द मिलेगा अन्यथा नहीं॥

तीर्थ और मोक्ष।

मान्यवरो! प्रत्येक ऋषिग्रन्थों में उनके जीवन चरित्र और उनके नियत कियेहुये नियम प्रत्यक्ष प्रकट कर रहे हैं कि इस संसार में उन का मुख्य कर्त्तव्य क्या था—न वह धन के अभिलाषी थे और अन्य सांसारिक वस्तुओं में अपने चित्त को लगने देते थे, उनका सच्चा प्रेम परमात्मा को प्राप्त करना ही था। इस अभिलाषा के सिद्ध करने के अर्थ उन्होंने कठिन २ नियमों को भी अति सुगम समझा इसलिये उन्होंने अपनी आयु का अधिक भाग इसी अभिप्राय के सिद्ध करने के अर्थ नियत किया था और यह आयु के प्रथम अमूल्य भाग में सब से प्रथम नियम पूर्वक विद्याध्ययन करते हुये ब्रह्मचर्य्य को पूर्ण करते थे इसका समय ४८ वर्ष तक था। विद्या से आत्मिक और ब्रह्मचर्य्य से शारीरिक बल प्राप्त होता था। जिनकी अति आवश्यकता है। आत्मिक बल से सत्य

और असत्य का निर्णय कर शारीरिक बल से उसको पूर्ण करने को कटिबद्ध रहते थे तत्पश्चात् गृहस्थ होते थे यदि यह समय गृहस्थी के भोग विलास के और सन्तान उत्पादनार्थ था परन्तु इन आनन्दों में पड़कर भी वह अपने पवित्र आशय को न भूलते थे वरन नाना प्रकार के तप व्रत और तीर्थ यज्ञादि नित्य करते रहते थे । परन्तु शोक कि वर्त्तमान समय में इनके मुख्य आशय को बहुधा जन नहीं जानते और नाना प्रकार के प्रपञ्च रचते हैं कि जिनको अन्यदेशीय जन जान कर नाना दोष बतलाते हैं । मान्यवरो ! यह परिपाटियां अति विचार और बुद्धिमानी से नियत कीगईं थीं क्या कोई जन ऐसा संसार में जान पड़ता है जो उनके मुख्य आशय को जान उन में शङ्का उत्पन्न करसके व्रत और तपस्या का मुख्य अभिप्राय मैं आप को बतला चुका हूं अब आप को संक्षेप से ऋषि तीर्थों का वृत्तान्त सुनाताहूं । देखिये तीर्थ शब्द " तॄप्लवनसन्तरणयोः " इस धातु से औणादिक थक् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है, " तरन्ति येन यस्मिन् वा तत्तीर्थम् " अर्थात् जिस से जन तरते हैं वा जिसमें जन तरते हैं उसको तीर्थ कहते हैं जैसा कि—

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ६१ में लिखा है मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहिले तो वह हैं जो ब्रह्मचर्य गुरु की सेवा वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सत्सङ्ग ईश्वर की उपासना सत्यसम्भाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वह जिन से समुद्रादि जलाशयों के पार आने जाने में समर्थ होते हैं जैसा कि—

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिणः ।
तषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

किसी महात्मा का वचन है—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थश्च प्रियवादिता ॥

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि सततं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

सत्य—जो कुछ देखा सुना हो और जानला हो वही बिना कुछ अपनी ओर से मिलाये वर्णन करना तीर्थ है ॥

क्षमा—समर्थ होने पर भी क्षमा करना तीर्थ है ॥

इन्द्रियनिग्रह—पांच कर्मइन्द्रिय और पांच ज्ञानइन्द्रिय को अपने २ विषयों से रोकना तीर्थ है ॥

दया—अपनी आत्मा के सदृश औरों के आत्मा को जानना तीर्थ है ॥

दान—पुस्तकालय, विद्यालयादि का खोलना और विद्यार्थियों और अनाथों आदि भूखों को यथायोग्य सहायता करना तीर्थ है ॥

दम—पञ्च कर्मेन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना और दुःख सुख को समान जानना तीर्थ है ॥

सन्तोष—सत्य कार्यों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उस में जीवनाधार करना तीर्थ है ॥

ब्रह्मचर्य—सब प्रकार से वीर्य की यथावत् रक्षा करना परमतीर्थ है ॥

ज्ञान—सत् असत् वस्तुओं का जानना तीर्थ है ॥

धृतिः—सत्य प्रतिज्ञाओं का पालन करना तीर्थ है ॥

पुण्य—जो ब्राह्मणादि देश की उन्नति में बाधक नहीं हैं और न देश की उन्नति कर सकते हैं उन को अन्न जल से तृप्त करना तीर्थ है ॥

मनका शुद्ध करना—मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है यह परमतीर्थ है ॥

और भी कहा है—

मनोविशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं वाचा यमास्त्विन्द्रियनिग्रहस्तपः।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवेदयन्ति ॥

मन की पवित्रता, सत्य और विषयों को वश में रखना, मनुष्यों के तीर्थ हैं और यही सुख के दाता हैं। मनुस्मृति अ० १२ श्लोक १२३ में लिखा है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरेप्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

उस परमेश्वर को कोई अग्नि कोई मनु कोई इन्द्र और कोई प्राण और कोई तीर्थ कहते हैं ॥

और वृद्ध गौतमसंहिता में भी कहा है कि "क्षमावांस्तीर्थमुच्यते" कि क्षमावान् ही तीर्थस्वरूप है । शान्तिपर्व अ० २३३ में, देवता, ऋषिपितर, अतिथि आदि की पूजा करने को तीर्थरूप वर्णन किया है। इन के अतिरिक्त हमारे पूज्य विद्वान् होने पर भी इस विषय को अच्छे प्रकार जानते थे कि संसार में रहना अति दुर्लभ है गृहस्थी अति अगाध समुद्र है इस में कभी मनुष्य लोभ के कारण ऐसा हो जाता है कि जिस से वह सत्य असत्य को कुछ नहीं जानता प्रति समय धनही की लालसा में लगा रहता है न धर्म को जानता है न अधर्म को, बहुतों को कष्ट देता है, कभी मोह अपना प्रचण्ड बल दिखलाता है जिस से वह स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धियों के झूठे प्रेम में ऐसा फंस जाता है कि परमेश्वर को भी भूलने लगता है—अन्याय से बहुधा वस्तुयें अपने कुटुम्ब के अर्थ सञ्चय करता रहता है कभी काम में आकर अपना राज्य करता है, कि जिसके कारण मनुष्य धन और धर्म को भूल कर नाना प्रकार के अत्याचार करता रहता है, कभी क्रोध में ऐसा लिप्त हो जाता है कि उस समय किसी का भी ध्यान नहीं करता, चाहे सर्वस्व नष्ट हो जावे। परन्तु वह अच्छे प्रकार से जानते थे कि यह मनुष्य के महाशत्रु हैं और सदा धर्म से हटा कर अधर्म की ओर उन का ध्यान लगाया करते हैं इस लिये इन को सदा वश में करने का उद्योग करते रहते थे क्योंकि विना इन के वश किये आत्मज्ञान नहीं हो सकता—और यह वेदादि शास्त्रों के उपदेश से अपने आधीन हो जाता है। इस कारण कभी २ वह नियमपूर्वक उन ऋषि मुनियों के समीप जाया करते थे जो अतिविद्वान् थे, सांसारिक सुखों के त्यागी हो परमात्मा के भजन में लगे रहते थे और जो मनुष्यों को सत्योपदेश देने को उद्यत रहते थे, और जो उन की शङ्काओं को समाधान कर अनेक प्रकार के सुख का उपाय बतलाते थे।

इतिहासों से ज्ञात होता है कि यह ऋषि मुनि सदा ऐसे स्थानों पर कुटी बना कर रहा करते थे जहां का जल वायु आरोग्यदायक

होता था, जहां बड़े २ वन उपवन होते थे और जहां उन के भोजनादि की सम्पूर्ण वस्तुएँ सुगमता से मिलती थीं, ऐसे स्थानों को वह तीर्थ कहा करते थे क्योंकि उन का सत्योपदेश उन के चित्त को सांसारिक विकारों से हटा कर परमात्मा की ओर लगा देता था जिस से वह सर्व प्रकार के आनन्द भोगते हुए मोक्ष को प्राप्त करते थे। देखिये मार्कण्डेय जी महाराज ने कहा है कि वेद के जानने वाले व्रत करने वाले ज्ञानी तपस्वी ऋषि मुनि ब्राह्मण जहां रहते हैं वह भी तीर्थ है चाहे गांव और जङ्गल क्यों न हो और श्रीमद्भागवतस्कन्ध ३ अ० १ श्लोक १६ में विदुर जी के चरणों और ऋषियों के निवासस्थान को तीर्थ कहा है जैसा कि—

सनिर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदःपदानि ॥

और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के चरणों को तीर्थ बतलाया है क्योंकि वह ज्ञानमय मूर्त्ति और योगिराज थे। इस के अतिरिक्त जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी महाराज रानियों समेत कुरुक्षेत्र को गये तब वेदव्यास, नारद, देवल, विश्वामित्र, भरद्वाज, गोतम, वशिष्ठ, भृगु, कश्यप, अत्रि, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य आदि अनेक ऋषि, मुनि वहां पधारे बहुत आदर सत्कार करने के पश्चात् श्रीकृष्ण महाराज जी बोले कि आज हम को इन ऋषियों के दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ यही सच्चा तीर्थ और तप है ॥

वनपर्व अ० ८५ में नारद मुनि ने बहुत से तीर्थों का वर्णन करके अन्त को कहा है कि तीर्थों के जाने का प्रधान फल यही है कि वहां-पर वाल्मीकि, देवल, गोतम आदि अनेक ऋषियों मुनियों के दर्शन होते हैं। देखो श्रीरामचन्द्र महाराज ने भी वनवास के समय उन्हीं स्थानों पर निवास किया था जहां ऋषि मुनि निवास करते थे। रामायण से प्रकट होता है कि श्रीराम ने सुगन्धित धुआं को देख प्रयाग तीर्थ की परीक्षा की थी जहां भारद्वाज मुनि रहते थे वहां उन की भेंट की जिन्हों ने नाना प्रकार के उपदेश श्रीमान् को किये वहां से चलकर चित्रकूट पर जहां अनेक ऋषि रहते थे। तत्पश्चात् वाल्मीकि के आश्रम को सिधारे फिर वहां से अत्रि के आश्रम को गये जिन की

स्त्री अनुसूया जी ने महाराणी सीता को अति उत्तम पतिव्रतधर्म का उपदेश किया था तत्पश्चात् शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण अगस्त आदि महात्माओं से मिले और सत्योपदेश सुने जिस से उन को वन में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था ॥

मान्यवरो! प्राचीन पुस्तकों से जाना जाता है कि विद्वान् से विद्वान् पुरुष भी इन तीर्थों में जाने से प्रथम बहुत प्रकार के नियमों का पालन करते तत्पश्चात् बहुत थोड़े मनुष्यों के साथ जाते थे क्योंकि उत्तम से उत्तम परीक्षित औषधियां कुछ भी लाभ नहीं देतीं यदि उन के नियमों पर न चला जावे इसी भांति ऋषियों का उपदेश मोक्षसुख का देनेवाला होता था परन्तु यदि कोई मनुष्य सावधान चित्त होकर न सुने तो किस प्रकार स्मरण रह सकता है फिर उस के अनुसार कार्य करना कैसा और सुख कहां ? इसी लिये महाभारत में शौनक मुनि ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि तीर्थयात्रा का फल उन्हीं मनुष्यों को मिलता है जो अपने हाथ पांव और मन को आधीन कर लेते हैं और निरभिमानी, युक्ताहार और शीलवान् होते हैं और लोमश मुनि ने महाभारत वनपर्व अ० ६२ में युधिष्ठिर जी से कहा है तीर्थों में बड़े २ ऋषि निवास करते हैं जो सब प्रकार के आनन्द देने वाले हैं परन्तु पापी अबुद्धि इन के फलों को नहीं पाते और तीर्थयात्रा सदा थोड़े मनुष्यों के साथ जाना चाहिये । जब युधिष्ठिर महाराज तीर्थयात्रा को जाने के लिये उपस्थित हुए तब व्यास जी ने उन को शिक्षा की हे पाण्डव मन को शुद्ध शान्तिसहित तीर्थों को जाइये मन के शुद्ध होने से बुद्धि पवित्र होती है जिससे आप शारीरिक नियमों और व्रतों को अच्छे प्रकार धारण कर सकते हैं और अगस्त मुनि ने कहा है कि जिन की सब इन्द्रियां वश में होती हैं जो सब प्राणियों को समान जान् कर सत्य का आचरण करते हैं और किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते स्वल्पाहारी होते हैं उन्हीं को तीर्थों का फल मिलता है। और व्यासस्मृति अ० ८ श्लो० ८४ में लिखा है कि पराई स्त्री और पराये धन का चुराने वाला मनुष्य तीर्थों को भी जावे तो भी उस का किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता । जैसा कि–

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ।
सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न मुच्यते ॥

और शङ्खस्मृति अ० ८ श्लोक १५ में कहा है कि जिन के हाथ पैर मन विद्या तप कीर्ति अपने वश में हैं वही तीर्थ के फल को भोगते हैं। परन्तु शोक कि वर्तमान समय में हमारे अनपढ अज्ञानी भाइयों ने काशी, प्रयाग, मथुरा, बद्रीनाथ, केदारनाथ जगन्नाथ, नैमिषारण्य और अनेक गङ्गातटों को तीर्थ मान रक्खा है कि जिन के माहात्म्य भी वर्तमान समय के नाममात्र के परिडतों ने लोभवश होकर किसी न किसी पुराण के अन्तर्गत कर दिये हैं, जिन को बहुधा जन अनेक अवसरों पर सुनते रहते हैं, प्रत्येक माहात्म्य बतला रहा है कि इसी एक तीर्थ विशेष वा गङ्गा स्नान से वह फल होगा जो संसार में किसी सत्क्रिया से नहीं हो सकता देखिये पद्मपुराण में यमुना माहात्म्य है उस में लिखा है कि यमुना जी सर्वसुखों की दाता है, श्रीयमुना जी के जल विना गति नहीं हो सकती, जो श्राद्धादि उत्तम कर्मफल देने वाले हैं वह यमुना के स्नान मात्र से ही प्राप्त होते हैं सतयुग में तप त्रेता में यज्ञ द्वापर में पूजा और कलियुग में यमुना स्नान सब सुखों का दाता है व्रत दान तप से हरि प्रसन्न नहीं होते श्रीयमुना जी के स्नान से प्रसन्न होते हैं। और गङ्गा के दर्शन करने से सौ जन्म के पीने से तीन सौ जन्म के और स्नान करने से हज़ारों जन्म के पाप कलियुग में नाश होते हैं जैसा कि—

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्मशतत्रयम् ।
स्नात्वा जन्मसहस्राणि हरति गङ्गा कलौयुगे ॥

और भी लिखा है कि गङ्गा का नाम सौ योजन से भी लेले तो पाप का नाश होजाता है और विष्णुलोक को पाता है जैसा कि:—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥

गया के माहात्म्य में कहते हैं कि जो "गया न गया सो भया न भया" और बद्रीनारायण के जाने वाले कहते हैं कि "जो जावे बद्री न आवे उद्री, जो आवे उद्री कभी न होय दरिद्री" सुदामापुर में ८४

कुठरियों में फिरने से ८४ योनियों से छुटकारा होता है। इसी प्रकार अनेक श्लोक और कथायें लिखी हुई हैं जिन से प्रकट होता है महापापी मनुष्य भी एक वार गङ्गा यमुना वद्रीनारायण आदि के दर्शन करने से मुक्त हो जाते हैं॥

मान्यवरो! जहां तक मैं जानता हूं इस के दर्शन या स्नान से कदापि मोक्ष नहीं हो सकती और यदि हो सकती है तो अब तक जिन २ मनुष्यों ने स्नान दर्शनादि निरन्तर किये हैं और करते हैं उन की मुक्ति हो जानी चाहिये थी सो क्यों न हुई, यदि कहो कि शरीर त्याग के पश्चात् मुक्ति होगी तो उन में जीवन्मुक्त के लक्षण राग, द्वेष लोभ, मोह, क्रोध का त्याग; वैराग्य, ध्यान, समाधि के लक्षण होने चाहियें जिस से निश्चय होजाय कि इन की मुक्ति शरीरान्त समय हो जायगी यदि कहो कि पापों से मुक्ति होने का अभिप्राय है तो विचारना चाहिये कि पाप क्या वस्तु हैं, क्या शरीर के ऊपर मैल के समान हैं जो गङ्गा में धोये जायँगे सञ्चित पापों का अन्तःकरण स्थान है जिस में दुष्टवासना रूप से पाप रहते हैं उन का पूरा २ शोधन तप करने ही से हो सकता है जलादि से नहीं मनु० अ० ५ श्लोक १०९ में लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

जल से केवल शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है, बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है और भी लिखा है कि—

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः॥

विद्वान् लोग शान्ति से शुद्ध होते, न करने योग्य कामों के करने वाले दान अर्थात् विद्यादि के देने वा अनाथ दीन वा सुपात्र विद्वानों को अन्नादि उत्तम पदार्थ देने से शुद्ध होते हैं, जिन के पाप छिपे हुए हैं वे गायत्री आदि वेदमन्त्रों को निरन्तर विधिपूर्वक जप करने से और वेद के ज्ञाता निरन्तर विधिपूर्वक तप करने से शुद्ध होते हैं।

हे पाठकगणो! तनिक ध्यान दीजिये यदि जल में स्नान करने वा दर्शन या रेणुका के मुंह में डालने से ही मुक्ति और पापों की निवृत्ति होती तो फिर वेदों के वह उपदेश कि वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करो, धर्मानुसार धन को उपार्जन करो, सत्पुरुषों का सङ्ग करो, सत्पुरुषों को दान दो, यम नियम का पालन करो, योग में चित्त लगाओ इत्यादि सब मिथ्या ही हो जायंगे॥

इस के उपरान्त जब स्नान करने ही से मोक्ष मिलती है तो फिर यह कहना भी मिथ्या हुआ जाता है कि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" यदि स्नान ही मुक्ति का कारण है तो प्रयाग में भारद्वाज, हरिद्वार में मैत्रेय जी आदि ऋषि मुनि हवनादि, यम नियम, योगाभ्यास में नाना प्रकार के कष्ट निष्फल ही किया करते थे? । वर्तमान समय में भी देखा जाता है कि जब दर्शन से ही मुक्ति होती है फिर स्नान करने की क्या आवश्यकता, यदि स्नान भी किये फिर नाना प्रकार दान करने की क्या आवश्यकता। इस से भी विदित हुआ कि स्नान होने के पीछे भी दानादि उत्तम कर्म करने की आवश्यकता है। हम देखते भी हैं कि कोई २ गङ्गा पर बैठ कर जपादि भी करते हैं यदि यही मुक्ति का कारण होता तो जपादि की क्या आवश्यकता है॥

इस के उपरान्त श्रीरामचन्द्र महाराज ने रामायण में निज मुख से वर्णन किया है कि वेदोक्त कर्मों के करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होती है इस की क्या आवश्यकता थी। राजा दशरथ जी महाराज ने राजसूय यज्ञ किये थे, श्रीकृष्ण महाराज ने भी अर्जुन को गीता में वेदोक्त कर्मों के करने का माहात्म्य वर्णन किया है॥

श्रीकृष्ण महाराज ने कुरुक्षेत्र में महर्षियों के बीच वर्णन किया है कि महात्माओं के दर्शन करने से मनुष्यों को नाना प्रकार के लाभ होते हैं। इस के उपरान्त जब गङ्गा स्नान ही से मुक्ति होती है तो फिर श्रीमद्भागवत में नाना कर्मों की व्याख्या व्यास जी महाराज ने संसार को भ्रम में डालने के लिये क्यों की। इन के अतिरिक्त देखिये पुराण भी पुकार २ कर कह रहे हैं कि चाहे पर्वत के बराबर मिट्टी मले और गङ्गा के सारे जल से मृत्युपर्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता जैसा कि—

गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृद्गारैश्च नगोपमैः ।
आमृत्योः स्नातकश्चैव भावदुष्टो न शुद्ध्यति ॥

और भागवतस्कन्ध १० अ० ५४ श्लो० ७ में लिखा है कि जलमय स्थान को तीर्थ नहीं कहते और न मृत्पाषाणमयी मूर्त्ति को देवता कहते हैं जैसा कि—

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः ॥

और लिङ्गपुराण अध्याय २५ में लिखा है कि जिस का अन्तःकरण शुद्ध न हो वह चाहे जितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता अर्थात् दुष्टभाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवर में स्नान करने से शुद्ध होना कठिन है। मनुष्यों का चित्त कमल अज्ञानरूपी रात्रि से सङ्कुचित हो रहा है इस को ज्ञानरूपी सूर्य के किरणों से विकसित करना उचित है जैसा—

भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुद्ध्यति ।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥ १० ॥
सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलयं नरः ।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति न संशयः ॥ ११ ॥
नृणां हि चित्तकमलम्प्रबुद्धमभवद्यदा ।
प्रसुप्तं तमसाज्ञानं भानोर्भासा तदा शुचिः ॥ १२ ॥

यथार्थ वार्त्ता यह है जल के स्नान करने से मुक्ति नहीं होती वरन आत्मिकज्ञान ही मुक्ति का कारण है जैसा य० अ० ३१ मं० १८ में लिखा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

उसी एक सर्वसाक्षी परमात्मा को जान कर जन्म मरण से छूट सकता है अन्य कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है। और मनु० अ० १२ श्लो० ८३ में लिखा है कि वेद का पढ़ना और उस के लेखानुसार तप करना, आत्मज्ञान, इन्द्रियों को वश करना, किसी को दुःख न देना और गुरु की सेवा करना इन छः कर्मों से मोक्ष होती है—

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥

परन्तु इन में भी आत्मज्ञान को ही मुख्य माना है जैसा कि इसी अ० के ८५ श्लोक में लिखा है-

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यतेह्यमृतं ततः ॥

और वशिष्ठस्मृति अ० ३० श्लो० ८ में लिखा है कि मानस यज्ञ करने से मोक्ष होती है जिस में ध्यान को यज्ञ का अग्नि और सत्य को यज्ञ का इन्धन, धैर्य्य को यज्ञ, अभिमान के त्याग को यज्ञ का स्रुव, अहिंसा को यज्ञ की सामग्री, सन्तोष को यज्ञस्थान और सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को जो बहुत कठिन है यज्ञ कराने वाले की दक्षिणा समझना माना है जैसा कि-

मानसिकयज्ञकरणान्मोक्षो भवति ।
मानसिकयज्ञे ध्यानं यज्ञोऽग्निः सत्यमिन्धनम् ॥
धैर्य्यं यज्ञः । अभिमानत्यागो यज्ञस्रुवः ॥
अहिंसायज्ञसामग्री । सन्तोषोयज्ञस्थानम् ।
सम्पूर्णजीवरक्षाकारकप्रतिज्ञादक्षिणा च उच्यते ॥

और ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र श्लोक ४८ और ४९में भगवान् शङ्कर ने कहा है-

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसाजनाः ।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथंमोक्षो वरानने ॥

हे पार्वति ! तमोगुण युक्त लोग मनको कहीं शिव को कहीं अन्य स्थान और शक्ति को कहीं अन्यत्र जानकर "यही तीर्थ है, यही तीर्थ है" ऐसे भ्रम में पड़कर सर्वत्र घूम रहे हैं । हे वरानने ! आत्मतीर्थ के ज्ञान विना जीव को किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं होसकती ॥

प्रियवर्गो ! हां यह संभव होसकता कि जिन तीर्थस्थानों को आप नाना प्रकार के कष्ट और धन व्यय करके जाते हैं वही स्थान हों जहां

पर आप के ऋषि मुनि पूर्व समय में रहते हों और जहांपर हमारे आपके पुरुषाओं ने जाकर सत्य उपदेश सुनके आनन्द उठाये हों परन्तु अब आप उन स्थानों को बुद्धि की दृष्टि से देखिये कि वहां की क्या अवस्थायें हैं, क्या प्रयागराज में कोई ऋषि इस समय भरद्वाजके समान उपस्थित है कि जिन के आश्रम को श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने वेदोक्त चिह्न पाकर दूर से जान लिया था और जिन्हों ने उक्त महाराज को नाना प्रकार की शिक्षायें कीं। क्या हरिद्वार पर मैत्रेय के सम तुल्य ऋषि है जिन से हमारे परम नीतिज्ञ विदुर जी ने अपनी शङ्काओंका निवारण किया था, क्या सोमतीर्थ पर कोई ऋषि उपस्थित है जहां पर हमारे ज्ञानपरिपूर्ण कण्व जी महाराज आनन्द उठाने के लिये गये थे, क्या अनुसूया के समान कहीं स्त्रियां हैं जिन्होंने सीताजी को पतिव्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ शिक्षा दी, क्या हमको उन स्थानों में अत्रि, वशिष्ठ, वाल्मीकि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त, के समान ऋषि मिल सकते हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। सच तो यह है कि इस समय ही ने हम को बडा धक्का दिया इसने हमारे बनाये कार्य्य को बिगाड़ दिया उन ऋषि मुनियों को कि जिन्हों ने सारे संसार को अपने ज्ञान से प्रकाश कर रक्खा था ऐसा खा गया कि कहीं पता नहीं चला, इस भारत को जो कि एक समय में उन्नति की ऊंची सीढ़ी पर चढ़ा हुआ था ऐसा गिराया कि कुछ भी ठीक न रहा हमारे पवित्र नियमों को ऐसा बिगाड़ा कि हमपर अन्य देशी जन हंसते हैं, तीर्थों की वह दुर्दशा की है कि जहां ऋषिगण यज्ञ करते थे वहां भङ्ग, चरस उड़ता है। उनके वेदोक्त सत्योपदेश से आत्मिक उन्नति होती थी वहां सण्ड मुसण्डे नाना रूप धारण कर अनेक प्रकार से ठगते हैं लड़कों के नाच देखलाये जाते हैं पण्डों की स्त्रियां भी यात्रियों की ख़बर लेती रहती हैं रण्डियों के समूह के समूह वहां जाते हैं और तबला खड़कता है अर्थात् इसी प्रकार के अनेक उपाय दर्शाये जाते हैं जिनका विस्तार भय से वर्णन नहीं करता आप प्रत्यक्ष विलोकन कर रहे हैं॥

मान्यवरो! संस्कृत विद्या के न जानने से या यों कहिये कि निज प्रयोजन के साधन के लिये लोभी गुरुओं ने वेदादि सत्शास्त्रोंके शब्दों

के मुख्य अर्थ को छोड़ उन शब्दों से मनगणित अर्थ निकालकर संसार को भ्रमजाल में डाल दिया जो अब तक भेड़ियाधसान की भांति एक दूसरे के पीछे विना देख भाल किये चलेजाते हैं । जैसा कि वेदों में तीर्थ, व्रत, श्राद्ध, तर्पण इत्यादि शब्दोंके मुख्य अभिप्रायको हमने वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध कियाहै, उड़ाकर निज प्रयोजन निकाला इसके अतिरिक्त और भी देखिये– "शन्नो देवी०, गणानां त्वा०" इत्यादि में देवी शब्द से कालिका की मृत्तिका की पूजा करवाते हैं द्वितीय में गण शब्द से मिट्टी के गणेश जी बनाकर पुजवाते हैं ऐसाही वृहत्सामब्राह्मण के गङ्गा और यमुनादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को न समझ कर पृथ्वी पर की बहती हुई गङ्गा और यमुनादि नदियों में नहाने से मुक्ति मानने लगे देखिये वृहत्सामब्राह्मण में लिखा है–

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित् ॥

इडा नाड़ी गङ्गा के नाम से और पिङ्गला नाड़ी यमुना के नाम से प्रसिद्ध है इन दोनों के बीच में जो हृदय आकाश है उस को प्रयाग कहते हैं जो मनुष्य इन को जानता है वह वेद का जानने वाला है और 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' में लिखा है:—

कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती ।
क्रमेण कीर्त्तिता गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा ॥

अर्थात् कालिन्दी वेदसंहिता का नाम है और यदि वेदमन्त्रों के पदों को पृथक् २ पढ़ा जावे उस का नाम सरस्वती है और जो वेद मन्त्रों को क्रम से पढ़ा जाय उस को विद्वान् गङ्गा के नाम से निरूपण करते हैं, और यही शंभु अर्थात् महादेव जी की वाणी है और महाभारत में लिखा है–

आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा सिध्यति आत्मशुद्धिः ॥

यह रूपकालङ्कार है जो परमेश्वर सर्वव्यापक है वही एक नदी है उस नदी में अपने मन इन्द्रियों का लगाना वही पुण्य तीर्थ है अर्थात्

तरना है उस नदी में जो सत्य है वही जल है उस नदी का किनारा शील और दया उस की लहरें हैं सो हे युधिष्ठिर ! तुम "आत्मरूप" ऐसी नदी में स्नान करो क्योंकि वारि अर्थात् धरती पर की नदियों के पानी में स्नान करने से आत्मा शुद्ध नहीं होता। इस लिये आओ सज्जन पुरुषो ! इन उपरोक्त प्रकार गङ्गा, यमुना, सरस्वती में योगाभ्यास द्वारा स्नान करने का उद्योग करें कि जिस के प्रताप से मोक्षरूपी अमृतफल मिलता है क्योंकि बाईं ओर पिङ्गला और दाहिनी ओर इड़ा और बीच में प्रयाग है और प्रयाग के अर्थ योग के हैं अर्थात् जिस स्थान पर जीव को सर्वव्यापक परमेश्वर के दर्शन होते हैं उसी को प्रयाग कहते हैं ॥

योग का वर्णन ॥

प्यारे सुजनो ! चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है जिस के विना जीवात्मा नाना क्लेशों को भोगता है और धर्म अर्थ मोक्ष पदार्थों को खोता है इसलिये श्रेष्ठ पुरुषों को चित्त के निरोध करने के निमित्त योगरूपी मार्ग में पूर्ण सामर्थ्य से पग रखना योग्य है परन्तु वर्त्तमान समय में योग शब्द के अर्थ ऐसे समझ रक्खे हैं कि जो भिक्षुक गेरुये कपड़े पहन कर किसी विद्या के न जानने के कारण विना परिश्रम किये आलस्य में चूर होकर उदर पोषण के अर्थ घर २ भीख मांगते हैं उन को ही योगी जी कहते हैं कोई २ ऐसा भी सुनाते हैं कि जो परिवार छोड़ जङ्गल में चला जाय वही योगी है । हे भाइयो ! यह सब मिथ्या बातें हैं योग के अर्थ जङ्गल जाना, कपड़े रंगना, कनफटे बनना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि योग का सम्बन्ध चित्त से है न कि जङ्गल वा कपड़ों से । हे बान्धवो ! यदि कोई जङ्गल में जावे और उस की इन्द्रियां उस के आधीन न हों तो वह वन में जाकर क्या ख़ाक न छानेगा ? इस लिये यह सब मिथ्या बातें हैं क्योंकि चित्त की स्थिर वृत्तियों का नाम योग है इस कारण योगसाधन के अर्थ जङ्गल ही में रहना वा कपड़े रंगना आदि की कुछ आवश्यकता नहीं सच तो यह है कि यह एक प्रकार की दिखावट और दूकानदारी है इस के उपरान्त

जब हम प्रतिदिन देखते हैं कि बहुधा औरतें शिर पर घड़े पर घड़ा लेजाती हैं, नट रस्से पर डोल आता है, निशानची निशान मार देता है तो फिर संसार में योग न होने का क्या कारण है, प्यारे बन्धुवर्गों ! यह भी तो योग ही के लक्षण हैं अर्थात् विना चित्त को स्थिर किये कभी ऐसा नहीं कर सकते तो फिर योग से डरने और जंगल ही में जाने की कौन आवश्यकता है ? ।

प्यारे सुजनो ! प्राचीन काल में इसी भारतवर्ष में अनेक जन इस विद्या में पूरी योग्यता रखते थे, क्या राजा जनक का नाम जो मिथिलापुरी में राज्य करते थे नहीं जानते जिन्हों ने योगविद्या में ऐसी योग्यता प्राप्त की थी कि उस समय के ऋषि लोग उन की प्रतिष्ठा करते थे । और श्रीकृष्ण महाराज योगविद्या में पूर्ण निपुणता रखते थे इन के उपरान्त अनेक सुजनों ने इस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी और उन्हों ने उसी योग बल से नाना भांति की युक्तें और गुण निकाले थे जिन को इस समय में नाम मात्र भी नहीं जानते, प्यारे सुजन पुरुषो इस समय में रेल तारादि को देख कर आश्चर्य करते हैं परन्तु प्राचीन समय में योगविद्या के जानने वाले ज्ञाताजन हज़ारों कोस बैठ कर आपस में बातें करते थे, इस की आठ सीढ़ी हैं जिन का वर्णन पतञ्जलि महर्षि ने अपने बनाये हुए योगशास्त्र में अच्छे प्रकार किया है ।

यथार्थ में प्राणायाम करने से प्रतिदिन अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है इसलिये जब तक मुक्ति न हो तब तक इस क्रिया को सदा करता रहे जैसा कि योगशास्त्र में लिखा है-

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

इस विषय में मनु जी ने भी लिखा है-

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्यनिग्रहात् ॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसा ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियोंके दोष क्षीण

होकर निर्मल होजाते हैं अर्थात् मन एकाग्र होजाता है जो उपासना के समय किसी सांसारिक कार्य में नहीं जाता जो उपासना का मुख्य काम है, इस लिये प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिये, ऐसा ही गीता में भी लिखा है-

अपानेजुह्वतिप्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगतीरुध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

अर्थात् अपान में प्राण को और प्राण में अपान को हवन करते वा लय करते वा मिलाते हैं, उन के प्राण की गति रुकने से मन उस के साथ रुक जाता है इसलिये प्राणायाम करना उचित है ।

मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि जब प्राणायाम के करने से प्राण अपने वश में हो जाता है, तो मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन हो जाती हैं, तब पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र हो जाती है जो कठिन से कठिन और सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करलेती है, इसी से वीर्य-वृद्धि होकर शरीर बलपराक्रमयुक्त हो जाता है और भय का उस के चित्त में अंश भी नहीं रहता वही निर्भय होकर संसार का सर्व प्रकार उपकार करता है, और उपासना के समय उस का मन इधर उधर को नहीं जाता, वरन परमेश्वर के ध्यान में मग्न होकर आनन्द को प्राप्त हो मोक्ष सुख को पाता है इसलिये अवश्यमेव थोड़ा २ अभ्यास करना परम आवश्यक है । परन्तु योग उन्हीं सज्जनों को सिद्ध होता है जो संयम नियम को यथावत् सेवन करते हैं । इस के उपरान्त इस वृत्त में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं और प्रथम इस में कठिनता भी जान पड़ती है परन्तु जब अन्तःकरण की रजोगुणी और तमोगुणी वृत्ति कम होजाती है और मुक्ति की इच्छा विवेकवैराग्यादि वृत्ति जब प्रधान होती है तब यह सुगम जान पड़ती है और यथार्थ अन्तःकरण का रज तम दूर होजाता है तब वह सुख प्रकट होता है कि जिस सुख का पारावार नहीं और उस का कोई वर्णन नहीं कर सकता ॥

यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ६७ में लिखा है-

सीरायुञ्जन्ति कवयोयुगावितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥

अर्थात् योगी पुरुष अपने ज्ञान के बढ़ाने में तन मन लगा कर लगातार पुरुषार्थ से ऐसे ज्ञान को प्राप्त होते हैं जहां किसी प्रकार का संशय और भ्रम नहीं रहता, उन के लिये सीधा और स्वच्छ मार्ग है, ऐसी दशा में पहुंचे हुए महात्माओं की वे ही मनुष्य प्रतिष्ठा करते हैं जो विद्वान् होते हैं, और अविद्वान् मनुष्य योगियों की बात और उन के मर्म समझ ही नहीं सकते उन के विचार ही में नहीं आते, क्योंकि उन के धर्मचक्षु नहीं, इसलिये वह योगियों के गुणों को देख नहीं सकते, हां विद्वान् मनुष्य जानते हैं कि योगी ने जिस ज्ञान की प्राप्ति की है वह अति कठिन है, संसार भर की विद्या उस की समानता नहीं कर सकती, जो जड़ पदार्थों से सम्बन्ध नहीं रखती वरन उस का सम्बन्ध सूक्ष्म पदार्थ से है इसलिये विद्वान् मनुष्य योगियों का आदर सत्कार करते हैं और उन के चरणों के सेवक होते हैं ॥

धन्य हैं वह सुजन जिन का विद्वान् आदर सत्कार करते हैं, परन्तु यह ब्रह्मज्ञान योगियों को सहज ही में नहीं मिलता वरन विद्वान् योगी महात्मा और धीर पुरुष योग विभाग से नाड़ियों द्वारा अपने आत्मा में धारण करते हैं अर्थात् बड़े २ साधनों से यह अमूल्य रत्न मिलता है, जिन की व्याख्या पतञ्जलि महर्षि ने की है जिस का हम आगे संक्षेप से वर्णन करेंगे।

इसलिये सज्जन पुरुषों को आलस्य त्याग प्रतिदिन आठों अङ्गों का सेवन युक्तिपूर्वक करना चाहिये, क्योंकि यह यज्ञ सब यज्ञों से श्रेष्ठ है, इस बात को श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने गीता में बारह प्रकार के यज्ञों में प्राणायाम अर्थात् प्राणनिरोध करना सब से श्रेष्ठ कहा है ॥

[अष्टाङ्ग योग के आठों अङ्गों का वर्णन]

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-
ध्यानधारणासमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं।

[यम का वर्णन]

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः । योगसूत्र ॥

अर्थात् (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह १–अहिंसा=किसी से वैरभाव मन से न करना, अर्थात् सुख सम्भोगयुक्त प्राणियों में मैत्री और दुःखियों पर दया पुण्यात्माओं में मुदितता और पापियों में उपेक्षा करना चाहिये।

२–सत्य=जैसा अपनी आत्मा में हो वैसा कहे और माने, जो मनुष्य ऐसा करते हैं उन की वाणी से जो निकलता है वैसा ही होता है।

३ अस्तेय=किसी प्रकार की चोरी न करना, जो इस को यथावत् सेवन करता है उस को सब पदार्थ मिल जाते हैं।

४–ब्रह्मचर्य=२४,३०,४०,४८ वर्ष वा इस से आगे वीर्य को स्खलित न होने देना, अर्थात् जो वीर्य की पूर्ण रक्षा करता है वह पूर्णज्ञानी और महात्मा होने के योग्य होता है।

५–अपरिग्रह=जब मनुष्य यथावत् इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है तब उसके मन में यह विचार आता है कि मैं कौन हूं और कहां से आया हूं और क्या करता हूं, मुझको क्या करना चाहिये और मेरी किस बात में भलाई है इत्यादि ऐसी बातों के विचार का नाम अपरिग्रह है।

[नियम]

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

(१) शौच, (२) संतोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर-प्रणिधान–यह पांच प्रकार के नियम हैं।

१–शौच=यह दो प्रकार का है, एक शारीरिक दूसरा आत्मिक। शारीरिकशुद्धि जल और खान पान आदि से होतीहै, और आत्मिक–वेदादि विद्या पढ़ने और धर्म पर चलने और सत्संग से होती है।

२–सन्तोष=उस को कहते हैं जो सदा धर्मानुकूल कार्यों को करता हुआ नाना प्रकार के क्लेश होने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ना, आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है।

३–तप=जैसे सोना चांदी आदि को अग्नि में तपाने से स्वच्छ हो जाते हैं वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरणरूपी शुभगुणों में तपाकर निर्मल करने का नाम तप है। मुख्य तीन भेद हैं–मनसा, वाचा, कर्मणा, इन तीनों को धर्माचरण में लगाना ही तप कहाता है, अग्नि जलाकर बीच में बैठने का नाम तप नहीं है।

५-ईश्वरप्रणिधान=सब सामर्थ्य, सर्व गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेमभाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिये समर्पण करनेको कहते हैं ॥

[आसन]

आसन उसको कहते हैं कि जिसमें शरीर और आत्मा सुखपूर्वक स्थिर हों इसलिये जैसी रुचि हो वैसा आसन करे, जब आसन दृढ़ होजाता है तब उपासना करने में परिश्रम जान नहीं पड़ता और सरदी गरमी आदि नहीं व्यापती, यह उपासना का तीसरा अङ्ग अर्थात् सीढी है ॥

प्रकट हो कि आसनों के भेद अनन्त हैं और वे आसन सम्पूर्ण योग विषय मनुष्यको उपकारी होते हैं इसलिये कुछ आसनोंका संक्षेप से वर्णन करते—

योगशास्त्र में ८४ आसन लिखे हैं उनमें से स्वस्तिक, गोमुख वीर, पद्म, कुक्कुट, उत्तान, कूर्मक, धनुष, मत्स्य, मयूर, सर्प, सिंह, भद्र, सिद्ध दण्डासन—पन्द्रह के नाम यह हैं, इन में से बहुधा आसनों से शरीर का रोग निवृत्त होता है और कई एक ब्रह्मानन्द समाधि में उपयोगी हैं, इन उपरोक्त लिखे आसनों में सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध यह चार ही मुख्य ठहराये गये हैं और इन में से भी पद्म और सिद्ध विशेष हैं और सिद्ध आसने को वृत्तासन, मुक्तासन, और गुप्त आसन भी कहते हैं। इस विषय में गीता में भी लिखा है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितंनातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

अर्थात् आसन पवित्र भूमि में अचल लगाकर अभ्यास करे, आसन न बहुत ऊंचा हो न बहुत नीचा, छत और मुंडेरी पर आसन न लगाना चाहिये जो मनुष्य आसन सिद्ध नहीं करता उसको द्वन्द्व दुःख देते हैं, और आसन सिद्ध होने से यह उसको दुःख नहीं देते, इसलिये आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिये ॥

[पद्मासन]

चौपाई ।

पहिले बामा पैर उठावे * दहिनी जङ्घा ऊपर लावे ॥
विधिइमि दक्षिणपैरउठाना * बानी जङ्घा परिधरि आना ॥
बामा कर पीछे पुनि लावे * बाम अंगूठा गहि तनुतावे ॥
यों ही दक्षिण करको लावे * दहना दृढ अङ्गुष्ठ करावे ॥
ग्रीवालटकिचिबुकहियकरिये * नासा आगे दृष्टि सुधरिये ॥

[सिंहासन]

दोहा ।

गुदामध्य धरि बामपद, दक्षिण लिंग दबाय ।
दृष्टि धर भृकुटी विषे, चिदानन्द चितलाय ॥

इन आसनों के अभ्यास से सम्पूर्ण नाड़ियों के मल नष्ट हो जाते हैं, यह चौरासी आसनों में श्रेष्ठ हैं ।

[प्राणायाम]

स्थिर होने से जो प्राण की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं, यही चौथा अङ्ग अर्थात् सीढी है ।

आसन सिद्ध होने पर जो बाहर से वायु भीतर को जाता है उस को श्वास कहते हैं, और जो भीतर से बाहर जाता उसे प्रश्वास कहते हैं, और इन दोनों की गति के अवरोध को प्राणायाम कहते हैं, वह चार प्रकार का है–

(१) बाह्य, (२) आभ्यन्तर, (३) स्तम्भवृत्ति, (४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी ।

(१) बाह्य वह है कि जब भीतर से वायु बाहर को निकले उस को बाहर ही रोक दे ।

(२) आभ्यान्तर उसे कहते हैं कि जब बाहर का वायु भीतर जावे तब जितना हो सके भीतर ही रोके ।

(३) स्तम्भवृत्ति उस को कहते हैं न प्राण को बाहर निकाले न बाहर से भीतर ले, वरन जितनी देर हो सके सुखपूर्वक जहां का तहां ज्यों का त्यों रोक दे ॥

(४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी—जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही थोड़ा २ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर को जावे तब उस को भीतर ही थोड़ा २ रोके।

[प्राणायाम करने की विधि]

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

जिस प्रकार क़ै होती है जिस को लौटा वा वमन कहते हैं जिस के होने से भीतर पेट के अन्न और जल बाहर निकल आते हैं। उसी प्रकार प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे, और जब बाहर निकालना चाहे तो मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे जब तक प्राण बाहर निकले, और जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर लेजाय और जितना होसके रोके, इसी प्रकार जितनी सामर्थ्य हो धीरे २ बढ़ावे॥

प्रकट हो कि उदरस्थ प्राण वायु को नासिका के नथुनों से प्रयत्न-पूर्वक निकालने को 'प्रच्छर्दन' और खींचने को 'विधारण' कहते हैं।

[प्रत्याहार]

'प्रत्याहार' उस को कहते हैं जब मनुष्य अपने मन को जीत लेता है तब सब इन्द्रियां अपने आधीन कर लेता है क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है जैसा कि य० अ० ३४ मन्त्र १ में लिखा है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमंज्योतिषांज्योतिरेकं तन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात् जो जागता हुवा दूर २ जाता है और सुषुप्ति में भी उस के दूर जाने का स्वभाव है जो प्रकाशित पदार्थों का भी प्रकाश करने वाला है वह मेरा मन, हे परमात्मन्! बड़ा शीघ्रगामी है आप की कृपा से मुझे कल्याणकारी हो।

सचमुच मन ही इन्द्रियों का चलानेवाला है, इन्द्रियां कभी काम नहीं करतीं जब तक कि मन इन्हें प्रेरणा नहीं करता, निश्चय जानो कि जितने विकार और दुष्टभाव इन्द्रियों के द्वारा प्रकट होते हैं सब मन के ही उत्पन्न किये हुवे होते हैं, महात्माओं ने मनुष्य के शरीर

की बनावट को एक रथ के समान माना है, बुद्धिरूपी रथवान् मन की राशियों से इन्द्रियों के घोड़ों को अपने आधीन रख सकता है पस जिस प्रकार रासों के घुमाने से जिधर को चाहो घोड़ों को फेर सकते हो उसी प्रकार मन जिधर चाहता है उधर इन्द्रियों को घुमाता है इस कारण कर्म ठीक करने के अर्थ मन को निर्दोष किया जावे, यह मन बड़ी २ दूर जाता है, जो देश और काल की रुकावट में भी नहीं आता, इस से अधिक प्रबल चाल वाला कोई नहीं, सो यह मन जीवात्मा के आधीन है परन्तु जीवात्मा उस को अपने आधीन न रख कर किन्तु उस के आधीन होकर नाना प्रकार के दुःखों को झेलता है, इसलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इस मन को हमारे आधीन सदा बनाये रहें न कि हम को उस के, सो मन की चञ्चलता प्राणायाम साधन से जाती रहती है, इसलिये शांति ढूंढने वालो! इस क्रिया को कर मन को आधीन कर आनन्द को भोगो।

[धारणा]

धारणा उस को कहते हैं कि मन को चञ्चलता से छुड़ा कर जिस स्थान पर जिस विषय में चित्त को लगावें वहीं चित्त ठहर जावे अर्थात् जिस विषय में चित्त लगाना हो उस को छोड़ कर कहीं न जावे।

प्रकट हो कि इस समय मन में 'ओं' का जप करता जाय क्योंकि 'ओं' परमेश्वर के सब नामों में उत्तम है कि जिस में परमेश्वर के सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा हमने गायत्री के अर्थों में लिखा है, और ऐसा ही गीता के अ० ८ श्लोक १३ में लिखा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमां गतिम् ॥

अर्थात् ध्यान समय ओं के अर्थों को विचार कर उस के अनुकूल आचरण होने से परमगति मिलती है, क्योंकि—

ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्वप्रकाशकः ।
तेन चित्तसमाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥

[ध्यान]

ध्यान—धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करे, आश्रय देने के योग्य जो अंतर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसी के प्रकाश आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है, उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना उसी परमेश्वर के ज्ञान में मग्न होने को 'ध्यान' कहते हैं।

[समाधि]

समाधि—जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि होजाता है उसी प्रकार परमेश्वर के साथ में प्रकाशमय हो के अपने शरीर को भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं।

ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला और मन और जिस का ध्यान करता है ये तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्दस्वरूप ज्ञान में मग्न हो जाता है वहां तीनों का भेद भाव नहीं रहता, जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होकर फिर बाहर को आजाता है और जिस देश में धारणा की जाय उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को 'संयम' कहते हैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होता है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, उन में बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है परन्तु जब समाधि होती है तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है, उस काल के आनन्द की महिमा अकथनीय है। ऐसा ही अन्य शास्त्रकारों ने भी लिखा है—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा, स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते ॥

अर्थात् समाधि रूप नदी में गोता लगाने से जिस का मैल धोया गया ऐसा चित्त जब आत्मा में लगाया जाता है तब जो सुख होता

है उस का वर्णन वाणी से नहीं हो सकता किन्तु उस का स्वयमेव अन्तःकरण से ग्रहण होता है और भगवत् गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी ने भी कहा है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

अर्थात् समाधि अवस्था का जो अनन्त सुख है उस का इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता किन्तु उसी उपासक को इन्द्रिय द्वारा पहुंच ने वाले विषयों की चञ्चलता से रहित अर्थात् वायु विषयों से उठने वाली वृत्ति रूपी जलतरङ्गों से रहित अविकारिणी सूक्ष्म बुद्धि से ही ग्राह्य है उस समाधिअवस्था में न कुछ बाह्य विषय जानता और न विषयादि के साथ अपने स्वरूप को डिगाता है, जितने देखे हुए और सुने हुए विषयों में से जो आनन्द के देने वाले हैं किसी की चाहना न करना वैराग्य कहाता है ॥

प्यारे सुजनो! जो मनुष्य धर्माचरण परमेश्वर और उस की आज्ञा में अत्यन्त प्रेम कर के आचरण अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं जो भिक्षाचर्य आदि कर्म करके संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य प्राण द्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश कर के सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जहां कि पूर्ण पुरुष सब में भरपूर सब से सूक्ष्म अविनाशी जिस में हानि लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमेश्वर को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहता है, जिस समय इन उपरोक्त साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उस में प्रवेश किया चाहे उस समय इस रीति से करे—

कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और हृदय के ऊपर जो हृदय देश है कि जिस को ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं उस के बीच में जो गर्त्त है उस में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर

भीतर एकरस होकर भर रहा है वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिलजाता है, दूसरा उस के मिलने का और कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं, क्योंकि इस हृदय आकाश में सूर्य आदि प्रकाशक तथा पृथ्वीलोक अग्नि वायु सूर्य चन्द्र बिजुली और सब नक्षत्र लोक भी ठहरे हैं, जितने देखने वाले और न देखने वाले पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं और इस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है उस को न तो कभी वृद्धावस्था होती है और न कभी नाश होता है। उसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिस में सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं, वह सब पापों से रहित शुद्धस्वभाव जराअवस्थारहित शोकरहित जो खाने पीने की कभी इच्छा नहीं करता जिस के सब काम सत्य हैं जिस के सब सङ्कल्प भी सत्य हैं उसी प्रकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा समा जाती है और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाश होती है।

इस उपरोक्त उपासना से उपासक लोग जिस २ काम जिस २ देश जिस २ क्षेत्र भाग अर्थात् सावकाश की इच्छा करते हैं उन सब को वे सब यथार्थ प्राप्त होते हैं॥

इसलिये उपासको! मोक्ष की इच्छा रखने वालो! शुद्धाचरण से योग द्वारा परमात्मा के जानने की इच्छा करो तब ही मुक्ति मिल सकती है अन्यथा कदापि नहीं—हे परमात्मन्! आप त्रिकालदर्शी, सब सामर्थ्यवान् हैं आप से हमारी दुर्दशा छिपी नहीं है। अपने सामर्थ्य के कोष से कुछ हम भारतवासियों को प्रदान कीजिये, हम को आप उद्योगी बनायें, अब हम सब आप की शरण हैं इस विपदा के समय में शुद्ध बुद्धि का हम को दान कीजिये इस अपार दुःख के बीच साहस प्रदान कर हमारी रक्षा कीजिये। हे तेजःस्वरूप परमात्मन्! हम को शान्ति अर्पण कीजिये आप हमारे पिता बन्धु सहोदर स्वामी आप ही हैं, बल वीर्य तेज का प्रसाद देकर हमारे सब सङ्कट निवारण कर दीजिये।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

——○:※:○——

नामावली उन साहिबान की जिन्हों ने प्रशंसापत्र दिये—

14598

(१) श्रीमान् बाबू शिवलाल साहिब उपदेशक वैश्य कान्फ्रेंस।
(२) श्रीमान् बाबू बलदेवप्रसाद साहिब वकील प्रधान बरेली।
(३) श्रीमान् डाक्टर भैरवप्रसाद साहिब शर्म्मा कैम्प इन्दोर।
(४) राजा फतहसिंह साहिब बहादुर रियासत पुवायां-शाहजहांपुर।
(५) सर्दार अतरोरसिंह साहिब रईस आतमनाहन राज्यसमीर मुल्कपञ्जाब
(६) श्रीमान् पण्डित शीतलप्रसाद साहिब डिपटी कलेक्टर।
(७) बाबू रामचरण साहिब डाक्टर ग़ाज़ियाबाद।
(८) बाबू मथुराप्रसाद साहिब सबइञ्जिनियर।
(९) श्रीमान् पण्डित बालमुकुन्द शर्म्मा उमरावती बरार।
(१०) श्रीमान् मुन्शी बख़्तावरसिंह साहिब एडीटर आर्य्यदर्पण।
(११) श्रीमान् एडीटर आर्य्यावर्त्त।
(१२) श्रीमान् एडीटर सरस्वतीविलास नरसिंहपुर।
(१३) श्रीमान् एडीटर आर्य्यसमाचार मेरठ।
(१४) एडीटर भारतसुदशाप्रवर्तक फर्रुखाबाद।
(१५) श्रीमान् बाबू लक्ष्मणप्रसाद तेंदूखेड़ा नरसिंहपुर।
(१६) श्रीमान् यशवन्तराव मुगटराव जी चौधरी गवालियर।
(१७) श्रीमान् पण्डित किशनसिंह साहिब ज़िला बिजनौर।
(१८) श्रीमान् बाबू जङ्गबहादुरसिंह पोस्ट नोखा ज़िला शाहाबाद।
(१९) श्रीमान् बाबू हिम्मत बहादुर बेगमगञ्ज।
(२०) श्रीमान् रामकुमार गोन्द कासुना पट्टी कलकत्ता।
(२१) श्रीमान् लाला गणेशीलाल प्रधान आर्य्यसमाज चन्दोसी।
(२२) श्रीमान् डाक्टर विश्वेश्वरदयालु कायमगञ्ज ज़िला फर्रुखाबाद।

सन्ध्या से शारीरिक लाभ।

इस किताब को श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंह साहिब मेम्बर आर्य्य समाज शाहजहांपुर ने उर्दू में लिखा है इस में सन्ध्या के प्रत्येक विषय उत्तमता से लाभ वर्णन किये हैं मूल्य ⌐)॥

२५ सितम्बर सन् १९०२ ई०

आपका—चिम्मनलाल वैश्य
तिलहर ज़िला शाहजहांपुर

(१०) पूर्ण भक्त की मनोहर कथा–मूल्य –)॥
(११) सन्ध्यादर्पण–मूल्य –)॥
(१२) मौत का डर मूल्य –)॥
(१३) सत्यविवेक–मूल्य –)
(१४) ऋषिप्रसाद–मूल्य –)
(१५) रत्नजोड़ी–मूल्य)॥
(१६) रत्नप्रकाश)॥
(१७) भरतोपदेश मूल्य)॥
(१८) शिष्टाचार–मूल्य)॥
(१९) ईश्वरसिद्धि–मूल्य)॥
(२०) संसारफल–मूल्य)॥।
(२१) पण्डित गुरुदत्त का सङ्क्षेप जीवन–मूल्य)॥
(२२) मूर्त्तिपूजाविचार–मूल्य)।
(२३) नीति से स्त्री धर्म–मूल्य ≡)
(२४) स्मृति स्त्री धर्म–मूल्य =)
(२५) भारत स्त्री दशाप्रव–मूल्य)॥
(२६) प्रेमपुष्पावलि–मूल्य –)॥
(२७) सन्ध्या से शरीर के लाभ–इस के पाठ से आप उन महाशयों को उत्तर अच्छे प्रकार दे सकते हैं जो कहते हैं कि सन्ध्या करने से शारीरिक लाभ क्या है मूल्य –)॥
(२८) राधास्वामीमतपरीक्षा–मूल्य –)

निवेदन ।

(१) पता साफ हो, (२) पुस्तकें किस भाषा में चाहियें, (३) वी० पी० भेजी जावेंगीं या मूल्य प्राप्त होने पर, (४) मंगा कर पाकट वापिस करते हैं जिस में महसूलादि की हानि होती है इसलिये पत्र लिखते समय विचार कर लेना योग्य है दूसरे भले मनुष्यों का काम नहीं है, (५) हमारी पुस्तकों पर हमारी मुहर देख लेना योग्य है वरन चोरी की समझ मुझ को सूचित कर देना योग्य है ॥

चिम्मनलाल वैश्य
तिलहर–ज़िला शाहजहांपुर